उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

01

फिल्म प्रबन्धन

इकाई-1 और 2 संयुक्त भारतीय सिनेमा	5
इकाई-3 तकनीक	27
इकाई-4 और 5 संयुक्त शूटिंग एवं फिल्मांकन	50

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
श्री एम0 एल0 कनौजिया	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापन

1- प्रो0 राम मोहन पाठक - वाराणसी

2- डॉ0 अर्जुन तिवारी - इलाहाबाद

सम्पादन

1- श्री राजकृष्ण मिश्र

लेखक मंडल

PGDEM&FP - 04

1- सुनील कुमार श्रीवास्तव - इलाहाबागद

2- राघवेन्द्र मिश्र - काशी

3- श्री राजकृष्ण मिश्र - लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से कुलसचिव श्री एम0 एल0 कनौजिया, द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2008

मुद्रक : नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद, मुद्रित। फोन - 2548837

इकाई 1 एवं 2 भारतीय सिनेमा

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 फिल्म निर्माण में धन की भूमिका

1.3 फिल्म निर्माण में वित्त प्रबन्ध

1.4 फिल्म बनाने के लिए धन की व्यवस्था

1.5 फिल्मों का प्रचार

1.6 फिल्म का बजट-एक

1.7 फिल्म का बजट - दो

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

1.11 प्रश्नावली

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे :—

(i) फिल्म निर्माण में धन का प्रबन्ध कैसे किया जाता है।

(ii) वितरण प्रणाली से वित्त प्रबन्ध कैसे होता है।

(ii) प्रचार-प्रसार, किस प्रकार धन की व्यवस्था में, मदद करता है।

(iv) फिल्म का बजट कैसे बनता है।

1.1 प्रस्तावना

करीब 1920 से, फिल्म निर्माण आरम्भ हुआ था। सर्वप्रथम फिल्म स्टूडियो की स्थापना की गई, जहां, धन की व्यवस्था के साथ, फिल्म निर्माण किया जाता था। भारत में भी, अनेक स्टूडियो खोले गए। प्रभात टॉकीज, कलकत्ते में न्यू थियेटर, मुम्बई में फिल्मिस्तान, फिर नाडियावाला, फिल्मालय, व्ही. शान्ताराम का राजकमल कला मंदिर, राज कपूर का आर. के. स्टूडियो और सुनील दत्त का अजन्ता आर्ट्स। जब मूक फिल्में बनती थी, उस समय और काफी दिनों तक उसके पश्चात् कम कीमत पर फिल्म बन जाया करती थी, श्वेत-श्याम, पिक्चर में लागत कम आती थी, इसीलिए कलाकार, निर्देशक, कैमरामैन, लेखन, सभी, मासिक वेतन पर, किसी न किसी स्टूडियो के

मुलाजिम हुआ करते थे, नौकरी किया करते थे। सी. एन. त्रिवेदी में सम्भवतः पहली बार यूनिट बनाकर शूटिंग की थी, फिल्म बनाई थी, लेकिन आज के युग में, जब 10 करोड़ तथा अधिक कीमत पर फिल्में बनती हैं, तब धन की व्यवस्था के अनेक पात्र खुल गए हैं। वितरण से धन की व्यवस्था की जाने लगी है।

कुछ क्षेत्रीय अधिकार ऐसे भी हैं जो बिकते नहीं हैं और जो कि आजकल विदेशी व दक्षिण भारतीय बाजार से सुस्त हैं, इसलिए निर्माण इनकी कसर भी अन्य 'टेरीटरियो' से निकालना चाहेगा। इस तरह से उसे 6 'टेरीटरियाँ' बेचनी हैं और यह कोशिश करेगा कि हर टेरीटरी 13 से 15 लाख में बिके। (वितरण व्यवस्था के बारे में पहले लिखा जा चुका है।) निर्माता वितरक से ज्यादा पैसा वसूलना चाहता है और वितरक कम से कम पैसा देना चाहता है। जब भी निर्माता वित्त की व्यवस्था के लिए किसी 'फाइनेन्सर' के पास जाता है तब वह सबसे पहले यही बजट या तस्मीना मांगता है। निर्माता उसे संभावित आय-व्यय वाला यह बजट देता है। फाइनेन्सर उसका अच्छी तरह से अध्ययन करता है, वाद-विवाद करता है और अगर निर्माण के प्रपोजल से कन्वीन्स हो जाता है तो वह उसे धन दे देता है।

निर्माता ने बजट तो बना लिया, फाइनेन्सर ने उसे स्वीकार भी कर लिया, पर यह जरूरी नहीं कि फिल्म उसी बजट में बन जाए। अधिकांश मामलों में देखा गया है कि बजट बढ़ ही जाता है। इस निर्माता व फाइनेन्सर वितरकों से वसूलने की कोशिश करते हैं। इसमें वे कभी सफल भी हो जाते हैं, कभी विफल भी। अगर फिल्म ठीक है तो वितरक पैसा बढ़ाकर भी देंगे, अन्यथा उन्हें घाटा ही खाना होगा। पर निर्माताओं को पैसा प्राप्त करने के लिए क्या-क्या पापड़ बेलने पड़ते हैं। यह एक भुक्त-भोगी ही जान सकता है।

1.2 फिल्म निर्माण में धन की भूमिका

फिल्म की शूटिंग पूरी हो जाने के बाद फिल्म के सम्पादन का काम शुरू होता है। पहले निगेटिव से दृश्यों को क्रमवार लगाया जाता है। जिसे सेटिंग कहते हैं। सेटिंग का काम पूरा हो जाने के बाद उसका पाजीटिव तैयार किया जाता है और आवाज भरी जाती है। उसके बाद फिल्म सम्पादन होता है और तब जाकर फिल्म पर्दे पर आने के योग्य बन जाती है। फिल्म तैयार होने के बाद उसे सेंसर बोर्ड को प्रस्तुत किया जाता है। सेंसर यदि किसी दृश्य को काट देता है या उस दृश्य में फेर बदल करने के लिए सुझाव देता है तो दुबारा शूटिंग करनी पड़ती है। कई बार सम्पादक के सुझाव पर भी कुछ दृश्यों को दुबारा फिल्माना पड़ता है। सेंसर प्रमाण पत्र प्राप्त होने के बाद फिल्म जनता को दिखाने के लिए प्रदर्शित कर दी जाती है।

जब तक निर्माता सभी कलाकार और तकनीशियनों को उनके काम की बकाया राशियों का भुगतान नहीं कर देता, तब तक फिल्म प्रयोगशाला से बाहर नहीं निकल पाती है। विभिन्न कलाकारों तथा तकनीशियनों के संगठन इतने प्रभावशाली और मजबूत हैं कि अब कोई फिल्म निर्माता किसी का पैसा आसानी से हजम नहीं कर सकता और

न ही किसी का भुगतान रोक सकता है।

फिल्मों पर जो लागत आती हैं उसके हिसाब से उन्हें श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। बड़ी कास्ट वाली फिल्मों के निर्माण पर जिसमें मुख्य अभिनेता और अभिनेत्रियां काम करते हैं, आज कल अस्सी लाख से एक करोड़ रुपये तक की लागत बैठती है। ऐसी फिल्में 'ए' श्रेणी में आती हैं। जिस फिल्म पर तीन से पांच करोड़ तक की लागत आती हैं उन्हें 'सुपर क्लास' माना जाता है। बीस से साठ लाख रुपये तक की लागत की फिल्मों को 'बी श्रेणी' में और इससे कम लागत की फिल्म 'सी श्रेणी की मानी जाती है।

यह विचित्र बात है कि फिल्मों का श्रेणी विभाजन भी उन पर खर्च किये धन के आधार पर ही होता है। उनकी विषय वस्तु की श्रेष्ठता के आधार पर नहीं। इसकी वजह है कि फिल्मी दुनिया में व्यावसायिक दृष्टि ही प्रमुख है, बाकी सभी बातें गौण। इसीलिए किसी भी नये आदमी के लिए फिल्म व्यवसाय में प्रवेश कर पाना प्रायः मुश्किल होता है, क्योंकि यह बहुत की व्यय साध्य कार्य है और नये आदमी को फिल्म निर्माण के लिए धन देने में फाइनेन्सर कतराता है। इसके अलावा फिल्म निर्माण का कार्य इतना जटिल है कि नये आदमी को उसके व्यावसायिक पक्ष के तकनीकी पक्ष की बारीकियों को भी गहराई से समझना पड़ता है। इसके बिना वह फिल्म का निर्माण नहीं कर सकता है। समय के अभाव में अमूमन फिल्में पूरी नहीं हो पाती। अपना पैसा लगाकर बहुत कम लोग फिल्में बनाते हैं, फिल्म निर्माण के लिए किसी फाइनेन्स को ही राजी करना होता है और इसे फिल्मी दुनिया की भाषा में 'मुर्गा काटना' कहते हैं।

फिल्म बनाकर लखपति-करोड़पति बनने का स्वप्न देखने वाले काफी लोग पांच-पच्चीस लाख रुपए अण्टी में बाँध कर बम्बई फिल्म बनाने की उम्मीद लेकर जाते हैं। वे खुद फिल्म बनाने वालों के हाथों बगैर फिल्म बनाए ही बेरहमी से हलाल हो जाते हैं। उदाहरण के लिए एक साहब फिल्म बनाने आये। उनके पास दो-तीन लाख रुपए थे। फिल्म की योजना, बनते-बनते माल खर्च हो गया। 'यार भाई किसके, खाया पिया खिसके' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। अब रह गया था उनके हाथ में फिल्म निर्माता का एक लेटर हैड मात्र।

जो फिल्म निर्माण का सपना लेकर बम्बई जाते हैं। उन्हें भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सबसे बड़ी समस्या मकान की आती है क्योंकि बम्बई में आसानी से किराये पर मकान नहीं मिलता। मकान किराये पर लेने के लिए भारी- भरकम धनराशि पगड़ी के रूप में देनी पड़ती है, क्योंकि यदि एक बार मकान किराये पर मिल गया तो कोई भी हस्ती कानूनन उसे खाली नहीं करा सकती। जो लोग मकान खरीदने की हैसियत में होते हैं, उन्हें भी दो कमरे का फ्लैट बिना तीन-चार लाख रुपए खर्च किए नहीं मिल सकता। इसके अलावा दफ्तर आदि की व्यवस्था पर भी भारी धनराशि खर्च हो जाती है। कुछ लोगों ने नये कलाकार लेकर लीक से हटकर भी फिल्में बनाने का प्रयास किया। फिल्म वित्त निगम से भी वित्तीय सहायता लेकर कुछ लोगों ने फिल्म निर्माण करने की कोशिश की। कुछ अच्छी फिल्में बनी थीं, मगर जनता को आकर्षित नहीं कर सकीं और निर्माताओं को भारी हानि उठानी पड़ी।

सरकार भी अच्छी फिल्मों का निर्माण करने वालों को पुरस्कार देती है किन्तु उन्हें फिल्म निर्माण के लिए प्रोत्साहित नहीं करती और न ही किसी तरह की वित्तीय मदद देती है। निर्माता-निर्देशक मणि कौल का उदाहरण सामने हैं। उन्हें अच्छी फिल्म बनाने के लिए पुरस्कार तो दिया गया लेकिन उन्हें दुबारा फिल्म बनाने के लिए पैसा नहीं मिला। पूर्व फिल्म फाइनेन्स कारपोरेशन की सहायता से बनाई गई अधिकांश फिल्में प्रदर्शित नहीं हो सकीं और प्रोड्यूसर फिल्म फाइनेन्स कार्पोरेशन के कर्जे के भार से दब गये। अधिकांश दुबारा फिल्में बनाने की स्थिति में ही नहीं है।

पहले जब फिल्म के नाम का पंजीयन करवाने की प्रथा नहीं थी, उस वक्त एक ही नाम या उससे मिलते-जुलते नाम की एक से अधिक फिल्में बन जाया करती थीं। जिससे निर्माताओं तथा वितरकों को परेशानी का सामना करना पड़ता था। इससे बचने के लिए फिल्म निर्माताओं की संस्था 'इम्पा' ने तय किया कि फिल्म का नाम 'इम्पा' में पंजीकृत करवाया जाए और वह नाम, जब तक निर्माता उस नाम से फिल्म बनाता हो, किसी और निर्माता को नहीं दिए जाए।

फिल्म निर्माताओं के इस समय देश में तीन मुख्य संगठन हैं। प्रोड्यूसर कौंसिल, जिसकी सहायता इनवीटेशन पद्धति से होती है। इम्पा यानी इण्डियन मोशन फिल्म प्रोड्यूसर एसोसिएशन और वेस्टर्न इण्डिया फिल्म प्रोड्यूसर्स कौंसिल। इन तीनों ही संगठनों में से किसी की भी सदस्य अनिवार्य तो है पर इनमें से किसी भी संगठन की सदस्यता फिल्म निर्माता के लिए फायदेमंद जरूर रहती है।

कोई भी निर्माता जब 'इम्पा' की सहायता के लिए आवेदन करता है तो उसे सदस्यता तभी प्राप्त होती है जब दो सदस्य उसके नाम की सिफारिश कर दें। उसके बाद सदस्यता समिति उस पर विचार करती हैं। यदि निर्माता को सदस्यता देने से समिति इन्कार कर दे तो उसकी कोई अपील नहीं होती। इसी प्रकार निर्माणाधीन फिल्म के नाम का पंजीयन भी इम्पा में ही होता है और एक सीमित अवधि के बाद फिल्म न बनने पर 'इम्पा' वह नाम किसी भी दूसरे निर्माता को देने के लिए स्वतंत्र होता है।

बी. आर. चोपड़ा की प्रसिद्ध फिल्म निकाह का नाम पहले 'तलाक, तलाक, तलाक' था मगर 'तलाक' नाम पहले से पंजीकृत हो चुका था इसलिए जिस निर्माता का नाम पंजीकृत था उसने चोपड़ा पर मुकदमा दायर कर दिया। चोपड़ा का तर्क यह था कि उनकी फिल्म के नाम में तलाक शब्द तीन बार है मगर यह फर्क स्वीकार नहीं किया गया। चोपड़ा को अपनी फिल्म का नाम बदलकर निकाह रखने के लिए विवश होना पड़ा।

कई बार ऐसा भी होता है कि निर्माण में विलम्ब हो जाने पर अभिनेता-अभिनेत्रियाँ अनुबन्ध हो जाने पर भी काम करने से इन्कार कर देते हैं। यदि किसी अभिनेता से उस समय अनुबन्ध किया गया, तब वह अधिक लोकप्रिय न रहा हो और कुछ दिनों बाद ही उसकी कोई फिल्म हिट हो जाए तो उसका बाजार मूल्य बढ़ जाता है। ऐसी हालत में अभिनेता, प्रायः दूसरे अनुबन्ध तोड़ देते हैं और जो राशि उन्हें अग्रिम

दी गई हो वापस कर देते हैं या फिर निर्माता के साथ सहयोग नहीं करते। अनेक ऐसे उदाहरण सुनने में आते रहते हैं। बड़े अभिनेता यद्यपि भारी-भरकम अग्रिम राशि (साइनिंग अमाउन्ट) अनुबन्ध के समय लेते हैं किन्तु किसी फिल्म के अनुबन्ध करने पर वे इसे प्रतिष्ठा का पक्ष भी मानते हैं कि वह फिल्म पूरी हो। यदि दिलीप कुमार जैसे अभिनेता से कोई निर्माता अनुबन्ध करता है, तो यह निश्चित माना जायेगा कि उसकी फिल्म पूरी हो जाएगी। कुछ चोटी के अभिनेता तो ऐसे भी हैं जो अनुबन्ध के बाद फिल्म को पूरा कराने में निर्माता की हर तरह से मदद भी करते हैं। कुछ अभिनेता तो ऐसे भी हैं जो वस्तुतः निर्देशक की भूमिका भी अदा करते हैं। चोटी के कुछ अभिनेताओं की फिल्मों के निर्माण के समय कई दिग्गज निर्देशकों को भी सैट से बाहर देखा गया है। सगीना, दिल दिया दर्द लिया, और गंगा-जमुना जैसी दिलीप कुमार की फिल्मों में निर्देशकों की भूमिका क्या थी, फिल्मों में थोड़ी सी भी दिलचस्पी रखने वाले लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं।

कुछ निर्माण ऐसे भी हैं, जो स्थापित हो चुके हैं और उनका अपने काम-काज पर पूरा नियंत्रण रहता है और वे हर विभाग को अपने अधीन रखते हैं। निर्माता-निर्देशक मनोज कुमार भी ऐसे ही लोगों में गिने जाते हैं। अभिनेता-अभिनेत्रियों के असहयोग के कारण निर्माता को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कई बार ऐसे मौके आते हैं जब कलाकारों के शूटिंग पर आने से इन्कार कर देने के कारण स्टूडियो में लगाये गये सैट तोड़ने पड़ते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अभिनेता-अभिनेत्रियों के असहयोग के कारण निर्माताओं को कहानी तक में परिवर्तन करना पड़ जाता है।

एक बार प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक फिल्म बना रहे थे, जिसमें उनकी पुत्री ही प्रमुख भूमिका निभा रही थी। जब फिल्म की शूटिंग कुछ हो गई तो बेटी ने पैसे मांगे। निर्माता-निर्देशक काफी कुशल थे, उन्होंने सहायक अभिनेत्री को नायिका बना दिया और अपनी पुत्री की भूमिका को गौण कर दिया। यह घटना विश्व प्रसिद्ध फिल्म निर्माता-निर्देशक की अपनी फिल्म 'बूंद जो बन गई मोती' की है जिसमें उनकी बेटी राजश्री हीरोइन थी। बाद में उसे हटाकर मुमताज को हीरोइन का रोल दिया गया था। इसी तरह कई बार गाने भी अभिनेता-अभिनेत्री के मन मुताबिक न होने पर रद्द कर दिये जाते हैं। कई बार तो अभिनेता-अभिनेत्री मंजूरी देने के बाद भी गाना रद्द करते हैं और बने-बनाये सैट तोड़ने पड़ जाते हैं।

इस तरह के कई उदाहरण हैं जब गानों को फिल्माने के लिए लगाये गये लाखों रुपये की लागत से बने सैट निर्माताओं को तोड़ने पड़े हैं। इस तरह फिल्म निर्माण की निरन्तर जटिल होती जा रही प्रक्रिया में निर्माता की भूमिका क्रमशः गौण होती जा रही है और चोटी के अभिनेता-अभिनेभियों तथा धन लगाने वालों का प्रभाव फिल्म जगत पर बढ़ता जा रहा है।

वितरक पैसे कैसे चुकाता है?

वितरण अधिकार के चार प्रकार हैं। पहली प्रक्रिया एम.जी जिसको मिनीमम

गारंटी कहा जाता है। इसमें वितरक निर्माता को एक निश्चित राशि करार के मुताबिक अदा करता है। इस व्यवसाय से फिल्म अगर हानि देती है तो उसे वितरक को भुगतान होता है। करार के अनुसार वितरक फिल्म की अपनी टेरेटरी में प्रचार के लिए एक निश्चित राशि निर्माता को देय राशि में से रोके रखने का अधिकारी होता है। इस मद में होने वाले खर्चों के वास्तविक बिल वितरक को निर्माता के सम्मुख प्रस्तुत करने होते हैं, जिन पर निर्माता अपनी स्वीकृति देता है। कई बार इन बिलों में अतिरंजना लगती है, तो मामला विवाद में पड़ जाता है।

इसी प्रकार अनुबंध के मुताबिक वितरक को बीस प्रतिशत कमीशन प्राप्त होता है। जो वास्तव में 25% होता है। मान लीजिए निर्माता अपनी फिल्म को किसी एक क्षेत्र के लिए पांच लाख रुपये में बेचता है और उसमें से एक लाख रुपये फिल्म के प्रचार के मद के लिए तय किया जाता है। जब किसी एक स्टेशन से एक लाख रुपये की ग्रॉस आय (Gross Income) हुई तो वितरक अपना 20 प्रतिशत कमीशन ग्रॉस आय में से काटता है। अस्सी हजार रूपया निर्माता के खाते में डाल देगा और कमीशन राशि के रूप में बीस हजार खुद रख लेगा। इसका मतलब यह हुआ कि निर्माता को मिली 80 हजार की राशि पर वितरक को 20 हजार रुपये मिले यानी कमीशन 80 हजार पर 20 हजार हुआ, जो 25 प्रतिशत हो गया।

फिल्म के प्रचार पर वितरक द्वारा किया गया खर्च निर्माता के मद में जाता है, इसलिए कमीशन काटते वक्त प्रचार खर्च भी उसमें शामिल होगा। जब वितरक को निर्माता को दी गई धनराशि, प्रचार पर किया गया खर्च और उसका कमीशन मिल जाता है, तो उसके बाद होने वाली आमदनी में आधा निर्माता को और आधा वितरक को मिल जाता है, पर वास्तव में यह धनराशि किसी न किसी तरह वितरक हड़प जाने की कोशिश करता है। इस पर विवाद खड़े होते हैं।

दूसरी प्रक्रिया 'एडवांस' की है। इस प्रक्रिया में वितरक जो पैसा निर्माता को देता है वह अनुबंध में किसी गारंटी के तहत नहीं होता। वितरक द्वारा दिया जाने वाला पैसा निर्माता के पास अमानत के रूप में रहता है। फिल्म प्रदर्शन से होने वाली किसी हानि में वितरक की कोई जिम्मेदारी नहीं होती। प्रदर्शन के बाद निश्चित कमीशन और प्रचार राशि को प्राप्त कर लेने के बाद व्यय व आमदनी में अगर कोई अन्तर रह जाता है तो वितरक निर्माता से प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

एडवांस प्रक्रिया में वितरक को मिलने वाला कमीशन एम.जी. प्रक्रिया से कम होता है। यह कमीशन आम तौर पर दस प्रतिशत बनता है, लेकिन कभी-कभी करार के मुताबिक कम अथवा अधिक भी हो जाता है।

लीज अथवा राइट सेल तीसरी प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत निर्माता, वितरक को फिल्म के अधिकार बेच देता है। इस अनुबन्ध के बाद निर्माता की फिल्म के संबंध में वितरक से कोई लेन-देन नहीं होती। लाभ-हानि की पूरी जिम्मेदारी वितरक की होती है। पहले इसे आउट राइट सेल ही कहा जाता था, लेकिन इस अनुबंध में सेल्स टैक्स लगने

की वजह से अब 'लीज' की आड़ ली जाने लगी हैं, कोई भी किसी भी किस्म का अनुबंध हो, प्रिन्ट की सप्लाई निर्माता ही करता है, जिसकी संख्या निर्माता और वितरक आपसी बातचीत से तय करते हैं।

रॉयल्टी

यह एक नई परम्परा कुछ सालों से चालू हुई। जब से फिल्म प्रिन्ट्स की कीमतें बढ़ीं है, तब से फिल्म निर्माता अपनी फिल्म रॉयल्टी पर देने लगे हैं। इस प्रक्रिया में निर्माता वितरक को प्रिन्ट नहीं देता बल्कि स्वयं वितरक फिल्म के प्रिन्ट बनवाता है, पर वास्तव में यह राशि भी फाइनल एकाउंटिंग के समय वितरक निर्माता से वसूल कर लेता है।

प्रिन्ट व्यवस्था

करार के मुताबिक फिल्म निर्माता को एक निश्चित संख्या में प्रिन्ट देने होते हैं। इनकी संख्या करार के वक्त तय हो जाती हैं। अगर वितरक को अतिरिक्त प्रिन्ट की आवश्यकता होती है, तो वे स्वयं वितरक को बनवाने होते हैं अथवा अन्य किसी वितरक से उधार लेने होते हैं। निश्चित अवधि के लिए इन प्रिन्ट्स की एवज में किराये के लिए कुछ राशि देनी होती है। यह भी होता है कि यह लेन-देन का सिलसिला सम्बन्धों के आधार पर एक-दूसरे के काम आने की नीयत से किया जाए। जो वितरक प्रिण्ट उधार लेता है, उसे जरूरत पड़ने पर जिस वितरक को प्रिन्ट उधार लिए हैं उसे भी अपने प्रिण्ट देने पड़ते हैं। अक्सर बड़े शहरों में किसी भी फिल्म के बीस-तीस प्रिन्ट प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसे अवसरों पर उधार की जरूरत होती है। इस जरूरत में निर्माता भी अपने सम्बन्धों से वितरक की मदद करता है।

फिल्म प्रचार की सामग्री

प्रचार के लिए पोस्टर, शो कार्ड, प्ले कार्ड, ब्लाक तथा स्लाइड्स निर्माता, वितरक को अपनी ओर से मुफ्त देता है। इसके अतिरिक्त छः शीटर पोस्टर अथवा अन्य महंगी प्रचार सामग्री निर्माता व उसके प्रतिनिधि बनाते हैं। इनकी जरूरत अगर वितरक महसूस करता है, तो उसके लिए उसे निर्माता को इनका मूल्य चुकाना होता है।

फिल्म वितरण की अवधि

यह अवधि कितनी हो, यह फिल्म निर्माता और वितरक के अनुबन्ध पर निर्भर करता है, पर साधारणतया एम.जी. प्रक्रिया के तहत होने वाले अनुबन्धों में यह अवधि दस वर्ष होती है। परन्तु आजकल ऐसा देखने में आता है कि यह अवधि कम से कम तीन वर्ष भी हो जाती है। इस अवधि के समाप्त होने के बाद फिल्म सम्बन्धित सारे अधिकार पुनः फिल्म निर्माता को प्राप्त हो जाते हैं। अवधि समाप्त होने पर वितरक को फिल्म से सम्बन्धित प्रचार सामग्री भी प्रिन्ट के साथ वापस निर्माता को देनी होती है।

अगर वितरक चाहे तो पुनः नई शर्तों पर फिल्म की कीमत भुगतान कर प्राप्त कर सकता है। अन्यथा निर्माता, फिल्म किसी और वितरक को बेचने के लिए स्वतंत्र होता है।

लीज पर प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य सभी करारों में यह नियम लागू होता है।

राशि का भुगतान

निर्माता और वितरक के बीच जब फिल्म के लिए काम होता है, तो प्रारम्भ में वितरक 'साइनिंग राशि' देता है। इसके बाद करार की शर्तों के मुताबिक जैसे-जैसे फिल्म तैयार होती है, वैसे-वैसे भुगतान करता चला जाता है। इसी प्रकार एक निश्चित रकम निर्माता द्वारा प्रिन्टों की डिलीवरी दी जाने पर वितरक को देनी होती है।

जिस फिल्म का अनुबन्ध मुहूर्त के पहले या मुहूर्त के साथ नहीं होता है उनको खरीदते वक्त वितरक शूटिंग की गई फिल्म की ट्रायल दिखाने के लिए कहता है। ट्रायल देखने के बाद ही यदि वह वितरक को अच्छी लगी तो सौदा होने की संभावना बनती है। ऐसे मौके पर ट्रायल के वक्त वितरक अपने दोस्तों, परिवारजनों को भी साथ ले जाता है, और उनकी भी राय फिल्म के बारे में मांगता है।

धंधे में दलालों का योगदान

फिल्मों की दलाली का धंधा करने वाले वितरक और निर्माता के मध्य बिचौलियों का रोल अदा करते हैं। आमतौर पर यह दलाल वितरकों के हितरक्षक होते हैं। करार हो जाने पर निर्माताओं को इन्हें कमीशन देना होता है। यह कमीशन कुल करार राशि का एक से तीन प्रतिशत तक होता है। जो निर्माता नियमित रूप से फिल्में बनाते हैं अथवा जिनकी फिल्में बाक्स ऑफिस पर सफल होते हैं वह इन दलालों के बिना भी अपना काम चला लेते हैं, मगर आमतौर पर फिल्म वित्त और वितरक की प्रक्रिया में दलालों के रोल को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता है। विशेष रूप से जो दलाल कुछ बड़े वित्तदाताओं और वितरकों पर अपना प्रभाव रखते हैं, वह अपनी मनमानी शर्तों पर निर्माताओं को फिल्म निर्माण के लिए धन दिलाते हैं और वितरण अधिकार बेचते हैं। नये निर्माताओं के लिए दलालों से बच पाना लगभग असम्भव है।

उपरोक्त सारी व्यवस्थाओं के बावजूद भी अगर कोई फिल्म नहीं बिकती है तो उसे वित्त भी उपलब्ध नहीं होगा और निर्माण कार्य रुक जायेगा। यह भी एक हकीकत है कि फाइनेंसिंग का धंधा करने वाले लोग भी आमतौर पर बिकी हुई फिल्मों को ही फाइनेंस करते हैं। इसी तरह वितरक भी पिक्चर खरीदने से पहले पूछते हैं कि फाइनेंस किसने किया है? कई बार इस विरोधाभास से फिल्म निर्माण योजना तक सीमित होकर रह जाता है।

वितरक धन की व्यवस्था कैसे करता है, इस बात की अपनी अहमियत है। वितरकों को धन की व्यवस्था खुद ही करनी पड़ती है। कुछ तो मित्रों या व्यावसायिक लेन-देन करने वालों मे से उधार लेना होता है। कुछ व्यवस्था रिलीज होने के वक्त थियेटरों से हो जाया करती है।

1.4 फिल्म बनाने के लिए धन की व्यवस्था

फिल्म निर्माण बड़ी पूँजी का धन्धा है। साधारण से साधारण फिल्म के निर्माण पर भी आजकल कम से कम 8 से 10 लाख रुपए की लागत आती है, इसलिए फिल्म

निर्माण के लिए धन की व्यवस्था सबसे बड़ी आवश्यकता है।

ऐसे निर्माता बहुत कम होते हैं जो पूरी फिल्म का निर्माण अपना धन लगाकर करें, क्योंकि किसी भी एक आदमी के पास इतना धन नहीं होता कि वह अपने बलबूते पर फिल्म का निर्माण कर सकें। इसलिए धन कई स्रोतों से प्राप्त किया जाता है। फिल्म निर्माता के लिए धन प्राप्ति के प्रमुख साधन यह हैंः-

1. खुद का धन लगाना।
2. वित्त व्यवस्था करने में सक्षम भागीदार से धन लगवाना।
3. फिल्म के प्रदर्शन और वितरण और अधिकार बेचकर धन जुटाना।
4. व्यापारिक फिल्म फाइनेन्सरों से उधार लेना। निगेटिव या क्षेत्रीय अधिकार गिरवी रखकर धन लेना।
5. फिल्म डेवलपमेन्ट कौंसिल से धन प्राप्ति करना।
6. फिल्म के विश्व अधिकार (वर्ल्ड राइट्स) बेचना।

खुद का धन

फिल्म निर्माण की शुरूआत करने में जो प्रारम्भिक धन की व्यवस्था करनी पड़ती है, उसके लिए निर्माता या तो अपना धन लगाए या अपने किन्ही दोस्तों या ऐसी पार्टी को पकड़े जो धन की व्यवस्था कर सके। यह व्यवस्था लाख, पचास हजार से लेकर 8-10 लाख या अधिक की भी हो सकती है, जो इस बात पर निर्भर करती है कि आप किस किस्म की फिल्म बना रहे हैं और वास्तविक स्थिति में आपको कितना धन उपलब्ध हो सकता है। इस धन से जब फिल्म का निर्माण पूरा होना सम्भव नहीं हो, तब आपको उपरोक्त किसी भी तरीके से धन की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

फिल्म की रूपरेखा बनाते वक्त ही यह पता लग जाता है कि फिल्म बनाने में कितना खर्च आएगा कितना आपके पास है, कितनी आपको बाहर से व्यवस्था करनी होगी। फिल्म निर्माता का महत्वाकांक्षी होना आवश्यक है, साथ ही उसमें जोखिम उठाने की प्रवृत्ति भी होनी चाहिए। अगर निर्माता के पास लाख रुपए हैं तो वह 10 से 15 लाख तक की फिल्म बनाने की सोचता है। अगर 10 लाख हैं तो करोड़ की फिल्म बनाने की योजना में उलझ जाता है। इस तरह आपके लगाये हुए धन से कई गुना अधिक धन आपको बाजार से उठाना पड़ेगा। अगर आपके पास वह क्षमता नहीं है, तो फिर आपकी फिल्म का राम ही मालिक है। आपको कुछ धन दोस्तों से, रिश्तेदारों से, शुभचिन्तकों से भी मिल सकता है, लेकिन वह भी अव्यावसायिक तरीका होगा और फिल्म निर्माण के लिए अपर्याप्त होगा।

फिल्म की हर मण्डी में ऐसे लोग हमेशा मौजूद रहते हैं जो आपको जरूरत पड़ने पर धन उधार दे सकते हैं। इन्हें फिल्म माहौल की भाषा में 'फिल्म फाइनेन्सर' कहा जाता है, ये लोग हुण्डी भर उधार दे देंगे, यदि आपकी बाजार में साख अच्छी हैं। इस तरह उधार लिया हुआ रुपया आपको हुण्डी में निश्चित की गई अवधि के पूरी होने पर लौटाना

पड़ेगा अथवा दुबारा हुण्डी निष्पादित (रिएक्जीक्यूट) करनी होगी। अगर आप इस हुण्डी पर लिया गया धन वापिस नहीं लौटा पाते हैं तो आपको फाइनेन्सर अदालत में भी ले जा सकता है। वहां पर आपके पास दो ही रास्ते हैं या तो आप किश्तों में पैसा चुकाना मंजूर करें या आप अपने-आपको दिवालिया घोषित करने की पेशकश अदालत में प्रार्थनापत्र देकर करें। दिवालिया घोषित हो जाने पर अदालत आपको अपने क्षेत्र से बाहर जाने के लिए तीन साल तक के लिए प्रतिबन्धित कर देगी। साथ ही आप कोई व्यवसाय भी अपने नाम से नहीं कर पाएंगे। हुण्डी पर भी आपको उधार रकम थोड़ी-सी ही मिल पाएगी।

जब आपको अधिक पैसे की जरूरत हो तो फाइनेन्सर आपके निगेटिव अपने नाम करवा कर आपको जरूरत के लायक धन उधार दे देगा। इस धन का चुकाता निर्माता को, फिल्म के प्रिण्ट वितरकों को डिलीवरी के वक्त करना पड़ता है। फाइनेन्सर को हर क्षेत्रीय वितरण के वक्त प्रिन्ट की डिलीवरी पर कलाकारों और टेक्नीशियनों की निर्माता पर बकाया रकम को चुकाने के बाद जो बच जाएगा वही अंश मिलेगा। कभी-कभी जब वितरकों से मिलने वाली धनराशि फाइनेन्सर के जोखिम को 'कवर' नहीं करती है, तो फाइनेन्सर प्रिण्ट की डिलीवरी देने से इन्कार कर देता है। इसके दो ही रास्ते बनते हैं या तो वितरक पैसा बढ़ाकर दे अथवा निर्माता पैसे चुकाने की जिम्मेदारी अपने सिर पर ओढ़े और दूसरी फिल्म में पैसा देने का वायदा करके दस्तावेजों पर लिखित करार के हस्ताक्षर करें। वितरक पैसा तभी बढ़ाऐंगे जब उनको लगेगा कि यह फिल्म बाक्स ऑफिस पर अच्छी तरह चलेगी। अगर उनको लगे कि फिल्म नहीं चलेगी तो वे डिलीवरी लेने से साफ इन्कार कर देते हैं और ऐसी हालत में निर्माता के साथ-साथ फाइनेन्सर भी फंस जाता है। कुछ मामलों में तो डिलीवरी एकाउण्ट में पैसा कम करके भी डिलीवरी देनी पड़ती है। ऐसी सूरत में जब फाइनेन्सर का पैसा फंसा हुआ है तो फाइनेन्सर को मजबूर होकर दूसरी फिल्म फाइनेन्स करनी होती है। अगर निर्माता किसी कारण से फिल्म नहीं बना पाता है तो फाइनेन्सर का पैसा डूबा ही समझो।

जो लोग निगेटिव गिरवी नहीं रखना चाहते वे कोई न कोई क्षेत्रीय वितरण अधिकार गिरवी रखकर पैसा देते हैं। क्षेत्रीय अधिकार को गिरवी रखने की सूरत में यह अधिकार बिके हुए होने चाहिए और पैसा देने वाला उस वितरक से सभी कागज पर लिखवा लेता है कि जो पैसा उसको निर्माता को डिलेवरी के वक्त देना है वह फाइनेन्सर को देगा। अगर क्षेत्रीय अधिकार बिके हुए नहीं हैं तो जब अधिकार बिकेंगे तब फाइनेन्सर उससे हस्ताक्षर करवा लेगा। कभी-कभी चालाक निर्माता एक ही क्षेत्रीय अधिकार को एक से अधिक जनों के पास गिरवी रख देते हैं, जिसकी जानकारी फाइनेन्सरों को नहीं होती है। ऐसी हालत में विवाद खड़े हो जाते हैं और प्रिन्टों की डिलीवरी खटाई में पड़ जाती है।

फाइनेन्सरों के पास भी इतना पैसा नहीं होता है। वह भी दूसरों से उधार लेता है, जिसे जमाबन्दी कहते हैं। जिनके पास भी थोड़ा पैसा जमा होता है, वे इनके पास जमा करवाने पड़ते हैं। ये एक निश्चित ब्याद दर पर ब्याज पाते रहते हैं। इसी पैसे को

फाइनेन्सर निर्माता को तीन से पाँच प्रतिमाह के हिसाब से उधार देता है। ऊपर से पैसा उधार देते वक्त तीन माह का अग्रिम ब्याज काट लेता है। इस प्रक्रिया में हर तीन महीने पूरे होने पर निर्माता को ब्याज देना होता है। इस तरह एक लाख रुपया उधार लेने पर निर्माता को एक साल में ब्याज का करीब एक लाख चुकाना पड़ जाता है।

जब किसी फिल्म में बहुत अधिक धन लगाना पड़ता है तो वह एक फाइनेन्सर के बस की बात नहीं होती है। प्रायः 3-4 फाइनेन्सर मिलकर एक सिण्डीकेट बनाकर उसको पैसा देते हैं। कभी-कभी वितरक भी निर्माता की रकम ड्यू नहीं होने पर भी ब्याज काट करके वह धनराशि निर्माता को देता है। जब फाइनेन्सर का पैसा चुकता हो जाता है, तो निगेटिव तथा अन्य अधिकार निर्माता को पुनः प्राप्त हो जाते हैं। सरकारी कानूनों के हिसाब से आप 9 प्रतिशत पी.ए. ब्याज वसूल कर सकते हैं, तब बाकी के ब्याज की रकम फाइनेन्सर निर्माता को रायल्टी के रूप में वसूल करेगा।

विश्व अधिकार

विश्व अधिकार का अर्थ है कि किसी एक पार्टी या एक सिण्डीकेट को फिल्म प्रदर्शन के विश्व भर के समूचे वितरण अधिकारों को बेच देना। इसकी एवज में विश्व अधिकार नियंत्रण (वर्ल्ड राइट कन्ट्रोलर) आपको पूरी फिल्म बनाने की गारंटी देता है। फिल्म के क्षेत्रीय अधिकार बेचने की जिम्मेदारी विश्व अधिकार नियंत्रक की ही रहती है, मगर वह भी निर्माता की सहमति के बिना अधिकार नहीं बेच सकता। अगर निर्माता ने उसको यह अधिकार दिया है कि बगैर उसे पूछे क्षेत्रीय अधिकार बेच सकता है तो फिर 'विश्व अधिकार नियंत्रक' ही अधिकृत विक्रेता माना जाएगा। ऐसी सूरत में निर्माता घाटे में रहता है।

विश्व अधिकार नियंत्रक धन जुटाने की व्यवस्था अपने स्तर पर करता है। यह उसकी जिम्मेवारी होती है। अगर वह धन जुटाने में असमर्थ रहता है तो निर्माता से कह सकता है कि वह किसी दूसरे तरीके से धन की व्यवस्था करे। तब निर्माता अपनी फिल्म के क्षेत्रीय अधिकार गिरवी रखकर धन प्राप्त कर सकता है। वितरकों से प्राप्त होने वाला धन किश्तों (इन्स्टालमेन्ट्स) से मिलता है। इसमें दो तरह की व्यवस्थाएँ हैं-जैसा भी करार हो जाए। वितरक से जो भी पैसा आए उसे विश्व अधिकार नियंत्रक रखे, दूसरी व्यवस्था यह है कि वह धन वितरक रखे। दोनों सूरत में विश्व अधिकार नियंत्रक जरूरतों के मुताबिक धन चुकाने का जिम्मेदार होता है। जैसे शूटिंग के वक्त निर्माता को दस लाख रुपये चाहिये तो पहली सूरत में, जिसमें विश्व अधिकार नियंत्रक ने वितरकों से मिला पैसा अपने पास रखा है, पूरा पैसा देगा, जबकि-दूसरी सूरत में वितरकों का पैसा निर्माता रखता है और वह धनराशि अगर है तो विश्व अधिकार नियंत्रक बकाया पांच लाख रुपये देगा।

इस कार्य के पारिश्रमिक स्वरूप विश्व अधिकार नियंत्रक निर्माता से 10 प्रतिशत कमीशन लेता है। जैसे विश्व अधिकार 50 लाख रुपए में बिके तो उस पर उसका

कमीशन 5 लाख बनता है। अगर फिल्म ज्यादा कीमत में बिकी तो अतिरिक्त आय का आधा-आधा हिस्सा निर्माता और विश्व नियंत्रक बांट लेते हैं।

फिल्म डेवलपमेन्ट कौंसिल से धन व्यवस्था

पहले सरकार ने अच्छी बनाने के लिए फिल्म फाइनेन्स कारपोरेशन (चलचित्र वित्त निगम) बनाया था। जो प्रति फिल्म 3 लाख रुपए देता था। इसके वित्तीय सहयोग से कई फिल्में बनीं, लेकिन उनमें से अधिकांश फिल्मों ने थियेटर का पर्दा तक नहीं देखा। नतीजा यह हुआ कि फिल्म फाइनेन्स कारपोरेशन को घाटे में जाना पड़ा। अन्ततोगत्वा केन्द्रीय सरकार ने इसको विघटित करके एक नई संस्था का निर्माण किया, जिसका नाम है-''फिल्म डेवलपमेन्ट कौंसिल''। यह संस्था बहुपंथी हैं। फिल्मों के लिए फाइनेन्स भी करती है, कच्ची फिल्मों का आयात भी नियंत्रित करती है और विदेशी फिल्मों का आयात करती है, जिसमें इसको एकाधिकार प्राप्त है।

इनकी घोषित नीति तो यह है कि फिल्म का जो प्रस्ताव (प्रपोजल) आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद हो उसे ही यह संस्था फाइनेन्स करेगी।

कुछ और तथ्य

फिल्म जब पूरी हो जाती है तो सबसे पहले कलाकारों और तकनीशियनों की बकाया रकम चुकानी पड़ती है। दूसरा नम्बर फाइनेन्सर का होता है।

फाइनेन्सर का पैसा निकलने के बाद वह नोटिस मुक्त कर देता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि फाइनेन्सर जो धन लगाता है वह निकल नहीं पाता। ऐसी दशा में प्रायः वह भी देखा जाता है कि अपना धन निकालने के लिए उसी निर्माता को फाइनेन्सर दुबारा धन दे देता है। कभी-कभी फाइनेन्ससर का धन डूब भी जाता है। आमतौर पर अदालतों में निर्माता और फाइनेन्सर के बीच मुकदमे चलते रहते हैं।

कुछ चालक निर्माता कभी-कभी एक ही वितरण क्षेत्र (टेरीटरी) को एक से अधिक लोगों को गिरवी रख देते है। हुण्डी पर पैसा तभी मिलता है जब निर्माता की साख हो, क्योंकि हुण्डी पर लिए गए पैसे को न तो साहूकार टेरीटरी बेचकर मिले धन से वसूल कर सकता है और न ही साहूकार हुण्डी के आधार पर दिए गए धन को वसूल करने के लिए निगेटिव ही रुकवा सकता है। हुण्डी पर धन केवल साख वाले बड़े निर्माता ही ले सकते हैं।

कई बार ऐसा भी होता है कि कोई एक निर्माता जब अपनी फिल्म पूरी नहीं कर पाता है तो वितरक, फाइनेन्स मिलकर अधूरी फिल्म को पूरी करते हैं। इस सबके बावजूद बड़ी संख्या में फिल्में शुरू तो हो जाती है, मगर पूरी नहीं हो पातीं। बम्बई में भारी संख्या में अधूरी फिल्में पड़ी हैं।

कुल मिलाकर फिल्म बनाने के लिए धन की व्यवस्था करने का काम बहुत ही पेचीदा और उलझन भरा है विशेषकर उन निर्माताओं के लिए जो नए हैं, अनुभवहीनता के कारण कई निर्माता फिल्म का निर्माण शुरू करने के बाद उसे पूरा नहीं कर पाते और

लाखों रुपए गंवा बैठते हैं।

1.5 फिल्म का प्रचार

जब फिल्म बनाने की योजना बननी शुरू होती है तब से ही फिल्म के प्रचार का कार्य भी शुरू हो जाता है। निर्माता ने कौन-सी अभिनेत्री फिल्म में बुक की, अभिनेता कौन सा है? संवाद किसके हैं? गीत किसने लिखे, संगीत निर्देशक कौन है? आदि के बारे में समाचार अखबारों व फिल्मी पत्रिकाओं में छपने शुरू हो जाते हैं। इस प्रचार कार्य को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए निर्माता आम तौर पर एक जनसम्पर्क अधिकारी रखता है। इसकी सेवायें कान्ट्रैक्ट बेसिस पर ली जाती हैं। जनसम्पर्क अधिकारी अखबारों के संपादकों से सम्पर्क बनाये रखता है, ताकि उसकी खबरें और प्रचार के लिए जारी तस्वीरें विभिन्न अखबारों में यथा समय छपती रहा करें।

एक जनसम्पर्क अधिकारी एक साथ कई फिल्म निर्माताओं की फिल्म के काम को देख सकता है। वह उनकी सभी फिल्मों की प्रचार सामग्री को तैयार करके अखबारों को भेजता रहता है। निर्माता जनसम्पर्क अधिकारी के साथ एक स्टिल फोटोग्राफर भी रखता है। जो कलाकारों आदि को तस्वीरें, शूटिंग के बाद प्रचार के लायक दृश्यों की तस्वीरें खींचता रहता है। वे तस्वीरें रोचक विवरणों या न्यूज आइटमों के साथ अखबारों में छपती रहती हैं। यह क्रम फिल्म के प्रदर्शन (रिलीज) होने तक बराबर चलता ही रहता है।

इसके अलावा एक विज्ञापन फिल्म की शुरूआत के समय दिया जाता है जिसे एनाउन्समेंट (घोषणा) कहा जाता है। इसके बाद फिल्म का मुहूर्त होता है या फिल्म की शूटिंग शुरू होती है तब भी अखबारों को विज्ञापन दिया जाता है। फिर कभी-कभी फिल्म की प्रगति के हिसाब से भी विज्ञापन दिये जाते हैं, अंत में फिल्म के रिलीज (प्रदर्शन) होने के समय विज्ञापन दिये जाते हैं। जिसको फिल्म जगत में ''रिलीज पब्लिसिटी'' कहा जाता है। यह विज्ञापन आमतौर पर फिल्म पत्रिकाओं में दिये जाते हैं, मगर बड़े निर्माता कभी-कभी दूसरे अखबारों, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं आदि में भी देते हैं।

इस पब्लिसिटी का एक खास बजट होता है, जिसका खर्च निर्माता वहन करता है और फिल्म की लागत में इस खर्च को जोड़ा जाता है।

प्रचार से छवि निर्माण

दूसरी किस्म की पब्लिसिटी वह होती है जो खास करके नये फिल्म कलाकारों की दर्शकों में साख और छवि (इमेज) बनाने के लिए की जाती है। इस प्रचार कार्य के लिए निर्माता और उसके जनसम्पर्क अधिकारी की आपसी राय से निश्चित नीति तय की जाती है, उसी के अनुरूप वे फिल्म अभिनेताओं की छवि बनाने की गरज से सामग्री छपवाते हैं। कुछ अभिनेताओं के अपने जनसम्पर्क अधिकारी भी होते हैं जो अपने-अपने कलाकारों की छवि दर्शकों में स्थापित कराने के लिये खास तौर पर सामग्री, आदि

छपवाकर प्रचार करते हैं। विभिन्न खबरों, गपशप, छोटे-छोटे फीचर, अफवाहों भरी चटपटी खबरों के द्वारा उनके निजी जीवन की बातें, तथाकथित रोमांस, पार्टियों के हंगामों की चटकीली खबरें, उनके साक्षात्कार (इंटरव्यू), जीवनियाँ संस्मरण आदि इस तरह के प्रचार के लिये तैयार करवाकर प्रकाशित कराए जाते हैं।

फिल्मों के प्रचार के लिए अखबारों के अलावा रेडियो, टेलीविजन आदि प्रचार माध्यमों का भी सहारा लिया जाता है। इन्हें आयटम कहा जाता है। इस पब्लिसिटी में कभी-कभी फिल्मी गानों के अलावा डायलॉग और टी.वी. के लिए फिल्म के खास दृश्यों का भी उपयोग किया जाता है। इस तरह की पब्लिसिटी के लिए अलग से व्यक्ति निर्धारित होता है, जिसको इसी काम के लिए तय किया जाता है। इस काम के लिए ''अमीन सयानी'' का नाम श्रोताओं का जाना-पहचाना, बहुचर्चित नाम है। रेडियो सिलोन के प्रचारात्मक कार्यक्रमों के संयोजन व प्रस्तुतीकरण पर उनका एकाधिकार सा था।

अन्य प्रचार माध्यम

इन सब प्रचार प्रक्रियाओं के अलावा फिल्म की रिलीज के वक्त शहरों में जहाँ भी फिल्म रिलीज होती हैं बड़े-बड़े पोस्टर, पंपलेट होर्डिंग, दीवालों पर पेन्टिग, समाचार पत्रों में रिलीज की सूचना, थियेटरों में स्लाइड आदि के द्वारा भी प्रचार करते हैं। बड़े नगरों में कुछ लोग या विज्ञापन एजेन्सियाँ काफी सारी जगह, होर्डिंग के स्थान, टेलीफोन के खम्भों के पैनल बोर्ड आदि आरक्षित करवा रखते हैं। ये बिचौलिये इनका किराया अदा करते हैं और प्रचार करवाने वालों से अच्छी खासी रकम वसूलते हैं। चूंकि निर्माता के लिए यह संभव ही नहीं होता है कि वह विज्ञापन के लिए स्थान आरक्षित रखे, इसलिए उनका व्यवसाय ठीक चल जाता है।

पहले बड़े शहरों में भी बैण्ड-बाजे के साथ गली, मुहल्लों, आम बाजारों में फिल्म के पोस्टर लगाये ठेलों के साथ एक व्यक्ति बुलन्द आवाज में ऐलान किया करता था। अब बड़े शहरों में तो यह रिवाज करीब-करीब समाप्त हो गया है, पर छोटे शहरों, कस्बों, देहातों आदि में अब भी प्रचार के लिए ऐलान करवाने का यह तरीका काम में लिया जाता है, वितरक (डिस्ट्रीब्यूटर) को प्रचार सामग्री निर्माता सप्लाई करता है।

फिल्म-प्रचार के पोस्टर

पोस्टरों में लिथो पोस्टर (इकरंगा), एक शीटर, दो, चार या छः शीटर पोस्टर होते हैं। इसमें छह शीटर के अलावा सभी पोस्टर निर्माता वितरकों को बिना मूल्य देता है। छह शीटर अगर निर्माता बनाए या उसका कोई नुमाइन्दा बनाए तो पैसा वितरक देकर खरीदता है। एक मजेदार किस्सा हम आपको बताते हैं जिसमें निर्माता ने वितरक को कैसा चकमा दिया। शर्त नामे के अनुसार निर्माता को वितरक को कुछ निश्चित संख्या में पोस्टर देने थे किन्तु उसने पोस्टर छपवाये ही नहीं, यह कहकर बात को टालना चाहा, पर वितरक मामले को अदालत में ले गया और अदालत ने वितरक के पक्ष में फैसला

किया कि इसे पोस्टर शर्त नामे के अनुसार देना जरूरी है, तब निर्माता ने एक माचिस की साइज के पर्चे छपवाकर वितरक को दे दिये। इस पर वितरक ने आपत्ति की तो निर्माता ने कहा-''अपने करार में यह कहीं नहीं लिखा है कि पोस्टर की साइज क्या होगी?'' इसके बाद से करार में पोस्टर की संख्या व साइज लिखी जाने लगी।

फिल्म के प्रचार के लिए बैनर निर्माता नहीं बनवाता है बल्कि वह वितरक ही बनवाता है, मगर बम्बई, मद्रास आदि बड़े शहरों तथा फिल्म निर्माण के केन्द्रों में कुछ बैनर निर्माता भी अपनी तरफ से लगवाता है। ऐसे ही होर्डिंग, रेडियो प्रचार, टी.वी. प्रचार आदि भी निर्माता की जिम्मेदारी होती है। होर्डिंग की साइज व स्थान निर्माता किराये पर लेते हैं और वे अपनी फिल्म की पब्लिसिटी के लिए इनका उपयोग करते हैं।

निर्माता की तरफ से वितरक को कुछ शूटिंग स्टिलें भी दी जाती है जो फिल्म की शूटिंग के वक्त निर्माता की तरफ से तैयार करवाई जाती हैं। शूटिंग के दौरान कई अखबार वालों के अपने कैमरामैन तथा रिपोर्टर, फीचर राइटर, कॉलमिस्ट आदि भी घूमते रहते हैं। वे तस्वीरें, खींचते, इंटरव्यू लेते और रोचक खबरों का मसाला जुटाते हैं। निर्माता को एक प्रिन्ट के पीछे दो फोटो सेट देने पड़ते हैं। जो वितरकों को दिखाने और थियेटरों में लगाने के काम आते हैं।

इसी काम के लिए निर्माता सात-आठ तस्वीरों के कई सेट जिन्हें ''शो-कार्ड'' कहा जाता है वितरक को देता है। आमतौर पर फोटो सेट और शो-कार्ड में से कुछ तो ओरिजनल प्रिन्ट निकाले जाते हैं और उसकी सब ब्लॉक बनवाकर प्रिन्ट करवा लेते हैं।

निर्माता-स्लाइडें और शो कार्ड ब्लॉक आदि भी वितरक को देता है। स्लाइडें थियेटरों में दिखलाने के काम आती है। ब्लाक से अखबारों में विज्ञापनों की छपाई होती है। आजकल प्रचार वस्तुओं में एक नई फैशनेबिल सामग्री और जुड़ गई, जिसे स्टीकर कहते हैं। जो कारों, स्कूटरों, बसों, दरवाजों, शोरूम आदि पर लगाए जाते हैं। इसके लिए वितरक को अतिरिक्त पैसा देना होता है। इनके अलावा निर्माता वितरक को निश्चित संख्या में बुकलेट देता है जिसे पुराने जमाने में वितरक जनता को बेचते थे या मुफ्त में बाँटते थे, मगर आजकल कुछ खास व्यक्तियों, अखबारों, वाचनालयों, क्लबों, आदि में जहाँ पर अधिकतर लोग पढ़ते-देखते हैं, बांट देते हैं। बाकी इनका खास उद्देश्य यह होता है कि फिल्म जहाँ लग रही हो वहाँ के मुख्य सरकारी अधिकारी को दो प्रतियाँ कानूनन देनी होती है। जब से विदेशों का व्यापार बढ़ा है तब से निर्माताओं ने प्रचार के लिए फोल्डर, लीफलेट आदि बहुत आकर्षक बनवाना शुरू कर दिया है।

प्रचार की सारी सामग्री और फिल्म का प्रिन्ट सभी निर्माता की सम्पत्ति होती है और करार की अवधि खत्म हो जाने पर प्रिन्ट के साथ ही बची हुई प्रचार सामग्री निर्माता को लौटानी होती है।

1.6 फिल्म का प्रचार

किसी भी काम, जिसमें लाभ-हानि होने की सम्भावना हो, को सुचारू व

व्यवस्थित रूप से करने के लिए, ताकि लाभ ही हो, 'बजट' बनाया जाता है, 'बजट' का फिल्म निर्माण में भी महत्वपूर्ण स्थान है। जब भी कोई निर्माता किसी फाइनेन्सर के पास धन मांगने जाता है तो वह सबसे पहले निर्माता से उसकी फिल्म का बजट ही मांगता है। इसी प्रकार यदि निर्माता अपनी फिल्म के 'टेरेटरी राइट्स'' (वितरण के क्षेत्राधिकार) बेचना चाहता है तो उसके पास बजट होना चाहिए, तभी किसी टेरेटरी को बेचने की कीमत निर्धारित हो सकती है। सारांशतया कहा जाए तो फिल्म बनाने में एक अच्छे, सही व सटीक बजट का उतना ही महत्व है, जितना कि एक सही निर्देशक को लेने का। परन्तु यह बजट प्रस्तावित होता है यानी अनुमानतः ही होता है अंतिम नहीं । बजट किस प्रकार बनाया जाता है इसका उदाहरण नीचे दिया जा रहा हैं।

फिल्म बनाने के लिए जिन-जिन मदों पर मुख्यतः धन खर्च होता है वे यह है-

कलाकार (आर्टिस्ट)

निर्देशन विभाग (डायरेक्शन डिपार्टमेन्ट)

संगीत विभाग (म्यूजिक डिपार्टमेन्ट)

कहानी-पटकथा-संवाद (स्टोरी, स्क्रीनप्ले डायलॉग्स)

कच्ची फिल्म (रॉ-फिल्म)

कैमरा मैन तथा असिस्टेन्ट

एडीटर तथा असिस्टेन्ट

मेकअपमैन तथा असिस्टेन्ट

ड्रेसमैन तथा असिस्टेन्ट

आर्ट-डायरेक्टर तथा असिस्टेन्ट

फाइट एक्सपोजर तथा असिस्टेन्ट, फाइटर्स, डांस डायरेक्टर व असिस्टेन्ट, साउंड मैन व असिस्टेन्ट, जन-सम्पर्क अधिकारी, स्टिल फोटोग्राफर, प्रोडक्सन कंट्रोल, व प्रोडेक्शन मैनेजर, स्पॉट ब्वॉय, सम्पादन (एडीटिंग)

मेकअप का सामान

ड्रेस व प्रापर्टी

सेट्स-स्टूडियो

कैमरा व लाइट्स (किराये के रूप में)

दिन-प्रतिदिन के खर्चे (डेली एक्सपेन्डीचर), लंच व कनेवन्स प्रिंट एण्ड पब्लिसिटी

आफिस एक्सपेन्डीचर-लोडिंग एक्सपेन्डीचर, स्टाम्प ड्यूटी।

सेंसर

फुटकर खर्चे (मिसलेनिया एक्सपेन्डीचर) अदृश्य खर्चे (अनफोरसीन एक्सपेन्डीचर), कमीशन व ब्याज अब एक प्रायोगिक बजट बनाते हैं। यह पूर्णतया काल्पनिक हैं।

सबसे पहले हम कलाकार (आर्टिस्ट्स) वाली मद लेते हैं। फर्ज कीजिये निर्माता एक मध्यम श्रेणी की फिल्म बनाना चाहता है। इसके लिए उसने हीरो का किरदार निभाने के लिए मिथुन चक्रवर्ती को 8 लाख रुपये में साइन किया। फिल्म की जरूरत के मुताबिक वह एक हीरोइन भी लेता है। इसके लिए उसने रंजीता 4 लाख रुपये में साइन की। इसी प्रकार अगर फिल्म दो हीरो व एक हीरोइन की है तो उस हिसाब से वह आर्टिस्ट्स लेगा। इसके अतिरिक्त वह चरित्र अभिनेता के रूप में प्राण व ओम प्रकाश को लेता है। जो क्रमशः 5 लाख व 3 लाख लेते हैं। इसके अतिरिक्त अब उसे एक खलनायक भी लेना होगा, इसके लिए वह शक्ति कपूर को डेढ़ लाख में साइन करता है। ये तो हुए बड़े हीरोज, पर फिल्म सिर्फ बड़े से तो बनती नहीं, कुछ छोटे कलाकार भी लेने पड़ते हैं। इसके लिए उसे बजट में अलग से डेढ़-दो लाख का प्रावधान करना पड़ेगा।

इस कास्ट के हिसाब से निर्माता को एक अच्छा सा डायरेक्टर भी लेना होगा क्योंकि कलाकार कितने ही अच्छे हों पर यदि डायरेक्टर बेकार है तो समन्वय के अभाव में फिल्म बाक्स ऑफिस पर पिट जायेगी, जो कि कोई भी निर्माता नहीं चाहेगा। डायरेक्टर के साथ उसके 4 सहायक (असिस्टेन्ट) होंगे, जिन्हें कि चीफ असिस्टेन्ट, डायलाग डायरेक्टर, कंटीन्यूटी मैन और क्लैप बॉय कहा जाता है। ये तो अत्यावश्यक हैं, बाकी कई निर्देशक तो और भी असिस्टेन्ट्स रखते हैं। इस पद पर निर्माता को करीब-करीब 2 या ढाई लाख रुपये खर्चने होंगे। फिल्म में संगीत की भी एक मुख्य भूमिका होती है, जिसके लिए उसे एक संगीत निर्देशक को लेना होगा। जैसे यदि निर्माता, संगीत निर्देशक के रूप में आर.डी.बर्मन को लेता है तो उसे करीब एक-सवा लाख रुपया देना होगा।

गीतों के लिए निर्माता को आर.डी बर्मन के साथ काम करने वाले किसी गीतकार को लेना होगा। जैसे आनन्द बक्शी, मजरूह सुल्तानपुरी आदि। यदि वह 5-6 गाने रखता है तो उसे करीब 50 हजार रुपये देने होंगे। अब यह गाने कौन गाता है। यदि गाना लता मंगेशकर गाएंगी तो खर्च ज्यादा होगा बनिस्बत हेमलता के। अगर आशा-किशोर का ड्यूट (युगल गान) है तो खर्चा और भी बुलन्दियाँ देखेगा। फिर भी 6 गानों का तकरीबन साढ़े तीन-चार लाख का खर्चा तो आ ही जायेगा। इस खर्चे में फिल्म का बैक ग्राउंड म्यूजिक (पृष्ठसंगीत) शामिल नहीं है। इसमें जो खर्चे शामिल हैं वे हैं रिकार्डिंग का खर्चा, निगेटिव व पॉजिटिव साउण्ड का खर्चा और अगर आप कैसेट कराते हैं तो उसका खर्चा।

स्टोरी, स्क्रीन प्ले व डायलॉग कभी-कभी तो एक ही आदमी लिख देता है और कभी तीन अलग-अलग आदमी रखे जाते हैं। इस मद का कोई हिसाब नहीं है। कहानी दस हजार रूपये से लेकर 16 लाख रुपये (सलीम-जावेद ने एक कहानी के 16 लाख रुपये लिये थे) तक या और भी ज्यादा का खर्चा करवा सकता है। यानी स्टोरी राइटर कौन है, बस इस पर इस मद का खर्चा निर्भर करता है पर आमतौर से तीनों पदों पर 50 हजार रुपया तो खर्चना ही पड़ेगा। इसके अतिरिक्त 'सिटिंग्स' जो कि प्रायः होटलों में ही होती है, के कारण 15-20 हजार रुपये ऊपर से और खर्च हो ही जाते हैं। एक

लेखक ने होटल में इतनी सिटिंग्स की कि बिल छह लाख का आया।

एक फिल्म सामान्यतया 60 दिनों में बनती है। औसत लम्बाई की एक फिल्म पर लगभग 60 से लेकर 100 डिब्बे निगेटिव के खर्च हो जाते हैं। यह मद भी अन्य मदों की तरह ही अनिश्चित है, यदि निर्माता 'ईस्टमैन निगेटिव प्रयोग करता है, तो वह महंगा पड़ेगा क्योंकि उसका एक डिब्बा लगभग साढ़े तीन हजार रुपये का आता है जबकि ग्रेवा और ओरवे के डिब्बे 18 सौ रुपये से 2 हजार रुपये के बीच में आते हैं। एक डिब्बे में एक हजार फीट कच्ची फिल्म होती हैं। इस प्रकार यदि फिल्म ईस्टमैन पर बना रहे हैं तो लगभग 2 लाख के तो निगेटिव चाहिए ही। इसी तरह फाइनल प्रिंट के निकलते-निकलते 80 डिब्बे पॉडिटिव के भी खर्च हो ही जाते हैं। ये डिब्बे औसतन एक हजार रुपये प्रति डिब्बा की कीमत वाले होते हैं।

निगेटिव व पॉजिटिव साउन्ड, मास्टर साउन्ड व मास्टर निगेटिव, व मास्टर पॉजिटिव बनने का इस प्रक्रिया में 80 हजार रुपया खर्च होना तो आम बात है। इसके बाद निर्माता को टेवनीशियनों पर कितना खर्च करना है, इसका हिसाब लगाना होता है। इसका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से दिया जा सकता हैः

कैमरामैन व उसके तीन सहायक का खर्चा लगभग 50 हजार रुपया।

एडीटर व उसके सहायक, लगभग 30 हजार रुपया।

मेकअप मैन व उसके सहायक, लगभग 12 से 15 हजार रुपया।

ड्रेसमैन व उसका सहायक, लगभग 15 हजार रुपया।

आर्ट डायरेक्टर व उसका सहायक लगभग 20 हजार रुपया।

फाइट मास्टर, उसके सहायक, फाइटर्स व डुप्लीकेट्स लगभग डेढ़ लाख रुपया।

डांस डायरेक्टर, उसका सहायक व नृत्य के लिए लड़के-लड़कियाँ लगभग डेढ़ लाख रुपया।

साउण्ड मैन व असिस्टेन्ट-20 हजार रुपया।

जन-सम्पर्क अधिकारी 10 हजार रुपया।

स्टिल फोटोग्राफर 5 हजार रुपया।

प्रोडक्शन कंट्रोलर व प्रोडेक्शन मैनेजर 25 हजार रुपया

स्पॉट बॉयज 15 हजार रुपया।

फिल्म दर्शकों के सामने आने से पूर्व संपादित की जाती है। इस एडिटिंग की मद में एडिटिंग रूम, मुवीओला, आदि का खर्चा भी जोड़ दिया जाता है। इस मद पर प्रायः औसत फिल्म में 75 हजार रुपये का खर्च आता है।

1.7 फिल्म का बजट-2

एडिटिंग के बाद रिकार्डिंग होती है जिसमें बैक ग्राउन्ड म्यूजिक इफैक्ट जोड़े जाते हैं। इसके लिए निर्माता 25 हजार रुपए का प्रावधान करता है। फिल्म में

अभिनेताओं और अभिनेत्रियों इत्यादि के मेकअप के सामान इत्यादि पर तकरीबन उसे 15 हजार रुपये खर्चने होंगे। ड्रेस व प्रापर्टी मद पर प्रायः एक लाख रुपया खर्च होता है। पहले तो अधिकांश शूटिंग स्टूडियो में सेट लगाकर की जाती थी। हालांकि शूटिंग आजकल मुख्यतया फ्लैटों, होटलों इत्यादि में होती है पर कुछ विशेष दृश्यों के लिए तो सेट लगाने ही पड़ते हैं। जैसे ''शान'' फिल्म में 'शाकाल' के अड्डे का एक भारी-भरकम सेट लगाया गया था। किसी फिल्म में सेटों का बहुत ज्यादा प्रयोग चाहे नहीं भी किया जाये तब भी एक लाख रुपया तो छोटे-छोटे सेट बनाने में लग ही जाता है। इसके अतिरिक्त कहानी की मांग के अनुसार लोकेशन शूटिंग भी करनी होती है। यथा सागर तट पर घूमते हीरो-हीरोइन या किन्ही सुरम्य घाटियों में युगल गाना गाते हीरो-हीरोइन, इस मद पर लगभग 40 हजार का खर्च तो बैठ ही जाता है।

एक्शन ड्रामा तो अधिकांशतया लोकेशन पर शूट किए जाते हैं। अगर किसी फिल्म में बड़े-बड़े सेट लगाने पड़ें यह मद बहुत बढ़ जाती हैं क्योंकि आजकल कोई भी स्पेशल सेट दो-तीन लाख से कम नहीं बैठता है। इसके अतिरिक्त डिपो में भी शूटिंग कोई मुफ्त में नहीं करने देता है। स्टूडियो का किराया प्रायः 2 हजार प्रति शिफ्ट बैठता है।

फिल्म बनाने के लिए कैमरा, लाइट व साउंड के उपकरण किराये पर लिये जाते हैं। इनका सम्मिलित किराया अब ढाई हजार रुपया इस मद पर खर्चना होगा। इसके अतिरिक्त हुए एक्सपेन्डीचर का खर्चा अतिरिक्त गिना जाता है। इसमें लंच व कनवैंस के खर्चे शामिल होते हैं। इस मद के लिए निर्माता को करीब 5 लाख रुपए सुरक्षित रखने होंगे।

फिल्म बनाने के लिए एक ऑफिस व ऑफिस स्टाफ रखना पड़ता है। फिल्म बनाने के लिए कुछ समझौते किये गए हैं। उनकी फीस, वकील का मेहनताना तथा सेंसर के खर्चे (फिल्म सेंसर बोर्ड से पास करवाने के लिए एक निश्चित फीस देनी पड़ती है) पर करीब 25 हजार रुपया खर्च होता है। इसके अतिरिक्त कुछ फुटकर खर्चे होते हैं। यह निर्माता इस बजट में उनके लिए एक लाख रुपया रखने की बात सोचता है।

इसके अतिरिक्त कुछ खर्चे ऐसे होते हैं जो दिखते नहीं हैं (अनफोर सीन एक्सपेन्डीचर)। यथा सेट बनवाया पर आर्टिस्टों ने 'डेट' नहीं दी। एक प्रोड्यूसर ने एक सेट लगाया। शम्मी कपूर उसके हीरो थे, सेट लगने के बाद उसने उस सेट में शूटिंग करने से इंकार कर दिया। बप्पी सोनी की किसी एक फिल्म का रिकार्ड होना था, जिसमें शम्मी कपूर हीरो थे। शम्मी कपूर की सलाह से गाना रिकार्ड हो गया, एकस्ट्रा कलाकारों के रिहर्सल हो गए। फिल्मिस्तान में सेट लग गए, बाद में शम्मी कपूर ने कहा कि यह गाना पिक्चराइज नहीं होगा, दूसरा गाना रिकार्ड करो। इसमें प्रोड्यूसर को 3-4 लाख का नुकसान हो गया।

राजकुमार कोहली एक फिल्म बना रहे थे, 'काला घोड़ा' फिल्म के हीरो थे राजेन्द्र कुमार व कोहली के छोटे भाई नरेश तुली उसके डायरेक्टर थे। राजेन्द्र कुमार की सहमति से गाना रिकार्ड हुआ और यूनिट गाना पिक्चराइजेशन के लिए कश्मीर चली गई। वहां पहुंच कर राजेन्द्र कुमार ने गाना नापसंद कर दिया और यूनिट को वापिस

लौटना पड़ा। हमारा यह बजट करीब 56 लाख का हो गया है। इसमें ब्याज व कमीशन शामिल नहीं है। अब अगर निर्माता किसी भी कारण से यह सोचता है कि यह बजट बहुत अधिक है (शायद वह सोचे कि फिल्म का रिटर्न इतना नहीं होगा या फाइनेन्सर नहीं माने), तो वह इसमें 'कांट-छांट' करता है।

इसके लिए वह सबसे पहले कलाकारों की मद को लेता है। उनसे बात करता है, म्यूजिक डायरेक्टर वाली मद में से पैसा घटाता है। इस सब के दौरान यदि उसे हीरो-हीरोइन, करेक्टर (आर्टिस्ट्स बदलने पड़ें तो वह बदल भी सकता है। कई बार तो अनुबंध होने के बाद फिल्म बनने के आसार नजर नहीं आते तो फिल्म बनाने के विचार को ही ड्राप कर दिया जाता है और प्रोडक्शन नंबर 2,3 के तहत या नये बैनर के तहत नया काम शुरू कर दिया जाता है। ऐसी सूरत में पहले प्रपोजल पर जो पैसा खर्च हुआ था, वह या तो बेकार हो जाता है, या उसे किसी और फिल्म में काम में ले लेते हैं।

सब तौर-तरीके अपनाने के बाद माना निर्माता को निगेटिव 50 लाख रुपये का पड़ता है। इसके बाद वह यह हिसाब लगायेगा कि इसमें कितना पैसा वह उधार रख सकता है और कितना उसको डिस्ट्रीब्यूटरों से मिल जायेगा, साथ ही कितना पैसा उसको उधार लेना पड़ेगा। फर्ज कीजिए कि निर्माता को 30 लाख रुपये डिस्ट्रीब्यूटरों से मिलने की आशा है और 10 लाख रुपया उधार, तो निगेटिव पूरा करने के लिए उसे 10 लाख रुपया फाइनेन्सरों से उधार लेना होगा।

यह 10 लाख रुपये पर उसे फाइनेन्सर 2 से 5 प्रतिशत माह की दर से देंगे। पैसे की जरूरत पढ़ने पर फिल्मी फाइनेन्सर भी अपनी रेट बढ़ा देते हैं। जिस प्रकार गरीब किसानों का जमींदार शोषण करते थे, उसी तरह आज फिल्म फाइनेन्सर प्रोड्यूसरों का शोषण करते हैं। चूंकि सरकार निर्माण को उद्योग नही मानती इसलिए बैंक भी फिल्म निर्माता को पैसा उधार नहीं देते हैं। इसीलिए निर्माता की स्थिति 'मरता क्या न करता' की सी होती है और वे एक्सोरवीटेंट इंटरेस्ट रेट पर भी पैसा उधार लेकर छह-सात लाख रुपया निर्माता को ब्याज में देते हैं। इन साहूकारों पर ही अगर फिल्म उद्योग टिका होता तो वह कभी का बंद हो जाता पर जिस तरह भारत सरकार फॉरेन एड (विदेशी सहायक) पर जिंदा हैं उसी तरह ये भी फौरन एड के आसरे जिंदा हैं। यहाँ फौरन एड से तात्पर्य नए फाइनेन्सरों से है। फिल्म उद्योग अनिश्चितता का जीवन है। पुराने से पुराने फाइनेन्सर भी एक झटके से उखड़ जाते हैं और नये फाइनेन्सर, नये प्रोड्यूसर, नये डिस्ट्रीब्यूटर आ आते हैं।

अब तक फिल्म में जो पैसा लगा है निर्माता को वो सारा पैसा 'टेरीटरी' बेचकर ही कमाना है, साथ ही हर उद्यम के साथ लाभ जुड़ा है। इसलिए यह निर्माता इस फिल्म को 75 से 80 लाख में बेचने की कोशिश करेगा। अगर वितरण अधिकार बिक जाते हैं तो निर्माता को उन पर 1-2 प्रतिशत ब्रोकरेज (दलाली) भी देनी पड़ती है इस तरह से 50 लाख के निगेटिव वाली फिल्म 60 लाख की पड़ जाती है।

1.8 फिल्म सारांश

फिल्म की लागत 25000 रुपए आंकी जाती थी 1920 से 1930 के दौरान

उस समय फिल्म निर्माण, मात्र स्टूडियो किया करते थे। कलाकार, कैमरामैन, निर्देशक और अन्य सभी स्टूडियो में, ठेके पर काम करते थे। समय के साथ फिल्म की लागत में इजाफा हुआ और फिल्म, निर्माता, स्टूडियो से अलग होकर, यूनिट बनाकर फिल्म बनाने लगे। इस प्रकार से ''स्टार सिस्टम'' का जन्म हुआ और निर्देशक, कैमरामैन तथा तकनीकी कार्यकर्ताओं ने अपने दाम बढ़ा दिए। आज फिल्म की लागत करोड़ों में आती है। इतनी बड़ी मात्रा में धन की व्यवस्था करना सम्भव नहीं होता है। इसीलिए, धन की व्यवस्था अनेक स्त्रोतों से की जाती है, जैसे, वितरण, गीत, संगीत, सेटेलाइट से केबल टी.वी. तथा कारपोरेट और वीडियो अधिकार बेचकर।

1.9 शब्दावली

● सेटिंग	निगेटिव को क्रमवार लगाना
● इम्पा	इंडियन मोशन पिक्चर एसोशियेसन
● वर्ल्डराइट्स	सम्पूर्ण विश्व के अधिकार से धन का प्रबन्ध करना।
● फिल्म डेवलपमेन्ट काउन्सिल	केन्द्र सरकार की संस्था वित्त पोषण, आयात के लिए
● एडिटिंग	सम्पादन

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

● इलेक्ट्रानिक मीडिया और फिल्म प्रोडक्सन	राजकृष्ण मिश्र
● फिल्म ऐज फिल्म	वी0 पी0 परकिन्स
● सिनेमा ऐज ऐन आर्ट	जे0 आर0 डिबरिश
● मूवी मुगल्स	फिलिप फ्रेन्च
● माय फेयर लेडी	एलेन जे. लरनर

1.11 प्रश्नावली

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) निगेटिव सेटिंग-

(i) फिल्म पट्टी के कच्चे माल को धोना।

(ii) निगेटिव को सिलसिलेवार लगाना।

(iii) शूटिंग में प्रयोग में आने वाला माल।

(iv) पहली रश प्रिन्ट

(ख) इम्पा कहते हैं-

(i) राज्य सरकार के फिल्म विभाग से।

(ii) केन्द्र सरकार का मंत्रालय।

(iii) फिल्म निर्माता का संगठन।

(iv) विदेशी फिल्मों की संस्था।

(ग) फिल्म डेवलपमेन्ट काउन्सिल है-

(i) फिल्म निर्माताओं की राष्ट्रीय संस्था।

(ii) फिल्म वितरकों की संस्था

(iii) कैमरामैन की यूनियन।

(iv) केन्द्र सरकार की फिल्म वित्त एवं आयात की संस्था।

(घ) एडिटिंग कहते हैं-

(i) सम्पादन को।

(ii) शूटिंग को।

(iii) वितरण को।

(iv) फिल्म विकास को

लघु उत्तरीय प्रश्न-

(i) सेटिंग के अर्थ बताइये

(ii) इम्पा किसे कहते हैं ?

(iii) फिल्म डेवलपमेन्ट काउन्सिल किसने बनाई है?

(iv) वर्ल्ड राइट्स का अर्थ क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(i) फिल्म निर्माण और वित्त पर विस्तार से निबंध लिखिए।

(ii) वितरण से धन की व्यवस्था कैसे की जाती है ? विवेचन कीजिये।

(iii) धन की व्यवस्था के अन्य स्रोत क्या होते हैं? विस्तार से बताइये।

इकाई-3 तकनीक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 ट्रिक सीन ऐसे लिए जाते हैं।

3.3 प्रक्रिया रिवर्स शाट और सुपर इम्पोज की।

3.4 हाईस्पीड तकनीक

3.5 डमी और मिनिएचर

3.6 ऐसे फिल्माते हैं डमी शॉट

3.7 विशालकाय पात्रों का फिल्मांकन

3.8 दैत्य पात्रों की शूटिंग प्रक्रिया

3.9 कुतुहल दृश्यों का फिल्मांकन

3.10 बैक तथा फ्रन्ट प्रोजेक्शन प्रक्रिया

3.11 क्या होती है, मास्किंग

3.12 सारांश

3.13 शब्दावली

3.14 संदर्भ ग्रन्थ

3.15 प्रश्नावली

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे :—

(i) कुछ ट्रिक सीन कैसे लिए जाते हैं।

(ii) पिक्चर सुपर इम्पोज कैसे की जाती है।

(iii) हाईस्पीड तकनीक किसे कहते हैं।

(iv) डमी शॉट कैसे लिए जाते हैं।

(v) मास्किंग क्या होती है।

3.1 प्रस्तावना

सिनेमा की तकनीक में धीरे-धीरे सुधार आने लगा था। निर्माता, दर्शक को टिकट की खिड़की पर खींचने के लिए तरह-तरह के प्रयोग करने लगे। मुख्य उद्देश्य था

अपना माल बेचना यानी, दर्शकों को फिल्म देखने के लिए, आकर्षित करने के लिए कुछ न कुछ मसाला डालना था। कभी गाने, कभी विशेष नृत्य, कभी फाइट, कभी, थ्रिल, प्रयोग किया जाता रहा है। फिल्म की गुणवत्ता, बढ़ाने के लिए, मास्किंग कमी शॉट और मिनिएचर शूटिंग का प्रयोग किया जाता रहा है। ट्रिक सीन तो लिए ही जाते हैं। विशेष रूप से, पिक्चर सुपरइम्पोज करने से या हाईस्पीड तकनीक का प्रयोग करने से फिल्म में, आकर्षण पैदा किए जाते हैं। इन विशेष दृश्यों का सम्पादन, इस प्रकार किया जाता है, जिससे दर्शकों को फिल्म रूचिकर लगे।

3.2 ट्रिक सीन

बचपन में जब नाडिया, जॉन-फॉक्स की फिल्में देखा करते थे, तो उनमें अक्सर एक दृश्य अत्यंत रोमांचक हुआ करता था। सिपाहियों से लड़ते-लड़ते या खलनायक के दल के आदमियों से लड़ते-लड़ते हीरो-हीरोइन जमीन पर से उछलकर चार मंजिले या इससे भी अधिक ऊंचाई पर पहुँच जाया करते थे। इसी तरह कई धार्मिक फिल्मों में जिन्न,भूत, प्रेत, आत्मा, ऋषि, मुनि, जादूगर, आदि खड़े-खड़े मुँह में गुटका डाला और गायब हो जाते थे। यह रोमांचक दृश्य देखकर बहुत आश्चर्य होता था कि आखिर यह सच हो किस तरह जाता है। सोचा करते थे कि हीरो या हीरोइन के पहने हुए जूतों में नई शक्ति-सम्पन्न स्प्रिंग लगी हैं। इस स्प्रिंग पर जम्प करने से ही वे उछल कर ऊपर की मंजिल पर पहुंच जाते हैं। खड़े-खड़े ही गायब हो जाने वाले दृश्यों के लिए जादूगर के पास जो गुटका होता था, लगता था कि इसमें ही ऐसी कोई करामात है जिससे वह उस गुटके को मुंह में रखते ही खड़ा-खड़ा गायब हो जाता है। उम्र के साथ ही साथ जब ज्ञान भी बढ़ने लगा, तब समझ में आया कि फिल्मों में इस तरह के सब करिश्मे फोटोग्राफिक ट्रिक से ही फिल्माये जाते हैं। उन्हें आजकल फिल्म निर्माण की तकनीकी भाषा में स्पेशल इफेक्ट (विशेष प्रभावी) कहा जाता है।

दृश्य फिल्माने के रूप

इस तरह के विशेष प्रभाव डालने वाले दृश्यों को फिल्माने के दो रूप होते हैं, जिनको जादू के करिश्मे और वैज्ञानिक करिश्मे ।इन दो रूपों में प्रदर्शित किया जाता है, लेकिन इन दोनों ही के मूल में एक ही भावना रहती है कि दर्शकों को अचम्भित तो किया जाए? तकनीकी दृष्टि से इन दृश्यों को फिल्माने में कोई भेद नहीं है। इस तरह के रोमांचकारी दृश्यों को फिल्माने के कई तरीके होते हैं। कुछ तरीके ये हैं :

- डिजाल्व
- फेड इन, फेड आउट
- रिवर्स-शॉट
- सुपर इम्पोज
- हाई स्पीड, स्लो स्पीड

- स्टाप ब्लाक
- मैट
- ट्रैवलिंग मैट
- मास्किंग
- मिनिएचर व डमी
- मैकेनिकल इफेक्ट
- इलेक्ट्रोनिक इफेक्ट
- बैक-प्रोजेक्शन, फ्रन्ट प्रोजेक्शन
- ब्लैक कर्टन, वाइट कर्टन्
- ब्ल्यू कर्टन्
- टेबल-वर्क
- वन-टर्न इत्यादि

फिल्म फोटोग्राफ में डिजाल्व तकनीक के बारे में पहले से ही बहुत कुछ अपेक्षित जानकारी दे दी है, लेकिन विशेष प्रभाव (स्पेशल इफेक्ट) के सम्बन्ध में इस तकनीक के बारे में नहीं बताया गया था कि इसका क्या-क्या प्रयोग है। खड़े-खडे. आदमी को गायब करना है तो स्टाप ब्लाक के अलावा 'फेड आउट' और डिजाल्व' से भी काम लिया जा सकता है।

जिस कलाकार को गायब करना है, कैमरा उस पर रखा जाता है। उसको धीरे -धीरे डिजाल्व (कैमरे में) कर दिया जाता है। उसके बाद वह आपको पर्दे पर दिखाई नहीं पड़ेगा। यही प्रक्रिया 'फेड आउट' से भी की जा सकती है। इसी तरह किसी करेक्टर को फिल्म में प्रवेश करवाना है तो उसके लिए भी डिजाल्व का प्रयोग किया जाता है। खाली फिल्म में चरित्र को खड़ा करके कैमरे को ओपन करने से धीरे-धीरे वह प्रकट हो जाएगा।

इस प्रक्रिया में एक बहुत ही सावधानी रखनी पड़ती है कि जिस फिल्म में उस करेक्टर को प्रकट (एपीयर) या अप्रकट (डिस एपीयर) करवाना है, तो उस फिल्म में और कोई चरित्र नहीं रखना चाहिए, न ही पृष्ठभूमि (बैक ग्राउण्ड) में और कोई चीज चाहिए, क्योंकि जो भी व्यक्ति या वस्तु उस फिल्म में होगी उस चरित्र के साथ ही डिजाल्व करने पर वे भी सब गायब हो जाएंगी। इस तरह के दृश्य को लेने के लिए जिस चरित्र को (करेक्टर को) प्रकट या गायब होना है वह अकेले में प्रकट होकर दूसरे चरित्रों के साथ कदम बढ़ाता हुआ चल कर आ मिलेगा और गायब होने के लिए उनसे अलग होकर किसी खाली फील्ड में जाकर खड़ा होगा और गायब हो जाएगा। इसका सबसे अच्छा उदाहरण होमी वाडिया की एक फिल्म 'चार दरवेश' के उस दृश्य का दिया जा सकता है, जिसमें जिन्न प्रकट होता है। उस जिन्न को प्रकट करने के लिए एक ट्रांसपेरेण्ट कांच पर बड़ा-सा खोखला पुतला बनाया गया था और जिस जगह पर जिन्न को प्रकट करना

था उस स्थान पर उसे रखकर पहले उसमें धीरे-धीरे नीचे पाइप लगाकर गैस भरी गई तब उसको ठोस (सॉलिड) करने व जिन्न का रूप देने के लिए डिजाल्व करके उसी कांच के पुतले के पोज (रूप) में पात्र को खड़ा कर दिया गया जो कि जिन्न का काम कर रहा था और फिर उस ग्लास के पुतले को बड़ी सफाई से अलग हटा दिया गया। यह दृश्य इतना प्रभावशाली बना था कि उसका फिल्म जगत में इस तरह के दृश्यों में कोई सानी नहीं।

फेड इन, फेड आउट की प्रक्रिया

सामान्य 'फेड इन-फेड आउट' क़े बारे में पहले काफी जानकारी दी जा चुकी है कि किस तरह एक दृश्य को फेड आउट करके दूसरे को फेड इन किया जाता है।

यह तकनीक आमतौर पर उस वक्त काम में ली जाती है जब एक फिल्म का अध्याय पूरा हो जाता है और दूसरा अध्याय चालू करना होता है। सामान्य तरीके के अलावा 'फेड इन-फेड' आउट का प्रयोग स्पेशल इफेक्ट या ट्रिक वर्क में किया जाता है। इस तकनीक में और 'डिजाल्व' में ज्यादा अन्तर या फर्क नहीं है। मगर 'फेड आउट-फेड इन' में डिजाल्व से वक्त भी ज्यादा लगता है और फिल्म की लम्बाई भी अधिक खर्च होती है। इस तकनीक का प्रयोग उस वक्त किया जाता है जब आपको कोई एक दृश्य कुछ समय लेकर उभार कर पर्दे पर लाना होता है। जैसे एक चरित्र एक घोड़े पर मैदान में सरपट भागा जा रहा है और उसके पास या दूर पर कोई पहाड़ या ऐसी ही कोई वस्तु जादुई करिश्मे की तरह अवरोध के लिए खड़ी हो जाती है। ऐसे दृश्यों में पहाड़ का शनैः-शनैः प्रकट होना स्क्रीन पर अच्छा लगता है। इसलिए इस तरह के दृश्यों का मूल्यांकन 'फेड इन' से ही किया जाएगा, परन्तु ये दृश्य स्टूडियो में ही लिये जा सकते हैं।

3.3 प्रक्रिया रिवर्स शॉट और सुपर इम्पोज की

प्रोजेक्टर से पर्दे पर जब भी फिल्म दिखाई जाती है तब फिल्म की गति हमेशा अग्रगामी, आगे की तरफ यानी फार्वर्ड हुयी है, मगर कभी-कभी ऐसा शॉट भी देखने को मिल जाता है, जब फिल्म तो आगे-आगे चल रही होती है, मगर कलाकार व अन्य कोई वस्तु पीछे की तरफ जाती दिखाई पड़ती है। ऐसे दृश्यों को फिल्माने के लिए एक ही तरीका होता है जिसको रिवर्स शॉट कहा जाता है।

रिवर्स शॉट का एक बहुत ही बेहतरीन नमूना शेख फतहलाल की फिल्म 'शंकराचार्य' में देखने को मिला था। शंकराचार्य की मृत देह समाधिस्थ मुद्रा में एक गुफा में सुरक्षित रखी हुयी थी। किसी कारणवश उस गुफा में पानी भरने लग गया था। पानी ऊपर चढ़ते-चढ़ते इस जगह पहुँच गया था कि लगने लगा था कि पानी थोड़ा और बढ़ गया तो शंकराचार्य की देह को या तो बहा ले जाएगा या उसे डुबोकर नष्ट कर देगा। इस दृश्य में उसी तरह पानी अचानक उतर भी गया। पानी ऊपर की तरफ चढ़ाने के लिए निर्माता ने हॉस पाइप लगाकर उसका बदोबस्त किया था, मगर पानी उतारने के लिए

हॉस पाइप की सहायता लेना संभव नहीं हो पा रहा था।

संभवतः छायाकार ने तब दो कैमरे लगाकर एक में फार्वर्ड शॉट और दूसरे से रिवर्स शॉट लिया होगा। इस तरह दृश्य लेने से पानी के चढ़ने और उतरने की गति सामान्य रहे यह फिल्माना संभव हो पाया होगा। इसी तरह से दुर्घटना आदि के खतरनाक और खौफनाक दृश्य भी रिवर्स शॉट की पद्धति से ही लिये जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि दो मोटर गाड़ियाँ आपस में तेजी से आती हुई भिड़ती हैं तो उसके दृश्य लेने के लिए दोनों गाड़ियों को आपस में भिड़ाकर रखा जाता है और फिर गाड़ियों को तेजी से पीछे की तरफ चलाया जाता है। यह शॉट रिवर्स लेने की वजह से पर्दे पर ऐसा लगेगा कि गाड़ियों की टक्कर व भिड़न्त (हैंड लाग व सिर के बल) हुई है। इस टक्कर के बाकी प्रभाव का काम साउण्ड (ध्वनि) पर छोड़ दिया जाता है। कुछ दुर्घटना की भयावह स्थिति उभारने वाले यथा टूटे कांच, चोटें लगने के दृश्य, तोड़-फोड़ आदि भी फिल्मा लिये जाते हैं। इस तरह ये दृश्य पूरा प्रभाव छोड़ने वाले बन जाते हैं।

ऐसे लेते हैं रिवर्स शॉट

कैमरे में फिल्म फार्वर्ड चलती रहती है, मगर उसमें फिल्म उल्टी चलने का भी बन्दोबस्त बराबर रहता है। शुरू-शुरू में ऐरी प्लैक्स कैमरे में कैमरे को रिवर्स चलाने का कोई बन्दोबस्त नहीं था। मगर आजकल उसमें भी रिवर्स शॉट लेने की व्यवस्था कर दी गई है। इसमें फिल्म के दो मूवमेन्ट करने पड़ते हैं। शॉट लेने के पहले जितनी फिल्म को एक्सपोज करना होता है उतनी ही फिल्म को फार्वर्ड चलाया जाता है। फिर उस फार्वर्ड चली हुई फिल्म को कैमरे में रिवर्स गेयर में डालकर कटिंग की जाती है। यह फिल्म जब सम्पादित होगी तब फार्वर्ड ही चलेगी, मगर कलाकारों का, दूसरे दृश्यों, चीजों आदि का मूवमेन्ट उल्टा नजर आएगा। इस तरह की रिवर्स शूटिंग का एक बहुत ही बेहतरीन दृश्य देखने को मिला था दर्शकों को सी. मेहरा की ईगल फिल्म्स और सोवियत रूस के मध्य हुए एक करार के मुताबिक बनी फिल्म 'अली बाबा' में। इस फिल्म में हीरो धर्मेन्द्र और हीरोइनें हेमा मालिनी और जीनत अमान थीं। इस फिल्म में जिसने भी चोरों की गुफा का खुलना और बन्द होना देखा होगा, वे दृश्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे होंगे। जब गुफा का दरवाजा बंद रहता था तब उसके ऊपर एक तेज गति से बहने वाले झरना बहता रहता था, ताकि किसी को यह जरा भी आभास नहीं हो कि इस झरने की ओट में पीछे की तरफ कोई चोरों की गुफा का दरवाजा हैं। जब चोरों को इस झरने की ओट में छिपी गुफा को खोलना होता था तब वे दरवाजे के सामने जाकर पुकारा करते थे ''खुल जा सिम-सिम, खुल जा सिम-सिम'' उनके यह बोलते ही झरने का पानी ऊपर की तरफ उल्टा जाकर लापता हो जाता था। जब दरवाजा पुनः बन्द होता, वही पानी ऊपर से गिरकर दरवाजे को फिर से अपने प्रवाह की ओट में छिपा लिया करता था। यह सारे दृश्य रिवर्स शॉट लेने की तकनीक से फिल्माए गए थे।

इस अध्याय के प्रारम्भ में हमने वाडिया की फिल्म में नाडिया और जान कावस के रिवर्स शॉटों के बारे में बतलाया था। इन शॉटों में वह जमीन से उछलकर दूसरी या

तीसरी मंजिल तक भी पहुँच जाया करते थे। रिवर्स शॉट के कारण दर्शकों को ये बड़े रोमांचक लगते थे।

सुपर इम्पोज की प्रक्रिया

सुपर इम्पोज की प्रक्रिया एक साधारण सी प्रक्रिया है जो कोई भी फोटोग्राफर अपने कैमरे में आसानी से खींच सकता है। चाहे वह कैमरा मूवी हो या स्टिल कैमरा हो। एक फ्रेम में या एक शॉट में जब एक से अधिक दृश्य एक्सपोज किये जाते हैं तब उस प्रक्रिया को सुपर इम्पोज करना कहा जाता है। फिल्म में जहाँ भी मोन्टेजेज का प्रयोग किया जाता है तो उसकी एक प्रक्रिया सुपर इम्पोज की भी होती है। जैसे एक डाकुओं का दल किसी गांव में लूटपाट करके तबाही मचा रहा है और हम उस तबाही के दृश्यों को ज्यादा लम्बा नहीं खींचना चाहते हैं। तब लूटमार के विविध पक्षों के अलग-अलग दृश्य फिल्मा लिये जाते हैं। डाकू का एक शॉट मूल में डालकर उसी शॉट पर तबाही के दूसरे शॉट उसके ऊपर डाल देते हैं। यह प्रक्रिया कैमरे में भी शूटिंग के वक्त की जा सकती है, मगर इसमें कैमरे से फिल्म के निगेटिव को कई-कई बार रिवर्स में करना पड़ेगा। इसलिए आमतौर पर यह सुपर इम्पोजिशन की प्रक्रिया लेबोरेट्री में ही पूरी की जाती है। इसमें एक मूल शॉट बांधकर बाकी दूसरे शॉट लेबोरेटरी में उस मूल शॉट पर ही प्रिन्ट कर लिए जाते हैं। इसका एक और नमूना आपको ड्रीम सीक्वेन्स (स्वप्न श्रृंखला के दृश्य) में दिखाई पड़ सकता है। जैसे एक कलाकार बिस्तर पर आराम से सोया-सोया एक स्वप्न देख रहा है। स्वप्न देखते ही देखते उसकी आत्मा उसके शरीर को छोड़कर उठ खड़ी होती है। आगे बढ़कर वह दूसरे पात्र के साथ गाना गाने लग जाती है। उस शॉट को लेने के लिए पहले सोये हुए कलाकार का फार्वर्ड शॉट लेना होगा और फिर कैमरे को रिवर्स करके उस कलाकार को कहा जायेगा कि वह धीरे-धीरे उठकर पलंग से उतरकर कैमरे की तरफ आ जाए या कैमरे से बाहर हो जाए। इस तरह एक ही कलाकार के दो बिम्ब, एक लेटा हुआ पलंग पर ख्वाब देखने के बाद की स्थिति वाला और एक उठता हुआ पर्दे पर नजर आएगा। जब वह आत्मा वापिस अपनी देह में प्रविष्ट हो जाएगी, उस वक्त भी फार्वर्ड-रिवर्स दोनों ही प्रक्रियाएँ पूरी करनी होंगी।

राजकपूर की बहुचर्चित फिल्म 'श्री चार सौ बीस' में एक बहुत ही प्रशंसा प्राप्त गीत था-'मुँड़-मुँड़ के ना देख, मुड़-मुड़ के'- यह गीत इसी तकनीक से फिल्माया गया था। नादिरा के पीछे जाते हुए राजकपूर को रोकने के पशोपेश में नरगिस के दो फिगर दिखलाए गए थे। एक में नरगिस राजकपूर से नाराज होकर उसे जाने देना चाहती है। उसी में नरगिस का ही दूसरा फिगर उसे रोक लेने की मनुहार करता है। इस दृश्य की प्रभावोत्पादक फोटोग्राफी को दर्शकों ने बहुत ही पसन्द किया था।

3.4 हाईस्पीड तकनीक

फिल्म निर्देशक मनोज कुमार ने अपनी एक फिल्म में हीरोइन पर एक बहुत ही खूबसूरत गाना फिल्माया था। इस फिल्म के दौरान एक खूबसूरत लड़की हवा में तैरती हुई ग्लाइडिंग करती और बहुत ही धीमी गति से चलती हुई दिखाई गई थी दर्शकों को

गाना बहुत ही पसन्द आया था। यह दृश्य साधारण कैमरे से नहीं फिल्माया जा सकता है। उसके लिए हाईस्पीड मोटर की जरूरत पड़ती है। भारत में यह प्रयोग सर्वप्रथम जाल मिस्त्री ने फिल्म 'बाबुल' में करने का दावा किया (फिल्म की आखिर में मौत का एक फरिश्ता घोड़े पर धीमी स्पीड पर हवा में तैरता हुआ आता है तथा नरगिस (हीरोइन) की रूह को लेकर वापिस उसी गति से चलता हुआ आकाश की तरफ चला जाता है। यह दृश्य भी तभी संभव हुआ जब हाईस्पीड कैमरे का सहारा लिया गया था। स्टूडियो में एक ढलवां प्लेटफार्म बनाया गया था। इसको काले कपड़े से खूब अच्छी तरह से ढंक दिया गया था। पीछे की पृष्ठभूमि में काला पर्दा लगा हुआ था घोड़े पर सवार मौत का फरिश्ता धीरे-धीरे उस पुल से प्लेटफार्म पर घोड़ा दौड़ाते हुए नीचे आया और नरगिस की रूह को उठाकर वापिस उसी गति से ऊपर जाकर गायब हो गया। यह सारा दृश्य कैमरे में वैरायवल मोटर लगाकर लिया गया था। उस वक्त फोटोग्राफी के क्षेत्र में आजकल मिलने वाली सुविधाएँ उपलब्ध ही नहीं थीं। इसलिए इसको चमत्कारिक फिल्मांकन माना गया था। आजकल तो देश में ऐसे-ऐसे कैमरे भी मौजूद हैं जिनकी स्पीड 300 फ्रेम प्रति सेकेण्ड तक हैं। इन कैमरों की सहायता से आप मनचाही गति के मूवमेन्ट फिल्मांकन के दौरान ले सकते हैं। इसके विपरीत आपने कई दृश्यों में पात्रों को बहुत ही तेज गति से भागते हुए देखा होगा। इसके लिए शूटिंग 'हाईस्पीड' की जगह 'स्लोस्पीड' से करनी पड़ती है।

कैमरे में हाईस्पीड की व्यवस्था

पुराने जमाने के कैमरों में 24 फ्रेम फिक्स्ड की मोटर आती थी। इसलिए उसमें हाईस्पीड, स्लोस्पीड की गुंजाइश रहती थी। मगर धीरे-धीरे वैरायवल स्पीड की मोटरें आने लगीं जिनकी स्पीड कम से कम 12 और अधिक से अधिक प्रति सेकण्ड रहती थी। आजकल तो हाईस्पीड का कैमरा ही अलग आने लगा है। जब वैरायवल मोटर नहीं आती तो स्पीड बढ़ाने के लिए सम्पादकों के पास एक ही उपाय रहता था कि वह शॉट प्रिन्ट करवाते वक्त लम्बे लिए हुए शॉट बीच-बीच में कई फ्रेमें निकाल कर प्रिन्ट करवाएँ। इस प्रक्रिया में स्पीड में तो थोड़ी बढ़ोत्तरी होती थी, मगर बीच में अवरोध भी आते थे। वैरायवल मोटर लगाने से स्पीड घटाना जरूरी हो तो आसानी से घट भी जाएगा। इसके साथ ही मूवमेन्ट बहुत ही स्मूथ रहेगी। स्पीड को बढ़ाने के लिए कैमरे में फिल्म के चलने की गति कम करनी पड़ेगी और स्पीड को कम करने के लिए कैमरे में फिल्म के चलने की गति बढ़ानी पड़ेगी।

उदाहरण के लिए अगर कैमरे में फिल्म 18 फ्रेम प्रति सेकण्ड से चली है तो फिल्म पर्दे पर दिखाई जाने पर उसकी स्पीड ड्योढ़ी हो जाएगी। इसका कारण यह है कि फिल्म का पॉजीटिव बनते वक्त तो प्रिन्टिंग 24 फ्रेम प्रति सेकण्ड पड़ती है। 18 की स्पीड से शूटिंग की गई फिल्म जब प्रिन्ट होगी तब 18 की जगह 24 फ्रेम प्रति सेकण्ड के हिसाब से इसी तरह से जब आपको स्लो मोशन शूटिंग करनी हो तो कैमरे में फिल्म की गति बढ़ानी पड़ती है। जैसे अगर आपने कैमरे की गति 36 फ्रेम प्रति सेकण्ड रखी तो शूटिंग को एक सेकण्ड में 36 फ्रेम की होगी और प्रिन्टिंग के वक्त वही 24 हो

जायेगी। इस तरह अपने आप स्लो स्पीड हो जाएगा।

इस तरह की शूटिंग के लिए आम तौर पर बैकग्राउण्ड में और पात्र नहीं रखे जाते, क्योंकि यदि रखे गए तो उन गति का प्रभाव जरूर पड़ेगा। अगर दूसरे पात्र एकदम जड़वत खड़े हैं तो हाईस्पीड मूवमेन्ट साथ में लिए जा सकते हैं वरना दूसरे पात्रों को ऐसे शॉटों में शामिल करने के लिए मास्किंग का सहारा लेना पड़ेगा। फिल्म में कहीं पर आए हुए शॉट दर्शकों का मन मोह लिया करते हैं।

स्टाप - ब्लाक

पौराणिक कथानकों पर आधारित अथवा धार्मिक फिल्मों में आपने किसी भी पात्र को अचानक प्रकट होते हुए अथवा देखते ही देखते गायब होते हुए देखा होगा। इसकी अन्य प्रक्रियाओं, डिजाल्व और फेड आउट के बारे में हम ऊपर बता चुके हैं। इसकी तीसरी प्रक्रिया स्टाप ब्लाक की है।

स्टाप ब्लाक के माने यह होता है कि एक ही शॉट के दो अलग-अलग शॉट उसी कोण से लिए जाकर बीच के खाली फ्रेम काटकर जोड़े जाते हैं। इसे स्टाप-ब्लाक इसलिए कहते हैं कि एक शॉट लेने के बाद कैमरा चलना रोक दिया जाता है। उदाहरण के लिए एक पात्र को खड़ा-खड़ा गायब करना है तो कैमरे से उस पात्र का खड़े-खड़े का एक शॉट लिया जाएगा। उसके बाद कैमरा बन्द कर दिया जाएगा। उस पात्र को फील्ड से बाहर निकलने के लिए बोला जायेगा। जब वह फील्ड खाली कर देगा तो उसी कोण से उस बन्द कैमरे को चालू कर खाली फील्ड का शॉट लेकर उसे बन्द कर पात्र को फील्ड में लाकर दूसरा शॉट लेना पड़ेगा। बाकी काम सम्पादक या संकलनकर्ता करेगा। यह शॉट लेने के लिए भी बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। कैमरा हिले नहीं, कोण बदले नहीं, लाइटें या लेन्स भी नहीं बदले आदि का ख्याल रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त फिल्म में और कोई पात्र आदि नहीं होने चाहिए। अगर उन पात्रों के साथ किसी को प्रकट अथवा अप्रकट करवाना हो, तो फिर अन्य पात्रों को ऐसी हिदायत करनी पड़ती है कि वे अपनी पोजीशन शूटिंग के समय यथावत बनाए रखें।

3.5 वन टर्न, डमी तथा मिनिएचर

कभी-कभी धार्मिक, पौराणिक कथानक वाली फिल्मों में आपको ऐसे दृश्य देखने को मिल जाते हैं; जिन दृश्यों में सूखे पेड़-पौधे पर एक-एक पत्ता या एक-एक फूल पैदा होता हुआ नजर आता है। इसी तरह कोई एक वस्तु या अनेक वस्तुएं धीरे-धीरे पीछे खिसकती नजर आती हैं। यह सब दृश्य चमत्कारिक व अद्‌भुत कहे जाते हैं। इन दृश्यों को लेने के लिए कोई खास कठिन तकनीकी प्रक्रिया नहीं करनी पड़ती, सिर्फ कैमरामैन, निर्माता और निर्देशक को धैर्य से काम लेना पड़ता है। एक-एक दृश्य लेने के लिए कई-कई दिन लग जाते हैं। इस प्रक्रिया को 'वन टर्न' कहा जाता है। मूल रूप से इस प्रक्रिया में फिल्म निगेटिव का एक-एक फ्रेम क्रमशः एक्सपोज करना पड़ता है। कई कैमरों में एक-एक फ्रेम एक्सपोज करने की व्यवस्था रहती है। अन्यथा इस काम के

लिए बनाए गए स्पेशल किस्म के कैमरे का उपयोग करना पड़ता है।

बाबू भाई मिस्त्री निर्देशित वाडिया की फिल्म **'माया बाजार'** में इस तकनीक का बहुत ही प्रभावशाली उपयोग किया गया था। पूरा का पूरा माया बाजार ही इसी तकनीक से निर्मित किया गया था। उदाहरण के लिए बर्तनों की दुकान में एक-एक करके बर्तन आते थे और एक स्थान से चलकर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर स्थिर हो जाते थे। इसके लिए पहले हर बर्तन को प्रवेश (एपीयर) करवाया गया था। उसके बाद उसको आगे चलाकर गन्तव्य स्थान पर शनैः-शनैः पहुँचाया गया था। खाली फील्ड में कोई भी बर्तन रखकर कैमरे का एक फ्रेम कैमरे को हाथ से चलाकर एक्सपोज किया गया था। उसके बाद उसको गति देने के लिए उसी बर्तन को थोड़ा -थोड़ा हाथ से आगे बढ़ाकर कैमरे में एक-एक फ्रेम को एक्सपोज किया गया था।

आगे बढ़ने की प्रक्रिया दो तरह से की जाती है। पहली प्रक्रिया में बर्तन को काले धागे से बाँधकर उसे धागे की सहायता से खींच कर आगे बढ़ाया जाता है और दूसरी तरकीब है, उस बर्तन को हाथ से एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रखा जाता है। इस तरह थोड़ी-थोड़ी दूरी पर वस्तु को रख-रख कर एक-एक फ्रेम खींच लिया जाता है। इस प्रक्रिया में प्रभाव कार्टून इफेक्ट की तरह नजर आते हैं। अगर किसी पेड़ पर जिस पर पत्ते नहीं हो उस पर फूल-पत्ते लगाने हो तब एक-एक पत्ता लगाकर एक -एक फ्रेम खीच लिया जाता है। उसी तरह फूल, फल, कली, अंकुरित पत्ती आदि की प्रक्रिया की जाती हैं। वक्त तो इस प्रक्रिया में बहुत लगता है, मगर उसमें निगेटिव ज्यादा खर्च नहीं होता। इस प्रक्रिया का उपयोग मूलतः धार्मिक या जादुई फिल्मों में ही किया जाता है। कभी-कभार ही यह प्रक्रिया दूसरी फिल्मों में देखने को मिलती हैं।

मिनीएचर और डमी

'सिसिल डी मेल' हॉलीवुड के सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक थे। उन्होंने एक फिल्म बनाई थी' सेमसन एण्ड डला डिला' इस फिल्म में क्लाइमेक्स में लगाया गया ऐरेना पूर्णरूपेण डमी ढाँचा था। विशालकाय ऐरेना ऐसा नजर आता था जैसे वह पूरा भीमकाय पत्थरों का बना हुआ हो। इस ऐरेना में आधा सेमसन एक मूर्ति से बंधा हुआ होता है। वह अपनी खोई ताकत वापस प्राप्त करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है और प्राप्त नई शक्ति के प्रयोग से वह उस विशालकाय ऐरेना को ध्वंस कर देता है। पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े टूट-टूट कर गिरते हैं और अपने साथ-साथ दर्शकों और सेमसन के विरोधियों को नष्ट कर देते हैं। स्वयं सेमसन उन पत्थरों के नीचे दबकर मर जाता है। अगर यह भव्य सेट पत्थरों का लगाया गया होता तो पता नहीं कितने लोग मरते, कितनों को चोटें आतीं और कम्पनी को मुआवजा देना पड़ता। परन्तु वह सेट वस्तु-स्थिति में पत्थरों का बना ही नहीं था वह थर्मोकोल जैसे हल्के-फुल्के पदार्थ के बड़े-बड़े टुकड़े लगाकर तैयार किया गया था। उन टुकड़ों के किसी पर भी गिरने पर कोई चोट नहीं पहुँचे।

हीरो, हीरोइन या विलेन जो बहुधा ऊपर से गिरकर चीखता हुआ मर जाता है। इस सीन को लेने के लिए तीन शॉट अलग-अलग लेने पड़ते हैं, जिसमें ऊपर से फेंकने

का और नीचे पड़े हुए के दो शॉट असली होते हैं और बीच में ऊपर से देखे आकार गिरने का शॉट नकली यानी डमी शॉट होता है। इन शॉटों को लेने के लिए एक डमी बनवानी पड़ती हैं। यह डमी असली चरित्र के जितनी नजदीक होगी उतनी ही अच्छी मानी जाएगी। इस डमी को नीचे गिरने वाले पात्र के कपड़े पहनाए जाते हैं। पहला शॉट होगा जिसमें नीचे गिरने वाला पात्र गिरने का एक्शन करते हुए कैमरे से आउट चला जाएगा। उसके बाद कैमरा नीचे चला जाएगा और कोई भी सहायक डमी को ऊपरे से नीचे फेंक देगा। डमी के कैमरे के सामने से निकलकर नीचे जमीन पर गिर जाएगी। उसके बाद तीसरा शॉट होगा-जमीन पर आउट फील्ड से आकर वही पात्र कैमरे के फील्ड में गिर जाएगा और तड़प-तड़प कर मर जाएगा। इन तीनों शॉटों का सम्पादन करने के बाद डमी शॉट पर उसी पात्र के चीखने की आवाज या मिलती - जुलती लगने वाली किसी भी चीख की आवाज डाल दी जाएगी।

जिस किसी ने भी देवी शर्मा की फिल्म 'किंग कांग' देखी होगी उन्हें दारासिंह और सुप्रसिद्ध पहलवान किंग-कांग की फाइट का दृश्य अवश्य ही ध्यान में आया होगा। इस फाइट के अन्त में दारासिंह किंग-कांग को अपने दोनों हाथों पर उठाकर उसको चक्कर देकर हाथों पर घुमाता हुआ बहुत दूर फेंक देता है। चक्कर लगाने का यह सीन बहुत ही रोमांचकारी था। अन्त में किंग-कांग जमीन पर गिरकर मर जाता है। कांग को हाथों में उठाने तक तो शॉट असली था। मगर उसको अपने दोनों हाथों पर उठाके चक्कर देकर फेंकने का शॉट डमी शॉट था। इस शॉट को लेने के लिए बांस की खप्पचियों की किंग-कांग के डील डौल के बराबर ही हल्की-फुल्की कम वजन वाली डमी बनाई गई थी। इस डमी के अंदर घास-फूस भर दिया गया था ताकि यह चक्कर लगाकर फेंकी जाए तो हवा में उड़कर दूर जाकर गिर सके। तीसरे शॉट में किंगकांग के मरने के शॉट में किंगकांग खुद ही था।

3.6 ऐसे फिल्माते हैं डमी शॉट

सन् 1904 के लगभग पुणे की प्रभात कम्पनी ने एक बहुत ही जोरदार और हिट फिल्म बनाई थी। उसका नाम था - 'सन्त-ज्ञानेश्वर'. इस फिल्म में कई चमत्कारिक दृश्य फिल्माए गए थे। इनमें तीन दृश्य बहुत ही प्रभावकारी थे। दर्शकों ने इन दृश्यों ने बहुत कौतूहल जगाया था। विस्मय से दर्शक इस बारे में आपस में बहस करते रहते थे।

पहला दृश्य था जिसमें एक भैंसा वेद मंत्रों का उच्चारण शुद्ध करता बतलाया गया था। दूसरे दृश्य में फिल्म के खलनायक चांगदेव एक शेर पर सवारी करके ज्ञानदेव के पास मिलने आ रहे थे। तीसरे दृश्य में ज्ञानदेव जिस दीवार पर बैठे हुए थे। उसको ही उड़ाकर वे चांद देव को रास्ते में ही मिल गए थे। यह तीनों दृश्य इस फिल्म की जान थे। इन तीनों दृश्यों को फिल्माया था ट्रिक सीन या स्पेशल इफेक्ट के जादूगर दिवंगत प्रह्लाद दत्त थे। भैंसे के मुँह से वेद मंत्र करवाने के लिए भैंसे के मुँह की एक डमी बनवाई थी। उस डमी को शब्दों के उच्चारण के उतार-चढ़ाव के हिसाब से संचालित

किया गया था, यानी फिल्म खींचते समय हिलाया-डुलाया गया था। चूंकि बात बहुत पुरानी हो गई है इसलिए अब यह बतलाना तो मुश्किल ही है कि चांद देव सचमुच जीवित शेर पर बैठकर आए थे अथवा शेर की डमी पर, मगर जब यही फिल्म दूसरी बार राजस्थान के फिल्म निर्माता रामराज नाहटा ने बनाई थी, तब तो निश्चय की चांगदेव डमी शेर पर बैठकर ही भूमिका कर रहे थे। इसी तरह इसी निर्माता की फिल्म में भैसे से वेद मंत्रों का उच्चारण करवाने के लिए भैंसे को गुड़ खिलाकर चलाते हुए मुँह की गतिविधि की शूटिंग करके उसके ऊपर वेद मंत्रों की ध्वनि प्रिन्ट करवा दी गई थी। यह दृश्य दोनों ही फिल्मों में दर्शकों को चौंकाने में समर्थ रहे थे।

वन्य पशुओं से लड़ाई के शॉट

टारजन अथवा जंगल की पृष्ठभूमि वाली फिल्मों में जब भी खूंखार हिंसक वन्य पशुओं के साथ हीरो-हीरोइन या अन्य की फाइट के दृश्य फिल्माए जाते हैं, तब भी वन्य पशुओं के असली शॉट के साथ ही साथ डमी शॉट का भी प्रयोग करना जरूरी हो जाता है। यदि ऐसा नहीं किया जाए तो कलाकारों को चोट लगने का खतरा हर वक्त बना रहता है।

व्ही शांताराम की बहुचर्चित फिल्म 'दो आँखे बारह हाथ' क्लाइमेक्स के सीन में बैलों के साथ जूझते समय शांताराम को चोट लग गई थी। चोट ऐसी जगह पर लगी थी कि बड़ी मुश्किल से उपचार के बाद वे अंधे होने से बच गए पाए थे। ऐसा ही एक खतरनाक वाकया होमी वाडिया की एक जंगल फिल्म के हीरो आजाद के साथ घट गयी थी। निर्माता निर्देशक दर्शन सब्बरवाल की फिल्म 'सेमसन' में दारासिंह के साथ शेर की एक फाइट रखी थी। सेट भी लग गया था और शूटिंग के लिए शेर भी आ गया था। मगर मौका पाकर शेर भागकर सेट के पीछे जा बैठा। इस पर नतीजा यह हुआ कि उस दिन शूटिंग कैंसिल करनी पड़ी और शेर पर काबू पाने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ा था। अन्त में जब दुबारा सेट लगाकर शूटिंग की गई, तब शेर की डमी बनाकर शूटिंग करनी पड़ी। कारण यह था कि दारासिंह ने असली शेर के साथ फाइट करने से साफ-साफ शब्दों में इन्कार कर दिया था। उसी दौरान बनी श्री राम बोहरा की फिल्म 'हरक्यूलिस' में भी दारासिंह की शेर के साथ फाइट थी। इसमें भी असली शेर की जगह नकली शेर से ही काम चला लिया गया था।

जंगल की पृष्ठभूमि में बनने वाली टारजन और वैसी ही अन्य फिल्मों में मगरमच्छ और शेर के साथ टारजन की फाइट के दृश्य भी होते हैं। इसलिए मगरमच्छ और शेर की डमियाँ बनवानी ही पड़ती हैं। अलबत्ता शेर या दूसरे खतरनाक पशुओं की फाइट में जानवरों के ट्रेनर डुप्लीकेट के रूप में फाइट करके, फिल्मांकन का काम पूरा करवाकर फाइट के समय के वास्तविक शॉट दे देते हैं, लेकिन जब भी मूल कलाकारों के शॉट लिए जाते हैं तब डमी शॉट ही लिए जाएंगे।

हॉलीवुड में तो कायदा ही यह बन गया है कि मूल कलाकारों को कोई-भी खतरे से भरा शॉट लेने के लिए नहीं कहा जाएगा। अगर कलाकार खुद शॉट देने को तैयार भी हो जाएंगे तब भी उनके ऐसे शॉट नहीं लिए जाएंगे। कारण यह है कि चोट के खतरे

तो हैं ही उन कलाकारों पर इण्डस्ट्री के लाखों रुपए भी लगे रहते हैं। कोई भी निर्माता ऐसा कोई खतरा उठाने को तैयार ही नहीं होगा जिसमें कलाकार को चोट पहुँचे और उसकी शूटिंग रुक जाए। हमारे यहाँ पर भी नहीं-कहीं कलाकार खुद ही खतरनाक शॉट देने के लिए तैयार हो जाते हैं। उदाहरणस्वरूप सम्राट चन्द्रगुप्त में निरूपाराय ने ऐसा शॉट दे दिया था जिसमें एक हाथी उनको अपनी सूंड में ऊपर उठा लेता है। ऐसा ही एक शॉट सोहराब मोदी की फिल्म 'पृथ्वी बल्लभ' में भी था। इस दृश्य में फिल्म के क्लाइमेक्स में राजा मुंज को, जिसकी भूमिका सोहराब मोदी ने की थी, हाथी के पैरों से कुचलवा कर मार डालने की सजा दी गई थी। पह यह शॉट डमी शॉट ही थे। असली होता तो हाथी उसे उठाकर मार ही डालता।

हॉलीवुज की एक बहुत ही प्रसिद्ध फिल्म 'मोबीडिक' में भी व्हेल मछली का शिकार करते-करते हीरो को अंत में 'मोबीडिक' के साथ मरते हुए दिखलाया गया था। उसकी लाश मोबीडिक के शरीर के साथ एक रस्सी से बंध जाती हैं। इस दृश्य को लेने के लिए निर्माता-निर्देशक को बहुत ही मेहनत करनी पड़ी थी। व्हेल मछली और हीरो ग्रेगेरी पैक दोनों की ही डमी बनाई गई थी।

आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि कभा-कभी मुख्य कलाकारों के नृत्य- तक भी डमी यानी दूसरे कलाकारों से करवा लिए जाते हैं। लाँग शॉट में तो वैसे भी पता नहीं चलता कि कौन कलाकार पर्दे पर है, मगर 'मिड लाँग' और 'मिड क्लोज' में तो शॉट लिए ही जा सकते हैं। बशर्ते नाचने वाले कलाकारों के चेहरे पर मॉक्स लगा दिया हो। 'मुगले आजम' के. आसिफ द्वारा निर्देशित एक मशहूर फिल्म थी। इस फिल्म का 'मोहे पनघट पे नन्दलाल छेड़ गये रे' गीत फिल्म हीरोइन मधुबाला पर फिल्माया गया था, पर हकीकत यह थी कि मधुबाला के मास्क के पीछे नाचने वाला सुप्रसिद्ध कथक नृत्यकार गोपीकृष्ण था। उसके चेहरे पर लगाया गया मास्क आसिफ ने पेरिस से हजारों रुपए खर्च करके बनवाया था। इसी तरह कमाल अमरोही की फिल्म 'पाकीजा' में मीना कुमारी का नृत्य वाला दृश्य भी मीना कुमारी ने नहीं दिया था। उनकी जगह पद्मा खन्ना ने मीना कुमारी का मास्क पहनकर नृत्य किया था।

इसी तरह जब ए0जी0 नाडियाडवाला ने भगवती चरण वर्मा की 'चित्रलेखा' दुबारा बनवाई, तो उसने उस फिल्म की शुरूआत में ही मीना कुमारी व सहेलियों के साथ एक नृत्य फिल्माया था। इस नृत्य में भी यही टेकनीक काम में ली गई थी। मास्क कागज तथा कपड़े की कुट्टी को गला कर बनाए गए हल्के वजन वाले मुखौटों को कहते हैं। जो कलाकारों के चेहरे को हुबहू वैसा ही प्रतिबिम्ब करता है। डुप्लीकेट इसे लगाकर काम करता है।

3.7 विशालकाय पात्रों का फिल्मांकन

विशालकाय वस्तुओं की शूटिंग आम तौर पर असली अथवा मूल वस्तु से मिलती-जुलती वस्तु से की जाती हैं, लेकिन कई बार यह संभव नहीं हो पाता है। इसके लिए एक मिनिएचर बनाकर शूटिंग करनी होती हैं। इसका एक अनुपम उदाहरण 'थीफ ऑफ बगदाद' क़े नाम से बनी अलेक्जेण्डर कोर्डा की फिल्म जिन्न का जितना भी काम

लिया गया था उसके लिए मूल वस्तु के मिनिएचर बनाए गये थे। आम आदमी की ऊंचाई सामान्यतः छह से सवा छह फीट तक होती है, लेकिन जिन्न कोई आम आदमी तो होता नहीं है। उसकी ऊंचाई पहाड़ जैसी बताई जाती है। जिन्न 'सहस्त्र रजनी चरित्र' (अरेबियन नाइट्स) की कहानियों का मुख्य पात्र होता था। 'बगदाद का चोर भी उसी प्रकार की कहानी थी इसलिए उसमें भी जिन्न था और वह पहाड़ जैसा विशालकाय था। अलादीन के चिराग के जिन्न की तरह बगदाद के चोर का जिन्न एक बोतल में बंद रहता है और उसे बोतल से बाहर निकलने के लिए बोतल का मुँह खोलना जरूरी होता है। यह विशालकाय जिन्न तिलिस्म तोड़ने के लिए फिल्म के हीरो को अपने हाथ पर बिठा कर ले जाता है तथा एक पहाड़ी में पहुँचता है। उस गुफा का मुंह इतना बड़ा था कि आदमी तो उसमें प्रवेश कर सकता था मगर जिन्न का सिर्फ हाथ घुस पाया था। इस दृश्य को फिल्माने के लिए दो अलग-अलग सेट बनाए गये थे। एक बड़ी साइज का और एक मिनिएचर। जिन्न उस गुफा के द्वार में हीरो के साथ प्रवेश करता है। वह उसे वहीं छोड़ आता है। गुफा का द्वार दिखलाते वक्त बड़ा सेट एक्सपोज किया गया था और छोटे सेट में जिन्न को हाथ डालते दिखलाया गया था। चूंकि सेट ऊपर से एक जैसे थे। इसलिए किसी को भी पता नहीं चल सका कि इस दृश्य की शूटिंग दो अलग-अलग सेटों में की गई है।

हीरो को गुफा के अंदर छोड़ने के बाद जिन्न आजाद हो जाता है और दो पहाड़ों पर चढ़ने के अन्दाज में, चढ़कर आकाश में उड़ जाता है। इन पहाड़ों का भी मिनिएचर बनाकर ही शूटिंग की गई थी। जिन्न, भूतों की फिल्मों के अलावा भी कभी-कभी मिनिएचर से शूटिंग करना जरूरी हो जाता है। जैसे अगर आपको किसी मकान को विस्फोट से उड़ते हुए दिखलाना है तो उसका मिनिएचर बनाकर ही उड़ाया जाता है, क्योंकि विशालकाय मकान को उड़ाना निर्माता के लिए किसी भी तरह संभव नहीं हो पाता है। ऐसे दृश्यों में असली और मिनिएचर दोनों सेटों के शॉट लेकर मिक्स किया जाता है। अगर निर्माता-निर्देशक को किसी शहर का टॉप शॉट लेना है तो उसके लिए भी मिनिएचर ही बनवाया जाता है। आजकल हेलीकॉप्टर और हवाई जहाज उपलब्ध होने से उनकी मदद से यह शॉट लिए जा सकते हैं। मगर हिन्दुस्तान में हवाई जहाज और हेलीकॉप्टर से शूटिंग में सरकार की तरफ से ऐसे रोड़े अटकाए जाते हैं कि आम तौर पर हेलीकॉप्टर या हवाई जहाज से शूटिंग प्रायः असंभव हो जाती है। ऐसी सूरत में किसी भी शहर का मॉडल वांछित स्तर का बनाकर ही शूटिंग की जाती है। बहुत सालों पहले जैमिनी पिक्चर्स के बैनर तले एस0एस0 वासन ने एक फिल्म बनाई थी जिसका नाम था- 'बहुत दिन हुए' इस फिल्म में खलनायक पी0 कैलाश मधुबाला को उठाकर ले जाता है और उसकी रक्षा के लिए कोई नहीं आ सके इसलिए पीछा करने वाली फौज को पत्थर का बना देता है और जमीन को फाड़कर एक चौड़ी तथा गहरी खाई बना देता है। अब चूंकि निर्माता-निर्देशक के कहने मात्र से ही तो जमीन फट नहीं सकती है। इसलिए जमीन फटने का दृश्य मॉडल का दृश्य बनाकर लिया गया था। स्टूडियो में लकड़ी के दो ढाँचे बनाकर उन्हें जोड़कर पहला दृश्य भूमि की सही सलामत स्थिति का ले लिया गया फिर दोनों को धीरे-धीरे खींच कर एक-दूसरे से अलग-अलग कर दिया गया ताकि ऐसा लगने

लगे कि भूमि फट रही है। इन ढाँचों पर मिट्टी और झाड़ियाँ आदि लगा दी गई थीं, ताकि वस्तु स्थिति में वह असली भूमि फटने जैसे ही लगे। जब मधुबाला का लड़का अपनी माँ को छुड़ाने के लिए जादूगर के महल की तरफ जाता है, तब कोई असली खाई का पता करके शूटिंग की गई थी।

एक और दृश्य की कल्पना कीजिए जिसमें हीरो भाग रहा है और उसके पीछे खलनायक के आदमी पड़े हुए हैं। भागते-भागते रास्ते में एक रोड़ा आ गया और वह रोड़ा है एक ट्रेन, जो अपने गन्तव्य स्थान की तरफ दौड़ी चली आ रही है। हीरो के पास इस ट्रेन को लांघने के अलावा कोई दूसरा चारा ही नहीं है। हीरो घोड़े को एक एड़ मारता है और यह उछलकर ट्रेन को लांघते हुए दूसरी तरफ चला जाता है। खलनायक के सहयोगियों के घोड़े चूंकि इस तरह ट्रेन को नहीं लांघ पाते हैं। इसलिये हीरो उनके चंगुल से बचकर निकल जाता है। फिल्म 'अमरसिंह राठौर' में जयराज हीरो थे।। इस फिल्म में एक दृश्य है-अमरसिंह सालावत खाँ को मारने के बाद बादशाह को मारने के लिए कटार फेंकते हैं। बादशाह बच जाता है और अमरसिंह को पकड़ने का आदेश देकर भाग जाता है। दरबार में हंगामा मचाते हुए अमरसिंह निकलकर भागते हैं। जब घोड़े पर सवार किले से बाहर जाने के लिए तैयार है, तब किले का मुख्य द्वार बंद हो जाता है। अमरसिंह के सामने बचने का एक ही तरीका था कि वह किले की प्राचीर को फांदकर किले के बाहर चले जाएं। किले की दीवार बहुत ऊंची थी। उसको फांदना अत्यन्त ही कठिन था। फिर भी उनका घोड़ा जम्प लेकर ऊंची छलांग भरकर दूसरी तरफ चला जाता है। कल्पना कीजिए कि ऐसे शॉट कैसे लिए जाते हैं।

इन शॉटों को अच्छे तरीके से अंजाम देने के लिए मिनिएचर सेट लगाने पड़ते हैं और दौड़ते हुए घोड़ों के ऊपर बैठे हुए सवार की एक तरफ तस्वीर खींचकर उसकी आउट लाइन काटकर पारदर्शी कांच पर चिपका दी जाती है। फिर उस कांच को उस मिनिएचर सेट के ऊपर से निकाला जाता है। इसके लिए तीन अलग-अलग शॉट लेना जरूरी होता है। पहला शॉट घोड़े की प्रारंभिक उछाल का होता है। दूसरा शॉट मिनिएचर पर से घोड़े की तस्वीर निकालने का होता है। तीसरा शॉट घोड़े के पैरों के भूमि पर टिकने का होता है। इन शॉटों को लेने के लिए बहुत सावधानी और सफाई की आवश्यकता होती है, वरना चोरी पकड़ी जाती है। अमर सिंहराठौर के दृश्य के साथ यही हुआ। फिल्म में वह शॉट बहुत ही रद्दी लग रहा था।

3.8 दैत्य पात्रों की शूटिंग प्रक्रिया

एक विदेशी फिल्म आई थी-'सिन्दबाद दि सेलर'। इस फिल्म में एक विशालकाय दैत्य दिखलाया गया था जो साइक्लोप जाति का था। सिन्दबाद और उसके आदमी उस दैत्य के चंगुल में फंस जाते हैं। दैत्य प्रतिदिन एक के हिसाब से आदमियों का भक्षण करता रहता है। इसको दिखलाने के लिए कि दैत्य बहुत ही विशालकाय है। 'मिनिएचर' और ब्ल्यू कार्टेन आदि का प्रयोग किया गया था। एक दृश्य में दैत्य यूलाइसिस और उसके साथियों के लिए एक टोकरी में खाना फेंकता है। उस वक्त वह सामान्य आकार

की टोकरी होती है। मगर जब ऊपर से फेंकी वही टोकरी यूलाइसिस के सामने गिरती है तो वह एकदम विशालकाय हो जाती है। इस दृश्य को फिल्माने के लिए दो अलग-अलग टोकरियाँ बनवाई गई थीं। छोटी टोकरी दैत्य के हाथ में दी गई थी और बड़ी टोकरी यूलाइसिस के पास आकर गिर पड़ी थी। इस टोकरी के अनुपात में यूलाइसिस बहुत ही छोटा नजर आता था। इसके दर्शकों को यह आभास होता था कि वह दैत्य सचमुच ही बहुत विशाल काया वाला जीव था। यह तकनीक मिनिएचर की प्रक्रिया से बिल्कुल ही विपरीत है। बड़ी चीजों की जगह छोटी चीजें बनवाकर शूटिंग करना मिनिएचर करना मिनिएचर शूटिंग कहलाता है। यह विपरीत तकनीक है।

हॉलीवुड में कुछ वर्षो पहले बनी दो बहुचर्चित फिल्मों 'किंगकांग' और 'गुलीवर ट्रेवल्स' में इन दोनों तकनीकों को बहुत ही प्रभावशाली तरीके से काम में लाया गया था। दर्शकों ने भी इसकी बहुत प्रशंसा की थी।

किंगकांग को विशालकाय दिखलाने के लिए 57 फीट की ऊंचाई का लोहे का चलता-फिरता एक यांत्रिक पुतला (रीबोट) बनाया गया था। जो कि हाईड्रोलिक यंत्रों से संचालित किया जाता था। इस रोबोट को किस तरह संचालित किया गया था, यह बनाने वाले तथा चलाने वाले दोनों ने ही गुप्त रखा था। इसलिए उस पर कोई अधिकृत रूप से रोशनी नहीं डाली जा सकती। एक दृश्य में हीरोइन को किंगकांग हथेली पर रख लेता है और लड़की चलती-फिरती भी है। इसके लिए भी हाईड्रोलिक यंत्रों से संचालित एक विशाल आकार का हाथ बनाया गया था जिस पर लड़की यानी हीरोइन को बिठला दिया गया था। किंगकांग मशीन नहीं होकर एक जीवित प्राणी है। यह दिखलाने के लिए एक आदमी को चमड़े का खोल पहनाया गया था। उस पर गोरिल्ले का मास्क लगा कर मेकअप कर दिया गया था चलना, फिरना, कूदना, फांदना, देखना तथा अन्य हरकतें करना आदि क्रियाएं इसी से करवाई गई थी। इस लोहे के बने हुए रोबोट पर किंगकांग का रूप एवं प्रभाव बतलाने के लिए घोड़े के बाल काट-काट कर उसके शरीर पर चिपकाए गए थे। इन घोड़े के बालों की कीमत लाखों रुपए आई थी। जुटाने में परेशानी भी आई थी।

गुलीवर ट्रेवल्स में ब्ल्यू कार्टेन, व्हाइट कर्टेन और मास्किंग का प्रयोग किया गया था, मगर एक दृश्य जिसमें गुलीवर एक विशाल आकार के मगरमच्छ जो कि ऐलीगेटर जाति का था, से लड़ता है, को फिल्माने के लिए भी मिनिएचर तकनीक का प्रयोग किया गया था।

कट आउट पद्धति

इन दोनों तकनीकों के साथ इनसे ही मिलती-जुलती एक पद्धति और भी है इस पद्धति को ''कट आउट पद्धति'' कहा जाता है। इस तकनीक में कोई भी महल, शहर अथवा ऐसे ही दृश्य दिखलाने के लिए कट आउट बनवाए जाते हैं। प्लाईवुड पर तस्वीरें चिपका-चिपका कर उनकी लाइन काट ली जाती है। इस तरह तैयार किया गया दृश्यों का ढांचा कट आउट के रूप में कैमरे के आगे लगाया जाता है। शूटिंग उससे ही की जाती

है।

एक फिल्म के दृश्य में नाग द्वारा काटे गये व्यक्ति का विष स्वयं दूसरा नाग चूस कर उसको पुनः नेत्र ज्योति प्रदान करवाता है। सवाल यह था कि यह शॉट किस तरह लिया जाए? फिल्म के निर्देशक और छायांकन करने वालों को भी यह समझ में नहीं आ पा रहा था कि शॉट कैसे लिया जाए? तब प्रसिद्ध कैमरामैन निर्देशक 'रवि नगाइट' को याद किया गया। उन्होंने आनन-फनन में शॉट ले लिया। जो तरीका शॉट लेने के लिए उन्होंने प्रयोग किया वह बहुत आसान था। बाद में तो उसे देखकर, सुनकर यह कहने वाले भी कई मिल गए कि यह तरकीब तो एक छोटा सा बच्चा भी बहुत आसानी से कर सकता था। रवि नगाइच ने हीरो दिलीप कुमार को पलंग पर लिटाने के स्थान पर एक बड़ा-सा आइना पलंग पर लगवा दिया था, लेटे हुए की शक्ल में, बाद में कैमरा के पीछे खड़े दिलीप कुमार का प्रतिबिम्ब आइने में पड़ने दिया। इसी आइने में प्रतिबिम्ब दिलीपकुमार का शॉट ले लिया। पर्दे पर ऐसे लगता है कि पलंग पर दिलीप कुमार ही लेटे हुए हैं। इसके पश्चात् आईने में दिखलाई पड़ने वाली आंखों को नाग के फन से छुआ दिया गया। उस दौरान नाग ने जो भी हरकतें की उससे यह लगा कि दिलीपकुमार की आंखों से नाग का विष खुद नाग ही पीकर उसकी आंखों की रोशनी बहाल कर रहा है। बात सिर्फ अक्ल की है और सही-सही रूप में इस्तेमाल करने की भी। बाकी इस शॉट की नकल करने वाले तो बहुत मिल जाएंगे।

रवि नगाइच भी बाबू भाई मिस्त्री की तरह बहुत बड़े ट्रिक मास्टर कहे जाते हैं। इनका दावा है कि जो भी ट्रिक शॉट वे देते हैं, डायरेक्ट करते हैं, वे समय से पहले कोई कल्पना नहीं करते। इसके दो उदाहरण मेरी अपनी फिल्म 'थीफ ऑफ बागदाद' के हैं। इसकी मुख्य भूमिका में शत्रुघ्न सिन्हा (हीरो) तथा सुलक्षणा पंण्डित (हीरोइन) थी। अमरसिंह राठौड़ के दृश्य बुर्ज पर से घोड़े कुदवाने, का जिक्र हम पहले ही कर चुके हैं। यह भी बतलाया गया था कि यह शॉट कैसे लिया गया था। ऐसा ही एक शॉट 'थीफ ऑफ बगदाद' में था। इसमें शत्रुघ्न सिन्हा पीछा करने वालों से पिण्ड छुड़ाने के लिए किले की दीवार फांदकर दूसरी ओर निकल जाते हैं। इस दृश्य के लेने के लिए रवि नागइच ने एक साधारण सी तरकीब से काम लिया था। किले की दीवार के ऊपरी हिस्से का दो-तीन फीट ऊंचा नमूना बनाकर समतल जमीन पर रखवा दिया। शत्रुघ्न सिन्हा की भूमिका कर रहा डुप्लीकेट घोड़े सहित उसको एक छलांग में कूदकर पार कर जाता है। इस शॉट के साथ एक शॉट बड़ी दीवार के सामने से घोड़े के जम्प लेने का ले लिया गया था। इसी तरह दूसरी ओर घोड़े का उतरने का शॉट ले लिया गया। जब तीन शॉट सम्पादित हो गए तब पर्दे पर ऐसा लगा कि शत्रुघ्न सिन्हा का घोड़ा वास्तव में किले की बहुत बड़ी दीवार फांदकर निकल गया था।

दूसरा शॉट अभिनेत्री बिन्दु के एक नृत्य का था। इसे भी रवि नगाइच ने 'थीफ ऑफ बगदाद' के लिए बहुत खूबसूरती से फिल्माया था। फिल्म के खलनायक प्रेमनाथ ने एक नकली जन्नत (स्वर्ग) बना रखा था। जहाँ पर वे कुछ मनचले लोगों को फंसाकर खुशनुमा जन्नत के नजारे दिखलाया करते थे। जन्नत का आनन्द लेने वाले रसियाओं

को नशा करवाकर उनको वापिस अपने घर पहुँचा दिया करते थे। जन्नत के आनन्द के पीछे भ्रमित वह शख्स तब प्रेमनाथ की कोई भी आज्ञा लेने के लिए तैयार हो जाता था, बशर्ते कि उसे हमेशा-हमेशा के लिए जन्नत का आनन्द मिल जाए। इस माहौल में उसका घर तलाशते - तलाशते शत्रुघ्न सिन्हा वहाँ पहुँच जाते हैं। वहाँ पर उनकी मुलाकात प्रेमनाथ की खास दासी बिन्दु से हो जाती है जो उसको अपने नृत्य - कार्यक्रम में उलझाये रखना चाहती है। इस नृत्य में एक शॉट था जिसमें कुछ लड़कियाँ सीधी पोजीशन पर नृत्य कर रही हैं और इन सीधी पोजीशन वाली नृत्यांगनाओं के घेरे में बीच में एक लड़की उलटी नाच रही है। इस अजीब शॉट को लेने के लिए रवि नगाइच ने रिवर्स पद्धति और एक शीशे (आईने) का मिला-जुला प्रयोग किया था। पहले सीधी नाचती लड़कियों का शॉट ले लिया। फिर उस उलटी नृत्य वाली के शॉट को लेने के लिए उन्होंने कैमरे को रिवर्स किया और निगेटिव को पहले मार्क पर ले आए। इसके बाद दो फीट की ऊंचाई पर कैमरा रखकर टॉप शॉट अरेन्ज किया। इस दौरान लेन्स के नीचे एक तिरछा आईना रखा गया। सामने ऊंचाई पर एक नाचने वाली लड़की को खड़ा किया गया उसका अक्स कांच पर पड़ रहा था। जाहिर है कि कांच में वह लड़की उलटी नजर आएगी। उसके मूवमेन्ट शुरू होते ही उस दृश्य को कैद कर लिया गया था।

इस तकनीक के प्रयोग के कई बहुचर्चित उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऐसे उदाहरणों में से एक है मरहूम एस.एस. वासन की सुपरहिट फिल्म ''बहुत दिन हुए'' में एक नृत्य। इसे भव्य आकार के खंभे वाले हॉल में फिल्माया गया था। नृत्यांगना इन खंभों के ही आजू-बाजू नृत्य करती नजर आती है। यह हॉल वास्तव में कट आउट तकनीक से बनाया गया था। इन बड़े-बड़े खंभों के छोटे-छोटे मिनिएचर बनाकर कैमरे के सामने लगा दिए गए थे। खाली मैदान में लड़कियों से नृत्य करवाया गया था। ऐसा लगता था कि विशाल हॉल में लड़कियाँ नाच रही हैं। उस जमाने में यह बात लोगों की पकड़ में नहीं आई थी, लेकिन बाद में निर्माता ने स्वयं ही इस दृश्य को फिल्माने का राज जाहिर कर दिया था।

इसी तरह का दूसरा उदाहरण निर्माता बी.के. आदर्श की फिल्म ''बजरंगबेली'' क़ा दिया जा सकता है। उसमें बजरंग बली सीता की खोज में रावण की राजधानी लंका में घूम-घूम कर सीता की तलाश करते रहते हैं। पूरे नगर के मकानों, महलों आदि में ताक-झांक करते रहते हैं। लंका का यह दृश्य समुद्र के किनारे फिल्माया गया था। सारी शूटिंग कैमरे के आगे महलों, बाजारों, अट्टालिकाओं आदि के कट आउट लगाकर की गई थी। आदर्श ऐसी शूटिंग के विशेषज्ञ माने जाते थे।

मैकेनिकल शूटिंग

किंगकांग में जिस तरह रोबोट बनाकर उसकी शूटिंग की गई थी। उसी तरह हॉलीवुड की मशहूर फिल्म 'जॉज' भी थी। इसमें भी शार्क मछली बनाई गई थी। विशालकाय शार्क मछली की शूटिंग करना अन्यथा संभव नहीं था। इसके लिए लगभग 50 फीट लम्बी शार्क मछली का ढाँचा बनवाया गया था। यह मशीनों के जरिए संचालित किया जाता था। मुंह के खुलने बंद होने, पानी से ऊपर आने, वापिस डूब जाने

आदि की सारी क्रियाएं उसी मशीनी शार्क मछली के जरिए की गई थी। यह मशीनी शार्क इतनी अच्छी बनाई गई थी कि जीती-जागती शार्क का आभास करवाती थी। किसी को भी यह पता नहीं चल पाया कि यह असली थी या नकली।

पहले जब इस तह के दृश्य फिल्माए जाते थे तब भी हल्के-फुल्के पदार्थों में ढाँचा बनाकर उसमें आदमी छिपकर उसको संचालित करते थे, मगर आजकल मशीनी उपकरणों के उपलब्ध होने और रिमोट कंट्रोल प्रक्रिया के आ जाने से इस्पात जैसे भारी-भरकम पदार्थों के भी ढाँचे बनने लगे हैं। किंगकांग और शार्क मछली दोनों ही इस्पात के बनाए गए थे। 'जाज' फल्म तो इतनी हिट हुई कि उसी समय के मैकेनिकल ढांचे को लेकर 'जाज पार्ट सेकण्ड' नामक फिल्म भी बना ली गई थी।

भारतीय फिल्मों के पितामह दादा साहब फालके ने एक फिल्म 'कालिया दमन' बनाई थी। इसमें चलते-फिरते कालिया नामक एक विशाल आकार के सर्प को बतलाया गया था। बहुत समय तक इस साँप को दिखलाने की प्रक्रिया लोगों को समझ में नहीं आ पाई थी। उस विशालकाय नाग के शरीर के ढाँचे के खोल के अन्दर नन्हें-नन्हें बच्चों को छिपा दिया गया था। उन बच्चों की हरकतों से ही उस कालिया नाग की गतिविधियाँ संचालित होती रहती थीं। इससे यह लगता था कि वह कालिया नाग ही सचमुच में घूम-फिर रहा है।

3.9 कुतूहल दृश्यों का फिल्मांकन

अपने समय में दर्शकों की पसन्दीदा फिल्म बनी थी - बैराग। इस फिल्म में दिलीप कुमार हीरो था। उसने इस फिल्म में तीन भूमिकाएं की थीं। एक पिता और दो पुत्रों की। इन तीनों भूमिकाओं में से पिता वाली भूमिका में वह अंधा हो जाता है। उसकी फिल्म में वापस आंखे दिलाने के लिए एक सांप लाया गया जो कि दिलीप कुमार की आंखों के विष को चूस कर उसकी आँखों की रोशनी वापस लौटाता है। इस दृश्य को करने पर कैमरा आन कर दिया और कैमरा फार्वर्ड चलाकर शॉट पूरा कर लिया। इस तरह सीधी नाचने वाली लड़कियों के बीच में उल्टी नाचती लड़की दिखलाई पड़ने लगी।

रवि नगाइच तो अपने फन में माहिर हैं, अपने जमाने के प्रसिद्ध धार्मिक फिल्में बनाने वाले विनोद देसाई भी कुछ कम नहीं थे। सर्पी, खूंखार जानवरों आदि से काम लेने में वे बहुत ही उस्ताद थे। उनकी एक फिल्म में एक गाना था। इस गाने में नाग लोकवाद्य बजाते हैं। इस दृश्य के लिए विविध किस्म के सर्पों के साथ-साथ नकली (डमी) सर्प, नकली पूंछ और नकली फन आदि का मिश्रण कर उनसे लोक वाद्य बजवाये गए थे। फिल्म का यह बड़ा ही प्रभावकारी व दर्शकों को लुभाने वाला गाना था। इस गाने को फिल्मांकित करने तथा डमी सर्प बनाने में मावलंकर का भी बहुत बड़ा हाथ था। इन्हीं साहब ने मेरी फिल्म 'हर्क्यूलिस' में भी नौ मुँह वाला हाइड्रा नामक साँप भी बनाया था। हर्क्यूलिस के साथ उसकी फाइट करवाने का दृश्य भी उन्होंने ही अरेन्ज किया था।

विनोद देसाई की फिल्म 'नाग कन्या' में एक दृश्य था। इस दृश्य में हीरोइन अंजली देवी की प्रार्थना पर एक पत्थर-चूने की पक्की दीवार पिघलकर उसको बाहर

निकलने का रास्ता दे देती है। प्रश्न उठता है कि यह दीवार कैसे पिघल गई। उसकी प्रार्थना के दौरान इसके लिए देसाई ने जहाँ दीवार का हिस्सा पिघलवाना था वहाँ का हिस्सा घी का बना दिया था। प्रभाव ऊपर से ऐसा लग रहा था कि वह मूल दीवार का ही हिस्सा होगा उसके पीछे जलाई गई आग की गर्मी से वह घी वाला दीवार का हिस्सा पिघलता चला गया। वह लकड़ी इस दौरान गाना गाती रही। जब दीवार पिघल गई, तो वह निकल कर भाग गई, यह दृश्य दर्शकों के लिए बहुत कुतूहल जगाने वाला साबित हुआ।

3.10 बैक तथा फ्रण्ट प्रोजेक्शन प्रक्रिया

पूर्व में हमने हॉलीवुड की एक फिल्म 'किंग-कांग की चर्चा की थी। उसमें यह बतलाया गया था कि किंग-कांग में मैकेनिकल इफेक्ट के साथ बैक प्रोजेक्शन प्रक्रिया और फ्रण्ट प्रोजेक्शन प्रक्रिया का प्रयोग किया गया था। हम आपको यहाँ यह बतलाएंगे कि बैक प्रोजेक्शन तथा फ्रण्ट प्रोजेक्शन की प्रक्रिया किस तरह पूरी की जाती है।

मान लीजिए कोई कैरेक्टर किसी गाड़ी में जा रहा है, जिस गाड़ी में कैमरा रखने की जगह नहीं हो उसमें उस कलाकार के क्लोजअप आदि नहीं लिए जा सकेंगे। इसी तरह आपको ऐसी जगह शूटिंग करनी हो जहाँ पर आप कलाकारों को नहीं ले जा सकते। ऐसी सूरत में बैक प्रोजेक्शन अथवा फ्रण्ट प्रोजेक्शन की तकनीक का प्रयोग किया जाएगा। इस प्रक्रिया में सबसे पहली जरूरत उस पृष्ठभूमि की फिल्म की होती है जिस पृष्ठभूमि (बैक ग्राउण्ड) से कलाकार गुजर रहा है। इस प्रक्रिया को फिल्मी भाषा में प्लेट कहते हैं। यह प्लेट लेने के लिए फिल्म निर्देशक और कैमरा मैन मय यूनिट के उस स्थान पर जाएगा जहाँ की तस्वीरें उनको चाहिए। वहाँ पर कलाकारों को छोड़कर वहाँ की पृष्ठभूमि की तस्वीरें चलित कैमरे (स्टिल कैमरा नहीं) में उतार ली जाएंगी। यह प्लेटें स्थिर भी हो सकती हैं और चलित (मूविंग) भी। इस तरह एक ही दृश्य की प्लेट बनाई जाएगी या फिर कैमरे को दौड़ाते हुए दृश्य के एक पाइंट से चलकर वांछनीय दूसरे पाइंट तक की तस्वीरें ले ली जाती हैं। उदाहरणार्थ-यदि एक झरना बहते हुए वाला दृश्य देना है तो पूरे बैकग्राउंड में उसका दृश्य फिल्मा लिया जाएगा। यदि कोई गाड़ी खेतों में दौड़ती बतलानी है तो गाड़ी की गति (स्पीड) पर चला कर खेतों की दृश्यावली फिल्मा ली जाएगी।

इस निगेटिव फिल्म से फिर वास्तविक रंग (टु कलर्स) में पॉजीटिव बना लिया जाता है। अब आपकी प्लेट तैयार है। इसके बाद कलाकारों की डेट मिलने पर स्टूडियो में बैक प्रोजेक्शन किया जायेगा। यह सुविधा हर जगह पर नहीं है। मुम्बई में अवश्य ही ऐसी व्यवस्था है।

स्टूडियो फ्लोर में कोई सेट नहीं लगाया जाता। सेट के स्थान पर एक बड़ा-सा सफेद रंग का पर्दा लगाया जाता है। हां, पर्दे के आगे फिल्म की अनवरतता (कंटीन्यूटी) बनाए रखने के लिए सड़क, पगडण्डी आदि का टुकड़ा बना लेते हैं। पर्दे के पीछे एक प्रोजेक्टर रहता है।, जिसमें ऐसी व्यवस्था रहती है कि प्लेट का लूप चल सके। यह लूप लगातार चलता रहता है जब तक कि आप प्रोजेक्टर ऑपरेटर को बंद करने को नहीं कहेंगे। पर्दे के आगे कलाकारों की उस गाड़ी को जिसमें दूसरा दृश्य शूट किया गया था,

खड़ी कर दिया है। अगर कोई यान है तो उसमें कलाकार किस मूल पोजीशन में था, उसमें खड़ा करके, बिठा करके अथवा फिर जो भी उससे मूवमेण्ट करवाना हो, करवाते रहते हैं। उसके बाद कलाकारों के जो भी शॉट लेने हों उसके हिसाब से ही कैमरा अरेन्ज किया जाता है। इसके बाद प्रोजेक्टर ऑपरेटर को लूप चालू करने के लिए कहा जाता है। लूप चालू हो जाने पर सफेद पर्दे पर उसकी तस्वीर पड़ती और चलती रहती है और उसकी शूटिंग कर ली जाती है। चूंकि यान अथवा कलाकार स्थिर हैं, मगर प्लेट चल रही है इसलिए ऐसा लगता है कि कलाकार अथवा यान खुद ही चल रहे हैं। इस प्रक्रिया में संवाद और गीत दोनों ही लिए जा सकते हैं। इस प्रक्रिया को 'बैक प्रोजेक्शन' कहा जाता है।

इस बैक प्रोजेक्शन की प्रक्रिया में एक खराबी होती है कि रंगीन फिल्म की शूटिंग में मूल रंगों यानी लाल, पीला, हरा में से एक रंग अक्सर गायब हो जाता है। हॉलीवुड में ऐसी प्रक्रिया विकसित हो गई है जिसमें सभी रंग पूरे उभरकर आते हैं और दर्शकों को मालूम तक नहीं पड़ता है कि यह शूटिंग बैक प्रोजेक्शन किया हुआ है। इस प्रक्रिया का सबसे बड़ा उदाहरण हॉलीवुड की एक फिल्म में है जिस फिल्म के आधार पर हिन्दी की हिट फिल्म 'एक फूल दो माली' बनाई गई है। इसके निर्माता देवेन्द्र गोयल थे। हॉलीवुड की उस फिल्म की पूरी शूटिंग समुद्र के किनारे बसे गांव में की गई थी, मगर वास्तव में शूटिंग समुद्र की प्लेट पर चलाकर स्टूडियो में गाँव बनाकर की गई थी।

फ्रन्ट प्रोजेक्शन

बैक प्रोजेक्शन की इस खामी को पूरा करने के लिए हॉलीवुड में एक नई तकनीक विकसित हुई, जिसको फ्रन्ट प्रोजेक्शन कहते हैं। बैक प्रोजेक्शन और फ्रन्ट प्रोजेक्शन में अन्तर सिर्फ इतना ही है कि प्रोजेक्टर पर्दे के पीछे रहने की जगह पर्दे के आगे रहता है। यानी जिस तरफ कलाकार और कैमरा रहता है। उसी तरफ प्रोजेक्टर भी रहता है। इस प्रक्रिया में रंग नहीं उड़ते, मगर भारतीय फिल्म जगत में अभी तक यह प्रक्रिया चलन में नहीं आ पाई है। राजकपूर ने एक फिल्म बनाई था 'श्री-420' उस फिल्म में एक सीन थी, जिसमें राजकपूर समुद्र के किनारे शीर्षासन किए हुए हैं और एक पुलिस वाला देखकर उसे डांट-डपटकर भगा देता है। कहा जाता है कि राजकपूर इस शॉट को लेने के लिए समुद्र के किनारे नहीं गया था। बल्कि बैक प्रोजेक्शन कर समुद्र की प्लेट की मदद से स्टूडियो में ही लिया था। इसी तरह विमल राय की फिल्म 'देवदास' में एक दृश्य है जिसमें एक बैलगाड़ी जाती हुयी दिखाई गई थी। इस दृश्य को भी स्टूडियो में ही फिल्माया गया था, एक खाली दिन में, इसके लिए एक बैलगाड़ी की कनात बनाकर खड़ी कर दी गई थी। उनके एक सहायक ने हाथ में एक टहनी पकड़ी और उस कनात पर से छाया इस पार से उस पार गुजार दी गई। यही प्रक्रिया यहाँ पर कई बार दोहराई गई। पर्दे पर वह गाड़ी चलती हुई नजर आती थी।

3.11 क्या होती है मास्किंग

दर्शकों ने बहुत सारी फिल्में देखी होंगी जिनमें एक ही कलाकार दो-दो, तीन-तीन रोल अदा करता है। जब कलाकार अलग-अलग रोल करता है, तब तक तो कोई खास समस्या नहीं होती है, मगर एक ही कलाकार को शक्ल वाले दोनों पात्र जब एक

साथ आ जाते हैं, तब समस्या खड़ी हो जाती है कि उस दृश्य को किस तरह फिल्मांकित किया जाए?

फिल्म का वह दृश्य भी फिल्माया जाता ही है। दर्शक भी यह सोच-सोच कर ताज्जुब करते होंगे कि यह सीन कैसे फिल्माया गया। इस तकनीक के कई तरीके हैं।

एक तरीका तो यह है कि डुप्लीकेट का प्रयोग करना। जैसे दो दिलीप कुमार आपस में बातचीत या फाइट कर रहे हैं तब एक तो असली दिलीप कुमार होता है और दूसरा दिलीप कुमार का डुप्लीकेट। इस डुप्लीकेट को ठीक वैसे ही सजाया-धजाया जाता है, जैसा कि उस कैरेक्टर को सजाना-धजाना होता है। जो रोल दिलीप कुमार फिल्म में करेगा उस के लिए विग भी बनवानी पड़ती है। कपड़े-लत्ते, आभूषण सभी हूबहू डुप्लीकेट ही होते हैं। इस दृश्य के लिए जब असली दिलीप कुमार का फ्रण्ट होगा तब डुप्लीकेट दिलीप कुमार की बैक होगी ताकि उसका चेहरा दर्शकों की निगाहों में पकड़ा नहीं जाए। इस शॉट के बाद जब दूसरा शॉट लिया जाएगा तो डुप्लीकेट की जगह असली दिलीप कुमार होगा और असली दिलीप कुमार की जगह पर उसका डुप्लीकेट। बिल्कुल उसी के मेकअप और उसी के कपड़ों में। बीच-बीच में उनके क्लोजअप भी लिए जायेंगे ताकि देखने वाला धोखा खा जाए कि वह एक ही जगह पर दो-दो दिलीप कुमार देख रहा है। यह दोनों पात्र आपस में हाथ भी मिला सकते हैं गले मिल सकते हैं साथ में कोई अन्य क्रिया भी कर सकते हैं। दर्शक को वे एक जैसे ही नजर आएंगे।

डुप्लीकेट के इस चयन में इस बात का ख्याल अवश्य ही रखा जाएगा कि उसकी हाइट (कद), मोटाई, रंग, रूप, आदि असली पात्र से मिलते-जुलते हों। किशोर कुमार का एक डुप्लीकेट होता था मि0 बैनर्जी, वह तो अपने व्यक्तित्व में किशोर कुमार ही नजर आता था। फाइट के दृश्यों में तो अक्सर असली कलाकार की जगह डुप्लीकेट को ही काम में लिया जाता है। हॉलीवुड में तो यह परम्परा ही बन चुकी है। कि फिल्म का कोई भी असली कलाकार कोई भी खतरनाक काम नहीं करेगा। ऐसे खतरनाक दृश्यों को फिल्माते वक्त डुप्लीकेट ही उस भूमिका को करेगा।

दूसरा तरीका है प्रिज्म लेन्स का प्रयोग। इन लेन्सों के जरिए एक से दो, पांच, सात या अधिक फिगर एक ही कलाकार के फिल्माए जा सकते हैं।

तीसरा किन्तु सबसे महत्वपूर्ण तरीका है-मास्किंग मास्किंग का अर्थ है फिल्म की पट्टी का एक हिस्सा अंधेरे में रखकर दूसरे हिस्से को एक्सपोज करना। जिस हिस्से को एक्सपोज करना नहीं होता है, उस हिस्से को रोशन नहीं किया जा सकता। जो हिस्सा रोशन होता है, वही एक्सपोज होता है। जब अनएक्सपोज्ड हिस्से को एक्सपोज करना होता है, तब एक्सपोज्ड हिस्से को डार्क रखा जाता है और एक्सपोज होने वाले हिस्से को रोशन किया जाता है। इस तरह फिल्म में एक ही फ्रेम में दो एक्सपोजर हो जाते हैं और एक ही जगह दो फिगर नजर आते हैं। इसके लिए फिल्म को कैमरे में रिवर्स भी करना पड़ता है, अर्थात् फिल्म का फुटेज नाप कर उसे फिल्मा लिया जाएगा। यदि फिल्म 40 फीट पर हो और उसे 80 फीट तक ले जाकर खींची गई है तो रिवर्स करके वापिस 40 फीट पर लाकर दुबारा शूटिंग की जाएगी। मगर यह सुपर इम्पोजीशन नहीं है जैसा

कि ऊपर बतलाया गया है। सुपर इम्पोजीशन में पहले शॉट में भी पूरी फिल्म एक्सपोज होती है। मास्किंग के सामान्यतः तीन तरीके हैं ग्लास मास्किंग, लेन्स मास्किंग तथा लाइट मास्किंग।

ग्लास मास्किंग

लकड़ी का एक फ्रेम बनाकर उसमें पारदर्शी कांच फिट कर दिया जाता है। उस कांच वाले फ्रेम को एक स्टैण्ड पर खड़ा करके कैमरे के लेन्स के सामने रख दिया जाता है। इसके बाद कमरे में उस ग्लास को जिस अनुपात में जरूरी समझा जाता है, उसी अनुपात में कांच की एक साइड खुली छोड़कर दूसरी साइड में एक काला-कागज लगा देते हैं जो कि पूर्णतया अपारदर्शी होता है। कांच की जो साइड में कलाकार को खड़ा करके उस भाग को रोशन किया जाता है।

3.12 सारांश

फिल्म निर्माण की गतिविधियों, में तेजी आने से, फिल्म को रूचिकर बनाने के लिए, अनेक प्रयोग किए गए। तीन घंटों तक, सिनेमा हाल की कुर्सी पर बिठाए, रखने की समस्या थी। आरम्भ में, दर्शक फिल्म उत्सुक्ता के कारण देखता है, लेकिन समय के साथ-साथ, दर्शक की अपेक्षाएं, बढ़ती जाती हैं। बढ़ती हुई अपेक्षाओं तथा टेलीविजन के विस्तार के साथ, अन्य देशी और विदेशी फिल्मों को देखने का अवसर मिलता है। इसीलिए दर्शक की अपेक्षाओं में, तीव्र वृद्धि होती है और तब आती है, दर्शक को रोके रखने की समस्या। अधारभूत सिद्धान्त है, दर्शक के ऊपर, लगातार हमला होना चाहिए। सम्भलने, सोचने का अवसर, दर्शक को नहीं मिलना चाहिए, इसीलिए ऐक्शन का रिवाज यानी मार-धाड़ वाली फिल्में, फिर हास्य, व्यंग्य और अनेक प्रकार के आइटम्स जिसमें नृत्य, संगीत, ट्रिक, डमी शॉट सबकुछ सम्मिलित होता है।

3.13 शब्दावली

(i)	ट्रिक सीन	चालाकी से सीन खींचना
(ii)	रिवर्स शॉट	रिकार्डेड शॉट को पीछे की तरफ रीवाइन्ड करना।
(iii)	सुपर इम्पोज	एक फिल्म पट्टी पर एक के ऊपर दूसरा शॉट
(vi)	डमी	नकली
(v)	बैक प्रोजेक्शन	बैक ग्राउण्ड में प्रोजेक्टर से शॉट डालना।

3.14 संदर्भ ग्रन्थ

1. इलेक्ट्रानिक मीडिया और फिल्म प्रोडक्सन	राजकृष्ण मिश्र
2. फिल्म ऐज फिल्म	वी0 पी0 परकिन्स
3. सिनेमा ऐज ऐन आर्ट	जे0 आर0 डेबरिक्स
4. मूवी मुगल्स	फिलिप फ्रेन्च
5. फिल्म ऐण्ड रियल्टी	राय आर्मेस

3.15 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) ट्रिक सीन किसे कहते हैं?

(ii) रिवर्स शॉट का अर्थ क्या है?

(iii) डमी किसे कहते हैं?

(vi) बैक प्रोजेक्शन का अर्थ क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(i) फिल्म में, सुपरइम्पोज की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए। रिवर्स शॉट की विधिवत व्याख्या कीजिए।

(ii) बैक प्रोजेक्सन की प्रक्रिया को विस्तार से रेखांकित कीजिए।

(iii) डमी शॉट का फिल्मांकन कैसे होता है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

(क) बैक प्रोजेक्शन होता हैः-

(i) एक प्रकार की शूटिंग

(ii) कैमरे से रिवर्स शॉट

(iii) ट्राली शॉट

(vi) जूम शॉट

(ख) डमी शॉट कहते हैं?

(i) कैमरे के सामने आना

(ii) रिवर्स शॉट फिल्माना

(iii) बैक प्रोजेक्शन करना।

(vi) नकली शॉट।

(ग) सुपर इम्पोज-

(i) कैमरा स्वीप करना

(ii) एक शॉट के ऊपर दूसरा शॉट डालना।

(iii) निर्देशक की फोटो लगाना।

(vi) निर्माता और वितरक की जोड़ी।

(घ) हाईस्पीड शूट

(i) 16 या 8 फ्रेम की स्पीड से कैमरे से शूटिंग करना।

(ii) दौड़कर घोड़े पर शूट करना।

(iii) गाड़ी में कैमरा रखकर शूट करना।

(vi) रेलगाड़ी की शूटिंग करना।

इकाई-4 एवं 5 शूटिंग एवं फिल्मांकन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 ऐसे होती है समुद्र में शूटिंग

4.3 मिनिएचर शूटिंग

4.4 फिल्मांकन दुर्घटनाओं का

4.5 फिल्मांकन फन्तासी का

4.6 ट्रिक सीन का फिल्मांकन

4.7 आप्टिकल प्रिन्टिंग की तकनीक

4.8 ब्लोअप प्रक्रिया

4.9 कैसे बनती हैं कार्टून फिल्में

4.10 टाइटल्स का फिल्मांकन

4.11 टाइटल्स फिल्माने के कुछ और तथ्य

4.12 ऐसे फिल्माई जाती है होली

4.13 कुछ ट्रिक सीनों का फिल्मांकन

4.14 फिल्मांकन खौफनाक दृश्यों का

4.15 रोमांचक दृश्यों का फिल्मांकन

4.16 जल-नभ में शूटिंग व्यवस्था

4.17 शब्दावली

4.18 संदर्भ ग्रन्थ

4.19 प्रश्नावली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे :—

(i) समुद्र में, कैसे शूटिंग होती है।

(ii) मिनिएचर शूटिंग किसे कहते हैं।

(iii) दुर्घटनाओं का फिल्मांकन कैसे किया जाता है।

(iv) फन्टासी को कैसे फिल्माया जाता है, यानी कपोल कल्पना का फिल्मांकन कैसे

होता है।

(v) आप्टिकल शूटिंग का अर्थ क्या है।

(vi) रोमांचक दृश्यों का फिल्मांकन का कार्य कैसे किया जाता है।

4.1 प्रस्तावना

दर्शक, जब तक टिकट की खिड़की पर नहीं आएगा, फिल्म की लागत कैसे निकलेगी। साधारण रूप से, किसी कहानी पर शूटिंग करना और उसका सम्पादन करना आसान होता है, लेकिन, मात्र फिल्म बना देने से, दर्शक टिकट की खिड़की पर नहीं आता है। उसे, वहाँ तक लाने के लिए अनेक प्रकार से प्रचार करते हैं। प्रचार में पोस्टर होते हैं। पोस्टर में, तकनीकी आधार पर बनाए गए चित्र, जिसमें समुद्र की शूटिंग हो, मिनिएचर शूटिंग हो, दुर्घटनाओं का फिल्मांकन किया गया हो, कपोल कल्पना पर आधारित चित्र, दृश्य हो और रोमांचक दृश्यों के साथ आप्टिकल प्रिंन्टिग का उद्देश्य, दर्शक को टिकट की खिड़की पर लाना होता है।

4.2 ऐसे होती है समुद्र में शूटिंग

केरल की नौका दौड़ प्रतियोगिता बहुत ही मशहूर है, इन प्रतियोगिता में सैकड़ों नौकाएं भाग लेती हैं। फिल्मों में भी यदा-कदा इस तरह की नौका दौड़ें देखने का सुख दर्शकों को मिल जाता है। इस तरह की दौड़ों को फिल्माने के दो तरीके हैं। एक तो आप अपने खुद का ही प्रबन्ध करवाकर नावें तैयार करवाओ, शूटिंग की तैयारी करो व वांछित दृश्य ले लो।

दूसरा जब नौका दौड़ कहीं पर हो रही हो तब अपने कैमरे ले जाकर शूटिंग कर लो। इन दोनों ही तरह की दौड़ों को फिल्मांकित करने के लिए एक से अधिक कैमरों की व्यवस्थाएं रखनी पड़ेगी। अपनी खुद की प्रबन्ध की गई दौड़ में तो आप एक कैमरे से काम चला सकते हैं। शॉटों का वर्गीकरण खुद आप कर सकते हैं। अपने एक-एक शॉट को ले सकते हैं, मगर इस तरह फिल्मांकित की गई दौड़ में कई-कई दिन लग जाते हैं जो, निर्माता की जेब पर भारी पड़ता है। कम खर्च में अच्छा काम करने के लिए यही उपयुक्त रहता है कि एक से अधिक कैमरों से ही काम लिया जाए। जब कहीं कम्पीटीशन दौड़ हो रही है, तब तो आपको कोई भी चारा ही नहीं रहेगा, क्योंकि नौका दौड़ का आयोजन आपके लिए तो हो नहीं रहा है। यह प्रक्रिया और कई दृश्यों में भी अपनानी पड़ सकती है। वैसे दारासिंह की कुश्ती का फिल्मांकन करना हो तो उसमें भी तीन-चार कैमरे लग जाते हैं। इसी तरह से हेलीकाप्टर की शूटिंग करने में भी एक से अधिक कैमरों का उपयोग करना पड़ता है

फिल्म 'गोल्डन आईज' में एक हेलीकाप्टर का सिक्वेन्स था, जिसमें खलनायक ग्रुप का एक आदमी हेलीकाप्टर में बैठकर हीरो का पीछा करता है और उसको मार डालने के लिए हथगोले का प्रयोग करता है। इस सिक्वेन्स को फिल्माने के लिए चार कैमरे लगाए गए थे। कुल 20 हजार फीट के करीब निगेटिव एक्सपोज किया गया था। अन्तिम सम्पादन के बाद इसमें से कुल 500 फीट ही फिल्म काम में ली जा सकी।

एक अंग्रेजी फिल्म 'सिन्दबाद दी सेलर' में एक सेना युद्ध का दृश्य फिल्माया गया था। इसमें अग्निवर्धक यंत्रों का प्रयोग भी किया गया था। एक नाव से दूसरी नाव में कूद कर शस्त्रों और हैण्ड फाइट के दृश्य भी फिल्माये गए थे। अग्निवर्षण के लिए एक चम्मच के आकार-प्रकार का विशालकाय लकड़ी का यंत्र बनाया गया था जिसके दोनों छोर नाव के साथ बंधे रहते थे। मुँह वाले छोर का बंधन खोल दिया जाता था। दूसरे छोर पर नीचे की तरफ खींचती पूँछ और मुँह वाला छोर खड़ा हो जाता है और जलता हुआ आग का शोला जिस किसी भी नाव में जाकर गिरता उसमें आग लग जाती है। इस सीन के फिल्मांकन पर खर्च तो आया ही होगा। मगर मेहनत भी बहुत करनी पड़ी होगी। ऐसे दृश्यों के लिए नावों का चलना-फिरना जितना कम हो उतना ही अच्छा होगा। अतः शान्त समुद्र में नावों को रखकर शूटिंग की जाती है। तूफान आ जाए तो शूटिंग नहीं हो पाएगी, क्योंकि कैमरा, उल्टा-सीधा होगा, नाव भी हिलेगी-डुलेगी। कैमरा रखने के लिए अलग नावों की जरूरत पड़ेगी।

हॉलीवुड ने एक फिल्म बनाई थी मोवीडिक जिसमें हीरो ग्रेगरी पैक थे। इस फिल्म के आखिरी दृश्य में एक नाव में सवार हीरो और उसके साथी मोवीडिक नामक व्हेल मछली का शिकार करते हैं और घायल तथा क्रुद्ध व्हेल मछली उनको खत्म करने के लिए उन पर आक्रमण करती है। इस संघर्ष में मोवीडिक की मृत्यु हो जाती है। मगर हीरो ग्रेगरी पैक भी जान से हाथ धो बैठते हैं। उनका शरीर मोवीडिक के मृत शरीर के साथ रस्सी से लिपट जाता है। चूंकि मछली ने तड़प कर कुलांचे खाई, इसलिए वह हारपुन के रस्सों में फंसकर लिपटती चली गई। ग्रेगरी पैक का शव भी उसी के साथ-साथ उस रस्सी से लिपटता चला गया। पूरी फिल्म में यही एक दृश्य देखने लायक था। इस दृश्य को लेने में कितना खर्च आया होगा इसका तो अंदाज ही किया जा सकता है। साथ ही कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, इसकी तो कल्पना ही की जी सकती है। व्हेल मछली की डमी बनाई गई होगी। ग्रेगरी पैक की भी डमी बनाई गई होगी। कुछ शूटिंग समुद्र में और कुछ कुण्ड बनाकर की गई होगी। तब जाकर कहीं यह दृश्य पूरा हो पाया होगा।

आजकल हवाई जहाज और हेलीकाप्टर के आ जाने से इस तरह के दृश्यों का फिल्मांकन आसान हो गया है। यह व्यक्ति कैमरा लेकर हेलीकाप्टर में या हवाई जहाज में चला जाता है और ऊपर से विविध किस्म के दृश्य कैमरे में कैद कर लेता है। विदेशों में ऐसी सुविधा है, हमारे देश में यह भी संभव नहीं है क्योंकि यहाँ पर हेलीकाप्टर या हवाई जहाज से टॉप शॉट लेने के लिए रक्षा मंत्रालय से इजाजत लेनी पड़ती है। शूटिंग के उपरान्त भी सेंसर को दिखाने के पहले इस तरह के शॉटों को रक्षा मंत्रालय को भी बतलाना पड़ेगा।

प्रथम महायुद्ध के आसपास इंग्लैण्ड ने एक विशालकाय यात्री जहाज बनाया था, जिसका नाम था 'टिटान'। यह पहली ही समुद्री यात्रा के दौरान एक विशालकाय हिमखण्ड से टकराकर समुद्र में ही नष्ट होकर डूब गया था। लगभग 800 यात्रियों को जान से हाथ धोना पड़ा था। यह बहुत बड़ी दुर्घटना थी और इस दुर्घटना पर आधारित एक बहुत बड़े निर्माता ने 'टिटान' के नाम से ही फिल्म बनाई थी। अब आप कल्पना कीजिए उस जहाज के टकराने से और उसके पानी में डूबने के दृश्य फिल्माने के लिए

क्या-क्या नहीं किया होगा? चूंकि इतने-बड़े जहाज को डुबाना किसी भी फिल्म निर्माण कम्पनी के बूते का काम नहीं है, न ही 800 आदमियों को मारा जा सकता है। इसलिए अधिकांश काम मिनिएचर और गुड़ियाओं के मार्फत फिल्माया गया होगा। बीच-बीच में असलियत का आभास देने के लिए असली शॉट प्रयोग किए गए होंगे। इन दृश्यों को फिल्माने के लिए विशाल पैमाने पर रक्षात्मक प्रबन्ध भी करने ही पड़े होंगे। शूटिंग के समय जहाज को डुबोने में भी इस बात का ध्यान सदा रखना पड़ता है कि किसी की जान जोखिम का खतरा नहीं खड़ा हो पाए। मिनिएचर का काम आसानी से स्टूडियो में किया जा सकता है और असली शॉटों से साथ मिक्स करके वास्तविकता का आभास दिया जा सकता है।

4.3 मिनिएचर शूटिंग

हमने पूर्व में कई बार 'मिनिएचर शूटिंग' का जिक्र किया है, लेकिन विस्तार में यह नहीं बतलाया कि यह तकनीक होती क्या है ? इस तरह की शूटिंग कैसे की जाती है?

मिनिएचर का मतलब है किसी बड़ी चीज, जैसे भव्य भवन, हवेली, पहाड़ आदि का लघु स्तर पर निर्माण कर उसका वृहदाकार रूप में शूटिंग करना। जैसे समुद्र में किसी जहाज पर शूटिंग करनी हो तो उस जहाज का एक मॉडल बनाकर पानी के किसी कुण्ड में तैरा कर शूटिंग कर ली जाती है। ऐसी शूटिंग कभी-कभी बाथ टब तक में भी कर ली जाती है। यह सिद्धान्त सभी किस्म की मिनिएचर शूटिंग पर लागू होता है।

हॉलीवुड की एक फिल्म में एक बहुत ऊंची इमारत में हीरो एक फ्लैट की बालकनी से दूसरे फ्लैट की बालकनी में कूदता है। यह बालकनी इतनी ऊंची थी कि देखने वाले को भी डर लगता था कि कहीं एक इंच की गलती भी हीरो के लिए जान लेवा बन सकती थी। 50-60 फीट की ऊंचाई से गिर कर उसका बचना किसी भी सूरत में संभव ही नहीं था। वास्तव में जिस तरह यह दृश्य फिल्मांकित किया गया था, इस दृश्य को 'ट्रेवलिंग मेट' पद्धति से किया गया था। जिस बालकनी से हीरो को कूदकर दूसरी बालकनी पर जाना था, भवन का उतना हिस्सा ग्राउण्ड फ्लोर पर बनवा लिया गया था। फिर शूटिंग के वक्त फिल्म की फ्रेम का नीचे का भाग मास्किंग करके हीरो के कूदने का शॉट था और मुश्किल से भूमि से तीन-चार फीट की ऊंचाई रही थी। इसके बाद उस भवन के नीचे के हिस्से का स्केल टु स्केल मॉडल बनवा कर फिल्म के ऊपर का हिस्सा मास्क करके नीचे के हिस्से का ऊपर के हिस्से से मैच करवाकर, शूटिंग कर ली गई थी। इस तरह की शूटिंग में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। बिल्डिंग के दोनों हिस्से एकदम हूबहू मैच करने वाले होने चाहिए। रंग में भी कोई फर्क नहीं होना चाहिए। कैमरा एक्सपोज के वक्त यंत्रवत अपनी जगह पर स्थिर रहना चाहिए। थोड़ा सा भी हिल जाए तो सारा शॉट ही बेकार चला जाने का खतरा बना रहता है।

सुप्रसिद्ध फिल्म ''टावरिंग इन फरनो'' का फिल्मांकन विशालकाय भवनों का शूटिंग-मिनिएचर बनाकर ही बाह्य दृश्यों की शूटिंग कार्य किया गया था। इस फिल्म में मिनिएचर और असली शूटिंग का बहुत ही अच्छा मिश्रण किया गया था मगर फिर भी

चोरी पकड़ी ही जाती है। मिनिएचर शूटिंग का भारत में बहुतायत से इस्तेमाल किया जाता था। जब कभी फिल्मों में विशालकाय पशु-पक्षी आदि दिखलाए जाते हैं तब उनके लिए मिनिएचर शूटिंग की व्यवस्था रखना बहुत ही जरूरी होता है। जैसे यह दिखलाना हो कि आदमी पहाड़ की चोटी जितना बड़ा है तो यह स्पष्ट ही है कि आदमी तो पहाड़ जैसा हो ही नहीं सकता है। पहाड़ को ही आदमी जितना छोटा होना पड़ेगा। इस सूरत में ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर मिनिएचर में शूटिंग कर ली जाती है। इसका एक तरीका और भी है, जिसको 'ट्रेवलिंग मेट'' कहते हैं, जिस पर फोटोग्राफी में स्पेशल इफेक्ट फोटोग्राफी की चर्चा करते वक्त रोशनी डालेंगे।

सबसे अच्छा प्रयोग

मिनिएचर शूटिंग का सबसे बढ़िया प्रयोग 'हॉलीवुड' की एक प्रसिद्ध फिल्म 'गुलीवर ट्रेवल्स' में किया गया था। जब गुलीवर बौने लोगों में फंस जाता है तब बहुत सारे दृश्यों के लिए उसकी शूटिंग मिनिएचर शूटिंग के तरीके से ही की गई थी। उदाहरण के लिए बौने लोगों के दो देशों में जब युद्ध होता है, तब उसके लिए सैकड़ों की संख्या में छोटे-छोटे जहाज भी बनवाये गए थे। कमर तक पानी में डूबा हुआ गुलीवर जहाजों को पकड़-पकड़ कर नष्ट कर देता है।

सोहराब मोदी की सुप्रसिद्ध फिल्म 'सिकन्दर' में ग्रीक फौजें झेलम नदी को पार करती दिखाई गई थीं। इसके लिए स्टूडियो में नदी बनवा कर उसमें छोटी-छोटी नावें तैरा दी गई जिससे दृश्य भद्दा हो गया था। इसी तरह जब गुलीवर सोता हुआ पकड़ा जाता है, तो उस पर तीरों की जो बौछार होती है, तो कपड़े सीने की सुई की साइज के छोटे-छोटे तीर बनाए गए। जब वे तीर छोड़े गए तब बड़ी साइज के तीर थे।मगर वही तीर जब गुलीवर को लगते हैं तो सुईयों जितने छोटे हो जाते हैं।

उल्टी प्रक्रिया

इसके विपरीत जब गुलीवर दैत्याकार आकृतिवाले डरावने आदमियों के बीच फंस गया था तब मिनिएचर की जगह विशालकाय वस्तुओं का निर्माण किया गया था ताकि लोगों को लगे कि गुलीवर उनके सामने बिल्कुल बौना ही है। एक नन्ही लड़की को गुलीवर इतना पसन्द आ जाता है। कि वह उसको एक जीती-जागती गुड़िया समझकर गोदी में उठा लेती है और उसके साथ खेलती रहती है। एक दृश्य में जब जंगल में लड़की गुलीवर के साथ बाल सुलभ उमंग से खेलती रहती है, तब जंगल में लड़की गुलीवर के साथ खेलते-खेलते कुछ दूर चली जाती है, तब पीछे से गिलहरी आकर उसको मुंह में उठाकर चल देती है। वह बाद में उसे अपने बिल में डाल देती है। कुछ देर बाद वह एक बहुत बड़े आकार का अखरोट उठाकर लाती है और अपने बिल में डाल देती है, जिससे गुलीवर का सर फूट जाता है। लड़की जब गुलीवर को ढूंढते-ढूंढते वापस आती हैं तो उसे मालूम पड़ता है कि गुलीवर गिलहरी के बिल में पड़ा हुआ है। वह लड़की अपनी चोटी उसके बिल में डालती है, तब उसे पकड़कर गुलीवर ऊपर चढ़ता है और बाहर निकल जाता है। जब आप अन्दाज लगाइए कि उसके बाहर आने के लिए कितनी बड़ी चोटी बनानी पड़ी होगी। इसी तरह फिल्म में एक और बड़ा ही शानदार दृश्य था, जिसमें कांच के एक बाक्स में गुलीवर को उठाकर डाल दिया जाता है। उसे एक एलीगेटर मगरमच्छ की शक्ल के एक भयंकर जीव के साथ लड़ाई करनी पड़ती है।

इसी तरह की तकनीक का प्रयोग 'यूलाइसिस' नामक फिल्म में उस वक्त किया गया था जब यूलाइसिस साइक्लोप नाम दैत्य के साथ फंस जाता है। दैत्यों के पंजे से भागने के लिए यूलाइसिस साइक्लोप की एक-मात्र आँख को फोड़ने की गरज से एक विशालकाय नोकदार लकड़ी का डण्डा तैयार करता है। इस डण्डे को आग में डालकर गरम किया जाता है। यूलाइसिस जिसकी एक ही आंख होती है, वह बैल गाड़ी के पहिये जितनी बड़ी दिखाई देती है। इसलिए डण्डा भी बड़ा बनाया गया था। उस गरम डण्डे को उसकी आंख में डालकर उसको अंधा कर देता है। इसके बाद वह खुद भेड़ों के एक झुण्ड में छिपकर भाग जाता है। जहाँ तक हमारी याददाश्त काम कर रही है, सबसे पहले इस तकनीक का प्रयोग एलैक्जेण्डर कौडा ने अपनी बहुप्रशंसित फिल्म थीफ ऑफ बागदाद में किया था। राजकुमार को मिला हुआ जिन्न अपनी तीन शर्तें पूरी करने के बाद अपने निवास स्थान पर जब जाता है तो यह दिखाया गया था कि वह समानान्तर दो पहाड़ों पर, एक पर एक पैर तथा दूसरे पहाड़ पर दूसरा पैर रखकर चढ़कर आकाश में उड़ जाता है। उसके लिए पहाड़ों का मिनिएचर बनाया गया था और जब राजकुमार गुफा में जाता है तो वह एक बड़ी सी मकड़ी के जाले में फंस जाता है। जहाँ पर मकड़ी उसे खा जाने के लिए आक्रमण करती है। इस विशालकाय जाले को दिखलाने के लिए मोटी-मोटी रस्सियों का और उसी तरह विशालकाय मकड़ी दिखलाने के लिए किसी दैत्याकार आदमी को मकड़ी का खोल पहनकर मकड़ा बनाया गया था। जब राजकुमार मकड़े को मार डालता है तो उसमें से इतना खून बहता है कि राजकुमार डूबते-डूबते बचता है। वह फिल्म का बहुत ही रोमांचक तथा प्रभावशाली दृश्य साबित हुआ था।

4.4 फिल्मांकन दुर्घटनाओं का

कुछ वर्षों पहले जासूसी फिल्मों का एक युग आया था। उन दिनों एक जापानी फिल्म देखने का अवसर मिला था। इस फिल्म में एक बड़ा ही रोमांचक दृश्य था। इस दृश्य में आकाश में उड़ते हुए एक विमान को उड़ा दिया गया था। उसके टुकड़े-टुकड़े हो, हवा में छितर गए थे। दृश्य बहुत ही प्रभावशाली था। इसलिए यह देखने के लिए कि वह दृश्य कैसे फिल्माया गया, उस फिल्म का प्रिन्ट मंगवाकर मूवी ओला पर स्लो-मोशन (धीमी गति) में उस दृश्य को चलाकर देखा गया। देखने पर यह तथ्य मालूम पड़ा कि उस दृश्य में कोई खास विशेषता नहीं थी। सिर्फ 'स्टाप ब्लाक' की टेकनीक से दो अलग-अलग दृश्य फिल्माए गए थे। वे एक साथ इस सफाई से जोड़े गए थे कि दृश्य ने वास्तविकता जैसा प्रभाव ही छोड़ा। पहले शॉट में हवाई जहाज दिखाया गया और दूसरे शॉट में हवाई जहाज का मलबा बताया गया था। इस मलबे का शॉट लेने के लिए आकाश की पृष्ठभूमि में लकड़ियों के कुछ विभिन्न आकार के टुकड़े एक जगह पर जमा करके एक विस्फोट के जरिए आकाश में उछाल दिए गए थे। इन दोनों अलग-अलग शॉटों को सम्पादन के वक्त सफाई से जोड़ दिया गया था। कुल जमा बात इतनी सी ही थी।

बहुत सारी फिल्मों में रेलों का आपसी टकराव, अन्य तरह से एक्सीडेन्ट, रेल के पुलों को उड़ाना, चलती ट्रेन को उड़ा देना आदि दिखलाया जाता है। सुप्रसिद्ध

अमरीकी लेखक हेमिंग्वे के बहुचर्चित उपन्यास-''फार ह्यूम द वेल टोल्स'' पर बनी फिल्म के एक पुल को, जो बहुत विशालकाय था। फ्रैंको के खिलाफ लड़ने वाले जांबाजों के हाथों उड़ाया जाता दिखाया गया था। इसी तरह द्वितीय महायुद्ध पर आधारित फिल्म ''ब्रिज ऑन रीवर क्वी'' में भी एक पुल उड़ाया गया था। पिछले दिनों प्रमोद चक्रवर्ती ने एक फिल्म बनाई थी। इस फिल्म में धर्मेन्द्र और हेमा मालिनी मुख्य भूमिकाओं में काम कर रहे थे। धर्मेन्द्र के पिता की भूमिका दिवंगत बलराज साहनी ने की थी। फिल्म की शुरूआत में ही क्रान्तिकारी बलराज साहनी एक ट्रेन का पुल उड़ा देते हैं। उनकी गिरफ्तारी हो जाती है। प्रश्न यह उठता है कि पुल कैसे उड़ाया गया था। रेलवे के अधिकारी या सरकार के नुमाइंदे तो ऐसे किसी भी पुल को उड़ाने की इजाजत देंगे नहीं क्योंकि ऐसे निर्माण कार्य में पैसा बहुत अधिक खर्च होता है। निर्माता भी असली पुल बनवाकर उड़ाने से रहे। जाहिर है कि ऐसे पुलों को उड़ाने के लिए नकली सेट लगवाने पड़े। असली पुलों के शॉट लेकर उसमें नकली डायनामाइट लगाकर शॉट ले लिए गए थे। इसी तरह स्थान पूर्ण स्थितियों के शॉट भी फिल्माए गए थे। इसके बाद पुल की 'स्केल टू स्केल' डमी बनाकर उसे उड़ाया गया था। इसी तरह जब दो रेलगाड़ी की टक्कर दिखलाई जाती है, तब भी असली शॉटों के साथ टेबल शॉट मिक्स किए जाते हैं। सारे शॉट ले लेने के बाद जब दोनों गाड़ियों की टक्कर का शॉट लेना होता है तब बिजली से चलने वाली खिलौना रेलगाड़ियों को उनके लिए बनी पटरियों के ऊपर दौड़ा कर टक्कर करवा दी जाती है। सिर्फ सम्पादन कार्य इस सफाई से किया जाता है कि आपको असली और नकली में जरा सा भी भेद मालूम ही नहीं पड़े। इसके लिए दौड़ती हुई रेलगाड़ी के साथ-साथ पटरियों के साथ रहने वाले अन्य उपकरणों व वस्तुओं की भी डमी बनवा ली जाती है। यथा-सिगनल, प्लेटफार्म, पटरियाँ, रेल के डिब्बे, क्रासिंग के फाटक, चौकी आदि आदि।

हॉलीवुड में बनी एक फिल्म में एक बड़ा अनोखा तरीका अपनाया गया था। पटरी पर दौड़ती हुई रेलगाड़ी के सारे शॉट लेने के बाद एक्सीडेन्ट का शॉट लेने के लिए विशालकाय आईने की व्यवस्था की गई थी। रेल पटरी के एक छोर पर एक बड़े आईने को खड़ा कर दिया गया। अब इंजन के नम्बर व उस पर लिखे रेलवे के नाम आदि को उसी इंजन पर दुबारा लिखवाया गया। ये सभी लिखे गए आईने में सीधे नजर आ रहे थे। आईने के जरिए अब इस तरह दो रेलगाड़ियों के आमने-सामने के शॉट बगैर दूसरी रेलगाड़ी के नजर आने लगे। अब असली रेलगाड़ी का इंजिन उस विशालकाय आईने से टकराया तो आइने के टुकड़े-टुकड़े हो गए। अब आइने के हर एक टुकड़े में इजन के टुकड़ों का प्रतिबिम्ब नजर आ रहा था। इस शॉट का अंतिम प्रभाव यह नजर आ रहा था कि दोनों इंजनों के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

इसी तरह से आईने के टुकड़ों का प्रयोग वी. शान्ताराम ने अपनी फिल्म 'दुनिया ना माने' में बहुत ही खूबसूरत ढंग किया था। फिल्म के नायक केशवराव दाते बुढ़ापे में नायिका शान्ता आप्टे, जो युवती थी, से शादी कर लेते हैं। यह अनमेल विवाह था। इस शादी के लिए नायिका के साथ धोखा किया गया था। लड़का कोई अन्य दिखला कर केशवराव दाते से शादी करवा दी गई थी। जब शान्त आप्टे को धोखे का पता चला तो उसने केशवराव दाते को अपना पति स्वीकार करने से इंकार कर

दिया। कथानक आगे बढ़ते-बढ़ते एक जगह ऐसी आती है, जहाँ केशवराव एक आईने के सामने खड़े होकर अपने आप को निहार रहे थे। आईने में उनकी छवि उनके बुढ़ापे पर अट्टाहास कर रही थी। क्रोध में आकर केशवराव आईने पर जोर से प्रहार करते हैं। इस प्रकार आइने के टुकड़े-टुकड़े होकर फर्श पर गिर जाते हैं। दूसरे दृश्य में आईने के एक टुकड़े में केशवराव दाते का अक्स नजर आता है। वह केशवराव की बेवकूफी पर हंसता है। इस दृश्य को फिल्माने के लिए कैमरामैन और फिल्म निर्देशक को बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी।

4.5 फिल्माना फन्तासी का

जब भी कोई फन्तासी फिल्म अथवा वैज्ञानिक फिल्म बनती है तो उसमें मिनिऐचर पद्धति से बहुत सारी शूटिंग करना भी जरूरी हो जाया करता है। हम आपको हॉलीवुड में बनी हुई एक वैज्ञानिक-फन्तासी फिल्म का उदाहरण देंगे। इस फिल्म में करीब 80 प्रतिशत से भी अधिक शूटिंग मिनिएचर तकनीक से की गई थी। इस फिल्म का कथानक मुख्य रूप से यह था।

एक असाध्य रोगी की बीमारी का पता लगाने के लिए वैज्ञानिकों एवं डॉक्टरों के पास जब कोई और उपाय बाकी नहीं रहा तो वैज्ञानिकों ने एक नई तकरीब से काम लिया। उन्होंने बीमारी की जाँच करने वाले एक दल को, जिसमें डॉक्टर नर्स, कम्पाउण्डर आदि कई लोग थे, एक जहाज में मय जाँच करने के साज सामान के साथ बिठलाया। उस जहाज को इतना छोटा (रिड्यूस) किया गया कि वह इन्जेक्शन के जरिए बीमार की रक्त वाहिनी धमनी में प्रवेश करवा दिया गया। मतलब यह कि जहाज सहित वह डॉक्टरों का दल बीमार के शरीर की धमनी में पूरा का पूरा ही प्रविष्ट कर दिया गया। डॉक्टरों का जाँच दल मानव शरीर के अन्दर जाकर बीमारी की जाँच-पड़ताल करेगा। इस भाव के साथ ऐसा किया गया। यह रक्त धमनी इस जहाज के लिए बहुत बड़ी तूफानी नदी का काम कर रही थी। जब-जब भी रक्त की संचार व्यवस्था में उतार-चढ़ाव आया तो वह उतार-चढ़ाव जहाज में गए डॉक्टरों के लिए तूफान साबित होता था। इन तूफानों से जूझते हुए, अपने आप को मौत के खतरे के साये में रखकर भी डॉक्टरों ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। वे तन्मयतापूर्वक उस रोगी की बीमारियों का पता लगाते रहे। बीच में एक जगह पर जहाज फंस गया तो बीमार का उपचार करने वाले के शरीर के आस-पास खड़े डॉक्टरों एवं अन्य सहानुभूति रखने वालों का दिल भी कांप उठा था कि कहीं बीमार के शरीर की धमनी में प्रविष्ट करवाये गए डॉक्टरों का दल वापिस लौटकर आएगा भी या नहीं आएगा। अन्त में डॉक्टरों के दल का मिशन अपने रोग अन्वेषण कार्य में कामयाब होकर वापिस लौटा तो कान या आँख के छिद्रों में से उक्त जहाज को मय डॉक्टरों के दल के साथ निकाला गया। फिर उस जहाज को और उसमें गए हुए चिकित्सकों के दल को सामान्य स्थिति में लाया गया। इस सारी प्रक्रिया को फिल्मांकित करने के लिए-आदमी और जहाज को छोटा नहीं किया गया था। रक्त वाहिनी धमनियों का विशालकाय ढाँचा बनाकर रक्त के रंग का द्रव्य छोड़कर उसमें जहाज को प्रवाहित कर फिल्म को फिल्मांकित कर लिया गया था। जब भी शरीर में रक्त कुछ तेज गति से प्रवाहित होता था तो एक तूफान आ जाता था। जहाज तब रक्त धमनी की दीवारों से टकराता रहता

था, अक्सर डावांडोल हो जाता था। इधर-उधर हिलता हुआ भी नजर आता था। यह सारे दृश्य दर्शकों को रोमांचित कर पाते थे। सिनेमा हॉल में उत्सुकता की एक लहर फैल जाती थी। यह पढ़कर शायद आपको हनुमान-गुफा का प्रसंग याद आ सकता है।

इसी तरह फिल्में कई बनी ट्वेन्टी थाऊजेण्ट लीग्ज, अण्डर दि सी, दि एण्ड्स, किंग-कांग आदि कई अन्य फिल्मों में मिनिएचर बनाए गए थे और दैत्याकार ढाँचे भी निर्मित करवाए गए थे।

'किंग-कांग' में तो मिनिएचर शूटिंग के साथ आदमी को बन्दर की खाल पहनाकर भी शूटिंग की गई थी, मगर 57 फीट ऊंचा एक गोरिल्ला भी बनाया गया था। साथ में उसके हाथों, पैरों के अलग-अलग ढांचे बनवाये गये थे। ये ढाँचे हाइड्रोलिक पद्धति से संचालित हुआ करते थे। इस फिल्म में जब गोरिल्ला हीरोइन को पकड़ लेता है, तो उस लड़की को गोरिल्ले की हथेली पर बैठा हुआ दिखलाया जाता है। यह दिखलाने के लिए लड़की को यांत्रिक (मैकेनिकल) हाथ पर बिठलाकर दृश्य फिल्मा लिया गया। इस दृश्य की लम्बाई कोई 20 फीट थी। पूरा हाथ हाइड्रोलिक पद्धति से संचालित हो रहा था। लेकिन संचालन की प्रक्रिया किस प्रकार के कलपुर्जों द्वारा हो रही थी इसका पर्दाफाश निर्माताओं ने अथवा कलाकारों या हाथ बनाने वाले कारीगरों ने नहीं किया। यह तथ्य अन्त तक रहस्य ही बना रहा। असलियत लाने के लिए इस गोरिल्ले के शरीर पर घोड़े के बाल लगाये गये थे। निर्माताओं का दावा है कि सिर्फ इन बालों पर ही कोई तीन करोड़ रुपए खर्च आया था।

ऐसा ही एक दृश्य वाडिया ब्रदर्स की फिल्म 'हातिम ताई' में दिग्दर्शक और मशहूर स्पेशल इफेक्ट मास्टर बाबू भाई मिस्त्री ने फिल्माया था। फिल्म का हीरो जयराज किसी गांव में पहुँच जाता है। वहाँ पर एक निश्चित अवधि के बाद गांव वालों को नरभक्षी राक्षस को एक लड़की आहार के लिए भेंट करनी पड़ती थी। हीरो जयराज ने गांव वालों को इससे छुटकारा दिलाया। इसकी तीसरी प्रक्रिया में आग पर लोबान छिड़ककर धुँआ पैदा किया जाता है मगर धुँआ अधिक काला होता है, इसलिए इतना प्रभावी नहीं होता है।

4.6 ट्रिक सीनों का फिल्मांकन

रामचरित मानस पर आधारित फिल्म में दो प्रसंग ऐसे हैं जिनकी शूटिंग बहुत ही परिश्रम साध्य और समय लेने वाली है। इसके अलावा शूटिंग भी चतुराईपूर्ण तरीकों से ही करनी पड़ती है।

इनमें एक प्रसंग 'लंका-दहन' का है और दूसरा 'सेतु बन्ध' का। नाटकों में ऐसे दृश्यों में आग लगाने की एक बहुत पुरानी तकनीक रही है। जब स्टेज पर आग लगानी होती है तब स्टेज पर ही एक गहरा गड्ढा बनाकर लाल, पीले, हरे, सुनहरी कागजों की पन्नियाँ लगा दी जाती हैं। उसके चारों तरफ फिर उन पन्नियों को पंखे से हवा देकर लहराया जाता है। इसके साथ ही बिजली जलाकर उसको रोशन किया जाता है। जब यह रोशन हो रही पन्नियां हवा में लहराती हैं तो ऐसा लगने लगता है कि आग की तेज लपटें निकल रही हैं। पहले फिल्मों में भी इस तकनीक से आग की लपटें प्रज्जवलित

होती दिखाई जाती रही हैं। मगर धीरे-धीरे इस प्रक्रिया में परिवर्तन हुआ। इसी क्रम में आग का लगना दिखाया जाना हो तो टुकड़ों- टुकड़ों में आग जला कर शूटिंग की जाती है। कहीं-कहीं शॉटों में लम्बी-सी लकड़ी के टुकड़े में कपड़ा बांधकर पेट्रोल डालकर उसे जलाया जाता है। जिन हिस्सों में आग जलना-दिखाया जाता हो या जिन पात्रों को आग से घिरा हुआ बतलाना हो, उनको भागते हुए दिखाया जाता है। इन शॉटों में कैमरे के सामने जली हुयी लकड़ी की निकलती हुई लपटों को कैमरे के सामने रखकर शूटिंग कर ली जाती है। इसके बाद उस मकान या जहां पर भी आग लगी हुई बतलानी हो उसका मॉडल बनाकर उसको जलाकर शूटिंग पूरी कर ली जाती है। इस तरह से की गई सब शूटिंग फिर सम्पादक अपने हिसाब से काट-छाँटकर उन शॉटों को जोड़कर उसकी अनवरतता के हिसाब से दृश्य तैयार कर देता है।

लंका दहन की शूटिंग इसी तरह की प्रक्रिया से की जाती है। हनुमान जी की पूँछ जलती हुई दिखलाने और बढ़ती हुई दिखलाने के लिए उनकी नकली पूंछ में आग लगा दी जाती है। उसमें रस्सा जोड़कर आगे सरका-सरका कर पूँछ के बढ़ते जाने का दृश्य दिखा दिया जाता है। इस रस्से को मेकअप कर असली बन्दर की पूँछ लगने जैसा प्रभाव उसमें पैदा कर लिया जाता है।

रावण द्वारा सीताहरण के वक्त लक्ष्मण रेखा लांघते समय रेखा में आग की लपटें दिखाने के लिए उसमें बारूद छुपा दिया जाता है जब रावण रेखा लांघता है तो एक सिरे पर आग लगा दी जाती है और रेखा एक झटके में धधकती दिखाई देने लगती हैं। आग की लपटें निकालने का एक और तरीका फिल्मों में देखने में आया। कैमरे के सामने जलती हुई लकड़ी रख दी जाती है। उस पर कोई भी आदमी मुँह में पेट्रोल लेकर उछालता है। जब पेट्रोल लकड़ी पर गिरता है, तो आग की लपटें निकलती दिखाई देने लगती हैं। इस काम के लिए फाइट मास्टर रोबर्ट को बुलाया जाता रहा है।

इन दिनों आधुनिकतम इलेक्ट्रोनिक तकनीक के जरिए आग लगाने का प्रभाव आसानी से फिल्माया जा सकेगा।

समुद्र में पुल बाँधने की तकनीक

समुद्र मे पुल बांधने के लिए पत्थर के बड़े-बड़े शिला खण्ड दिखलाने के लिए गत्ते या हल्की-फुल्की लकड़ियों को जोड़कर उन्हें शिला खण्ड का आकार दे दिया जाता है। इस पर भी घास-फूस चिपकाकर पत्थरों-कंकड़ों आदि का प्रभाव देकर यह बतलाने का प्रयत्न होता है कि वे भूमि से खोदे गए पत्थर या पहाड़ से तोड़े गए शिलाखण्ड हैं। इन नकली शिलाखण्डों को उठा-उठाकर पानी में फेंकने लगते हैं। जो वजन में काफी हल्के-फुल्के होने की वजह से पानी के ऊपर तैरते रहते हैं। वजनी हों तो डूब जाते हैं।

आजकल थर्मोकोल के शिलाखण्ड बनाकर उनको पानी में तैराया जा सकता है। जब उन शिलाखण्डों पर से बन्दरों को गुजरते हुए दिखाना हो तो किसी पानी में बहते हुए छिछले नाले में असली पत्थर के टुकड़े जमाकर उन पर से बन्दर सेना की टुकड़ी को गुजार दिया जाता है।

रामायण में और भी ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें ब्ल्यू कर्टेन, व्हाइट कर्टेन की जरूरत पड़ती है। जैसे हनुमानजी का समुद्र में लांघना, संजीवनी बूटी लाते वक्त पर्वत ही उठाकर

ले आना। सुरसा राक्षसी के साथ हनुमान का बदन बढ़ाते जाना, घटाते जाना और सुरसा के मुँह में प्रवेश कर कान से बाहर आ जाना आदि भी ऐसे ही प्रसंग हैं।

समुद्र लांघने के लिए पहला शाट किसी पानी के किनारे किसी भी चट्टान या पहाड़ पर हनुमान की उछाल लेने की पोजीशन बनाकर शूटिंग कर ली जाती है। उसके बाद सीन का आखरी शॉट लंका की भूमि पर कूदने का प्रभाव छोड़े, ऐसा ले लिया जाता है। समुद्र लांघने के सारे प्रसंग का दृश्य ट्रेवलिंग मैट से लिए जाता है, जिसकी तकनीक पहले बतलाई जा चुकी है।

संजीवनी बूटी लाने के लिए जाते वक्त आकाश मार्ग से उड़ने की प्रक्रिया भी ट्रेवलिंग मैट से ही की जाती है। चूंकि पहाड़ को उठाना किसी भी कलाकार के बस का काम नहीं होता है। इसलिए प्लाईवुड का कट आउट बनाकर उसमें छोटे-छोटे पेड़ पौधे, झाड़ियाँ, बेलें, घास आदि लगा देते हैं। उसको किसी सहारे के साथ हाथ पर जमा देते हैं। प्रभाव वह ऐसा देने वाला होना चाहिए कि लगे कि यह पहाड़ हथेली पर ही रखा हुआ है। इसको फिल्माने के लिए ब्ल्यू कर्टेन या ब्लैक कर्टेन की सहायता ली जाती है। इसलिए और कोई समस्या तो होती ही नहीं है। जब लंका में हनुमान पहाड़ लाकर रख देते हैं तब पहाड़ पर जड़ी बूटी तलाशने का काम वैद्य सुषेण करता है। कोई भी किसी पहाड़ी पर पेड़-पौधे लगाकर सुषेण को वहां से ही वह पौधा तोड़ते हुए बतलाकर उस दृश्य को फिल्मा लिया जाता है।

आजकल थर्मोकोल के उपयोग की वजह से त्रिआयामी पहाड़ का आभास करवाने वाला टुकड़ा बना लेते हैं। सुरसा तथा हनुमान का प्रसंग ब्ल्यू या व्हाइट कर्टेन के बगैर हो ही नहीं सकता है। इसमें सुरसा के मुँह को बढ़ता हुआ और घटता हुआ दिखलाना पड़ेगा। इसके लिए वही प्रक्रिया काम में ली जाती है जो जिन्न, भूत आदि के लिए ली जाती रही थी।

छोटे हनुमान यानी लघु आकार वाली देह को सुरसा के कान के रास्ते से निकालने के लिए ब्ल्यू कर्टेन से शूटिंग करनी पड़ती है, मगर हनुमान जी की अलग और सुरसा की अलग। इसके बाद इन अलग-अलग शॉटों को आप्टीकल प्रिंटिंग के माध्यम से एक्सपोज करवा कर ब्लैंडेड शॉट बनवाया जाता है।

4.7 ऑप्टीकल प्रिंटिंग की तकनीक

जिन-जिन केन्द्रों पर शूटिंग करने की व्यवस्था है या फिल्में बनती हैं, वहां पर कुछ ऐसे कैमरामैन रहते हैं, जो कि सिर्फ स्पेशल इफेक्ट का ही काम करते हैं। यहाँ तक कि वे स्पेशल इफेक्ट में भी खास कर ओप्टीकल प्रिंटिंग का ही काम करते हैं।

इस तरह के ऑप्टीकल प्रिटिंग के विशेषज्ञों में बंबई के डाह्या भाई पटेल, कृष्ण कुमार (जो प्रसिद्ध स्पेशल इफेक्ट विशेषज्ञ प्रह्लाद दत्त के शागिर्द रहे हैं) तथा रावको आदि प्रमुख विशेषज्ञ हैं। इनके सबके अपने-अपने कैमरे, एक्सपोजर, सम्पादन कक्ष होते हैं। सिर्फ लेबोरेट्री में फिल्म डेवलपिंग या प्रिंटिंग के लिए ही जाते हैं। हर निर्माता को अपनी फिल्म में कुछ न कुछ काम इन विशेषज्ञों से भी करवाना ही पड़ता है। अगर कुछ

नहीं हुआ तो भी फिल्म का टाइटल एक्सपोजर तो करवाना ही पड़ता है। आम तौर पर पहुत थोड़े से निर्माता या निर्देशक ऐसे होते हैं, जो अपने स्वयं के टाइटल एक्सपोज करते हैं। जो बातें कैमरे में साधन उपलब्ध नहीं होने से प्रत्यक्ष (डाइरेक्ट) वहीं हो सकती हैं, जैसे डिजाल्व, फेड इन, फेड आउट, व्हाइप आदि वह काम श्वेत-श्याम फिल्मों के जमाने से ही ये विशेषज्ञ करते आये हैं। प्रश्न उठता है कि आखिर यह ऑप्टीकल प्रिंटिंग क्या है? इसका उपयोग क्या-क्या होता है।

तकनीकी कक्ष

ऑप्टीकल प्रिन्टिंग का तकनीकी पक्ष यह है कि जब कभी दो या दो से अधिक शॉटों को ब्लैण्ड या मिश्रित (मिक्स) करके एक शॉट बनाया जाता है। तब जिस प्रक्रिया से वह बनाया जाता है। उस प्रक्रिया को ऑप्टीकल प्रिंटिंग कहा जाता है।

वैसे ऑप्टीकल का मतलब दृष्टि से संबंध रखता है। किसी जमाने में इन शॉटों को मिश्रित करते वक्त, चक्षु न्याय (आइ जजमेंट) से करना पड़ता होगा। इसलिए उसको ऑप्टीकल प्रिंटिंग कहा जाने लगा होगा। आजकल यह सारी प्रक्रिया यंत्रीकृत हो गई है। इसलिए विशेषज्ञ को पूर्णतया चक्षु न्याय पर निर्भर नहीं करना पड़ता है। हालांकि कुछ हद तक चक्षु न्याय की जरूरत तो रहती है।

उदाहरण के लिए डिजाल्व और फेड इन, फेड आउट को लिया जा सकता है। बहुत सारे कैमरों में फेड इन, फेड आउट और डिजाल्व की व्यवस्था नहीं है या ऐसी परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं कि ये प्रक्रियाएं सीधे कैमरे से लेने में कोई कठिनाई उत्पन्न हो जाती है तो अलग-अलग शॉट लेकर उन दोनों को उन विशेषज्ञों को दे दिया जाता है, जो उनको वांछित शॉट बनाकर निर्माता को सौंप देते हैं। जैसे एक पात्र को डिजाल्व करके उसकी जगह दूसरा पात्र बनाना और उस पात्र के मेकअप में बहुत अधिक समय लगना हो तो आसान तरीका यही रहता है कि दोनों पात्रों की अलग-अलग शूटिंग करके दोनों शॉट विशेषज्ञों को दे दिये जाते हैं। वे उनको ऑप्टीकल प्रिंटिंग तकनीक से पहले शॉट को डिजाल्व करके उसमें से दूसरा शॉट बाहर निकाल लेते हैं।

जैसे एक सीधा-सादा सा आदमी चलते-चलते राम, कृष्ण, या अन्य कोई विशिष्ट चरित्र बन जाता है। यह दिखलाना हो तो कैमरे को काफी अर्से तक लॉक करके रखना पड़ेगा क्योंकि साधारण आदमी को राम, कृष्ण, विष्णु या अन्य चरित्र आदि का मेकअप करवाने में काफी समय लग जाया करता है। ऐसे समय में जब निर्माता साधारण राम, कृष्ण, विष्णु, या अन्य चरित्र का शॉट लेकर उसे मेकअप के लिए भेज देगा और अपनी शूटिंग के काम को चालू रखेगा। जब कलाकार मेकअप करके तैयार हो जाएगा तब उसका वांछित शॉट लेकर दोनों शॉटों को डवलप करवा करके प्रिन्ट करवा लेगा। दोनों पॉजीटिव शॉट किसी भी विशेषज्ञ को देकर नया निगेटिव तैयार करवा लेगा। इस निगेटिव में पहले वाला शॉट धीरे-धीरे या जैसा भी वांछनीय हो उसको डिजाल्व करके दूसरे शॉट को धीरे-धीरे उसी शॉट में से उभार लेगा। यही प्रक्रिया फेड इन फेड आउट में की जाती है, मगर इस प्रक्रिया में पहला शॉट पूरी तरह फेड आउट होने के बाद ही दूसरा शॉट फेड इन किया जाएगा।

सेट की प्रक्रिया भी चाहे वह साधारण हो चाहे ट्रेवलिंग मैट हो, ऑप्टीकल प्रिंटिंग करवाई जा सकती है। मैट किये जाने वाले शॉट अलग-अलग मास्किंग के द्वारा

ही लिए जाते हैं और फिर विशेषज्ञों को देकर मास्टर शॉट बनवा लिया जाता है। हमने ऐसा भी देखा था कि एक ही फ्रेम में तीन एक्शन एक साथ चल रहे थे। उस शॉट में फ्रेम के एक टुकड़े में एक राजा दम तोड़ रहा था। उसी फ्रेम के बीच के टुकड़े में उस राजा के लिए हीरो औषधि लेकर घोड़े पर दौड़ा आ रहा है। तीसरे फ्रेम में खलनायक हीरो को रोकने के लिए चला आ रहा है। इन तीनों दृश्यों को अलग-अलग लेकर एक फ्रेम में शॉट के अवांछनीय हिस्सों को मास्क करके एक ही फ्रेम में एडजस्ट किया गया होगा।

जब कभी एक फ्रेम में दो या दो से अधिक एक्शन एडजस्ट करना हो तब ओप्टीकल प्रिंटिंग के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं है। जैसे हीरो और खलनायक की फाइट चल रही है और उसमें हीरो मरने वाला है। उसको बचाने के लिए उसका कोई मददगार चला आ रहा है, तो दोनों के अलग-अलग शॉट लेकर एक फ्रेम में प्रिन्ट करवाना पड़ेगा। मगर सुपर इम्पोजीशन यानी एक शॉट के ऊपर दूसरा शॉट प्रिन्ट नहीं करवाया जाएगा, बल्कि आधे-आधे फ्रेम में दोनों शॉट प्रिन्ट करवाये जाएंगे। श्वेत-श्याम फिल्मों के बाद जब रंगीन फिल्मों का जमाना आया हो ऑप्टीकल प्रिंटिंग में एक गड़बड़ी होने का डर रहता है वह यह है कि कोई भी एक कलर गायब हो सकता है, मगर विदेशों में मशीनीकरण ऐसा बढ़िया हो गया है कि सारे रंग बहुत बढ़िया खिल कर आते हैं।

4.8 ब्लोअप प्रक्रिया

अतिरिक्त प्रभाव (स्पेशल इफेक्ट) के फिल्म जगत के जाने-माने विशेषज्ञ दिवंगत प्रह्लाद दत्त ने प्रभात की फिल्म 'ज्ञानेश्वर' में कई प्रयोग किए थे। इस फिल्म में दिए गए अतिरिक्त प्रभाव वाले शॉटों की वजह से इसको बहुत प्रसिद्धि मिली थी। इस फिल्म के बाद उन्होंने फिल्मकार की बनाई गई एक चर्चित फिल्म घुंघरू का दिग्दर्शन भी किया था। उसमें भी उन्होंने कई बहुत ही खूबसूरत अतिरिक्त प्रभाव पेश किए थे। उन अतिरिक्त प्रभावों वाले दृश्यों के एक ट्रिक-सीन की चर्चा यहाँ आवश्यक लगती है।

परकाया प्रवेश का नुस्खा

इस फिल्म में ओम प्रकाश को दोहरी भूमिका निभानी थी। वह भूमिका थी दो भाइयों की। एक भाई बहुत ही कमजोर तबीयत का और दूसरा भाई बड़ा जांबाज व्यक्ति का स्वामी था। इस पात्र का फिल्म में खलनायक ने खून कर दिया था। किन्तु वह खूनी खलनायक पकड़ा नहीं जा सकता था। इस पात्र की आत्मा यह चाहती थी कि खूनी किसी भी स्थिति में पकड़ा जाए। इसलिए वह उससे बदला लेने की गरज से दूसरे भाई में परकाया प्रवेश वाली तरकीब से प्रवेश कर गई। इस तरह उस पात्र की दो आत्माएं हो गई।

इस परकाया प्रवेश की गई आत्मा के बलबूते पर ही यह भाई खलनायक का पीछा करता रहता है। कुछ दृश्य ऐसे भी हैं कि मृत भाई की आत्मा दूसरे भाई से कुछ न कुछ कहती रहती है। इन सीनों में मृत आत्मा प्रकट होकर आगे की तरफ बढ़ती है तो आश्चर्यजनक रूप से उसका धड़ तो आगे बढ़ जाता है और उसकी टांगे वहीं पीछे रह जाती हैं। उसे जब महसूस होता है कि वह तो बगैर टांगों का ही है, तब वह मुड़कर

पीछे झांक कर टांगों को देखता है। इसके बाद वापिस आकर टांगों से वह धड़ चिपक जाता है। टांगों से धड़ चिपकते ही वह पूरा शरीर फिर से चलने-फिरने लग जाता है। दर्शकों को यह अतिरिक्त प्रभाव वाला दृश्य बहुत ही रोमांचक लगा था। इसीलिए दर्शकों में इसकी बड़ी सराहना भी हुई।

इस शॉट को लेने के लिए मास्किंग का प्रयोग किया गया था। इस मास्किंग मे खड़े साइड की मास्किंग करने की बजाएं आड़ी साइड वाले मास्क करने की प्रक्रिया अपनाई गई। फिल्म में यह शॉट बहुत ही उम्दा फिल्माया गया था, मगर प्रहलाद दत्त यह फिल्म पूरी नहीं कर सके थे। वह उसे अधूरी छोड़कर भाग छूटे थे। निर्माता ने बाद में फिल्म को और किसी के सहयोग से पूरा करवाया था।

प्रह्लाद दत्त ने एक और फिल्म दिग्दर्शित की थी, जिसका नाम था 'शीरी फरहाद'। इस फिल्म में भी कई स्पेशल इफेक्ट्स बहुत ही अच्छे लिए गये थे, मगर फिल्म निर्माता के दुर्भाग्य से यह बाक्स ऑफिस पर बुरी तरह पिट कर रह गई। इसलिए वे स्पेशल इफेक्ट चर्चा में नहीं आ सके।

स्वप्न का फिल्मांकन

कुछ इसी तरह का स्पेशल इफेक्ट का एक और भी प्रयोग देखने को मिला था। यह प्रयोग दुबारा भी फिल्म में देखने में नहीं आया। फिल्म का नाम था, 'दि गर्ल ऑन ए मोटर बाइक'। दृश्य का कथानक था कि स्वप्न में फिल्म की हीरोइन किसी सर्कस में काम करती हैं। जिस दृश्य के अंश का हम जिक्र कर रहे हैं उसमें हीरोइन एक घोड़े पर एक घेरे में भागे जा रही है। उसका घोड़ा उसके काबू में नहीं आ पा रहा है। स्वप्न में ही वह यह भी देखती है कि दर्शक वर्ग में उसका पति और प्रेमी भी बैठे हुए थे। वह हीरोइन यह अपेक्षा करती है कि दोनों में से कोई तो उसको बचाएगा ही। वह दोनों को बचाने के लिए आवाज भी देती है। उसका पति कायर है और लड़की को बचाने के लिए कुछ भी नहीं करता है। वह तो अव्यमनस्क हो कर कुर्सी में और गहरा धंस जाता है। अन्त में उसका प्रेमी उसको बचाता है। इस सारे दृश्य के चित्रांकन की खूबसूरती यह थी कि फ्रेम के केन्द्र के कुछ भाग को छोड़कर जो कि टेक्नीकलर था, बाकी का सारा फ्रेम सिर्फ हरे रंग में था। हमने कई स्पेशल इफेक्ट के काम में माहिर फोटोग्राफरों से राय ली कि यह फोटोग्राफी कैसे की गई तो किसी ने भी इसका समुचित समाधान नहीं बतलाया। आखिर सोच-विचार के बाद हम इस नतीजे पर पहुँचे कि यह प्रक्रिया सिर्फ ऑप्टीकल प्रिंटिंग से ही संभव हो सकती है। रंगीन फिल्म में मूलतः तीन रंग हरा, पीला, लाल होते हैं। इनमें से किसी में पीला, किसी में लाल, किसी फिल्म में हरा प्रधान होता है।। इन्हीं रंगों को लाइट से प्रभावित करके बाकी के अन्य रंगों का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। ये रंग आपस में मिक्स किए जाते हैं। ऊपर वर्णित सीन में एक ही रंग दिखलाने के लिए बाकी दो रंगों को फिल्टर करके ही निकालना पड़ा होगा। ऐसा फिल्टर बनाया गया होगा, जिसमें केन्द्र में टेक्नीकलर वाला टुकड़ा छोड़कर बाकी सारा रंग एक के बाद एक लाल तथा पीले फिल्टरों के माध्यम से उन रंगों को फिल्टर किया गया होगा; साथ ही साथ वांछित प्रभाव तक रंग उड़ाने के लिए यह प्रक्रिया कई बार दोहराई गई होगी। जो भी हो इस सारे दृश्य ने दर्शकों के मन पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ा था। कुछ ऐसे ही दृश्यों की वजह से वह फिल्म दर्शकों के बड़े वर्ग ने पसंद की थी।

क्लोजअप की प्रक्रिया

आपको पहले बताया जा चुका है कि कभी-कभी निर्माता खर्च बचाने के लिए 16 एम.एम. के निगेटिव पर शूटिंग कर लेते हैं और उसको फिर 35 एम.एम. के निगेटिव पर ब्लोअप करवा लेते हैं। इसका एक उदाहरण विजय दान दे या की चर्चित कहानी 'दुविधा' पर मणि कौल द्वारा बनाई गई इसी नाम की फिल्म का दिया जा सकता है।

कभी-कभी निर्माता लोग 35 एम.एम. से 70 एम.एम. और सिनेमा स्कोप में ब्लोअप करवा लेते हैं। 70 एम.एम. की फिल्म को 35 एम.एम. से 16 एम.एम. में रिड्यूस करवा लेते हैं। आम तौर पर फिल्मों को 35 एम.एम. की फिल्म के ही लिए बनाई गई खास मशीनों से रिड्यूस किया जा सकता है। बंबई में तो कुछ लेबोरेट्रीज सिर्फ यही तय करती हैं। इस प्रक्रिया में बड़ी साइज में रिड्यूस करने में तो खतरा कम ही रहता है मगर छोटी साइज बड़ी साइज में ब्लोअप करने की निगेटिव के ग्रेन के फट जाने की संभावना बनी रहती है। इसके फटने का प्रभाव बड़ी मीन के प्रोजेक्शन पर बहुत बुरा पड़ता है। मगर नई-नई मशीनों के आविष्कार होने की वजह से अब यह तकनीकी खामी कमजोरी भी प्रायः खत्म होने लगी है। कई बार निर्माताओं को अप्रत्याशित कारणों से कुछ क्लोज अप कम्पोजिट शॉटों को ब्लोअप करवाने पड़ते हैं। इस ब्लोअप की प्रक्रिया बहुत ही आसान है। कोई भी स्पेशल इफेक्ट विशेषज्ञ इसे आसानी कर लेता है।

4.9 कैसे बनती हैं कार्टून फिल्में

कार्टून फिल्में बहुत मजेदार होती हैं। वाल्ट डिस्ने की मिकी माऊस और 'डोनाल्ड डक' फिल्में जिन दर्शकों ने देखी होंगी, उनके सामने एक प्रश्न जरूर उठ खड़ा हुआ होगा कि आखिर इस तरह की कार्टून फिल्में किस तरह बनाई जाती हैं। दुनिया के हर एक मुल्क में जहाँ-जहाँ पर भी फिल्में बनती हैं, इस तरह की फिल्में बनाई जाती हैं।

रोचक फिल्में : कार्टून फिल्मों की संज्ञा प्राप्ति से रोचक फिल्में कब बनने लगीं, यह कह पाना तो मुश्किल हैं, मगर इनकी लोकप्रियता बढ़ाने में वाल्ट डिस्ने का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। खासतौर पर ऊपर चर्चा की गई फिल्में तो बच्चों से बूढ़ों तक में बहुत ही लोकप्रिय हुई थीं। आजकल भी मिकी माउस के लिए दर्शकों का एक बहुत बड़ा वर्ग खुशी से इंतजार करता रहता है और मौका मिलने पर देखने से नहीं चूकता।

डिस्ने ने अपनी फिल्में पहले-पहले बहुत ही छोटे पैमाने पर बनानी शुरू की थी। मगर धीरे-धीरे उनकी कम्पनी इतनी बड़ी कम्पनी बन गई कि उनका दुनिया के फिल्म निर्माण कार्य में अपना अलग ही स्थान बन गया। डिस्ने साहब तो कई साल पहले दर्शकों को आखिरी सलाम कर जहान से विदा हो गए परन्तु उनकी फिल्म कम्पनी अभी भी पर्दे पर, दुनिया पर उसी तरह से छाई हुई है। कार्टून फिल्मों के साथ ही साथ यह कम्पनी फीचर फिल्में भी बनाती हैं। इनमें से पशु-पक्षियों को लेकर बनाई गई फिल्मों में 'ब्लैक कैट' तो बहुत ही मशहूर हुई है।

'एब्सेंट माइडेड प्रोफेसर' फिल्म भी इसी कम्पनी की थी, जो दर्शकों में बहुत ही लोकप्रिय रही। विश्व का सुप्रसिद्ध बाल उद्यान ड्रीमलैण्ड भी वाल्ट डिस्ने ने ही स्थापित कर बालकों को एक अनुपम उपहार दिया था।

हमारे देश में कुछ विज्ञापनों के लिए बने लघु चित्रों को छोड़कर अभी तक कार्टून फिल्मों का निर्माण लगभग नहीं के बराबर सा ही है। इन फिल्मों के निर्माण के लिए जरूरी कैमरा आदि उपकरण भी यहाँ बहुतायत से उपलब्ध नहीं है। बम्बई में इस तरह के उपकरण 'प्रसाद प्रोसेस' के अलावा अन्य किसी के पास नहीं है।

निर्माण प्रक्रिया : कार्टून फिल्में बनाने की प्रक्रिया आम तौर पर बनाई जाने वाली फिल्मों की प्रक्रिया से बिल्कुल भिन्न हैं। आम फिल्मों में एक साथ कई फ्रेमें यानी पूरा शॉट एक्सपोज होता है। इधर कार्टून फिल्मों में एक फ्रेम एक्सपोज किया जाता है। वैसे सामान्य फिल्मों में भी मौके बे मौके वन टर्न एक्सपोजेज किए जाते हैं। मगर यह सामान्य प्रक्रिया नहीं हैं। कभी-कभी ही ऐसा होता है। साथ ही कार्टून फिल्मों और सामान्य फिल्मों में एक मूलभूत अन्तर और भी है। वह यह है कि सामान्य फिल्मों में जीवित कलाकारों का अभिनव फिल्माया जाता है। मगर कार्टून फिल्मों के हाथ से बनाए गए चित्रों से ही काम चला लिया जाता है।

पहले एक कथा गढ़ी जाती है। उसके बाद उसकी स्क्रिप्ट। इस स्क्रिप्ट को कलाकार को चित्र बनाने के लिए सौंप दिया जाता है। कलाकार का अध्ययन करने और शॉट डिवीजन के बाद उसकी अलग-अलग गतिविधियों के अनुरूप अपनी धारणा बनाता है। उसको एक मूवमेन्ट का कई बार विभाजन करना होता है। उसके बाद एक-एक विभाजन की गति की एक-एक तस्वीर बनानी होती है। इस तरह उसको एक छोटी-सी फिल्म के लिए हजारों की संख्या में कार्टून चित्र बनाने होते हैं। ये सारे चित्र बनाने होते हैं। ये सारे चित्र बन जाने के बाद जब फिल्म का डायरेक्टर उनको स्वीकृति दे देता है, तब उन चित्रों की सिलसिलेवार शूटिंग शुरू हो जाती है। कैमरे के सामने तब एक-एक चित्र खड़े रखकर एक्सपोज किया जाता है। चित्र भी कैमरे के सामने एक सीरियल में रखे जाते हैं। अगर कहीं थोड़ी-सी भी गलती हो गई हो तो सारी की सारी ही शृंखला गड़बड़ा जाती हैं। पूरी शृंखला को एक्सपोज कर लेने के बाद निगेटिव को डेवलप करवाया जाएगा। पॉजीटिव फिल्म बनाई जाकर उसको सम्पादित किया जाएगा। उसे सही पाया जाने पर उसमें ध्वनि भरने का कार्य होगा।

कार्टून फिल्मों में पात्र चाहे जो हों, आवाज देने वाले कलाकार मनुष्य ही होते हैं। चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, ये लोग अपनी आवाज में बनावटीपन लाकर पात्र की आवाज की नकल के अनुरूप आवाज देते हैं। इसके पश्चात् उसमें संगीत और विशेष प्रभाव यानी म्यूजिक और स्पेशल इफेक्ट भरकर जब साउण्ड ट्रैक पूरा हो जाए तो रिलीज प्रिण्ट निकलवा लिया जाता है।

विशेष कैमरा जरूर इस तरह की फिल्मों को बनाने के लिए कैमरे भी अलग से ही आते हैं। ये कैमरे स्टैण्ड पर खड़े किये जाकर टॉप पोजीशन से अलग-अलग चित्रों की शृंखला फिल्माते हैं। इन कैमरों में एक-एक चित्र को खींचने की ही व्यवस्था होती है। सामान्य कैमरों की तरह उनसे एक साथ कई चित्र नहीं खींचे जा सकते हैं। जिस स्टैण्ड पर यह कैमरा फिट होता है, उसी स्टैण्ड के साथ एक टेबिल पर अलग-अलग

चित्रों की प्लेट रखकर शूटिंग की जाती है। ऐसा मैने देखा है। ऐसे कैमरे के सामने भी चित्र खड़े स्टैण्ड पर रखकर शूटिंग करने की व्यवस्था होती हैं।

4.10 टाइटल्स का फिल्मांकन

किसी भी फिल्म में टाइटल्स की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। बिल्कुल साधारण टाइटल्स से लेकर बहुत ही विविधतापूर्ण तरीकों से टाइटल्स फिल्माये जाते हैं।

वणकद्रे शांताराम (वी. शांताराम) की निर्देशित फिल्म में टाइटल्स हमेशा विशेषता लिए रहते हैं। कभी-कभी ही वे इतने चमत्कार भरे रहते हैं कि देखते ही बनते हैं। उनकी किसी एक फिल्म में हीरोइन संध्या (जो वी. शांताराम की पत्नी हैं) ने रंगों के घेरे पर नृत्य करते हुए अपने पदाघात से रंग बिखेरकर टाइटलों का सृजन किया था, वह अद्‌भुत था। उनकी एक दूसरी फिल्म में मध्यान्तर लिखने के लिए हीरो ने अपने हाथ के हारमोनियम को जमीन पर फेंक दिया था, जो टूटकर बिखर गया। हारमोनियम का अंग-प्रत्यंग मध्यान्तर के रूप में छिटक कर बिखरते हुए दर्शकों को 'मध्यांतर' होने का आभास दे गया था। फिल्मों में टाइटल्स के मुख्य रूप में तीन अंग होते हैं-प्रारम्भ, मध्यांतर और समाप्ति।

टाइटल्स प्रारम्भ में फिल्म के नाम के अलावा निर्माता, निर्देशक, हीरो, हीरोइन, संगीत निर्देशक, छायाकार, विशेष टाइटल्स, सहायक कलाकारों आदि की सूचना देने वाले होते हैं।

मध्यान्तर फिल्म की आधी समाप्ति की सूचना देने वाला होता है। इसे साधारण तरीके से भी फिल्माया जा सकता है और किसी चमत्कारपूर्ण तरीके से भी फिल्माया जा सकता है। जैसे किसी कलाकार ने गोली चलाई वह गोली किसी आइने में लगी और आईना किरच-किरच होकर मध्यान्तर में बदल गया। दर्शकों को यह भी प्रयोग पसन्द आया था। इसी तरह किसी भी फिल्म में फिल्म का खलनायक बहुत जोर से चिल्लाता है-जाओ। यह जाओ' शब्द उसने अपने आदमियों को सम्बोधित करते हुए कहे थे। वहीं फिल्म निर्देशक ने दर्शकों को आदेश दे दिया था कि वे मध्यान्तर के समय बाहर जाकर बीड़ी सिगरेट, चाय, कॉफी पी सकते हैं।

मध्यान्तर हमेशा ऐसी जगह पर किया जाता है जहाँ पर दर्शकों की उत्सुकता बनी रहे। यदि ऐसा नहीं होगा तो दर्शक ऊबकर हॉल से बाहर तो आ ही जायेगा तथा पूरी फिल्म देखे बिना ही घर की ओर चल देगा। फिल्म पूरी होने पर 'समाप्त' (दि एण्ड) आदि का टाइटल आता ही है, मगर कहीं-कहीं 'द बिगनिंग' और 'एण्ड दे लिव्ड हैप्पीली एवर आफटर' आदि टाइटल भी देखने को मिले हैं।

कुछ फिल्मों में फिल्म के प्रारम्भ में सिर्फ फिल्म का नाम आकर रह जाता है। कलाकारों तथा फिल्म के टेक्नीशियनों के नाम फिल्म के खत्म होने के बाद पर्दे पर बतलाये जाते हैं। मगर ऐसे टाइटल प्रदर्शित करना त्रुटिपूर्ण माने जाते हैं। ऐसा करना कलाकारों व फिल्म निर्माण में लगे टेक्नीशियनों के प्रति अत्याचार करना भी हैं। खास कारण यह है कि फिल्म समाप्त होने के बाद दर्शक बैठकर उन्हें देखने की मनः स्थिति में नहीं रह पाते हैं। टाइटल प्रदर्शन के वक्त सिनेमा हाल खाली पड़ा रह जाता है।

कभी-कभी टाइटल्स फिल्म के प्रालेख बतलाने के बाद मूल कथा शुरू होने से पहले भी दिये जाते हैं। इसी तरह टाइटल कभी-कभी बिखरे-बिखरे हुए से अथवा काफी देर-देर के बाद भी दिखलाई देते हैं। फिल्म में थोड़ी-थोड़ी चलने के बाद एक-एक, दो-दो टाइटल आते रहते हैं। पहले यह परम्परा थी कि टाइटल्स आगे से पर्दे पर फिल्म के किसी विशेष दृश्य के साथ बतला दिये जाते थे। जब सारे टाइटलों का प्रदर्शन पूरा हो जाता था तब फिल्म शुरू होती थी। आजकल कई वर्षों के टाइटल के पीछे बैक ग्राउण्ड के रूप में फिल्म की कहानी भी चलती रहती हैं। इस तरह टाइटल्स फिल्माने के दो प्रमुख कारण हैं-

पहला कारण था कि द्वितीय महायुद्ध के समय से ही लम्बाई प्रतिबंधित कर दी गई थी। यह प्रतिबंध बहुत लम्बे समय तक चलता रहा। इसलिए इस 10 हजार फीट तक फिल्म में 500 से 600 तक की फिल्म सिर्फ टाइटल्स के लिए लगा देना फिल्म के कथानक की लम्बाई वाले पक्ष में कटौती करना था। इसलिए टाइटल फिल्म के साथ ही बतलाकर कमी पूरी कर ली जाती थी, जो बाद में एक परम्परा सी बन गई।

दूसरा कारण फिल्म पर लेवी लगाने का रहा। जब वह फिल्में सेंसर के सर्टिफिकेट और टाइटल लेवी से मुक्त थीं। तब तक तो ठीक-ठाक था, मगर जब इन पर भी लेवी लग गई, तो अलग से टाइटल देना निर्माता के लिए घाटे का सौदा हो गया। आजकल 4 हजार मीटर यानी 13 हजार से 400 फीट हो जाए और टाइटल अलग से देना पड़ जाए तो उसे पूरी लम्बाई के लिए दुगुनी रेट चुकानी होगी। इसलिए निर्माता कभी यह पसन्द नहीं करेगा कि वह सिर्फ टाइटल्स फिल्माने मात्र के लिए डबल लेवी चुकाने की स्थिति खुद उत्पन्न करे। इसलिए टाइटल फिल्मी कथा को पृष्ठभूमि में रखकर उसके ऊपर सुपर इम्पोज किए जाते हैं। जब 18 हजार या 20 हजार फीट की लम्बाई वाली फिल्में बनती थीं, तब यह टाइटल भी काफी लम्बे दिये जाते थे, मगर धीरे-धीरे निर्माताओं ने यह समझा कि टाइटल देना उसकी मजबूरी है और फिल्म को बर्बाद करना हैं। इसलिए टाइटलों की लम्बाई भी कम हो गई। यह लम्बाई आजकल तो 150 से 200 फीट तक से अधिक नहीं होती है। पहले कलाकारों और टेकनीशियनों के टाइटल अलग-अलग होते थे, परन्तु इन दिनों फिल्म की लम्बाई कम करने के लिए कई-कई नाम एक साथ दे दिए जाते हैं। खासकर सहायक भूमिका वालों के नाम तो अक्सर एक-दो बार में ही सामूहिक सूची में निपटा दिए जाते हैं। कई निर्माता-निर्देशक टाइटलों की प्रस्तुति में जरूर नए-नए प्रयोग करते ही रहते हैं।

4.11 टाइटल फिल्माने के कुछ और तथ्य

टाइटल बनवाने के लिए निर्माता अक्सर स्पेशल इफेक्ट का काम करने वालों की सहायता लेते हैं। मगर टाइटल कभी-कभी वे स्वयं भी बनवा लेते हैं। निर्माता जब बिना किसी विशेषज्ञों की मदद के टाइटल बनाते हैं, तो उसको प्रक्रिया बहुत ही सरल करनी पड़ती है। जैसे टाइटलों के पीछे कोई भी पृष्ठभूमि (बैकग्राउण्ड) नहीं होती है। इसकी पहली प्रक्रिया यह होती है कि निर्माता टाइटल किसी भी पेण्टर की मदद लेकर लिखवाता है। यह टाइटल वाले कागज पर सफेद स्याही के पेन से लिखवाए जाते हैं। सफेद कागज पर काले पेन से कभी-कभी लिखवा कर काम चलाते हैं। कभी-कभी कांच

की प्लेटों पर लिखवाये जाते हैं। ये कागज और प्लेटें एक ही साइज के काम में लेते हैं।

जब पेण्टर लिखने का काम पूरा कर चुकता है तब फिल्म का कैमरामैन निगेटिव पर उसे एक्सपोज करता है। यह कार्य स्टूडियो अथवा बन्द कमरे में करवाना पड़ता है। काले या सफेद कागजों पर लिखे गए टाइटलों के पीछे कोई भी पृष्ठभूमि एक्सपोज नही हो पाती है, मगर कांच की प्लेटों पर लिखे गए टाइटलों के पीछे कोई पृष्ठभूमि आसानी से एक्सपोज की जा सकती है, क्योंकि कोई-कोई कांच पारदर्शी होता है। इन टाइटलों के पीछे कोई रंगीन पर्दा, पेड़ पौधे आदि रखे जा सकते हैं। टाइटल 'कट टू कट' भी एक्सपोज किए जा सकते हैं, अथवा उनमें ऊपर-नीचे दाएं-बाएं मूवमेन्ट भी रखा जा सकता है।

4.12 ऐसे फिल्माई जाती है होली

होली का रंगारंग इन्द्रधनुषी माहौल फिल्म वालों पर भी अपना रंग जमाने में सफल रहा है। आपने होली के दृश्य किसी न किसी फिल्म में अवश्य देखे ही होंगे। इन दृश्यों में मरहूम महबूब खाँ की फिल्म ''आन'' की होली का दृश्य बहुत ही लोकप्रिय हुआ था। इस फिल्म के नायक दिलीप कुमार और नायिका नादिरा थीं, जिन्होंने एक बहुत मगरूर राजकुमारी की भूमिका बहुत ही नाजो-अन्दाज से बखूबी अदा की थी। इसी तरह निर्देशक चाँद की एक फिल्म में दारासिंह हीरो थे। उन्होंने भी होली बहुत ही बढ़िया ढंग से फिल्मांकित की थी। यह दोनों ही रंगीन फिल्में थीं। इसलिए होली के दृश्यों का बड़ा ही जीवन्त चित्रांकन किया। श्वेत-श्याम चित्रों के जमाने में भी कई बार फिल्मों में होली के दृश्यों की फिल्मांकन किया जाता रहा है। रणजीत मूवीटोन ने 'होली' शीर्षक से एक फिल्म भी बनाई थी। इस फिल्म में मोतीलाल हीरो की भूमिका में थे। इसका मुख्य शीर्षक गीत (टाइटिल सांग) 'होली के दिन, होली आई रे आई रे जरा बाजे बांसुरिया' बहुत ही हिट हुआ था।

ख्वाजा अहमद अब्बास की एक फिल्म में भी होली के गीत का संगीत अनिल विश्वास ने दिया था। यह बहुत ही मशहूर गीत रहा था। वस्तुतः होली के गीत को फिल्माने पर गीत को फिल्माने पर निर्माता को काफी खर्चा करना पड़ता है। इसलिए होली के गीत यदा-कदा ही फिल्मों में देखने को मिल पाते हैं। इन गीतों के फिल्मांकन में मुख्य कलाकारों के अतिरिक्त होली खेलने वालों में अधिकार जूनियर कलाकार तथा एक्स्ट्रा रहते हैं। होली के हुड़दंग के लिए काफी बड़ी तादाद में होली खेलने वाले चाहिए, अन्यथा होली का मजा ही किरकिरा हो जाएगा। फिर अभिनय करने वालों के लिए खास किस्म की पोशाकों का इन्तजाम भी निर्माता को करना ही पड़ता है। जो दुबारा काम में नहीं ली जा सकती हैं।

मेरी अपनी फिल्म 'सस्ता महंगा प्यार' में एक होली के गीत को फिल्माने पर अन्य गीतों की अपेक्षा काफी अधिक खर्च आया था। मनोज कुमार ने अपनी फिल्म 'शोर' में भी एक होली का गीत रखा था। इस गीत को उन्होंने बड़ी मेहनत और रूचि से फिल्माया था। यह गीत उस फिल्म का बहुत अच्छा हिस्सा माना गया था।

वैसे तो होली के गीतों का फिल्मांकन भी अन्य गीतों की तरह ही होता है।, पर

इन गीतों के फिल्मांकन के दौरान अबीर, गुलाल, रंगों आदि का प्रयोग पानी के अतिरिक्त किया जाता है। एक दूसरे पर रंगीन पानी फेंकने के लिए डोलची और पिचकारियों का प्रयोग किया जाता है। पानी के जमीन पर गिरने से कीचड़ भी हो जाता है। इस वजह से अभिनय कर रहे कलाकारों के फिसलकर गिरने का भी डर बना रहता है। गीतों की रिकार्डिंग के समय अन्य वाद्यों के साथ होली के अवसर पर काम में लिए जाने वाले लोक वाद्यों जैसे चंग, ढोल, बांसुरी आदि का प्रयोग होता है। गानों के फिल्मांकन में कलाकारों के हाथों में ये वाद्ययंत्र भी दे दिये जाते हैं। श्वेत-श्याम चित्रों के जमाने में भी पानी के साथ रंगों, गुलाल, अबीर आदि का प्रयोग किया जाता था, मगर उसका प्रभाव फिल्म पर श्वेत-श्याम फिल्मीकरण की वजह से कुछ खास नजर नहीं आता था। मगर जब से रंगीन फिल्में बनने लगी हैं, तब से रंगों की बहार इन्द्रधनुषी रंगों में दिखलाई देती हैं। जो नृत्य निर्देशक उन रंगों का अच्छे ढंग से प्रयोग कर लेता है वह कहानी के फिल्मांकन में चार चाँद लगा सकता है। होली के गीत दो तरह से फिल्मांकित किए जाते हैं। एक तो गैर नृत्य के रूप में जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है। उसमें मुख्य कलाकारों के हाथों में होली के दिन काम में लिए जाने वाले वाद्य रहते हैं। जिन्हें वे बजाते रहते हैं। दूसरी किस्म की होली में एक स्थान पर ही हुजूम इकट्ठा होकर होली खेलता है। घरों पर जैसे खेलते हैं, वैसे ही। इन गीतों को फिल्मांकित करते वक्त एक खास बात ध्यान में रखनी पड़ती है कि रंग, गुलाल, पानी आदि लाइटों और कैमरे पर नहीं पड़े वरना इनके खराब होने का डर रहता है। लड़के-लड़कियाँ हाथों में रंग-गुलाल की थालियाँ लेकर नाचते, गाते एक-दूसरे पर रंग डालते रहते हैं। वे गीत के मुखड़े को भी अक्सर दोहराते रहते हैं। जब भी हीरो-हीरोइन के शॉट आएंगे तब वहां भीड़ पृष्ठभूमि में रहेगी तथा हीरो-हीरोइन एक-दूसरे पर और कलाकार भी एक-दूसरे पर रंग छिड़कते रहते हैं। पानी भी फेंकते रहते हैं।, मगर जहाँ जूनियर कलाकारों की भूमिका वाले शॉट होंगे वहाँ शॉट सामूहिक होली की भाव भंगिमा व्यक्त करने वाले ही लिए जाएंगे।

लम्बी भीड़ वाले शॉट्स लेते वक्त ट्राली और क्रेन का अधिक उपयोग किया जाएगा। जूनियर कलाकारों में जवान लड़के-लड़कियों के साथ कुछ बूढ़े, मर्द, औरतें विनोद और हास्य के लिए रख ली जाती हैं। इस बात का ख्याल जरूर रखा जाता है कि जहाँ तक हो सके होली प्रसंगवश ही आ पाए। उसके साथ-साथ ही कथावस्तु भी चलती रहे। अन्यथा होली अपने आप में तो अच्छा प्रसंग बन जाएगा। मगर समूची पटकथा में प्रवाह नहीं होने से अलग-थलग पड़ जाने से उसकी उपलब्धि नहीं के बराबर ही होगी।

होली के गीतों में भी श्रृंगार की अतिरंजना रहती है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो वह अश्लीलता की सीमाओं को भी तोड़ फेंकती हैं। 'शोर' में होली के दृश्य में नृत्य को किसी भी स्थिति में श्लील भंगिमा नहीं माना जा सकता। फिल्मों की होली के बारे में गोपीकृष्ण जैसे नृत्य निर्देशक ने स्वयं स्वीकार किया है कि रंगीन फिल्मों में होली की रंगीली का कुछ ज्यादा ही दुरूपयोग हुआ है। नवरंग में तो ट्रिक फोटोग्राफी से रंगों की धार को दौड़ाते हुए दिखाया गया था। यह सब मनोरंजन के लिए है। फिल्में में कुछ छूट भी देनी ही पड़ती है। वैसे शायद आपको भी मालूम होगा कि 'नमक हराम' क़ी रेखा वाली होली बहुत ही स्वाभाविक थी, क्योंकि उसमें निर्माता और निर्देशक ने सहमति से होली की पृष्ठ भूमि तैयार की थी।

पत्रकार मिथिलेश सिन्हा को ऐसी ही एक और होली का नयनसुख मिला था। 'इंसान' फिल्म के सेट पर। सुनिए उनसे ही। रंग से सराबोर रीनाराय तो थीं। मगर उनके साथ दो दिन पहले होली खेल रहे जीतेन्द्र लापता थे। छेड़छाड़ में मगन थे-विनोद खन्ना। यह सिचुएशन भी नायक को बदनाम करने की नीयत से ही गढ़ी गई थी।

इस फिल्म में जीतेन्द्र जैसे ही रीना पर रंग अबीर फेंकता है वह अपने अतीत की यादों में खो जाती हैं। नृत्य निर्देशक पी.एल. राज बोले थे-''फिल्मों में ऐसी होली की तो परम्परा जैसी बन चुकी है। जैसे फिल्मी मुजरा असली नहीं होता है, इसी तरह फिल्मी होली भी असली नहीं होती।'' इसी तरह 'आपस की बात' राज बब्बर कल्पना अय्यर के साथ थोड़ा सा अबीर-गुलाल कपड़ों पर छिड़क कर थिरक-थिरक कर गाने लगे थे :

''चेहरे पर जुल्फें लटका के, पतली कमरिया लचका के, हम आज हद से गुजर जाएंगे।''

यह होली का नृत्य फिल्माया जा रहा था। बेमौसम में भी चांदी वाली आउटडोर स्टूडियो में यदि अगहन, पूस की ठण्डी रातों में भी नायक, नायिका और डेढ़-दो सौ सहायक कलाकारों की फौज वहां पर रंग, अबीर से साराबोर होकर नाचती, गाती, धूम मचाती मिल जाए तो आपको मान लेना चाहिए कि यहाँ होली के दृश्य को फिल्माया जा रहा है। फिल्मों के लिए होली का कोई मुहूर्त तो होता ही नहीं, जब जरूरत हुई तो फिल्मा लिया जाता है।

इसकी तीसरी प्रक्रिया में आग पर लोबान छिड़ककर धुँआ पैदा किया जाता है। मगर यह धुंआ अधिक काला होता है, इसलिए इतना प्रभावी नहीं होता।

4.13 कुछ ट्रिक सीनों का फिल्मांकन

रामचरित मानस पर आधारित फिल्म में दो प्रसंग ऐसे हैं जिनकी शूटिंग बहुत ही परिश्रम साध्य और समय लेने वाली हैं। इसके अलावा शूटिंग भी चतुराईपूर्ण तरीकों से ही करनी पड़ती है।

इनमें एक प्रसंग 'लंका-दहन' क़ा है और दूसरा 'सेतु बन्ध' का। नाटकों में ऐसे दृश्यों में आग लगाने की एक बहुत पुरानी तकनीक रही है। जब स्टेज पर आग लगानी होती है तब स्टेज पर ही एक गहरा गड्ढा बनाकर लाल, पीले, हरे, सुनहरा कागजों की पन्नियाँ लगा दी जाती हैं। उसके चारों तरफ फिर उन पन्नियों को पंखे से हवा देकर लहराया जाता है। इसके साथ ही बिजली जलाकर उसको रोशन किया जाता है। जब यह रोशन हो रही पन्नियाँ हवा में लहराती हैं तो ऐसा लगने लगता है कि आग की तेज लपटें निकल रही हैं। पहले फिल्मों में भी इस तकनीक से आग की लपटें प्रज्जवलित होती दिखाई जाती रही हैं, मगर धीरे-धीरे इस प्रक्रिया में परिवर्तन हुआ। इसी काम में आग का लगाना दिखाया जाना हो तो टुकड़ों-टुकड़ों में आग जला कर शूटिंग की जाती हैं। कहीं-कहीं शॉटों में लम्बी-सी लकड़ी के टुकड़े में कपड़ा बांधकर पेट्रोल डालकर उसे जलाया जाता है। जिन हिस्सों में आग जलना-दिखाया जाना हो या जिन पात्रों को आग से घिरा हुआ बतलाना हो, उनको भागते हुए दिखाया जाता है। इन शॉटों में कैमरे के

सामने जली हुई लकड़ी की निकलती हुई लपटों को कैमरे के सामने रखकर शूटिंग कर ली जाती है। इसके बाद उस मकान या जहाँ पर भी आग लगी हुई बतलानी हो उसका मॉडल बनाकर उसको जलाकर शूटिंग पूरी कर ली जाती है। इस तरह से की गई सब शूटिंग फिर सम्पादक अपने हिसाब से काट-छाँटकर उन शॉटों को जोड़कर उसकी अनवरतता के हिसाब से दृश्य तैयार कर देता है।

लंका दहन की शूटिंग इसी तरह की प्रक्रिया से की जाती है। हनुमान जी की पूंछ जलती हुई दिखलाने और बढ़ती हुई दिखलाने के लिए उनकी नकली पूँछ में आग लगा दी जाती है। उसमें रस्सा जोड़कर आगे सरका-सरका कर पूँछ के बढ़ते जाने का दृश्य दिखा दिया जाता है। इस रस्से को मेकअप कर असली बन्दर की पूंछ जैसा प्रभाव उसमें पैदा कर लिया जाता है।

रावण द्वारा सीताहरण के वक्त लक्ष्मण रेखा लांघते समय रेखा में आग की लपटें दिखाने के लिए उसमें बारूद छुपा दिया जाता है जब रावण रेखा लांघता है तो तो एक सिरे पर आग लगा दी जाती है और रेखा एक झटके में धधकती दिखाई देने लगती है। आग की लपटें निकालने का एक और तरीका फिल्मों में देखने में आया। कैमरे के सामने जलती हुई लकड़ी रख दी जाती है। उस पर कोई भी आदमी मुँह में पेट्रोल लेकर उछालता है। जब पेट्रोल लकड़ी पर गिरता है, तो आग की लपटें निकलती दिखाई देने लगती हैं। इस काम के लिए फाइट मास्टर रोबर्ट को बुलाया जाता रहा है।

इन दिनों आधुनिकतम इलेक्ट्रोनिक तकनीक के जरिए आग लगाने का प्रभाव आसानी से फिल्माया जा सकेगा।

समुद्र में पुल बाँधने की तकनीक

समुद्र में पुल बांधने के लिए पत्थर के बड़े-बड़े शिला खण्ड दिखलाने के लिए ठण्डे या हल्की-फुल्की लकड़ियों को जोड़कर उन्हें शिला खण्ड का आकार दे दिया जाता है। इन पर भी घास-फूस चिपकाकर पत्थरों-कंकड़ों आदि का प्रभाव देकर यह बतलाने का प्रयत्न होता है कि वे भूमि से खोदे गए पत्थर या पहाड़ से तोड़े हुए शिलाखण्ड हैं। इन नकली शिला ठण्डों को उठा-उठाकर पानी में फेंकने लगते हैं जो वजन में काफी हल्के-फुल्के होने की वजह से पानी के ऊपर तैरते रहते हैं। वजनी हों तो डूब जाते हैं।

आजकल थर्मोकोल के शिलाखण्ड बनाकर उनको पानी में तैराया जा सकता है। जब उन शिलाखण्डों पर से बन्दरों को गुजारते हुए दिखाना हो तो किसी पानी के बहते हुए छिछले नाले में भी असली पत्थर के टुकड़े जमाकर उन पर से बन्दर सेना की टुकड़ी को गुजार दिया जाता है।

रामायण में और भी कई ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें ब्ल्यू कर्टेन, व्हाइट कर्टेन तकनीक की जरूरत पड़ती है। जैसे हनुमान जी का समुद्र को लांघना, संजीवनी बूटी लाते वक्त पर्वत ही उठाकर ले आना। सुरसा राक्षसी के साथ हनुमान का बदन बढ़ाते जाना, घटाते जाना और सुरसा के मुँह में प्रवेश कर कान से बाहर जाना आदि भी ऐसे ही प्रसग हैं।

समुद्र लांघने के लिए पहले शॉट में किसी पानी के स्रोत के किनारे किसी भी चट्टान या पहाड़ पर हनुमान की उछाल लेने की पोजीशन बनाकर शूटिंग कर ली जाती है। उसके बाद उस सीन का आखरी शॉट लंका की भूमि पर कूदने का प्रभाव छोड़े, ऐसा

ले लिया जाता है। समुद्र लांघने के सारे प्रसंग का दृश्य ट्रेवलिंग मैट से लिया जाता है, जिसकी तकनीक पहले बतलाई जा चुकी है।

संजीवनी बूटी लाने के लिए जाते वक्त आकाश मार्ग से उड़ने की प्रक्रिया भी ट्रेवलिंग मैट से ही की जाती है। चूंकि पहाड़ को उठाना किसी भी कलाकार के बस का काम नहीं होता है। इसलिए प्लाईवुड का कटआउट बनाकर छोटे-छोटे पेड़-पौधे, झाड़ियाँ, बेले, घास आदि लगा देते हैं। उसको किसी सहारे के साथ हाथ पर जमा देते हैं। प्रभाव वह ऐसा देने वाला होना चाहिए कि लगे कि यह पहाड़ हथेली पर ही रखा हुआ है। इसको फिल्माने के लिए ब्ल्यू कर्टेन या ब्लैक कर्टेन की सहायता ली जाती है। इसलिए और कोई समस्या तो होती ही नहीं है। जब लंका में हनुमान पहाड़ लाकर रख देते हैं तब पहाड़ पर जड़ी बूटी तलाशने का काम वैद्य सुषेण करता है। कोई भी किसी पहाड़ी पर पेड़-पौधे लगाकर सुषेण को वहाँ से ही वह पौधा तोड़ते हुए बतलाकर उस दृश्य को फिल्मा लिया जाता है।

आजकल थर्मोकोल के उपयोग की वजह से त्रिआयामी पहाड़ का आभास करवाने वाला टुकड़ा बना लेते हैं। सुरसा तथा हनुमान का प्रसंग ब्ल्यू या व्हाइट कर्टेन के बगैर हो ही नहीं सकता है। इसमें सुरसा के मुँह को बढ़ता हुआ और घटता हुआ दिखलाना पड़ेगा। इसके लिए वही प्रक्रिया काम में ली जाती है। जो जिन्न, भूत आदि के लिए ली जाती रही थी।

छोटे हनुमान यानी लघु आकार वाली देह को सुरसा के कान के रास्ते से निकालने के लिए ब्ल्यू कर्टेन से शूटिंग करनी पड़ती है, मगर हनुमान जी की अलग और सुरसा की अलग। इसके बाद इन अलग-अलग शॉटों को आप्टीकल प्रिंटिंग के माध्यम से एक्सपोज करवा कर ब्लैंडेड शॉट बनवाया जाता है।

4.14 फिल्मांकन खौफनाक दृश्यों का

'टावरिंग इन फरनो' फिल्म की तरह की एक फिल्म बी.आर. चोपड़ा ने बनाई थी। इस फिल्म का नाम था-'दि बर्निंग ट्रेन' वास्तव में यह फिल्म हॉलीवुड की दो फिल्मों का सम्मिश्रण करके बनाई गई थी। इन फिल्मों के नाम थे-''टावरिंग इन फरनो'' तथा ''सिल्वर स्ट्रिक''

हॉलीवुड की इस फिल्म 'सिल्वर स्ट्रिक' में एक ट्रेन में एक व्यक्ति की हत्या हो जाती है। हीरो उन हत्यारों को देख लेता है। गुण्डे हीरो को मार डालना चाहते हैं। वह उनको पुलिस के हाथों पकड़वाना चाहता है। इसी बीच ट्रेन चलती रहती है। चलती ट्रेन में ही इंजन ड्राइवर आदि का खून हो जाता है। ट्रेन में फंस गए यात्रियों को बचाने के लिए हीरो ट्रेन के डिब्बों और इंजन को अकेला पटरियों पर दौड़ाते-दौड़ाते एक स्टेशन के प्लेटफार्म से टकराकर प्लेटफार्म और स्टेशन के अधिकांश भाग को तोड़ करके रुक जाता है।

'टावरिंग इन फरनो'' में एक बहुत ही बड़ी नव-निर्मित बिल्डिंग में उद्घाटन समारोह के उत्सव के दौरान ही बिजली की गड़बड़ी से आग लग जाती है। उस आग में फंसे हुए लोगों को कैसे बचाया जाए, यह फिल्म के कथानक का मूल है। यह दोनों

ही फिल्में बड़ी ही थ्रिलिंग थीं। चोपड़ा ने 'टावरिंग इन फरनो' को रेल की पटरियों पर लिटाकर 'सिल्वर स्ट्रिक' बना दिया। उसमें 'टावरिंग इन फरनो' की तरह आग लगा दी। इस फिल्म पर बहुत खर्चा आया था, मगर बाक्स ऑफिस पर यह बुरी तरह पिट गई थी।

जापानी फिल्म ''थ्री ट्रैजर्स'' के क्लाइमेक्स में ज्वालामुखी फट पड़ता है। उसके बहते हुए लावा के प्रवाह में हजारों लोग भस्मी भूत हो जाते हैं। ज्वालामुखी के बहते हुए लावा का प्रभाव कैसे उत्पन्न किया जाता है। इसके लिए स्पेशल फोटोग्राफिक इफेक्ट काम में लिए जाते हैं। जलता हुआ घर दिखलाने के लिए घर का एक फ्रेम बनाकर आग लगाई जाती है। उसमें फंसे हुए कलाकारों पर आग का इफेक्ट देने के लिए किसी लकड़ी में या कपड़े में आग लगाकर कैमरे के सामने से आग की लपटों को निकलता हुआ बताया जाता है। नाटकों में अक्सर स्टेज पर जलती हुई आग दिखलाने के लिए स्टेज पर एक गड्ढा खोदकर उसमें लाल-पीले कागज के टुकड़े लगा देते हैं। नीचे से रोशनी देकर पंखा चला देते हैं। इससे लगने लगता है कि आग जलाई जा रही है। प्रह्लाद और होली की चिता पर आग लगाई जाती है। होलिका जल जाती है और प्रह्लाद बच जाता है। इस दृश्य को फिल्माने के लिए कई शॉट लेने पड़ते हैं। एक शॉट में होलिका और प्रह्लाद को बिठाकर बगैर आग के दृश्य फिल्मांकित कर लिया जाता है। उसके बाद दूसरे शॉट में प्रह्लाद को उठा लिया जाता है और होलिका का जलकर मरने का शॉट, उसकी चीखें, उसके हाव-भाव आदि के दृश्य ले लिये जाते हैं। उसके साथ ही साथ कैमरे में डिजाल्व करके होलिका को लुप्त कर दिया जाता है। इसके बाद इन सब शॉटों को रिवर्स करके इस पर आग डाल दी जाती है। यानी सुपर इम्पोज कर दी जाती है। तब आपको ऐसा लगेगा कि चिता में सचमुच ही आग लगाई गई थी। कहने का तात्पर्य यह है कि आग अक्सर नहीं लगाई जाती, सुपर इम्पोज करके ही काम चलाया जाता है, मगर कभी-कभी दृश्य की जरूरत को हिसाब से असली पात्रों को यदि आग लगानी ही हो तो उसके कपड़ों में हल्का-सा पेट्रोल डालकर आग लगाई जाती है। साथ में पानी में भीगे हुए कपड़े तैयार रखे जाते हैं। शॉट खत्म होते ही आग तुरन्त बुझा दी जाए ऐसी व्यवस्था रखते हैं। निर्माता के रूप में राजकपूर की पहली फिल्म 'आग' में राजकपूर का मुँह जलता हुआ दिखलाया गया था। अपनी सुन्दरता को नष्ट करने के लिए वह स्वयं मुँह जला लेता है। इसी तरह और भी कई फिल्मों में कलाकारों के जले मुँह, हाथ-पैर आदि दिखलाए जाते हैं। आग को उसके मुंह के पास से इफेक्ट देने के लिए गुजारा जाता है। वह चीखता है। फिर उसका मेकअप किया जाता है। यह मेकअप इतनी अच्छी तरह किया जाता है कि आपको यह लगे कि उसका अंग-अंग सचमुच ही जल गया है।

'टावरिंग इन फरनो' में एक व्यक्ति खड़ा-खड़ा आग में जलता हुआ दिखलाया गया था। इसी तरह होमी वाडिया की फिल्म 'चार दरवेश' में एक खलनायक बी.एम. व्यास खुद जले थे। 'टावरिंग इन फरनो' में आदमी को जलाने के लिए आग सुपर इम्पोज की गई थी। चार दरवेश में बी.एस. व्यास को जलाने के लिए उनका एक पुतला बनाया गया था। आग लगने से पहले असली बी.एस. व्यास को उनके ही पुतले से इस सफाई से बदला गया था कि दर्शकों को यह मालूम ही नहीं पड़ा कि कब असली कलाकार हटा लिया गया और कब पुतला जलने लग उठा। यह फोटोग्राफिक तकनीक का ही कमाल था, जो जलने का असली दृश्य दर्शकों को लग रहा था।

जापानी फिल्म ''थ्री ट्रैजर्स'' में लावा से जलते हुए आदमी को दिखलाने के लिए

असली शॉट मिनिएचर वर्क और बहता हुआ लावा के लिए सुपर इम्पोदजीशन शॉटों का मिश्रण किया गया था।

कुछ एक्शन व थ्रिलिंग फिल्मों में आपने यह भी देखा होगा कि हीरोइन किसी पहाड़ की खाई में लटकी हुई हैं। हीरो और खलनायक पहाड़ की चोटी पर लड़ रहे हैं। नीचे खाई में आग लगी हुई है। अंगारे जल रहे हैं। तीनों में से कोई भी थोड़ा-सा झुका तो सीधे मौत के मुँह में जाएगा और भस्म हो जाएगा। इस दृश्य को दर्शाने के लिए मास्किंग करके फ्रेम के ऊपरी भाग में समूचा दृश्य फिल्मा लिया जाएगा। इसके बाद फिल्म में बाकी बचे हुए खाली भाग में मैटिंग करके जलते हुए अंगारों और पहाड़ के टुकड़ों का मिनिएचर पहाड़ बनाकर फिल्म के फ्रेम के ऊपर एवं नीचे के भाग को मैच कराते हुए दुबारा फिल्माया जाएगा जिसका अंतिम रूप दर्शकों को बहुत ही रोमाचिंत करने वाला होगा। आग चूंकि बहुत ही खतरनाक होती हैं, जिसमें आदमी जलकर मर जाता है या फिर सम्पत्ति जल जाती है, जब भी दर्शक आग के भयंकर दृश्य देखते हैं। तो उनकी मनः स्थिति पर उसका प्रभाव पड़ता ही है। अधिकांश निर्माता इसीलिए आग का प्रयोग फिल्म में अक्सर करते ही रहते हैं।

इसी तरह भय और रोमांच उत्पन्न करने वाला दूसरा दृश्य भूकम्प या भूचाल का होता है। इस दृश्य का फिल्मांकन बड़ा ही खर्चीला और दुरूह कार्य होता है। इसलिए आम तौर पर ऐसे दृश्य नहीं फिल्माए जाते हैं। बहुत वर्षों के अन्तराल के बाद चोपड़ा की फिल्म 'वक्त' में ऐसा ही एक दृश्य देखने को मिला था जो जापानी टेक्नीशियनों की मदद से फिल्माया गया था। सारी कोशिशों के बावजूद यह दृश्य बहुत प्रभावशाली नहीं बन पाया था। इसको फिल्माने के लिए कई तौर-तरीके अपनाने पड़ते हैं। पहले तो जिस सेट को तोड़ना है उसको बगैर भूकम्प फिल्मा लेना पड़ता है। उसके बाद उसी सेट को हिलता-डुलता दिखलाने के लिए कैमरे के सामने एक बड़ा-सा कांच हिला-हिलाकर शॉट लेना पड़ता है। उसके बाद अगर कोई दीवार टूटी हुई दिखलानी है तो उसका हिस्सा अलग से लेकर उसको टूटता हुआ बतलाना पड़ता है। यदि मकान, दुकान या अन्य भाग टूट गए हैं तो उनके अलग-अलग शॉट लेने पड़ते हैं। इनके साथ सेट पर काम करने वाले पात्रों के लिए रिएक्शन शॉट लेना पड़ता है। सम्पादन के समय वक्त जरूरत के अनुसार शॉट लगाकर उसको अंतिम रूप दे दिया जाता है। पहले तो ऐसे दृश्यों को लेने के लिए ईट-पत्थर आदि का ही प्रयोग करना पड़ता था, जिससे पात्रों के चोट लगने का डर बना रहता था, मगर आजकल थर्मोकोल के काम में आने, लग जाने से यह समस्या समाप्त प्राय हो गई है। थर्मोकोल की दीवारें छत आदि बनाकर सेट बना लिए जाते हैं। उन्हें बाद में गिरा दिया जाता है। यह थर्मोकोल इतना हल्का होता है कि उससे किसी तरह की चोट लगने का खतरा ही नहीं रहता है।

सीसिल डीमेल की फिल्म ''सेमसन एण्ड डिलाहिला'' के क्लाइमेक्स, जिसमें सेमसन विशालकाय मूर्ति और साथ में ऐरेना का सेट तोड़ता है, में थर्मोकोल की ही सेट लगाया गया था। आदमी बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़ों के नीचे दबकर मर जाते हैं, ऐसा दिखाया गया था। थर्मोकोल का बना होने से मरने का प्रभाव, सेट टूटने का प्रभाव आदि भी स्पष्ट नजर आता है पर नुकसान किसी को भी नहीं होता।

अधिकांश खौफनाक दृश्य इसी तरह की तकनीकों का प्रयोग करके फिल्माए

जाते हैं।

4.15 रोमांचक दृश्यों का फिल्मांकन

एक जमाना था जब घोड़े, कुत्ते आदि पशुओं के एक्शन और थ्रिल को मुख्य आधार बनाकर फिल्में बनाई जाती थीं। आजकल इनका रिवाज कम हो चला है। हाँ, जंगली पशुओं-शेर, गोरिल्ला, बाघ, चीता, मगरमच्छ आदि जानवरों पर कथानक जरूर तैयार होते रहे हैं। आजकल टार्जन पर आधारित फिल्मों में यह सब जंगली पशु रखना जरूरी होता है।

हॉलीवुड में किंग-कांग के नाम से एक फिल्म बनी थी। एक लम्बा-चौड़ा गोरिल्ला दिखाया या था। इसकी ऊँचाई करीब 75 फीट थी। बहुचर्चित पहलवान किंग-कांग का नामकरण भी एक पुरानी फिल्म किंग-कांग के नाम पर पड़ा था। पिछले दिनों दिवंगत चित्रप्पा देवर ने 'हाथी मेरे साथी' और 'गाय और गोरी' नामक फिल्में बनाई थी। इनमें हाथी और गाय प्रमुख कलाकार थे। इन जानवरों से भाँति-भाँति की थ्रिल पैदा की जाती है। कुत्ते और घोड़े की भूमिका वाली फिल्मों में ये कुछ न कुछ चमत्कारी काम करते दिखाये जाते हैं। इनकी इन हरकतों से रहस्य-रोमांच पैदा होता ही है, साथ ही एक फिल्म बनायी थी जिसमें एक चिम्पांजी ने रोल किया था। यह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी, इसके क्लाइमेक्स में एक बच्चे को ऊपर फेंक दिया जाता है और चिम्पांजी उस बालक को झेल लेता है। यह फिल्म 'इंसान' थी।

चिम्पांजी ने इस दृश्य को बहुत ही जीवन्त बनाया था। चिम्पांजी फिल्मों को लोकप्रिय बनाने में बहुत ही अच्छी भूमिका अदा करते रहे। टार्जन फिल्मों में टार्जन को जंगल में माँ-बाप के मरने के बाद मादा गोरिल्ला पालती है और हर खतरे से उसकी रक्षा करती है। ये सारे दृश्य दर्शकों की भावनाओं को छू लेते हैं। जब कोई भी पशु-विशेष पुरुष कलाकारों से अधिक महत्वपूर्ण भूमिका करता है, तो वह दर्शकों के मन को मोह लेता है।

घोड़े कुत्ते या अन्य पशु कलाकार जिस फिल्म में काम कर रहे हों, उन फिल्मों में अक्सर खलनायक के सहयोगी हीरो को मारने के लिए उसे पहाड़ की चोटी पर से फेंक देते हैं। उसे मरा हुआ समझकर छोड़ जाते हैं। इसके बाद घोड़ा, कुत्ता मिलकर अथवा घोड़ा अकेला ही उसको बचाते रहते हैं। अगर कुत्ता साथ में है तो घोड़े को बुलवाएगा और कहीं से लाकर उसे एक रस्सी देगा जिसको घोड़ा नीचे फेंकेगा और उस रस्सी को पकड़कर हीरो ऊपर आएगा। कभी-कभी हीरो खुद ऊपर आने में असमर्थ हो तो घोड़ा उसे रस्सी पकड़वाकर ले आता है। घोड़ा, कुत्ता बहुत वफादार व समझदार जानवर होते हैं, मगर इस तरह रस्सी फेंक कर हीरो को ऊपर खींच लेना घोड़े या कुत्ते का काम नहीं है।

इस तरह के दृश्यों को फिल्माने के लिए 'चीट शॉट' लिए जाते हैं। कुत्ता हीरो को गिरते देखकर भागकर घोड़े के पास जाता है। वह उसे भौं-भौं भौंक कर कुछ समझाने की कोशिश करता है कि उसका मालिक खतरे में है। कभी वह उसकी लगाम पकड़कर उसको हीरो के पास ले आता है। कभी कुत्ता अधिक प्रशिक्षित हो तो घोड़े की पीठ पर सवार होकर उसको राह दिखलाता है। कुत्ते के मुंह में रस्सी पकड़ा दी जाती है। उसके

ट्रेनर के इशारे पर घोड़े के पास आकर वह उसे डांट भी देता है। घोड़े को रस्सी पर मुँह मारते दिखला कर फिर वह रस्सी कोई आदमी या उसका सहायक आउट फोक्स से रस्सी फेंक देता है ताकि रस्सी ही नजर आती है। उस रस्सी को हीरो पकड़ लेता है। रस्सी के ऊपरी छोरों को फाइट मास्टर का सहायक मजबूती से पकड़े रहता है।

वह फिर उस रस्सी के जरिये ऊपर चढ़ता है। बीच-बीच में कुछ शॉट ऐसे भी दिये जाते हैं जिसमें रस्सी का छोर घोड़े के मुँह में होता है। वह पीछे की तरफ हटता जाता है। जब घोड़े को आदमी के साथ फाइट दिखाई जाती है, उन दृश्यों में भी कुछ शॉट असली तथा कुछ शॉट डमी होते हैं; ऐसे दृश्यों के लिए घोड़े की टांगों की डमी बनवानी पड़ती है। इसी डमी से फाइट मास्टर का असिस्टेण्ट आउट फील्ड से लड़ने वालों को मारता रहता है।

ऐसा ही एक दृश्य गुजराती फिल्म निर्माता राजकुमार बोहरा की एक गुजराती फिल्म में भी आया था। उसमें बहुत ही अच्छा दृश्य लिया गया था। खलनायक के आदमी उस घोड़े को पकड़ना चाहते हैं। घोड़ा उनसे बचना चाहता है। असली और डमी शॉटों का बहुत अच्छा मिश्रण करके फिल्म का यह बहुत ही अच्छा सीन बनाया जाता था। इसी तरह जब कुत्ते को खलनायक की पहरेदारी पर बिठला देते हैं, तो कुत्ता उसको आजाद होने से रोकता है। मान लीजिए कि खलनायक को पानी या कीचड़ में गिरा दिया गया है, जिससे वह बाहर निकलना चाहता है। वह कुत्ता उसके सिर पर डण्डा मार-मार कर पानी से बाहर निकलने से रोकता है। उस दृश्य को लेने के लिए भी लकड़ी के डण्डे मारने के शॉट भी चीट शॉट ही लेने पड़ेंगे। कुत्ते के मुँह में लकड़ी डालकर उसके शॉट ले लिए जाते हैं। बाद में आउट फील्ड से एक आदमी उसे पकड़कर दूसरा आदमी उसे पीटता रहता है। नाडिया की फिल्मों में, जिनमें नाडिया, सरदार मन्सूर की भूमिका होती थी एक दृश्य अवश्य ऐसा देखने का मिल जाता था, जिसमें खलनायक या उसके आदमी हीरो या हीरोइन का पीछा करते हुए दिखलाए जाते हैं। इन दृश्यों में खलनायक के आदमी हीरो या हीरोइन को मारने के लिए पिस्तौल से गोलियाँ भी चलाते थे। इन गोलियों से बचने के लिए हीरो-हीरोइन सर्कसी करतब दिखलाते हुए बचने की कोशिश करते हैं। कभी घोड़े की पीठ पर लेटकर, कभी उसकी आड़ में खड़े होकर, कभी बगल में छिपकर, कभी जमीन पर जम्प लेकर वापिस घोड़ों की पीठ पर बैठकर, कभी सरपट भगाकर बचने की कोशिश करते थे।

ये सारे दृश्य हीरो-हीरोइन तो कर नहीं पाते। उनकी जगह डुप्लीकेट लोग यह शॉट देते हैं। शुरू-शुरू में ऐसे शॉट अजीम भाई, जो अपने जमाने के एक मशहूर फाइट मास्टर रहे, दिया करते थे। बाद में तो और भी कई लोगों ने शॉट देने की ट्रेनिंग ले ली। आजकल घोड़ों की जगह यह शॉट मोटर बाइक पर लिया जाता है। बहुधा खलनायक के आदमियों से बचते-बचते हीरो घोड़े के साथ दो पहाड़ों के बीच की खाई को लम्बी कूद करके पार कर लेता था, जो असली शॉट होते थे, मगर जब कभी बहुत लंबी कुदान वाली स्थिति बन जाती है तो इसके लिए एक ट्रिक किया करते थे। पहले खाई का मास्किंग शॉट लिया जाता था। बाद में घोड़े पर बैठे हीरो या हीरोइन की एक स्टिल ले जाकर, उसकी आउट लाइन कर दी जाती थी। उस आउट लाइन को एक पारदर्शी कांच पर चिपका कर उसके बाद उसको कैमरे के लेंस के सामने से गुजारा जाता था। दो शॉट

ऐसे लिए जाते थे जिसमें एक होता था जम्प करने वाली साइड पर सवार सहित घोड़े के पैर ऊपर उठाने का और दूसरा शॉट जम्प के बाद का दूसरी साइड में पैर टिकाने का। इन सब शॉटों को जोड़कर सम्पादक उनको दर्शकों के सामने इस तरह पेश करता था कि उनको लगे कि घोड़ा सचमुच ही खाई पार कर लेता है।

इन दिनों कुछ समय से घोड़ों की जगह मोटर साइकिलों की चेज चल पड़ी है। वहीं कुछ ऐसे स्टण्ट मास्टर पैदा हो गए हैं, जो ऐसे दृश्य खुद ही दे दिया करते हैं। जिस साइड में हीरो को जम्प देकर खाई पार करनी है उस साइड पर एक ढलाबनुमा प्लेटफार्म बनाया जाता है। साइकिल सवार बड़ी तेजी से मोटर साइकिल चलाते हुए उस प्लेटफार्म पर आकर जोर से जम्प देकर चट से दूसरी तरफ पहुँच जाता है। यह डुप्लीकेट बहुत ही कुशल और ट्रेण्ड होते हैं। अपने काम को तरोताजा रखने के लिए ये निरन्तर अभ्यास करते ही रहते हैं।

रामानन्द सागर की एक फिल्म बनी थी, जिसमें रणधीर कपूर हीरो थे। उस फिल्म में आउटडोर में ऐसा शॉट लिया गया था, जिसमें हीरो रणधीर कपूर को दो पहाड़ों के बीच बनी एक खाई को पार करना था। यह शॉट जिस डुप्लीकेट पर लेना था। वह बहुत ही कुशल माना जाता रहा है, मगर शॉट देते वक्त वह भी चूक कर गया था। उसकी मोटरसाइकिल का इंजन बीच में ही बन्द हो गया और खाई में ही गिर गया। सौभाग्य से उसको चोट नहीं लगी और खड़ा होकर उसने शॉट दे दिया।

मोटर बाइक पर भाँति-भाँति के करतब करने वाले बहुत सारे हैं। उनमें एक लड़की भी है। यह लोग थोड़ा-सा पारिश्रमिक कमाने के लिए अपने सिर पर मौत का साया लेकर खतरनाक से खतरनाक शॉट देने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। 'शोले' नामक फिल्म में हेमामालिनी एक तांगा चलाती हैं। उसके तांगे के सारे खतरनाक शॉट एक डुप्लीकेट लड़की ने दिये थे। ताजा फिल्म 'फांसी के बाद' में हेमामालिनी की गुण्डों के साथ एक फाइट है। इसमें हेमा एक मोटर बाइक पर बैठी-बैठी गुण्डों की पिटाई करती हैं। यह शॉट भी डुप्लीकेट ने दिया है। शॉट देने वाले स्टण्टमैन खतरा मोल लेते हुए भी बड़ी सावधानी रखते हैं। फिर भी कभी-कभी एक्सीडेन्ट हो ही जाता है और वे दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं। दिवंगत जुगल किशोर की दो फिल्मों में मोटर बाइक के स्टण्टमैनों ने काम किया था। इन दोनों ही फिल्मों में स्टण्टमैनों को दुर्घटना का शिकार होना पड़ा था।

4.16 जल-नभ में शूटिंग व्यवस्था

जिन लोगों ने फिल्म निर्माता राम माहेश्वरी की फिल्म 'काजल' देखी होगी, उनको शैलेश कुमार के समुद्र में डूब कर मरने का दृश्य अवश्य ही याद रह गया होगा। शैलेश कुमार समुद्र में तैरने के लिए जाता है और वहाँ एक भंवर की चपेट में फंस जाता है। भंवर से मुक्ति बाकर बाहर निकलने के लिए वह बहुत हाथ-पैर मारता है, परन्तु निकल नहीं पाता है। छटपटा कर वहीं डूब कर मर जाता है।

इस दृश्य को फिल्मांकित करने में दिग्दर्शक को चीटिंग का सहारा लेना पड़ा था। कुछ शॉट तो समुद्र में लिए गए थे और कुछ शॉट या तो स्टूडियो में किसी कुण्ड में पानी भरवाकर या किसी स्वीमिंग पूल में लेने पड़े थे। यह सब इसलिए करना पड़ता है कि

समुद्र में जो शॉट फिल्म में उपयोग के लिए दिग्दर्शक को चाहिए वे मिल जाएंगे, यह असम्भव सा ही होता है। इसलिए प्रभावी शॉट लेने के लिए नियंत्रित परिस्थितियों में ही शूटिंग करनी पड़ती है। फिर शूटिंग के लिए आवश्यक प्रकाश के लिए प्रकाश साधन (लाइटें) जलाने की सुविधा भी नियंत्रित परिस्थितियों में ही अधिक सुविधाजनक रहती है। वैसे तो जरूरत पड़ने पर समुद्र में भी सीमित दायरे में लाइटें लगाकर प्रकाश व्यवस्था करने का बन्दोबस्त किया जा सकता है। इसके लिए जनरेटर भी ले जाना पड़ता है और प्रकाश व्यवस्था के अन्य उपकरणों को रखने के लिए नावों की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। यह सब भी तब ही संभव हो पाएगा जबकि समुद्र शान्त होगा। उफान खाते हुए समुद्र में प्रकाश की व्यवस्था स्थिर नहीं रह सकती है। इसलिए लाइटों की व्यवस्था करना बेमानी ही हो जाता है। कुछ चर्चा यहाँ पर पानी में भंवर कैसे बनने लगता है, इसके बारे में कर लेना उपयुक्त होगा।

किसी पानी की बाल्टी में अगर पैंदे में बारीक छेद हो जाता है, तो उससे पानी बाहर निकलने लगे तो पानी की ऊपरी सतह के बीच में आपको एक गड्ढा चक्कर लगाता हुआ नजर आएगा और उस गढ्डे के भरने के लिए पानी की गोलाकार लहरें पानी पहुँचाएंगी। चूंकि नीचे के पैंदे वाले छेदों से पानी का रिसना बन्द नहीं होता, इसलिए यह वर्तुलाकार गड्ढा भी बदस्तर कायम ही रहेगा। इसी गड्ढे को भंवर कहते हैं। बाढ़ के समय नदी में तेज बहाव में, समुद्र में इसी तरह का वर्तुलाकार गड्ढा बनता है। यह गड्ढा ही भंवर कहलाता है। वहाँ पर आकार उसका काफी बड़ा होता है। उसमें नावें, जहाज, व्यक्ति, जीव-जन्तु जो भी फंस जाएगा, वह बचकर निकल नहीं पायेगा।

जब स्टूडियो में ऐसा भंवर बनाना पड़ता है तब एक बड़ा सा हौज का निर्माण किया जाता है, जिसके पैंदे में बीचों-बीच पानी निकलने का एक छेद रहता है। पानी खत्म नहीं-हो जाए इसके लिए ऊपर एक व्यवस्था रहती है। इससे उसमें पानी आता रहता है और भंवर वहीं बन जाता है।। शैलेश कुमार की मौत के दृश्य को लेने के लिए दिग्दर्शक को ऐसी ही व्यवस्था करनी पड़ी थी। पानी की ऊपरी सतह के दृश्य लेने हों तो कैमरा ऊपर किनारे पर रखकर ऐसे दृश्य लिए जा सकते हैं, मगर जब पानी के अन्दर के दृश्य लेने हों तो उसके लिए दो तरीके काम में लिए जाते हैं।

पहला तरीका तो यह है कि एक ऐसा कुण्ड बनाया जाता है, जिसमें जगह-जगह पर पारदर्शी कांच लगे रहते हैं। इन पारदर्शी कांचों में लाइटें रखकर पानी के भीतरी भाग को रोशन किया जाता है। ऐसे की कांचों के पीछे कैमरा भी रखते हैं, ताकि पानी के अन्दर की शूटिंग की जा सके। दूसरा तरीका यह है कि उस विशेष किस्म के कैमरे का इस्तेमाल करें जिसके जरिए पानी के अन्दर शूटिंग कर सकते हैं। मगर दुर्भाग्य से भारत में अभी तक ऐसा एक भी कैमरा नहीं आया। इसमें कैमरा मैन को भी कैमरे के मय साज-सामान के साथ पानी के अन्दर जाना पड़ता है। पानी में कुछ देर रहने के लिए गोताखोरों की आक्सीजन युक्त पोशाक भी पहननी पड़ती है। इस पोशाक के साथ एक रस्सी बंधी हुई रहती है। इस रस्सी के साथ कैमरामैन को अन्दर उतारा अथवा बाहर की तरफ खींचा जा सकता है। यह शूटिंग बहुत जोखिम भरी होती है। इसमें समुद्री जानवरों के हमले

का खतरा तो हर वक्त कैमरामैन को परेशान रखता ही है।

आकाश में शूटिंग

उन्मुक्त आसमान में किसी भी हवाई जहाज अथवा हेलीकाप्टर की शूटिंग करना तो आसान काम है, आप भूमि पर कैमरा रख कर उनकी शूटिंग कर सकते हैं और जरूरत पड़ने पर टॉप शॉट लेने के लिए हेलीकाप्टर में कैमरा रखकर जमीन पर घट रही घटनाओं की शूटिंग कर ली जाती है, मगर ऐसी शूटिंग करने का प्रावधान हवाई जहाज में नहीं होता, क्योंकि हवाई जहाज चारों तरफ से बन्द रहते हैं। किन्तु सेना के विशेष रूप से बनाये गए हवाई जहाजों में इसकी व्यवस्था होती है। यान द्वारा दी जाने वाली कार्यवाहियों और उनके परिणामों को रिकार्ड करने की सुविधा होती है।

इसके लिए सैनिक जहाजों में स्वचालित कैमरा फिट रहता है। यह व्यवस्था दूसरे महायुद्ध के दौरान की गई थी। इस व्यवस्था से यह पता रहता है कि उनके हवाई जहाजों ने दुश्मनों को कितना नुकसान पहुँचाया। यह उनके काम की प्रामाणिकता के लिए काम आता है। बाद में मूवी कैमरा लगाया जाने लगा अब तो स्पूतनिक, राकेट आदि के जरिये चन्द्रमा की सूर्य, तारों आदि की तस्वीरें ले ली जाती हैं, बेचारी पृथ्वी की तो बिसात ही क्या।

मगर जब हवाई जहाज के अन्दर के भाग का शॉट लेना हो तो उसके लिए अन्दर के हिस्सों का स्टूडियो में अथवा बाहर मॉडल बनाना जरूरी होता है। अन्यथा फिर पूरा हवाई जहाज ही किराये पर लेकर शूटिंग करवानी पड़ती है जो बहुत असुविधाजनक और खर्चीली होती हैं।

4.17 शब्दावली

- ऑप्टिकल प्रिंटिंग : अतिरिक्त प्रभाव, स्पेशल एफेक्ट
- ब्लोअप की प्रक्रिया : 16 गेज से 35 एम.एम. गेज में बदलना
- कार्टून फिल्में : ''मिकी माऊस'', ''डोनाल्ड डक''
- मिनिएचर शूटिंग : विशाल वस्तु का छोटा मॉडल
- टाइटिल्स का फिल्मांकन : शीर्षक का फिल्मांकन

4.18 संदर्भ ग्रन्थ

(i) इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म प्रोडक्सन राजकृष्ण मिश्र

(ii) फिल्म ऐज फिल्म वी0 पी0 परकिन्स

(iii) सिनेमा ऐज ऐन आर्ट जे0 बी0 डिबरिश

(iv) मूवी मुगल्स फिलिप फ्रेन्च

(v) फिल्म एण्ड रियल्टी रॉय आर्मेस

(vi) माय फेयर लेडी एलन जे लरनर

4.19 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) ऑप्टिकल प्रिंटिंग किसे कहते हैं?

(ii) ब्लोअप की प्रक्रिया क्या होती है?

(iii) मिनिएचर शूटिंग कैसे होती है?

(iv) कार्टून फिल्म का तात्पर्य क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(i) मिनिएचर शूटिंग का विस्तार से वर्णन कीजिए।

(ii) कार्टून फिल्म की निर्माण प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन कीजिए।

(iii) टाइटल्स का फिल्मांकन कैसे होता है ? वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) ऑप्टिकल प्रिंटिंग कहते हैं -

(i) किताब की छपाई

(ii) अतिरिक्त प्रभाव, स्पेशल एफेक्ट

(iii) एक प्रकार का चश्मे का शीशा

(iv) कैमरा वर्क

(ख) ब्लोअप की प्रक्रिया-

(i) कम गेज से अधिक गेज पर फिल्म बनाना। जैसे 8 एम.एम. से 16, एम.एम., 16 से 35 एम.एम.

(ii) एअर कन्डीशनर का ब्लोअर

(iii) स्टूडियो में लगा ब्लोअर

(iv) फाइट सीन

(ग) मिनिएचर शूटिंग-

(i) बड़ी चीज का, छोटा मॉडल बनाना।

(ii) चूहों या अन्य जानवरों के शॉट लेना।

(iii) एक विशेष प्रकार की कुर्सी

(iv) छोटी फिल्म बनाना।

(घ) टाइटल्स का फिल्मांकन-

(i) बोर्ड पर लिखे हुए को फिल्माना

(ii) लिखा हुआ कार्ड पढ़ना

(iii) मील का पत्थर।

(iv) फिल्म के शीर्षक शूट करना।

उत्तर - (क) ii, (ख) i, (ग) i, (घ) iv

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

2

फिल्म प्रोडक्शन-।

इकाई -1 5
फिल्म निर्माण : कला, स्टण्ट, प्रचार-प्रसार तथा लोकेशन

इकाई-2 एवं 3 23
फिल्म संपादन

इकाई-4 65
संपादन के आधार

इकाई-5 87
रिकार्डिंग एवं डबिंग

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
श्री एम0 एल0 कनौजिया	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापन

1- प्रो0 राम मोहन पाठक - वाराणसी

2- डॉ0 अर्जुन तिवारी - इलाहाबाद

सम्पादन

1- श्री राजकृष्ण मिश्र

लेखक मंडल

PGDEM&FP - 04

1- सुनील कुमार श्रीवास्तव - इलाहाबागद

2- राघवेन्द्र मिश्र - काशी

3- श्री राजकृष्ण मिश्र - लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से कुलसचिव श्री एम0 एल0 कनौजिया, द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2008

मुद्रक : नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद, मुद्रित। फोन - 2548837

इकाई - 1 फिल्म निर्माण : कला, स्टण्ट, प्रचार-प्रसार तथा लोकेशन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 फिल्म निर्माण : अन्य योगदानकर्ता

1.3 कला निर्देशन

1.3.1 कला निर्देशक

1.3.2 कला निर्देशक के कार्य

1.4 स्टण्ट निर्देशन

1.4.1 स्टण्ट निर्देशक

1.4.2 स्टण्ट निर्देशक के कार्य

1.5 जनसंपर्क तथा प्रचार

1.6 लोकेशन प्रबंधन

1.7 फिल्म निर्माण की अन्य विधाओं का महत्व

1.8 उपसंहार

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

1.11 प्रश्न

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे :-

(1) निर्देशक, संगीतकार, कलाकारों के अतिरिक्त भी फिल्म निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लोगों का परिचय तथा योगदान।

(2) कला निर्देशक, कला निर्देशन तथा फिल्म निर्माण में उसका महत्व।

(3) स्टण्ट निर्देशक, स्टण्ट कलाकार तथा स्टण्ट दृश्यों का फिल्म में महत्व ।

(4) जनसंपर्क,प्रचार, लोकेशन प्रबंधन आदि फिल्म से जुड़े कार्य।

(5) फिल्म निर्माण की इन विधाओं का महत्व ।

1.1 प्रस्तावना

फिल्म निर्माण में अनेक लोगों का योगदान होता है। केवल निर्देशक,संगीतकार, कलाकार ही मिल कर फिल्म पूरी नहीं करते। हाँ,इन्हें लोकप्रियता ज्यादा मिलती है। निर्देशक के हाथ में चूँकि फिल्म की पूरी कमान होती है। अतः फिल्म उसी की कृति मानी जाती है। फिल्म की कहानी, पटकथा और संवाद चूँकि जनता की जबान पर चढ़ जाते हैं अतः लेखक की मेहनत भी लोगों को याद रह जाती है।

इसी तरह संगीतकार, गीतकार और गायक भी लोकप्रिय हो जाते हैं क्योंकि उनकी रचना को लोग सुनते हैं और उनकी आवाज को लोग पहचानते हैं। कलाकार फिल्म का सबसे लोकप्रिय व्यक्तित्व होते हैं। दर्शक पूरी कथा को उन्हीं के हाव-भाव, अभिनय तथा व्यक्तित्व से अनुभव करते हैं। इस प्रकार दर्शकों की नजर में उनका सर्वाधिक क्रेज होता है। लेकिन ऐसे और भी लोग होते हैं जो पर्दे के पीछे रहते हैं। लेकिन फिल्म में उनकी प्रतिभा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। दर्शक उनकी मेहनत को देखते भी हैं पर श्रेय उनको कम मिल पाता है।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उनके बारे में बहुत कम लिखा जाता है।उनका चेहरा भी शायद ही कभी सामने आ पाता है। यह शख्स चुपचाप परिपूर्ण तरीके से अपना काम अंजाम तक पहुँचाते हैं । फिल्म जब सफल होती है तथा उसे दर्शक की प्रशंसा मिलती है

तो यही इनकी भी सफलता होती है जिससे इन्हें प्रशंसा मिलती है।

1.2 फिल्म निर्माण : अन्य योगदानकर्ता

फिल्म के निर्माण में तकनीशियनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। कला निर्देशन, वस्त्र सज्जाकार, केश सज्जाकार, स्टण्ट निर्देशन आदि सभी मिलकर अपने अपने क्षेत्र में योगदान करते हैं। आउटडोर लोकेशन का चयन और वहाँ पर शूटिंग की व्यवस्था करना भी फिल्म के कैनवास को भव्यता प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण काम होता है।

एक फिल्म जब सिनेमा हाल में जारी की जाती है अथवा जारी होने वाली होती है तो उसका प्रचार-प्रसार भी एक महत्वपूर्ण काम होता है जिससे फिल्म के बारे में दर्शकों में अपेक्षित उत्सुकता विकसित करने में मदद मिलती है। यही नहीं छोट- बड़े अनेक ऐसे काम हैं जो फिल्म निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । उनका काम दिखाई नहीं देता परन्तु उनके बिना फिल्म पूरी हो पाना भी संभव नहीं होता ।

यह योगदानकर्ता अपनी रचनात्मकता तथा प्रबंधकीय कौशल से अपनी जिम्मेदारी को पूरा करते हैं। फिल्म निर्माण के दबावों के बीच काम करते हुए यह उन स्थितियों की व्यवस्था भी करते हैं जिनकी मदद से निर्देशक और कलाकार फिल्म में अपने दायित्वों को पूरा करते हैं।

कला निर्देशक का ही कमाल होता है कि वह सेट्स के माध्यम से ऐसे आभासी बिम्ब उपस्थित करता है कि लोगों को वास्तविकता का आभास होता है। कई बार फिल्मों में आउटडोर लोकेशन पर शूटिंग करना फिल्म के परिवेश के लिए जरूरी होता है। लेकिन दिक्कतें ऐसी होती हैं जिनके चलते बाहरी स्थलों पर शूटिंग करना संभव नहीं हो पाता । ऐसे में निर्देशक को फिल्म पूरी करने में सर्वाधिक मदद कला निर्देशक ही करता है । हाल के वर्षों

में दीपा मेहता की फिल्म वाटर की शूटिंग का जम कर विरोध चयनित आउटडोर लोकेशन वाराणसी में किया गया। निर्देशिका ने अस्सी-भरैनी क्षेत्र, जहाँ का शूटिंग के लिए चयन किया था वह गंगा के किनारे स्थित था और धार्मिक दृष्टि से तुलसीदास तथा हिन्दू धार्मिक केन्द्र के रूप में चिन्हित था। दीपा मेहता की फिल्म के अंशों, पात्रों के नामों आदि पर ऐसा विवाद उभरा जिसके चलते फिल्म की शूटिंग वहाँ कर सकना संभव नहीं हो सका ।

ऐसे में मध्य प्रदेश में बाद में शूटिंग की दूसरी जगह निर्धारित की गयी और निर्देशिका ने अपने कला निर्देशक की कुशलता के माध्यम से मध्यकालीन वाराणसी को वहाँ पर आभासी रूप में उपस्थित किया तथा तय कार्यक्रम के अनुसार फिल्मांकन की प्रक्रिया पूरी की।

कला निर्देशक के अतिरिक्त स्टण्ट निर्देशक का काम भी ऐसा होता है कि दर्शक फिल्म को देखकर रोमांचित हो उठता है। मार-धाड़, हिंसा, तोड़-फोड़, भिड़न्त, खतरनाक दृश्य जैसे बिल्डिंग से छलांग लगाना, खाई से लुढ़कना, मोटरसायकिल और कार रेसिंग के स्टण्ट प्रस्तुत कर दर्शक को अचंभित कर देने और उन्हें आश्चर्यचकित करने की कला स्टण्ट निर्देशक की होती है।कहने का तात्पर्य यह है कि फिल्म निर्माण के यह अन्य योगदानकर्ता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं तथा इनके विषय में भी जानना महत्वपूर्ण होता है।

1.3 कला निर्देशन

कला निर्देशन फिल्म निर्माण का वह कार्य है जो उसकी दृश्यावली को निर्देशक की कल्पना के अनुरूप प्रस्तुत करने में मददगार होता है। फिल्म में कहानी और काल परिस्थिति के अनुरूप दृश्यों के सेट्स निर्मित कर फिल्मांकन को सुचारू रूप से चलने लायक जगह प्रस्तुत करना कला निर्देशन की जिम्मेदारी होती है।

1.3.1 कला निर्देशक

कला निर्देशक फिल्म में निर्माणमूलक कलाओं को उपस्थित करने के दायित्व का निर्वहन करता है। उसकी जिम्मेदारी स्टूडियो में आभासी दृश्यावली बनाने की होती है।

फिल्म की शूटिंग स्टूडियो में होती है, यह सभी जानते हैं लेकिन स्टूडियो क्या होता है? जिन लोगों ने स्टूडियो थोड़ा-बहुत देखा है, वे बता सकते हैं कि स्टूडियो बड़ी-बड़ी इमारतों का एक ऐसा इलाका होता है जिसमें अनेक निर्माताओं के दफ्तर होते हैं। इसके अलावा बाग-बगीचे, खाली जगह भी स्टूडियो का हिस्सा होता है।

फिर शूटिंग कहाँ होती है? जब स्टूडियो में शूटिंग होती है या यह कहा जाता है कि फलां स्टूडियो में फलां फिल्म का सेट लगा है, तो उसका अर्थ होता है स्टूडियो का स्टेज व्यस्त है। दफ्तरों आदि के अलावा हर स्टूडियो में कुछ स्टेज होते हैं। यह स्टेज और कुछ नहीं लंबे-चौड़े आकार के बड़े बड़े और ऊँचे हॉल होते हैं। इनमें काफी ऊँचाई पर बिजली के बड़े-बड़े हंडे लगे होते हैं। बस, स्टूडियो का स्टेज यही होता है।

जब फिल्म की शूटिंग होती है तो इन्हीं में से किसी हॉल में फिल्म का सेट लगाया जाता है।

फिल्म देखते समय आप देखते हैं कि पात्र कभी किसी झोपड़ी में रह रहे हैं और कभी किसी कोठी का सजा हुआ बढ़िया ड्राइंगरूम उनके काम आ रहा है। कभी गली के कोने में बात चल रही है, कभी कुएं की जगत पर। जब शूटिंग करनी होती है तो सचमुच किसी कोठी के अंदर काम करते रहना या कुएं की जगत पर शूटिंग कर सकना अनेक कारणों से हमेशा मुमकिन नहीं होता । तब वही चीज हॉल में बना ली जाती है। यही फिल्म का सेट कहलाता है। सेट लगाने का काम कला निर्देशक के जिम्मे होता है।

अतः हम कह सकते हैं कि कला निर्देशक ही वह व्यक्ति होता है जो फिल्म में सेट्स लगाने और उन्हें शूटिंग के योग्य बनाने का कार्य पूर्ण करता है। कला निर्देशक रचनात्मकता तथा प्रबंधकीय कौशल का महत्वपूर्ण संगम होता है।

1.3.2 कला निर्देशक के कार्य

कला निर्देशक का यह कमाल होता है कि वह कम से कम खर्च में हूबहू असली लगने वाली नकली चीज बना दे। वह खूबसूरत ड्राइंगरूम बना देगा, जिसकी दीवारें ईंट-पत्थर की नहीं, सिर्फ कपड़े की होगी। खिड़कियों में शीशे की जगह कागज लगा होगा और ऊपर जाने वाली सीढ़ियाँ पोली होंगी। फिर भी फिल्म में वह ड्राइंग रूम देखकर आप सोचे बिना नहीं रह सकेंगे - काश! ऐसा ड्राइंगरूम अपना भी होता।

आम लोगों को यह सब अदभुत लग सकता है, पर जो लोग कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं, वे जानते हैं कि इस प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न करना कोई विशेष बात नहीं। कमरे के अन्दर का कोई भी सेट इस प्रकार लकड़ी के फ्रेमों, मिट्टी , प्लास्टर आफ पेरिस प्लाइवुड , कपड़े और तरह तरह के रंगों की सहायता से लगाया जा सकता है। बाद में उसे फर्नीचर तथा कालीन आदि से सजा दिया जाता है।

कला निर्देशक की खूबी वहाँ अधिक जांची जाती है, जहाँ सेट शानदार न होकर मामूली किस्म के गृहस्थ के घर की झोपड़ी का या इस तरह के किसी सामान्य रोजमर्रा देखे गये कमरे का हो। बड़े शानदार घर की दीवारें साफ, चीजें व्यवस्थित होती हैं पर छोटे घर में कहीं दीवार की कलई उखड़ गयी होती है कहीं कुर्सी के पीछे दीवार पर तेल के धब्बे लग जाते हैं, कहीं कपड़े टांगने की टूटी सी खूंटी लगी होती है।

कला निर्देशन के क्षेत्र में आने की सोचने वालों को, इसीलिए

यह देखना चाहिये कि उनमें यथार्थ को पकड़ पाने की प्रतिभा कितनी है? कहाँ तक वे किसी चीज को बिल्कुल उसी रूप में उतार सकते हैं जैसी वह सामान्य जीवन में नजर आती है। उन्हें सिर्फ घर या कमरे का ही सेट लगाने की बात नहीं सोचनी चाहिए, क्योंकि फिल्म की कहानी के अनुसार कभी-कभी बड़ी अजीबोगरीब सेट लगने पड़ सकते हैं जो न तो कला निर्देशक ने देखे हों और न निर्देशक ने। वह सिर्फ लेखक की कल्पना की उपज हों। ऐसी स्थिति में कला निर्देशक की सूझ-बूझ ही काम करती है।

जब कला निर्देशक कोई सेट लगाता है तो उसे यह ध्यान भी रखना होता है कि उस सेट के आस-पास का वातावरण कहानी में दी हुयी स्थिति के अनुरूप हो। उदाहरण के लिए, मान लीजिए उसे किसी फिल्म के लिए कश्मीर के किसी मकान का सेट लगाना है। अब वह यह ध्यान तो रखेगा ही कि पहाड़ी जगहों के मकान किस तरह के होते हैं, उनकी छत कितनी नीचे होती है, कमरा गरम रखने का क्या प्रबन्ध होता है आदि। इसके साथ ही उसे यह भी देखना होगा कि कमरे की खिड़की से बाहर जो दृश्य दिख रहा है, वह कैसा है, और उसे वास्तविक बनाने के लिए क्या प्रबंध करने होंगे। तब वह उस खिड़की के पीछे निश्चित दूरी पर कोई दृश्य आदि बनाकर सही प्रभाव पैदा करता है।

कला निर्देशन के क्षेत्र में भी नये प्रयोग होते हैं। कोई-कोई निर्माता बड़े-बड़े आलीशान सेट लगाने में ही विश्वास करता है, तो कोई सिर्फ एक ही सेट पर सारी शूटिंग का प्रयोग करता है। कोई सेट की बारीकियों पर ध्यान देकर उसे यथार्थ का प्रभाव देना चाहता है तो कोई सेट सज्जा पर कम ही ध्यान देना जरूरी समझता है। अतः नये आने वाले कला निर्देशकों को हर स्थिति में काम करने के लिए तैयार रहना चाहिए। कोई निर्माता अपने कला निर्देशक को उन सब स्थानों पर ले जाता है जहाँ वह फिल्म की आउटडोर शूटिंग कर रहा हो ताकि अंदर सेट लगाते समय वह उन जगहों को ध्यान में

रखकर काम कर सके। कोई सिर्फ वहाँ की फोटो के आधार पर सेट बनवाता है तब कुछ बातें अपने अनुभव के अनुसार पूरी करनी होती है।

कला निर्देशन भी फिल्म निर्माण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। ऐतिहासिक तथा पीरियड फिल्मों का तो सारा सौन्दर्य ही कला निर्देशक के कौशल पर निर्भर करता है। के. आसिफ की अमर फिल्म मुगले आजम का गीत 'जब प्यार किया तो डरना क्या' किसे नहीं याद होगा। फिल्म में शीश महल का भव्य सेट लगाकर फिल्माए गाने के बिम्ब जो ऊपर छत में जड़े शीशों के टुकड़ों में बनते हैं और उसमें नायिका को देखकर बादशाह का क्रोध जिस तरह तेज होता है क्या उस दृश्य और उस सेट को भूलना संभव है, यही कला निर्देशन का कमाल है।

अनेक फिल्में तो कला निर्देशकों के बल पर ही अधिक दिखाई देती है। इस श्रेणी में लगान, मंगल पाण्डेय, त्रिदेव, मिस्टर इण्डिया, गदर आदि फिल्में तो कई को याद होंगी। कला निर्देशक थर्मोकोल , कपड़े गत्ते, प्लाइवुड, खोखे और आर्टीफिशियल मैटेरियल से जो सेट तैयार कर देते हैं उसी पर कई बार पूरी की पूरी फिल्म शूट कर ली जाती है।

कला निर्देशक का काम श्रमसाध्य तथा चुनौतीपूर्ण होता है। उसे दी गयी समय सीमा के भीतर अपना काम पूरा करके निर्देशक को देना होता है जिसके बाद फिल्म की शूटिंग शुरू होती है। यदि कला निर्देशक अपने कार्य में विलम्ब करता है तो इससे निर्माता को भारी आर्थिक नुकसान तो होता ही है साथ ही साथ फिल्म भी निर्धारित समय सीमा के भीतर पूरी कर पाना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त सुन्दर सेट लगाने के साथ-साथ उसे सुरक्षा मानकों पर भी सतर्क रहना चाहिए। यह बनावटी सेट आगजनी की दृष्टि से अत्यन्त संवेदनशील होते हैं यदि सेट में आग लग जाय तो इससे होने वाले नुकसान की कल्पना आसानी से की जा सकती है।

अतः कला निर्देशक को चाहिए कि वह सुरक्षा मानकों का भी पूरा ध्यान रखे तथा इस तरह की व्यवस्था भी तैयार रखे जिससे कोई दुर्घटना होने की स्थिति में अत्यन्त कम संभव समय सीमा में सेट्स की मरम्मत की जा सके या उसे दोबारा बनाया जा सके।

1.4 स्टण्ट निर्देशन

फिल्मी पर्दे पर नायक एक साथ कई बदमाशों की पिटाई करता नजर आता है किसी दृश्य में गोली चलती है तो कहीं खंजर के वार से खून के फव्वारे फूट पड़ते हैं। यह मारधाड़ फिल्म को गति देने में सहायक होते हैं और उसकी नाटकीयता में बढ़ोत्तरी करते हैं। इन्हें फिल्म की भाषा में स्टण्ट दृश्य कहा जाता है इन दृश्यों का निर्देशन करने वाला शख्स स्टण्ट निर्देशक या एक्शन निर्देशक के रूप में जाना जाता है।

1.4.1 स्टण्ट निर्देशक

सुनने में शब्द अजीब सा लगता है और इससे भी अजीब यह बात लगती है कि फिल्मों में स्टण्ट के लिए भी एक निर्देशक नियुक्त किया जाता है। वास्तव में इस तथ्य से उसका महत्व विशेष बढ़ जाता है कि आज की अधिकांश फिल्मों में खलनायक जरूर होता है और जब खलनायक होता है तो नायक के साथ उसकी मारपीट भी जरूरी होती है। अपराध प्रधान फिल्मों में तो इस प्रकार की मारपीट की भरमार होती है।

यह मारपीट अगर सुनियोजित रूप से न की जाए तो कलाकारों को सचमुच चोट आ जाए। इसके अलावा उसे फिल्मा सकना भी मुश्किल हो जाए क्योंकि कैमरे का निर्दिष्ट क्षेत्र होता है । उसी के भीतर हर हरकत होनी चाहिए। इस सीमा के कारण सारी मारपीट एक साथ नहीं फिल्माई जा सकती। फिल्म के और दृश्यों की तरह उसे भी अलग-अलग शाट्स में फिल्माना होता है।

इन सभी शाट्स का आयोजन स्टण्ट निर्देशक ही करता है।

यह तो सभी जानते हैं कि दृश्यों में कलाकार सचमुच आपस में लड़ते नहीं। लेकिन असली लड़ाई का भ्रम तो पैदा होना चाहिए। वरना उसका सारा आकर्षण ही खत्म हो जाए। किस जगह, किस ढंग से मारने पर असली वार का असर आता है, किसी तरह गिरने पर सचमुच गिरकर चोट खाने का असर पैदा होता है। यह सब स्टण्ट निर्देशक ही बताता है।यह भी वही बताता है कि मारपीट के बीच कहाँ धक्का देने से कौन सी चीज गिरकर टूट जाएगी। सेट में उसी के अनुसार चीजें रखी जाती हैं।

आम तौर पर इस निर्देशक का एक सहायक भी होता है । पहले ये दोनों लड़कर दिखाते हैं कि बिना लड़े कैसे लड़ा जाता है। तब कलाकार अभ्यास करते हैं। अभ्यास के दौरान ये निर्देशक उनकी कमियाँ बताता जाता है और सब सही हो जाने के बाद ही शॉट लिया जाता है।

फिल्मी मारपीट तैयार करने की विधिवत् शिक्षा का तो कोई केन्द्र नहीं है, लेकिन अनेक व्यायामशालाएँ शत्रु से बचाव और उसे गिरफ्त में लेने के दांवपेंच सिखाती हैं। यहाँ लाठी, बल्लम, चाकू सभी कुछ चलाने की शिक्षा दी जाती है। इस तरह की व्यायामशालाएँ अनेक नगरों में और कस्बों में भी होती हैं, जहाँ लोग शौकिया यह सब सीखते हैं। यहाँ से प्रशिक्षण पाकर सिनेमा के शौकीन युवक स्टण्ट निर्देशक के क्षेत्र में आ सकते हैं।

डुप्लीकेट

स्टण्ट निर्देशक के साथ ही उन कलाकारों का जिक्र भी जरूरी है जो मारपीट का ही काम करते हैं। इन्हें स्टण्ट आर्टिस्ट कहते हैं और ये स्टण्ट निर्देशक अर्थात फाइट कंपोजर के साथ ही काम करते हैं। जब कभी नायक, खलनायक अथवा अन्य किसी कलाकार की भयानक लड़ाई दिखाई जाती है तो कलाकार स्वयं नहीं, उनके वेश में स्टण्ट आर्टिस्ट लड़ते हैं। पहाड़ से कूदने, तैरने आदि के कठिन काम भी आर्टिस्ट करते हैं इस तरह ये वक्त जरूरत

नायक, नायिका अथवा अन्य किसी चरित्र के 'डबल' के रूप में काम करते हैं उनके काम का जोखिम ये लोग उठा लेते हैं।

1.4.2 स्टण्ट निर्देशक के कार्य

स्टण्ट निर्देशक का कार्य फिल्म में एक्शन या मारधाड़ तथा खतरनाक दृश्यों के फिल्मांकन का निर्देशन करना होता है। एक्शन के दृश्य फिल्म में अपना विशेष महत्व रखते हैं। यह दर्शक में हर्ष, विषाद तथा रोमांच की अनुभूतियाँ पैदा करते हैं। दर्शक जब नायक को खलनायकों की पिटाई करता देखता है तो वह प्रसन्न होता है। यह मनोवैज्ञानिक रूप से भी दर्शक के आक्रोश को संतुष्ट करने में सहायक होते हैं। दर्शक के मन का आक्रोश अपने नायक द्वारा खलचरित्रों की पिटाई से संतुष्ट होता है। इससे उसे मानसिक संतोष मिलता है जो उसके सामान्य व्यवहार में मददगार होता है।

मारधाड़ और मसाला फिल्मों में तो एक्शन या स्टण्ट निर्देशक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है, कई एक्शन स्टारों की छवि स्टण्ट निर्देशक द्वारा सृजित किए गये चमत्कारी दृश्यों से ही बनती है। जैकी चेन, ब्रूस ली, अर्नाल्ड श्वाजनेगर, टाम क्रूज, सिल्वेस्टर स्टैलॉन आदि हालीवुड तथा अन्तर्राष्ट्रीय सितारों की ख्याति उनकी एक्शन फिल्मों के चलते ही रही है। इनकी फिल्मों में स्टण्ट निर्देशक की कलाकारी के चमत्कारों को देखा जा सकता है।

भारत में भी एक्शन फिल्में पसन्द करने वालों का एक बड़ा तबका रहा है। अनेक स्टारों की सफलता में एक्शन फिल्मों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। धर्मेन्द्र, अमिताभ बच्चन, सुनील शेट्टी, अजय देवगन आदि की एक्शन प्रधान फिल्मों को विशेष लोकप्रियता मिली है।

स्टण्ट निर्देशक का कार्य चुनौतियों से भरा होता है।उसकी सबसे बड़ी चुनौती नूरा कुश्ती में सच्चाई का एहसास भरना होता है। पर्दे पर जनता को लगे कि सचमुच में मारधाड़ हो रही है और

फिल्मांकन में कलाकारों को खरोच तक नहीं आये, यह जिम्मेदारी स्टण्ट निर्देशक की होती है।

एक्शन दृश्यों की शूटिंग में थोड़ी सी लापरवाही किसी की जिन्दगी तबाह कर सकती है। कुली फिल्म का वह दृश्य इसका सबसे बड़ा उदाहरण है जिसमें अमिताभ बच्चन एक एक्शन दृश्य की शूटिंग के दौरान खतरनाक रूप से जख्मी होकर महीनों जिन्दगी और मौत से जूझते हैं।

एक अच्छे स्टण्ट निर्देशक में रचनात्मकता भी होनी चाहिए। घिसे-पिटे मारपीट के दृश्यों से दर्शक ऊब सकता है। इसलिए हर पल कुछ नया सोचना और उसे आकर्षक रूप में फिल्मांकन हेतु विकसित करना स्टण्ट निर्देशक को आना चाहिए।

वैश्वीकरण के युग में तो उसके स्टण्ट संबंधी ज्ञान का महत्व भी बढ़ गया है। दुनिया की लोकप्रिय युद्ध और आत्मरक्षात्मक विधाओं की जानकारी रखना और उनका फिल्मांकन में प्रयोग करना एक सफल स्टण्ट निर्देशक का महत्वपूर्ण गुण है।

स्टण्ट निर्देशक को फिल्म की मांग के अनुरूप स्टण्ट दृश्यों का संयोजन करना चाहिए। हिंसा का अनावश्यक प्रदर्शन हर समय दर्शक को अच्छा नहीं लगता । अतः एक स्टण्ट निर्देशक का यह कार्य है कि वह स्टण्ट को तार्किकता के साथ प्रस्तुत करे न कि क्रूरता के साथ ।

1.5 जनसंपर्क तथा प्रचार

जनसंपर्क तथा प्रचार सम्बन्धी कार्य फिल्म उद्योग में वर्तमान समय में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये हैं। आजकल तो फिल्म की योजना के मूर्त रूप लेते ही उसका प्रचार-प्रसार शुरू हो जाता है। निर्माता-निर्देशक कौन सी फिल्म बनाने जा रहे हैं, किन-किन कलाकारों का चयन किया गया, अन्य कौन से सहयोगी चुने गये, फिल्म की विषय-वस्तु, मुहूर्त शॉट, शूटिंग शेड्यूल, म्यूजिक

रिलीज, प्रोमो रिलीज, जुबली पार्टीज आदि फिल्म जनसंपर्क के कुछ उदाहरण हैं।

आजकल हर निर्माता- निर्देशक एक अच्छी फिल्म बनाने के साथ-साथ उसके बेहतर प्रचार-प्रसार पर भी विशेष ध्यान दे रहा है। इस तरह के जनसंपर्क कार्य से फिल्म जारी होने से पूर्व ही अधिकांश सिने प्रेमी फिल्म के बारे में जान जाते हैं। इसका लाभ फिल्म की रिलीज के समय मिलता है जब ज्यादा से ज्यादा लोग उसे देखने आते हैं।

फिल्म जनसंपर्क एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। जनसंपर्क अधिकारी को फिल्म के लिए एक उत्सुकतापूर्ण माहौल सृजित करने का दायित्व मिला होता है। फिल्मी पत्र पत्रिकाओं , फिल्म परिशिष्ट, टी वी, रेडियो तथा अन्य माध्यमों की मदद से फिल्म से जुड़ी चीजों को जनता के बीच जारी करते रहना उसका प्रमुख कार्य होता है।

उसे निर्माता निर्देशक तथा कलाकारों को प्रेस से मिलवाने की व्यवस्था करनी होती है। अतः एक अच्छे फिल्म जनसंपर्क अधिकारी के लिए फिल्म पत्रकारों से बेहतर तालमेल तथा फिल्म पत्रकारिता की समझ लाभप्रद होती है। फिल्म रिलीज होने से पूर्व फिल्म से जुड़ी तमाम सूचनाएं प्रेस के माध्यम से लोगों के बीच पहुँचाते रहना उपयोगी होता है। क्योंकि इससे जनता के बीच अपेक्षित उत्सुकता बनाना संभव होता है।

फिल्म की रिलीज से पहले का प्रचार-प्रसार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। आजकल धूम-धड़ाके के साथ फिल्म रिलीज करने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। ऐसे में फिल्म के आने से पूर्व उसके पोस्टर जारी करना, प्रेस में निर्माता-निर्देशक कलाकारों के इण्टरव्यू जारी करना तथा आउटडोर पब्लिसिटी की व्यवस्था करना फिल्म जनसंपर्क की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है।

जब फिल्म रिलीज हो जाती है उसके बाद भी प्रचार और जनसंपर्क कार्य की आवश्यकता पड़ती है। फिल्म रिलीज होने के

बाद आजकल उसके कलाकारों में थियेटर में पहुँचने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। यह प्रचार का नया और इण्टरैक्टिव तरीका है जो आजकल के फिल्म व्यवसाय के अनुकूल भी है। आजकल दो - तीन हफ्ते अगर मल्टीप्लैक्स में फिल्म चल जाती है तो वह सफल मान ली जाती हैं ऐसे में कलाकारों का बीच में पहुंचना इस सफलता की दृष्टि से उपयोगी हो जाता है।

जब फिल्म 8-10 हफ्ते चल जाती है तब प्रचार का अन्य दौर शुरू होता है और उसकी सफलता की बधाइयों, निर्माण संबंधी रोचक किस्सों तथा फैन्स प्रमोशन जैसी गतिविधियों की मदद से फिल्म का प्रचार मूर्त रूप लेता है।

फिल्म की सफलता में उसके जनसंपर्क तथा प्रचार कार्य की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह कार्य सतर्कता तथा उच्चस्तरीय समझ की माँग करता है। जिन फिल्मों में कलाकारों की फेस वैल्यू होती हैं, उनमें कलाकारों पर जनसंपर्क कार्य का विशेष फोकस होना चाहिए। जहाँ फेस वैल्यू महत्वपूर्ण नहीं हो वहाँ फिल्म की थीम तथा संगीत आदि को आधार बनाना चाहिए।

फिल्म के सफल जनसंपर्क के लिए व्यक्ति में अन्तरक्षेत्रीय आधार पर फिल्म पत्रकारिता की समझ, फिल्म पत्रकारों से संबंध संयोजन तथा प्रबन्धन क्षमता आदि महत्वपूर्ण उपयोगी तत्व है।

1.6 लोकेशन प्रबंधन

फिल्मों में लोकेशन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्क्रिप्ट का विजुअलाइजेशन लोकेशन द्वारा ही परिपूर्ण होता है। कहानी के अनुरूप लोकेशन की व्यवस्था करना, नयी और अनछुई लोकेशन की व्यवस्था करना, लोकेशन पर फिल्म निर्माण के लिए अनुकूल माहौल तैयार करना तथा शूटिंग का साजो-सामान जुटाना लोकेशन प्रबन्धन का महत्वपूर्ण पक्ष होता है।

जब फिल्मांकन का कार्य स्टूडियों में होता है तब शूटिंग के

जरूरी संसाधनों की व्यवस्था लोकेशन प्रबंधक को करनी होती है। जब फिल्मांकन का कार्य स्टूडियो से बाहर करना होता है तो यह काम अत्यन्त चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

कहानी की मांग के अनुरूप आउटडोर लोकेशन की तलाश, फिल्मांकन हेतु वहाँ अनुकूल परिस्थितियों का आकलन और उनकी व्यवस्था करना, संसाधन जुटाना, स्थानीय सहयोग अर्जित करना और सुरक्षा आदि की व्यवस्था करना लोकेशन प्रबंधन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है।

1.7 फिल्म निर्माण की अन्य विधाओं का महत्व

एक अच्छी फिल्म के निर्माण में उससे जुड़े हर कार्य का योगदान होता है। एक अच्छी फिल्म परिपूर्णता (Perfection) का प्रतीक होती है। उसका हर पक्ष जब बेहतर कार्य करता है तभी फिल्म अच्छी नजर आती है। निर्माता - निर्देशक, कहानीकार, स्क्रिप्ट लेखक, संगीतकार, कलाकार के अतिरिक्त कला, निर्देशक, स्टण्ट निर्देशक, जनसंपर्क अधिकारी,लोकेशन प्रबंधन आदि के काम भी महत्वपूर्ण होते हैं।

यदि फिल्म के सेट कहानी की माँग के अनुरूप नहीं हों, घटिया हों या देश-काल, परिस्थिति की उपस्थित करने में सक्षम नहीं हों तब फिल्म के फ्रेम भौंडेपन का एहसास कराने लगते हैं और फिल्म में दर्शक की रूचि कम होने का खतरा पैदा हो जाता है।

इसी प्रकार स्टण्ट निर्देशक के काम का भी अपना महत्व है। उसके कौशल पर ही कई बार फिल्म का क्लाइमेक्स निर्भर करता है अच्छी से अच्छी फिल्म प्रभावी जनसंपर्क और प्रचार के बिना कई बार लोगों की नजर में चढ़ ही नहीं पाती। इसी प्रकार फिल्म की प्रभावी प्रस्तुति में उसके लोकेशन का महत्व अपरिहार्य है। कई फिल्में तो अपने खूबसूरत लोकेशन के चलते भी पसंद की जाती है।

फिल्म निर्माण की अन्य विधाएं भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। फिल्म की सफलता- असफलता में इनका भी योगदान होता है। इसके कार्यकर्ता भले ही पर्दे के पीछे रहते हैं परन्तु नींव के पत्थर की तरह काम करते हैं।

1.8 उपसंहार

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि फिल्म निर्माण की अन्य सहायक विधाओं पर भी निर्माता-निर्देशक को पूरा ध्यान देना चाहिए। फिल्म निर्माण एक उच्चस्तरीय प्रबंधकीय कौशल है। इसमें अन्य विधाएं भी महत्वपूर्ण हस्तक्षेप रखती हैं। एक कुशल निर्माता निर्देशक जिस प्रकार अच्छी कहानी, अच्छे कलाकार और अच्छे गीत-संगीत की व्यवस्था करता है उसी प्रकार वह अच्छे कला निर्देशक, स्टण्ट निर्देशक, जनसंपर्क तथा लोकेशन व्यवस्थापक को भी चयनित करता है।

यह लोग निर्देशक की कल्पना को अमली जामा पहनाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इनकी खड़ी की गयी बुनियाद पर ही फिल्म के कलाकार अपनी कला रूपी इमारत की बुलन्दी प्रदर्शित करते हैं और एक परिपूर्ण फिल्म का निर्माण संभव होता है। जिससे जनता को मनोरंजन और संतुष्टि प्राप्त होती है।

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

(1) कास्टिंग कम्पनी - ऐसी संस्थाएं जो फिल्म निर्माताओं और प्रोडक्शन कम्पनियों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार छोटे-बड़े कलाकार उपलब्ध कराती है। ऐसी संस्थाओं में कलाकार अपना चित्र और विवरण आदि देकर पंजीकरण कराते हैं तथा संस्था के माध्यम से काम मिलने पर संस्था अपना कमीशन काटकर उनका भुगतान कर देती है।

(2) एण्ड बोर्ड - छायांकन में अंतिम शॉट के टेक के समय क्लिप बोर्ड का फिल्मांकन । फिल्मांकन के दौरान क्लिप बोर्ड को

उल्टा कर देते हैं। जो इस बात का संकेत है कि यह अंतिम शॉट का क्लैप है, प्रारम्भ का नहीं।

(3) मंच निर्देशक - स्टूडियो/ शूटिंग फ्लोर पर निर्देशक का प्रतिनिधि जो उसकी ओर से आवश्यक निर्देश जारी करता है।

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) डा. अर्जुन तिवारी -आधुनिक पत्रकारिता

(2) जॉन लांग - मेकिंग डिजिटल वीडियोज

1.11 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) फिल्म निर्माण में कला निर्देशन की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

(2) स्टण्ट निर्देशक तथा फिल्म जनसंपर्क अधिकारी के कार्यों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) स्टण्ट क्या होता है?

(2) लोकेशन प्रबंधन क्या है?

(3) आउटडोर निर्देशन क्या है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) किस निर्देशिका की वाराणसी में फिल्म शूटिंग के दौरान विवाद हुआ-

(क) तनूजा चंद्रा (ख) सई परांजपे

(ग) दीपा मेहता (घ) रवीना टण्डन

(2) फिल्म सेट का निर्माण करता है -

(क) स्टण्ट निर्देशक (ख) विजुअलाइजर

(ग) कला निर्देशक (घ) कोरियोग्राफर

(3) सामान्यतया डुप्लीकेट प्रयुक्त होते हैं -

(क) खतरनाक दृश्यों हेतु (ख) संवेदनात्मक दृश्यों हेतुं

(ग) रोमांटिक दृश्यों हेतु (घ) भीड़ दिखाने हेतु

(4) फ्लोर निर्देशक प्रतिनिधि है-

(क) डांस निर्देशक का (ख) स्टण्ट निर्देशक का

(ग) कला निर्देशक का (घ) फिल्म निर्देशक का

प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ग
3. क
4. घ

इकाई -2 एवं -3 फिल्म सम्पादन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 सम्पादन की प्रक्रिया

2.3 फिल्म सम्पादन की शुरूआत

2.4 साउन्ड और पिक्चर मैचिंग

2.5 लीली क्या होती है

2.6 फिल्म सम्पादन के लिए एडिटिंग टेबल

2.7 मार्किंग की प्रक्रिया

2.8 ज्वाइंट की प्रक्रिया

2.9 इन्सरसन का प्रयोग

2.10 इन्सरसन जोड़ने की तकनीक

2.11 ध्वनि चढ़ाना

2.12 एडिटिंग टेबल पर बनती है फिल्में

2.13 फिल्म की लम्बाई और सम्पादक का दायित्व

2.14 फिल्म में कथा की प्रासंगिकता

2.15 संपादक की मुसीबत ही मुसीबत

2.16 सारांश

2.17 शब्दावली

2.18 संदर्भ ग्रन्थ

2.19 प्रश्नावली

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगें -

(1) फिल्म सम्पादन का आरम्भ कैसे किया जाता है।

(2) साउन्ड और पिक्चर की मैचिंग कैसे होती है।

(3) लीली क्या होती है।

(4) फिल्म सम्पादन के लिए एडिटिंग टेबल कैसी होती है।

(5) मार्किंग तथा ज्वाइंट की प्रक्रिया क्या होती है।

2.1 प्रस्तावना

फिल्म सम्पादन की प्रक्रिया जटिल होती है। जैसे-जैसे शूटिंग होती है वैसे-वैसे सम्पादक का कुछ न कुछ कार्य आरम्भ होने लगता है। चूँकि फिल्म निर्माण की पूरी जिम्मेदारी निर्देशक पर होती है तभी तो, निर्देशक की सहमति से ही सम्पादक नियुक्त किये जाते हैं ।

फिल्म की शूटिंग आरम्भ होने से पूर्व, सर्वप्रथम लैब से या रसायनशाला से अनुबन्ध हो जाता है। लैब का मालिक फिल्म निर्माता को आकर्षित करने के लिए अनेक प्रलोभन देता है। कभी उधार का आश्वासन, कभी रॉ स्टाक उधारी पर और कभी मूवीओला बिना किसी चार्ज के मुहय्या करवा देता है। जैसे ही शूटिंग होती है उसका एक्सपोज्ड निगेटिव, लैब में धुलाई के लिए जमा करवा दिया जाता है और शूटिंग की साउण्ड, परफोरेटेड टेप पर हस्तांतरण कर दी जाती है।

साउन्ड और पिक्चर मैच करने के पश्चात सम्पादक को बुलवाया जाता है और तब सम्पादक, सम्पादन की प्रक्रिया तय करता है।

2.2 सम्पादन की प्रक्रिया

इम्पा के वर्तमान अध्यक्ष रामराज नाहटा और पूर्व अध्यक्ष श्रीराम बोहरा में बाबा रामदेव के जीवन पर बनी फिल्मों को लेकर एक होड़ सी मच गई थी। बहुत ही कम समय में दोनों की फिल्में एक साथ पूरी होकर रिलीज भी हो गयी थीं। रामराज नाहटा की फिल्म तो करीब-करीब ठीक बिजनेस जुटा ले गयी लेकिन श्रीराम

बोहरा की फिल्म पिट गयी।

रंगीन फिल्मों का दौर

आज कल रंगीन फिल्मों का जमाना आ गया है। इस दौर में निर्माताओं के पास न तो अपने निजी स्टूडियो हैं और न ही लेबोरेटरीज। अतएव शूटिंग के बाद दूसरे सारे कामों के लिए दूसरों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। जब लेबोरेटरी आपको डेवलप करके प्रिन्ट करके दे दे तभी काम आगे चल सकता है। निर्माता ने ईस्टमैन निगेटिव पर शूटिंग कर लिया और लेबोरेटरी में बाथ (रसायन क्रिया का घोल)। आँखो या और कोई और निगेटिव का बाथ चल रहा है तो ईस्टमैन के निगेटिव को डेवलप करने में ही कई दिन लग जायेंगे तब इसका बाथ तैयार होगा। सम्पादक लोग भी आजकल शिफ्टों और काम के कुछ तय घण्टों में ही वक्त देते हैं। इसलिए भी आजकल की फिल्मों के सम्पादन में लम्बा वक्त लग जाता है। ठेके पर करवाए जाने वाले अन्य कामों में भी काफी वक्त जाया होता है। कारण साफ ही है कि जब ठेकेदार के पास खाली समय होगा तभी तो वह आपका काम पूरा करेगा। उसके पास भी निर्माताओं की लाइन लगी ही रहती है मगर इन तमाम कठिनाइयों के बावजूद भी कुछ अपवाद निकल ही आते हैं। आदर्श की 'वीर हनुमान' फिल्म रंगीन ही थी। पिछले दिनों रिलीज हुयी बी.आर. चोपड़ा की फिल्म 'तलाक तलाक तलाक' बहुत ही जल्दबाजी में ही तैयार की गई थी क्योंकि उसके टाइटिल का चक्कर था और अदालती निर्णय में भी चोपड़ा को एक निश्चित अवधि में अपनी फिल्म पूरी करने के लिए कहा था। बड़ी भाग-दौड़ के बाद भी चोपड़ा उस अवधि में फिल्म को पूरी नहीं कर सके। उन्होंने फिल्म का नाम बदल कर ही काम चलाया।

हालीवुड में सम्पादन की प्रक्रिया आजकल कम्प्यूटराइज्ड हो गयी है। इससे फिल्म सम्पादन के समय में एक तिहाई समय कम लगता है।

2.3 फिल्म सम्पादन की शुरूआत

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है सम्पादन की प्रक्रिया काफी लम्बी और जटिल है।वास्तव में फिल्म सम्पादन का काम तभी शुरू हो जाता है जब फिल्म की शूटिंग का प्रथम चरण पूरा कर लिया जाता है।

पहले फिल्म का सम्पादन करने वाले सम्पादकगण फिल्म की पटकथा लेखन के समय भी रहते थे। वे अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसमें परिवर्तन या सुधार के लिए भी सुझाव देते थे। इसी तरह शूटिंग के दौरान सम्पादक की उपस्थिति भी जरूरी मानी जाती थी। मगर पिछले कई सालों से ये दोनों ही बातें लुप्त हो गई हैं। अब सम्पादक न तो पटकथा लेखन के वक्त हाजिर रहता है और न शूटिंग के वक्त उसकी हाजिरी जरूरी हो, ऐसा मानता है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि पहले सम्पादक निर्माता का स्थाई कर्मचारी होता था मगर जब फिल्मों में फ्री लांसिंग का दौर शुरू हुआ तो एक-एक सम्पादक ने कई-कई फिल्मों को संपादित करने का काम हाथ में ले लिया, जिससे न तो उनके पास दूसरे कार्यो के लिए वक्त रहा और न ही उनकी रूचि रही। फिर भी अच्छे सम्पादक एक बार पटकथा सुन लेते हैं। हाँ अधिकांश सम्पादकों को इसमें भी रूचि नहीं रहती। 1 शॉट और सीन सामने आया, तरतीब-बेतरतीब काट- काट कर रख देते हैं फिर उनको सुधारते रहो।

जब ऋषिकेश मुखर्जी को फिल्म सम्पादित करते समय कोई शॉट या सीन अच्छा नहीं लगता तो वह दुबारा शूटिंग करने के लिए बोल दिया करते थे। निर्माता को जैसा वह कहते वैसी ही शूटिंग करनी पड़ती थी। मगर आजकल वह अपनी फिल्मों का ही सम्पादन नहीं कर रहे, दूसरे निर्माताओं की फिल्मों का सम्पादन करना तो दूर की बात है। इनकी एक बहुत ही अच्छी सम्पादित फिल्म महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन पर आधारित एक वृत्त चित्र

था। इसके बाद वे फिल्म निर्देशक बन गये।

फिल्म वालों में भेड़चाल आम तौर पर देखने को मिलती है। कोई एक फिल्म स्टोरी हिट हो गयी तो सभी निर्माता वैसी ही फिल्म बनाने लगते हैं । इसी तरह कोई हीरो या हीरोइन हिट हो गये तो निर्माता उनको ही अपनी फिल्म के लिए अनुबंधित करने हेतु उनके पीछे भागते रहते हैं । यही हाल फिल्म निर्देशकों और सम्पादकों का भी है। मैने कई सम्पादकों के पीछे निर्माताओं को उन्हें साइन करने या डेट लेने के लिए लाइन लगाते देखा है।इसका ताजा उदाहरण सम्पादक द्वय वामन-गुरू हैं। इन दोनों मित्रों के पास एक समय में तीस से चालीस फिल्में तक सम्पादित करने के लिए थीं ऐसी सूरत में सम्पादन का सारा काम सहायकों से ही करवाकर निर्माताओं से किए गये वायदे पूरे किए जा सकते थे। आम तौर पर काम खराब होने का खटका ऐसे दौर में बना रहता है। कई ऐसे सम्पादक भी हैं जिनको बहुत अच्छा काम जानने पर भी उचित स्तर का काम नहीं मिल पाता।

सम्पादक की नियुक्ति

फिल्म सम्पादक की नियुक्ति के बाबत कई पक्ष निर्माता के दिमाग में घूमते रहते हैं जैसे कि वह सम्पादक और उसके सहयोगियों पर कितना खर्च कर सकता है। उसकी यारी दोस्ती किस सम्पादक से है। फिल्म निर्देशक किस सम्पादक को पसंद करता है, आदि-आदि।

जब एक बार सम्पादक की नियुक्ति हो जाती है तब निर्माता के लिए उसको निकालना लगभग असंभव सा हो जाता है। कारण यह है कि यूनियन के कायदे कानून ऐसे बने हुए हैं जिनका पालन करना निर्माता और सम्पादक दोनों के लिए जरूरी हैं इन कानूनों के अन्तर्गत किसी भी सम्पादक को तब तक नहीं निकाला जा सकता जब तक कि उसका पूरा पैसा नहीं दे दिया जाता। इसलिए निर्माता सम्पादक को फिल्म सम्पादन के लिए नियुक्ति पत्र देते वक्त निर्णय करता है । इनका न्यूनतम पारिश्रमिक यूनियन ने तय कर रखा है,

लेकिन काम मिल जाने पर यह तय की गई रकम में कमी-बेशी भी कर लेते है। अधिकतम पारिश्रमिक की तो कोई सीमा ही नहीं है। जैसा भी निर्माता और सम्पादक के बीच करार हो जाए वहीं ले-देकर फाइनल कर लिया जाता है।

सम्पादन की शुरूआत

निर्माता ने जैसे ही शूटिंग की पहली खेप पूरी की वह निगेटिव को लेबोरेटरी में धुलाई के लिए जमा करवा देता है। साथ ही ध्वनि को मैग्नेटिक टेप से निगेटिव पर ट्रांसफर करवा देता है। इस निगेटिव की भी धुलाई के लिए लेबोरेटरी में दे देता है। जब लेबोरेटरी रासायनिक क्रिया पूरा कर लेती है तब वह निगेटिव और सहायक निर्माता या उसके प्रतिनिधि को सौंप दिया जाता है। इस प्रक्रिया के साथ ही निर्माता सम्पादक को लेबोरेटरी के नाम एक अधिकार पत्र देता है जिसके आधार पर सम्पादक को लेबोरेटरी के अनुबन्ध के अनुरूप सभी सुविधाएं मिलने लग जाती हैं। सम्पादक इसके बाद एक एडीटिंग रूम बुक करता है साथ में मूवी ओला भी लिया जाता है। रूम बुक हो जाने के बाद सम्पादक अपने सहायक को निगेटिव और साउण्ड शार्टिंग का निर्देश देता है।इस सहायक के साथ फिल्म निर्देशक का सहायक कान्टीन्यूटी बुक लेकर बैठता है।इन लोगों का काम होता है ओ के शॉटों को एन जी शाटों से अलग करना। जो एन जी शॉट निकाले गये हैं उन्हीं के आधार पर उनका साउण्ड निगेटिव ओके साउण्ड शॉटों से अलग कर लिया जाता है । तत्पश्चात ओके शॉटों को सीरियल में लगाया जाता है। और टीन के डिब्बों में बन्द करके पाजीटिव प्रिन्टिंग के लिए दे दिया जाता है लेबोरेटरी को।

जो एन.जी. साउण्ड और निगेटिव बच जाते हैं उनको लपेट कर गोलाकार कर दिया जाता है तथा टीन के डिब्बों में रखकर ऊपर ढक्कन लगाकर उस पर एक लेबल लगाया जाता है । इस लेबल पर फिल्म का कौन सा शॉट है, इसका पूरा पूरा विवरण लिख लिया जाता है। फिर इन डिब्बों को एडीटिंग रूम के किसी कोने में

जमा करके रख दिया जाता है ताकि जब भी जरूरत पड़े उसे आसानी से तलाश किया जा सके। कारण यह है कि कभी-कभी एन जी शॉट फिल्म निर्देशक व सम्पादक के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

2.4 साउण्ड और पिक्चर मैचिंग प्रक्रिया

लेबोरेटरी में जब पिक्चर पॉजिटिव एवं साउण्ड पॉजिटिव प्रिण्ट और डेवलप होकर आ जाते हैं इसके बाद फिल्म के सहायक संपादक और निर्देशक के सहायक का काम फिर शुरू हो जाता है। अब उनका मुख्य काम होता है पिक्चर निगेटिव के साथ-साथ साउण्ड निगेटिव को मैच करना। पिक्चर में कलाकारों के लिए मूवमेन्ट के अनुकूल ही साउण्ड की तरंगें प्रवाहित होनी चाहिए। यदि ठीक नहीं हुआ तो पिक्चर इधर जाएगी तो साउण्ड उधर जाएगा। दोनों में जरा भी तालमेल नहीं हो पाएगा। दर्शकों को फिल्म देखते हुए कई बार ऐसा महसूस होता है कि फिल्म का कोई दृश्य तो पहले पर्दे पर गुजर जाता है और साउण्ड बाद में आता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दृश्य कुछ और ही होता है और साउण्ड कुछ और ही। ऐसी स्थिति में दर्शकों को देखते वक्त उकताहट होने लगती है। ये संपादन की कमी है ऐसा नहीं हो, इसलिए संपादन कार्य में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है।

इस सिम्बलाइजेशन के कार्य के लिए मूवीओला अति आवश्यक है।मूवीओला के बगैर यह कार्य किसी भी सूरत में पूरा नहीं हो सकता है। कारण यह है कि कोई भी कलाकारों के लिए मूवमेन्ट अन्यथा देखे नहीं जा सकते। इसके अलावा ध्वनि भी सुनानी पड़ती है। यह देखना भी पड़ता है कि ध्वनि का प्रभाव पिक्चर पॉजिटिव में लिप मूवमेन्ट के समानान्तर है या नहीं। कभी-कभी कैमरा स्पीड अथवा साउण्ड मशीन की स्पीड भी बराबर नहीं रहने से साउण्ड और पिक्चर की गति में बहुत फर्क आ जाता है। संपादन सहायक का काम है इस फर्क को निकालना। यह बार बार पिक्चर के साथ

साउण्ड को मैच कराने के लिए साउण्ड की पट्टी को ऊपर-नीचे करके चला कर मैच करवाएगा। सही हो जाने पर मार्किंग करेगा। इसके बाद यह तो मूवीओला या एडिटिंग टेबल पर उन्हें लगाकर साउण्ड कम करना हुआ तो साउण्ड की जितनी पट्टी बढ़ी हुई है। उसको काटेगा। यदि उसी साउण्ड को बढ़ाना हुआ तो उसमें ब्लैक पीस अथवा वहाइट पीस जोड़कर उसकी लंबाई बढ़ाएगा। उसके बाद दोबारा मूवी ओला पर देखकर यह तसल्ली करेगा कि साउण्ड और पिक्चर समानान्तर चल रहे हैं। यह काम सीरियल से किया जाता है। यानी जो दृश्य सबसे पहले है उसे ही सबसे पहले मैच करवाया जाएगा। इसी तरह क्रमशः मैचिंग करवाया जाएगा। लेकिन कई बार तो लेबोरेटरी की वजह से प्रिण्ट एक सीरियल में नहीं मिल पाते हैं इसलिए जैसा भी प्रिन्ट मिल जाए उसी हिसाब से साउण्ड पिक्चर मैच करवा लिए जाते हैं। इस मैंचिग के वक्त कन्टीन्युटी शीट की भी बहुत जरूरत रहती है। किस शॉट का कौनसा साउण्ड है यह उसी से पता चल पाता है। हालाँकि शॉटों की शूटिंग के समय भी इसका ख्याल किया जाता है किन्तु शॉटों, साउण्ड एवं पिक्चर के मैचिंग के वक्त तो यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है वरना कभी-कभी तो पिक्चर कुछ चल जाती है और साउण्ड कुछ बजता रहता है। यह गलती कई बार लेबल लगाते वक्त भी असावधानीवश हो ही जाती है।

अगर लेबल पर गलत नम्बरिंग हो गया तो अवश्य ही मूवीओला पर साउण्ड और पिक्चर अलग-अलग हो जाएंगे। इसका एक दिलचस्प मंजर मेरी अपनी ही फिल्म 'थीफ ऑफ बगदाद' में मुझे देखने को मिला था। मैं कोई दस बजे फिल्म एडीटिंग में गया तो देखा कि दोनों सहायक (फिल्म संपादक एवं फिल्म निर्देशक के) एक शॉट का साउण्ड मैच करवा रहे थे। मैं एडिटिंग रूम में दरवाजे पर खड़ा होकर अंदर का दृश्य देखने लगा। करीब आधा घण्टे तक उनके काम को देखता रहा। बावजूद तमाम कोशिशों के साउण्ड पिक्चर से मैच हो ही नहीं रहा था। सहायक

संपादक कभी ऊपर से मैच कराने की कोशिश करता था तो कभी नीचे से या बीच से । हर बार इसी नतीजे पर पहुँचता था कि साउण्ड पिक्चर से मैच नहीं हो रहा है। मैच होने की स्थिति थी भी नहीं। पिक्चर कोई और थी और साउण्ड किसी दूसरे शाट का था। उनका मैच होना असंभव ही था। आखिर मैं भी उनकी कारीगरी देखते-देखते बोर हो गया तो मैने उनको बोला - ''यह पिक्चर और साउण्ड मैच होगा ही नहीं, क्योंकि साउण्ड उस शाट का है ही नहीं।'' फिर क्या था सहायक दिग्दर्शक मुझसे उलझ गये और लगे जोर से बोलने अैर शर्त लगाने लगे कि यह साउण्ड इसी शाट का है। उन्होंने मुझे कंटीन्युटी शॉट भी दिखला दी जिसमें कि साउण्ड पर पिक्चर के शॉट का नंबर पड़ा हुआ था। मैने उनको कहा कि -''यह गलती तो कंटीन्युटी शॉट लिखने वाले से भी हो सकती है। इसलिए समय बर्बाद करके बहस करने के बजाय सही साउण्ड को तलाशने की कोशिश कीजिए तो बेहतर होगा।'' मैने उन्हें यह भी समझाया कि पिक्चर शॉट का मूड और साउण्ड शॉट का मूड दोनों ही भिन्न है। आखिर बहुत समझाने के बाद उनकी समझ में यह बात आने लगी कि मैं सही हो सकता हूँ। अंत में वे दाशर्निक की सी मुद्रा में अपना ललाट सहला-सहला कर बोले -''मुझको कुछ तो सोचने का मौका दीजिए।''

तब मैने कहा -''अरे इसमें सोचना क्या है? साउण्ड तलाश लो, नहीं तो लाओ मैं तलाश देता हूँ।'' अंततः आखिर में परेशान होकर मैने ही साउण्ड तलाश करके उन्हें दिया। चूँकि वह सही था इसीलिए पहले ही प्रयत्न में साउण्ड और पिक्चर ठीक मैच हो गया।

2.5 लीली क्या होती है

साउण्ड और पिक्चर मैच करने की प्रक्रिया पूरी हो चुकने के उपरान्त सम्पादक को रफ प्रिन्ट देखने के लिए बुलाया जाता है। वह रश प्रिण्ट देखकर फिल्म एडीटिंग का काम आगे बढ़ाता है।

सबसे पहले तो वह और फिल्म निर्देशक अपने सहायकों के साथ किसी तय मिनी थियेटर में रश प्रिन्ट देखते हैं। निगेटिव से सबसे पहले जो प्रिण्ट तैयार होकर आता है उसे रश प्रिण्ट कहा जाता है। लीली इसलिए निकाली जाती है ताकि प्रिण्ट के रंग सही-सही आएं।

क्या होती है लीली

वन लाइन प्रिण्ट में रंग सही-सही नहीं आ पाते। कभी हरा, कभी पीला, कभी लाल रंग प्रमुख आ जाते हैं। जब से रंगीन फिल्में बनना चालू हुई तब प्रिटिंग के दौरान यह अनुभव किया जाने लगा कि कलर करेक्शन के बगैर सही प्रिन्ट नहीं निकल सकता। इसलिए इसके लिए कोई उपाय ढूँढने की योजना बनाई गई । एक साहब इसमें कामयाब हो गये। ऐसी आम चर्चा थी कि उनकी प्रेयसी का नाम ''लीली'' था इसलिए उन्होंने उस प्रक्रिया का नाम ही ''लीली'' रख दिया था, परन्तु आजकल यह शब्द बहुत ही सीमित दायरे में प्रयोग में लाया जाता है। किसी भी शॉट के अन्त के हिस्से या भाग की तीन फ्रेमें कलर स्प्रेक्ट्रम एनालाइसिस के लिए काटी जाती है। इन फ्रेमों को लीली कहते हैं।

लीली लेने के तरीके

लीली लेने के लिए कई तरीके काम में लिए जाते हैं-

पहला तरीका तो यह है कि लकड़ी का चौकोर सा पाटिया बनाया जाता है जिस पर छोटे-छोटे चौखाने बनाकर लाल, पीला, हरा रंग पोत दिया जाता है। इस शॉट के बाद उसी लाइटिंग में लकड़ी के उस पाटिए को एक्सपोज किया जाता है। यह एक्सपोज निगेटिव लीली के लिए काम में लिया जाता है, परन्तु आजकल कोई बिरला ही निर्माता इस तकनीक को काम में लेता है। दूसरा तरीका यह है कि हर शॉट के बाद उसी लाइटिंग में कैमरे को ऑन या ऑफ करके कुछ फ्रेमें एक्सपोज कर दी जाती है। ये फ्रेमें लीली का काम देती हैं।

तीसरा तरीका यह है कि हर शॉट के अन्तिम भाग में तीन फ्रेमें काट ली जाती है। जिनको ''लीली'' कह कर काम में लाया जाता है।

यह लीली काटने का काम फाइनल निगेटिव कटिंग के वक्त किया जाता है। ऊपर के दो प्रयोगों में चूँकि लीली क्रम से रहती है अतः उसे एक लम्बे समय तक सुरक्षित रखना कष्टदायक होता है। इसलिए आजकल तीसरी प्रक्रिया अधिकतर काम में ली जाती है। पहले फाइनल प्रिंटिंग के वक्त लीली लेबोरेटरी में दी जाती थी। जिनको अलग-अलग तरीकों से एक्सपोज करके यह तय किया जाता है कि किस शॉट में कितनी लाइट दी जाएगी और कौन सा फिल्टर लगाया जाएगा। इसके लिए लीली को कई बार एक्सपोज करना पड़ता है। फिर भी यह गारन्टी नहीं रहती है कि प्रिण्ट सही आ जाए। आजकल कई लेबोरेटरियों में स्वचालित कलर स्पेक्ट्रम एम्प्लाइजर लगा रहे हैं।जिस वजह से कलर स्पेक्ट्रम एनालिसिस कम समय तथा खर्च में ही हो जाता है।

शॉट का चुनाव

फिल्म सम्पादक और फिल्म निर्देशक रश फिल्म देखते समय शॉट का चुनाव करते हैं। एक-एक शॉट के कई रैंक होते हैं। उनमें से कौन सा शॉट सबसे अच्छा है, इसका चुनाव किया जाता है। कई फिल्म निर्देशकों में एक शॉट के कई-कई टेक लेने की आदत होती है।

मैने फिल्म निर्देशक गुरूदत्त की एक फिल्म ''सैलाब'' के रश प्रिन्ट कई वर्षों पहले देखे थे । उन रश प्रिन्टों की खासियत यह थी कि 40 या 50 तक किसी भी शॉट के टेक ले लेने के बाद फिर से नये सिरे से शॉट का नम्बर देना शुरू कर दिया गया था। मैने उन टेकों को गिना तो वे संख्या में 80 से 85 तक पहुँच गये थे। अच्छा शाट ओ. के. हो जाने पर फिल्म निर्देशक अक्सर सेफ्टी शॉट लेते

रहते हैं। उसके भी कई-कई टेक ले लिए जाते है।

एक फिल्म निर्देशक थे शाहिद लतीफ। उनकी आदत थी कि हर शॉट के जितने संभव कोण बन सकते थे, वे सभी को एक्सपोज कर लेते थे। फिर उनमें से सबसे अच्छा शॉट हो उसे ही स्थिति के अनुरूप चुनते थे।

सम्पादक और निर्देशक जब शॉट का चुनाव कर लेते हैं, तब भी यह जरूरी नहीं है कि संपादन के वक्त वही शॉट लिया जाएगा। कभी-कभी परिस्थितिवश चुने हुए शॉट की जगह दूसरा शॉट भी लगाना पड़ जाता है। इन दोनों ही के अलावा प्रिन्ट देखते समय निर्माता और सम्पादक, निर्देशक के सहायक आदि लोग भी रश प्रिन्ट देखते हैं। कभी-कभी अन्तिम क्षण में उनकी राय भी ले ली जाती है।

उस चुनाव के बाद सम्पादक एडीटिंग टेबल पर साउण्ड पाजीटिव और पिक्चर पाजिटिव लगाकर शॉटों की छंटाई करता है। जिन शॉटों को काम में नहीं लेना हो उनको निकालकर अलग करता चलता है जो शॉट काम में लेने हों, उनका यह सीरियल बनाता है । जितने भी साइलेन्ट इम्प्रेशन लिए हैं, उनको निकालकर अलग रोल बनाकर रख लेता है। सम्पादक के लिए नया सीरियल तैयार करने की जरूरत इसलिए भी पड़ जाती हैं कि फिल्म निर्देशक सीरियल से शूटिंग नहीं करते हैं वे सीन को कहीं से भी शूट करना चालू कर देते हैं। इसलिए बहुधा शॉटों की नम्बरिंग उल्टी-सीधी भी हो जाया करती है। ऐसे में बहुत परेशानी होती है।

बिना सीरियल के शूटिंग इस तरह होती है, जैसे आपने कागज पर मार्क करके 5 नम्बर शॉट से शूटिंग करना चालू कर दिया। ऊपर का सीन चार शॉटों में खत्म ही नहीं हुआ तो उसमें ए. बी. सी. डी. नम्बर देना शुरू हो जाता है। शूटिंग के दौरान सहायक फिल्म निर्देशक को पूछ कर नम्बर दिये जाते हैं। निर्देशक की जल्दबाजी में या शॉट की नम्बरिंग में असावधानी से भी गलती हो

सकती है। इस असावधानी की वजह से सम्पादक को माकूल सीरियल भी बनाना पड़ता है और निर्देशक को फिल्म सम्पादन के वक्त साथ बैठना पड़ता है।

2.6 फिल्म सम्पादन के लिए एडीटिंग टेबल

पहले बतलाया गया था कि सम्पादक शॉटों को सीरियल से लगाकर सीन का पूरा सिक्वेन्स तैयार करता है। सम्पादक कभी-कभी यह काम अपने किसी और सहायक से भी करवा लेता है। इन सब अलग-अलग किये गये सीन, काम में नहीं लिऐ जाने वाले शॉट आदि को गोलाकार लपेट कर उन्हें डिब्बों में रखकर लेबल चिपकाकर किसी एक कोने में रख देते हैं। जब भी सम्पादक को सम्पादन का कार्य करना हो तब जरूरत के सारे शॉट सहायक सम्पादक उसको देता है।

जब सम्पादक एडिटिंग टेबल पर एडिटिंग करने बैठेगा तब सहायक सीनों की रील को (जिसमें कई सारे सीन रहते हैं) टेबल पर लगे स्टैण्ड में लगा देता है। यह स्टैण्ड लोहे की मोटी पत्तियों का बना होता है।

इस स्टैण्ड का नीचे का बेस टेबल के साथ नट बोल्ट से कसा रहता है और उस बेस पर चार-पाँच लोहे की मोटी-मोटी एक- दो सूत की खड़ी पत्तियाँ लगाई जाती हैं। इन पत्तियों में एक छेद रहता है जिसमें से लोहे की एक छड़ आर-पार पास करती लगाई जाती है। इस छड़ का एक छोर मुड़ा हुआ रहता है ताकि वह छड़ काम के वक्त बाहर नहीं निकल जाए। उसका दूसरा छोर भी नट बोल्ट के स्टैण्ड पर एक लोहे के ताले (लॉक) से जकड़ा रहता है, यह लॉक अलग से लगाया जाता है इस रॉड में लोहे के पतले पतले तारों से बनी हुई गोल आकार की चर्खियाँ लगाई जाती हैं। इसके बीच में एक प्लास्टिक का गुटका होता है जिसके बीच में एक छेद होता है, लगाया जाता है । यह चर्खियां कभी-कभी स्टील की सौलिड गोलाकार प्लेटों की भी बनी होती हैं। इनके दो हिस्से

होते हैं जो एक दूसरे से अलग-अलग किए जाते हैं । एक प्लेट में एक छोटी सी रॉड फिक्स रहती है, उसके दूसरी ओर दूसरी प्लेट लगाई जाती है।

सम्पादक जो भी वस्तु उसे उपलब्ध हो उससे काम चला लेता है।अगर वे चर्खियां नहीं भी मिलें तो खाली स्टैण्ड के राड में गुटके लगाकर काम चला लेता है। यह गुटके विदेशों से आने वाले निगेटिव, पाजिटिव, साउण्ड आदि के कच्चे माल के साथ आते हैं। इन पर ये लिपटे रहते हैं। इन गुटकों में एक ओर एक दरार रहती है जिसमें फिल्म का एक छोर फंसाया जाता है जिससे फिल्म को उस पर लपेटते वक्त कोई कठिनाई नहीं हो। जब सम्पादन के वक्त फिल्म टेबल पर लगाई जाती है, तब इन गुटकों में फिल्म का एक छोर उसी चर्खी में फंसाकर स्टैण्ड के रॉड में लगा लिया जाता है।टेबल के दूसरे छोर पर ऐसा ही एक स्टैण्ड और लगा रहता है जिस पर सम्पादन के बाद तैयार फिल्म को लपेटा जाता है। इन दूसरे छोर पर चर्खियों को सम्पादक का सहायक हाथ से घुमाता रहता है, ताकि फिल्म ढीली नहीं रहे। जो फिल्म कट गई है उसे टेबल में ही बनी एक कपड़े की टोकरी में डाल दी जाती है। उसे कटिंग कहा जाता है। उस कटिंग को बाद में सम्पादक का सहायक गोलाकार लपेट कर अलग-अलग डिब्बों में रख लेबल लगा देता है। फिल्म लपेटने के लिए एक टेबल और आती है जिस पर दोनों छोरों पर एक-एक गोलाकार प्लेट लगी रहती है।टेबल के बीच में एक हैण्डल लगा रहता है जिसको चलाने पर एक ओर से फिल्म खिसक कर खुलती जाती है और दूसरी तरफ लिपटती जाती है। हर सम्पादक के रूम में यह टेबल उपलब्ध नहीं होती। ऐसी सूरत में सहायक सम्पादक आजू-बाजू के जिस किसी रूम में ऐसी टेबल उपलब्ध हो, वहाँ जाकर अपना काम पूरा कर लेता है, वर्ना उसे यह काम हाथ से पूरा करना पड़ता है।

जब सम्पादक सम्पादन करने के लिए हमेशा तैयार होगा तब सबसे पहले सीरियल की हुई पॉजीटिव और साउण्ड फिल्म मूवी

ओला पर लगायेगा। साउण्ड पॉजिटिव और पिक्चर पॉजिटिव दोनों पर बिगनिंग मार्क लगा रहता है। यहाँ पर दोनों जिस प्वाइंट पर सिंक्रोनाइज होते हैं पाजिटिव छोर का बिगनिंग मार्क पिक्चर हेड में लगाया जाता है और साउण्ड का बिगनिंग मार्क साउण्ड हेड में लगा दिया जाता है। पिक्चर और साउण्ड दोनों की शुरूआत और अन्त में व्हाइट पीस जो काफी लम्बा होता है, लगा रहता है। इन व्हाइट पीसों के प्रारम्भ के छोर पर मूवी ओला पर लगी चर्खियों में फंसा दिये जाते हैं। ये चर्खियां मूवी ओला के ऊपरी छोर पर लगे स्टैण्डों में लगी रहती है और मूवी ओला के चलने पर एक पट्टे की सहायता से चर्खियां घूमती रहती हैं और फिल्म अपने आप लिपटती जाती है। कभी-कभी जब चर्खियाँ काम नहीं करती हैं तब पाजिटिव और साउण्ड दोनों को या तो इस काम के लिए खास तौर पर बनी टोकरी में जाने दिया जाता है, जब टोकरी भी वहाँ नहीं मिलती है तो पॉजिटिव, पिक्चर एवं साउण्ड दोनों तरह के पॉजिटिव को जमीन पर गिरने दिया जाता है, मगर उसमें पिक्चर पॉजिटिव की फिल्म पर खरोच आने का डर बना रहता है। ये खरोचें बड़े पर्दे पर देखते वक्त दर्शकों को बहुत बुरी लगती है। यह सारा काम सहायक को ग्लास मार्किंग पेसिंल लेकर मार्किंग करने के लिए ओला पर खड़ा होना पड़ेगा ।

2.7 मार्किंग की प्रक्रिया

सम्पादक का सहायक जब पाजिटिव पिक्चर के रोल मूवीओला पर लगा देता है तब संपादक मार्किंग पेन्सिल लेकर मूवीओला पर मार्किंग के लिए खड़ा हो जाता है। इस मार्किंग के वक्त फिल्म निर्देशक का भी रहना जरूरी होता है। संपादक मूवी ओला का स्विच ऑन कर एक पेडल दबा देता है, इससे मूवी ओला चल पड़ता है। फिल्म नीचे से ऊपर की तरफ जाती है और संपादक मार्किंग बीच-बीच में शॉट रोककर करता जाता है। यह मार्किंग दो किस्म से होते हैं। ओ.के. मार्क यानी शॉट कहाँ तक

ठीक है यह बतलाता है। दूसरा कट मार्क यानी शॉट कहाँ से काटा जाएगा। इस कार्य में फिल्म निर्देशक भी अपने निर्देश देता है कि कौन सा शॉट कहाँ तक रहेगा और कौन सा शॉट कहाँ से शुरू होगा। किस जगह कौन सा इनसरशन जाएगा और किस जगह ओवर लैपिंग होगा। इस तरह तीन-चार रोल मार्क हो जाने पर फिल्म संपादक फिल्म काटने बैठेगा। फिल्म मार्किंग के वक्त कई बार फिल्म को नीचे ऊपर किया जाकर प्रत्येक शाट को बारम्बार देखा जाता है।

साउण्ड एडीटिंग

बहुत सालों पहले जब जेम्स बॉण्ड की पिक्चरें नहीं आई थीं पिक्चर कटिंग नहीं की जाती थी।कहने का तात्पर्य यह है कि साउण्ड खत्म होने के बाद उसकी तरंगों के कम्पन (वायबरेशन) ध्वनि पट्ट पर कुछ देर तक चलते रहते थे। उनका ध्यान रखकर जहाँ साउण्ड काटा जाता था, उस लंबाई में पिक्चर पॉजिटिव काटा जाता था। इससे फिल्म की लम्बाई काफी बर्बाद होती थी। आजकल पिक्चर के पॉजिटिव के हिसाब से साउण्ड काटा जाता है और ध्वनि तरंगें कटेंगी अथवा नहीं यह ध्यान नहीं रखा जाता। अतः आपको यह बताया जा रहा है कि संपादक के पास फिल्म संपादन के लिए सामान्य शॉटों के अलावा क्या-क्या शॉट काम में लेने के लिए होते हैं।

क्लोज अप

एक सीन में कई सारे शॉट लिए जाते हैं, उनमें अलग से लिए जाने वाले क्लोजअप अपना एक अलग महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। किसी पात्र के किसी काम, संवाद को महत्व देने के लिए उसका क्लोज अप लेना बहुत जरूरी होता है। कुछ क्लोज अप जिन्हें 'रिएक्शन क्लोजअप' कहते हैं, भी लिए जाते हैं। कुछ अतिरिक्त क्लोजअप, होते हैं जो सिर्फ इसलिए लिए जाते हैं ताकि उनके जरिये दूसरे शाटों की गलतियों को सुधारा जा सके। एक

अन्य क्लोजअप जिसे 'चक्रवर्ती क्लोजअप' कहा जाता है तथा जो इसलिए लिया जाता है कि कहीं भी जरूरत पड़ने पर उन्हें लगाया जा सके। इस क्लोज अप को देने के लिए कलाकारों को संकोच रहता है। वे इसे देने से कतराते हैं क्योंकि ये ऐसे क्लोजअप होते हैं जिन्हें कहीं भी लगाया जा सकता है जब किसी कलाकार को वापिस नहीं बुलाना हो, मगर उसका काम बाकी रह गया हो, तब निर्माता या निर्देशक उस कलाकार के ऐसे क्लोज अप ले लेता है। इस चक्रवर्ती क्लोजअप में कलाकार के फ्रंट,बैक, दाएं, बाएं प्रोफाइल थ्री-फोर्थ चेहरा, आगे, पीछे यानी सभी कोणों से एक ही शॉट में सारे क्लोजअप ले लिए जाते हैं। साइलेण्ट क्लोज अप में संवाद नहीं होते, किसी भी काम के लिए इनको लिया जाता है जैसे एक शॉट लम्बा हो गया। उसमें से संवाद का कोई अंश निकालना है तब ऐसा क्लोजअप लगाकर उस शॉट में से अवांछनीय अंश निकालकर एक शाट के दो शॉट बना लिए जाएंगे। उदाहरण के लिए एक लंबी फिल्म की पट्टी में से कोई बीच के अंश निकालते हैं। इस अंश के निकाल लेने से उन शॉटों के तारतम्य में अवरोध आ जाएगा। ऐसी सूरत में वहाँ पर क्लोज अप लगाकर वह अवरोध समाप्त कर दिया जाएगा। वैसे मेरी मान्यता है कि साइलेंट क्लोज अप भी संवाद ही है मगर बोला नही गया है।

पुराने जमाने में इनसरशन और क्लोज अप काफी लंबे-लंबे लगाए जाते थे। मगर आजकल यह उतने ही लगाये जाते हैं जितने में कलाकार की प्रतिक्रिया या एक्शन रजिस्टर हो जाए । मशहूर रूसी फिल्म निर्देशक पुदीवकीन ने एक जगह कहा है - ''भावहीन क्लोज अप भी जब दो इमोशनल शाटों के बीच में लग जाता है तब वह भी दृश्य की भावात्मकता को दर्शाने लगता है।''

बहुत सालों तक यह थ्योरी हर फिल्म निर्देशक के द्वारा अमल में लायी जाती रही। यह थ्योरी गेस्टाल्ट साइकोलॉजी पर आधारित है। इसका एक मूल सिद्धान्त यह है कि आदमी का मस्तिष्क गैप नहीं छोड़ता है और दो विचारों के बीच गैप भर कर खुद ही उनका

समन्वय कर लेता है। मगर मेरा अपना अनुभव यह है कि फिल्म की पट्टी पर खींचा गया भावहीन क्लोज अप भावहीन ही दिखलाई पड़ेगा। फिल्म की पट्टी मे कोई क्लोज अप का बारीक से बारीक भाव भी रजिस्टर हो जाता है और यह छड़ फ्रेम तक में भी वह भाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसलिए भावविहीन क्लोज अप अच्छे दर्शकों को भावहीन ही दिखलाई पड़ेगा।

ओवर लैपिंग

पहले सम्पादक एक शॉट पूरा खत्म करने के बाद उसका रिएक्शन शॉट लगाया करते थे। इसमें फिल्म की लम्बाई बढ़ती थी।आजकल इस पद्धति में परिवर्तन हो गया है कि रिएक्शन शॉट ऊपर के शॉट की लम्बाई काटकर लगा दिया जाता है और ऊपर के शॉट का साउण्ड उस पर चढ़ा दिया जाता है इस प्रक्रिया को ओवर लैपिंग कहते हैं।

2.8 ज्वाइंट की प्रक्रिया

मार्किंग हो जाने के पश्चात फिल्म संपादक फिल्म काटने के लिए बैठेगा। सहायक सम्पादक पाजिटिव पिक्चर और साउण्ड को अलग-अलग चर्खियों पर लगे रहते हैं। एडिटिंग टेबल के स्टैण्ड पर लगाएगा। उनके साथ ऊपरी छोर पर लगाए गए व्हाइट पीस सिंक्रोनाइजिंग मार्क से टेबल पर लगे सिंक्रोनाइजर पर लगायेगा। इसके पूर्व सहायक सम्पादक मुवी ओला से पिक्चर और साउण्ड उतार कर उन्हें रिवाइन्ड करेगा।

व्हाइट पीस क्यों लगाते हैं?

व्हाइट पीस लगाने के दो कारण मुख्य है, पहला तो उससे फिल्म को काटते वक्त फिल्म के फिसलने का खतरा नहीं रहता। दूसरे उनको रिवाइन्ड करने में आसानी रहती है । ये व्हाइट पीस आम तौर पर बारह से अठारह फीट तक का लगाया जाता है ताकि जब भी फिल्म की ट्रायल से या उसे बड़ी स्क्रीन पर देखना हो तो प्रोजेक्ट में फिल्म लगाने में आसानी रहती है। कभी-कभी यह

व्हाइट पीस छोटे भी लग जाते हैं। वे व्हाइट पीस रिलीज प्रिन्ट में भी लगते हैं। साउण्ड और पिक्चर का सिंक्रोनाइजेशन हो जाता है, तब सम्पादक उन दोनों को ऊपर-नीचे रखकर मिलाता है और व्हाइट पीस पर वर्क करता है। इसी वर्क से पिक्चर और साउण्ड को जब भी देखने की जरूरत हो चलाया जाता है।

फिल्म कटिंग कैसे?

एडीटिंग टेबल पर फिल्म लगने के बाद सम्पादक पहले कटिंग मार्क से पिक्चर और साउण्ड काटना शुरू करेगा। इसके पहले सम्पादक पहली फ्रेम कौन सी रहेगी, इसको नंगी आँख अथवा मैग्नीफाइंग ग्लास से देखकर तय करेगा। अगर मूवी ओला पर लगा कर कटिंग मार्क से यह नया कटिंग मार्क ऊपर है या नीचे है तब सम्पादक साउण्ड की कटिंग मार्क के ऊपर पॉजिटिव पर कटिंग मार्क रखकर अपनी कैंची चलाएगा। काटने के बाद सम्पादक कटिंग मार्क और ओ. के. मार्क को हाथ से मिटा कर दोनों छोर सहायक को पकड़ा देगा । सहायक व्हाइट प्रिंट से नीचे का बेकार पिक्चर और साउण्ड निकाल कर दोनों छोरों को फिर व्हाइट प्रिंट से जोड़ देगा।

जोड़ने की प्रक्रिया

जिस साइड में फिल्म की पट्टी पर एमल्सन रहता है, उसके पीछे के भाग को ब्लेड से खुरच कर उस पर सीमेंट लगाएगा और व्हाइट प्रिंट के साथ चिपका देगा। उस पर दबाव डालेगा ताकि वह ठीक से चिपक जाए। ठीक से नहीं चिपकाने पर अथवा खराब सीमेन्ट के उपयोग करने पर फिल्म को चलाते वक्त ज्वाइंट के उखड़ने का डर बना रहता है। फिल्म में काम आने वाला सीमेन्ट एक रासायनिक द्रव्य है जो पिछले बहुत सालों से भारत में ही बनता है।यह एक घरेलू उद्योग है और इसके निर्माता इसे घर में ही बनाकर फिल्म निर्माताओं को बेचते रहते हैं।सीमेन्ट बोतलों में आता है मगर उसका प्रयोग करने के लिए इसे नेल पालिश जैसी शीशियों में ब्रुश

सहित थोड़ी- थोड़ी मात्रा में भर कर रखते हैं। ब्रुश ढक्कन में लगा रहता है जिससे सीमेन्ट फिल्म की पट्टी पर लगाया जाता है ।आज कल आम तौर पर यह फिल्म ज्वाइंट का काम चिपकाने के टेप से किया जाता है।इस टेप के एक ओर रासायनिक द्रव्य लगा रहता है जिससे दोनों छोरों को अच्छी तरह मिला कर उस पर टेप की पट्टी रखकर चिपकाया जाता है। इस प्रक्रिया में ब्लेड की जरूरत नहीं पड़ती। इसके लिए एक छोटा सा संयंत्र आता है जिसे सप्लाइजर कहते हैं इसकी जानकारी पहले दी जा चुकी है। सप्लाइजर से ज्वाइंट लगाते वक्त ज्वाइंट को हल्की जरूरत नहीं पड़ती है। इस ज्वाइंट में फिल्म के दो शीटों को जोड़ते वक्त उसके दो छोरों को ऊपर-नीचे नहीं रखना पड़ता।इनको आमने-सामने रखकर टेप की पट्टी ऊपर से चिपका दी जाती है। यह टेप पारदर्शी होती है।

ज्वाइंट दो छेद के होते हैं

जिस ज्वाइंट का हमने वर्णन किया है वह सिम्पल अथवा सामान्य ज्वाइंट कहा जाता है इसके अलावा एक ज्वाइंट और भी होता है जिसे बट्ट ज्वाइंट कहा जाता है यह किसी भी ऊबड़-खाबड़ कटी फिल्म को जोड़ने के काम आता है।जब टेप नहीं मिलता था तब ऐसी कटी-फटी फिल्मों को जोड़ने के लिए ब्लैक पीस को बारीक पट्टी काटकर उस पर सीमेन्ट लगाकर उस पट्टी से वह फटा-कटा टुकड़ा जोड़ा जाता था। आजकल टेप से चिपकाने के कारण यह ज्वाइंट ठीक से चिपक जाता है।

2.9 इन्सरशन का प्रयोग

बट्ट ज्वाइन्ट उसी समय काम में आता है जब शॉट का वह भाग हो जिसको निकालना उचित नहीं समझा जाता वर्ना उस फटे हुए टुकड़े को काटकर उसी लम्बाई का व्हाइट पीस लगाकर एक ऐरोमार्क कर देते हैं। इसका मतलब यह होता है कि जब निगेटिव कटेगा तब शॉट की लम्बाई वहाँ तक रहेगी।अगर निर्माता जरा खर्च के मामले में दरियादिल है तो कटा हुआ शॉट री-प्रिन्ट करवा लिया

जाता है।

इसके अलावा एक तरीका और भी है जिसे पीनिंग कहा जाता है। किसी कारणवश जब सम्पादक शॉटों को जोड़ना नहीं चाहता या उनके बीच व्हाइट पीस लगाना नहीं चाहता हो तब दोनों शॉटों को ऊपर-नीचे रखकर उनमें व्हाइट पीस बारीक सा काटकर फिल्म के दोनों ओर के छेदों में लगा दिया जाता है, मगर यह पीनिंग करने से फिल्म को मूवी ओला अथवा मिनी थियेटर में देखने पर समस्या खड़ी हो जाती है। यह भाग मशीनों से गुजर नहीं पायेगा इसलिए जब भी फिल्म देखनी होती है तब पीनिंग को निकालकर व्हाइट पीस लगाना ही पड़ेगा।

प्रथम कटिंग के बाद फिल्म सम्पादक जब आगे बढ़ेंगे तब उसके सामने सम्पादन के लिए दो तरीके होंगे। प्रथम तरीका तो यह होगा कि क्लोजअप और इनसरशन साथ के साथ लगाता चले। दूसरा तरीका यह होगा कि सीन की पहले एक लाइन बनाए और उसके बाद जहाँ जरूरत हो वहाँ क्लोजअप और इन्सरशन लगाये। यह क्लोजअप और इन्सरशन अलग से निकाल कर रोल बना कर रखे रहते हैं। जब जब जरूरत हो तब तब उनको निकाल कर लगाये जाते हैं। जिन क्लोजअप में डायलाग होते हैं, वो क्लोजअप तो सीन की लाइन बनाते वक्त ही लग जाते हैं। साइलेन्ट क्लोजअप जिन्हें रिएक्शन शॉट कहा जाता है, दो शॉटों के बीच में या एक ही शॉट के बीच में इन्सरशन के बतौर काम में लिया जाता है। साइलेन्ट इन्सरशन वैसे ऐसा संवाद माना जाना चाहिए जो खामोश है।

लाइन बनाने के बाद में सम्पादक और फिल्म निर्देशक दोनों मूवीओला पर उसे देखेंगे और यह तय करेंगे कि सीन का टेम्पो तथा वांछनीय इफेक्ट ठीक है या नहीं। अगर प्रभाव ठीक नहीं आ पा रहा है तो उन्हें और कैसे लाया जाय। इस पर विचार किया जायेगा। वैसे आम तौर पर पहले कटिंग में सीन को थोड़ा लूज ही रखा जाता है। जिसे फाइनल करते समय ठीक और चुस्त किया जाता है। आजकल

फिल्म में टेम्पो बनाये रखना पहली जरूरत है । फिल्म कितनी फास्ट बन सकती है इसका ध्यान रखा जाता है। मूवी ओला पर देखते वक्त फिल्म के निर्देशक और सम्पादक यह तय करेंगे कि किस जगह क्लोजअप इनसरशन आएंगे। फिल्म सम्पादक जहाँ-जहाँ इन्सरशन को रखना हो तो वहां मार्किंग कर देता है सम्पादक उसे फिर से एडिटिंग टेबल पर लगाकर जहाँ-जहाँ पर इन्सरशन लगाने हों वहाँ-वहाँ इन्सरशन लगायेगा। अगर शॉट के बीच में इन्सरशन लगाना है उसका क्लोजअप तलाश करके वैसा एक्सप्रेशन ढूँढेगा जो उस शॉट के डायलॉग के अनुकूल रिएक्शन का हो । उसके बाद ही उसे लगाएगा। डायरेक्टर भी रिएक्शन लेते वक्त इस बात का ध्यान रखते हैं कि किस डायलॉग पर रिएक्शन लेना है और वह उस डायलॉग को कलाकारों से अथवा अपने सहायकों से बुलवा कर ही उस पर ही रिएक्शन लेगा। क्लोजअप के बचे हुए हिस्सों को सम्भाल कर रखा जाता है ताकि उसकी जब भी जरूरत पड़े काम में ले लिया जाए।

ऊपर लिखा जा चुका है कि जब दो शॉटों को लगाना हो तब सम्पादक एक शॉट के आखिरी और दूसरे शॉट के प्रारम्भ के छोर के कलाकारों के एक्शन को मैच करवा कर लगायेगा। अगर ये एक्शन मैच नहीं होते हैं तो दोनों शॉटों में जम्प आएगा और वह आंखों को बहुत बुरा लगेगा। जैसे पहले शॉट में किसी कलाकार का हाथ ऊपर है और दूसरे शॉट में हाथ नीचे है तक ऐसे शॉट नहीं जुड़ पाते हैं। सम्पादक इन दोनों शॉटों के एक्शनों को बारीकी से देखेगा कि कहाँ से इन शॉटों को काटा जा सकता है। सारी कोशिशों के बावजूद यदि शॉटों को लगाना संभव नहीं है तो फिर बीच में क्लोजअप इनसरशन लगाए बिना काम नहीं चल सकता। अगर क्लोजअप नहीं है तो फिल्म एडीटर वहाँ व्हाइट पीस लगा देगा और फिल्म निर्देशक को कहेगा कि इस जगह के लिए फलां कलाकार का क्लोजअप चाहिए। तब वह क्लोजअप उसे उपलब्ध करवा दिया जाएगा तो वह उसको वहां लगा देगा।

क्लोजअप लगाने की जरूरत उस समय भी पड़ती है जब गलती से डायरेक्टर कभी सेम ऐंगल शॉट ले लेता है या कार्टेन क्रास कर जाता है। सेम ऐंगल शॉट और कर्टेन क्रासिंग (अपोजिट ऐंगल शॉट) के बारे में हम पहले बता चुके हैं फिर भी यहाँ संक्षिप्त में इनकी प्रक्रिया पुनः दोहराना उचित होगा। सेम ऐंगल शॉट का मतलब यह है कि जिस एंगल से निदेशक ने पहला शॉट लिया है, जैसे 45 के कोण में कैमरा रखा हुआ है और उसी 45 के कोण से कैमरा आगे ले जाकर निर्देशक ने दूसरा शॉट ले लिया है तब आम तौर पर ये शाट नहीं लग पाते, क्योंकि कलाकारों की एक्शन कन्टीन्यूटी बराबर की बनी रह पाती है। इसलिए बगैर बीच में क्लोज अप डाले यह लग नहीं पाते हैं। गलती से कहीं दोनों शाटों में कलाकारों के एक्शन मैच हो जाते हैं तो दोनों शॉट लग जाएंगे और उनका प्रभाव भी बहुत अच्छा आएगा।

कर्टेन क्रासिंग भी निषिद्ध है। कर्टेन क्रासिंग का मतलब 180 डिग्री की रेखा पार करना भी कहा जाता है। और उसे अपोजिट एंगल भी कहा जाता है । जब फिल्म निर्देशक 180 डिग्री की कर्टेन क्रासिंग कर लेता है तो कलाकारों की पोजीशन एकदम उल्टी हो जाती है। यह शाट पर्दे पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अगर इन दोनों शाटों के बीच में कोई इन्सरशन डाल दें तो दोनों शॉट लग तो जाएंगे, पर उनका प्रभाव फिर भी अटपटा ही रहेगा । हालाँकि गुरूदत्त की एक फिल्म में उन्होंने कर्टेन क्रासिंग का एक ऐसा शॉट लगाया भी है।

इन क्लोजअप और क्लोजअप इन्सरशन के अलावा और भी कई ऐसे इनसरशन होते हैं जिनको कथा को आगे बढ़ाने के लिए लगाना पड़ता है। जैसे दो कलाकार कोई षडयंत्र रच रहे हैं और तीसरा कलाकार उन पर नजर रखे हुए हैं तो उस कलाकार के भी बीच-बीच में इन्सरशन लगाना जरूरी है। ये इन्सरशन कहाँ लगेंगे यह निदेशक और सम्पादक दोनों मिलकर तय करेंगे। वर्ना दोनों में से जिसका पलड़ा भारी होगा वह हावी हो जाएगा।

2.10 इन्सरशन जोड़ने की तकनीक

इन्सरशन क्लोज अप के अलावा और भी होते हैं जैसे-झाड़ फानूस के, फूलों के, सूर्य और चन्द्रमा के, समुद्री लहरों के आदि आदि। यह इन्सरशन कहानी की मांग और सीन की स्थिति के अनुसार लगाए जाते हैं। इनमें प्रतीकात्मक भी होते हैं। उदाहरण के लिए अमिया चक्रवर्ती ने अपनी फिल्म 'पतिता' में ऊषा किरण के साथ खलनायक द्वारा किये गये बलात्कार के दृश्य में इसका प्रयोग किया था। सीन के अन्त में, लड़की को पकड़ने के बाद निर्देशक ने समुद्र की लहरों की एक भारी-भरकम पत्थर से टकराहट का प्रयोग किया था। वी. शान्ताराम अपनी हर फिल्म में कई किस्म में प्रतीकात्मक शॉट लगाया करते हैं।आम तौर पर फिल्मी गानों के बीच में फूलों के, पक्षियों के दृश्य लगाए जाते है। यह जरूरी नही हैं कि ये शॉट क्लोजअप ही हों लाँग, मिड लाँग, मिड क्लोज आदि शॉट भी लगाए जा सकते हैं । सूर्य, चन्द्रमा और तारों के शॉट की एक्सट्रीम लोग में भी लगाने पड़ते हैं। उगता हुआ सूर्य सुबह का मनोरम दृश्य होता है इसे भाग्य के उत्थान के लिए भी काम में लिया जाता है। रात दिखाने के लिए चन्द्रमा के शॉट डाल दिये जाते हैं । ऐसे शॉट लगाने में कभी-कभी भयानक भूलें भी हो जाती हैं।किसी एक पुरानी फिल्म में एक गाने में अमावस की काली रात का जिक्र था। मगर उस गाने के दृश्य में पूर्णमासी का चन्द्रमा अपनी चांदनी के साथ उपस्थित था। दर्शकों ने इसकी खूब खिल्ली उड़ाई।

इंटर कटिंग

कभी-कभी फिल्मों में दो या तीन सीन ऐसे आ जाते हैं कि उनका एक्शन एक ही समय में होता है जैसे किसी लड़की के साथ बलात्कार हो रहा हो और कोई उसे बचाने के लिए भागा चला आ रहा हो तो दोनों ही ऐक्शन एक ही समय में होंगे। कागज पर लिखते वक्त यह सीन दो तरह लिखे जा सकते हैं पहला तरीका तो

यह है कि पहले सीन का एक भाग लिखकर उसके नीचे लिख दिया जाता है 'इंटर कट विथ' । इसके बाद दूसरे सीन का एक अंश लिखा जाता है इसके नीचे भी लिख दिया जाता है -इंटर कट विथ'। इस तरह यह प्रक्रिया कई बार दोहराई जाती है। पहले सीन के अन्त के टुकड़े में बचाने वाले की एंट्री करवाई जाती है फिर जो भी एक्शन इसके पटकथा आलेख में लिखा है उसे फिल्मा लिया जाएगा।

दूसरा तरीका यह है कि पहले सीन को पूरा लिख लिया जाएगा और उसे सीन नम्बर फलां 'ए' नम्बर देकर दूसरे सीन को सीन नम्बर 'बी' देकर पूरा लिख दिया जाएगा कि दोनों ही दृश्य इंटर कट होंगे। फिल्म निर्देशक दोनों दृश्यों को अलग-अलग फिल्माएगा और सम्पादक दोनों ही दृश्यों को इण्टरकटिंग करके सम्पादित करेगा। यह जरूरी नहीं है कि दोनों दृश्यों की समानान्तर कटिंग ही हो। जहाँ पर भी सम्पादक को अच्छा लगेगा वहीं दूसरे दृश्यों को वह ओपन करेगा। जैसे कि रेप सीन में दो-तीन शॉट लेने के बाद हीरो के आने का एक शॉट दे देगा। यह भी जरूरी नहीं है कि हीरो के भाग कर आने के कई शॉट दिये जायँ। सम्पादक सिर्फ यह देखेगा कि दृश्य का टेम्पो कैसे अच्छा बनता है और सीन की सुस्ती (डलनेस) कैसे निकाली जाए। जहाँ बलात्कार का दृश्य सुस्त पड़ रहा होगा या जहाँ कहीं एक्शन में दोहराव हो रहा होगा, वहीं उसे काटकर दूसरे दृश्य के टुकड़े लगाएगा। दूसरे दृश्य के टुकड़ों में भी अच्छे-अच्छे टुकड़े ढूँढ करके लगाएगा। दृश्य को जितना लम्बा किया जाएगा उतना ही वह सुस्ती फैलाएगा या बोर करेगा।इसलिए आजकल दृश्य को किस तरह मतलब की बात दर्शा कर छोटा रखा जाय, इसका ध्यान रखा जाता है। यह 'गागर में सागर' भरने वाली स्थिति सम्पादक को बनानी पड़ती है।

कभी-कभी दो दृश्य ऐसे भी आ जाते हैं जिनकी समानान्तर कटिंग करनी जरूरी हो जाती है।इन समानान्तर कटिंग वाले दृश्यों को फिल्माने का एक और तरीका है वह यह कि दोनों दृश्यों के

एक्शन एक ही फ्रेम में दिखाए जाएँ यानी आधे-आधे फ्रेम में दोनों एक्शन साथ-साथ दिखाए जाएंगे, जिसकी शूटिंग मास्किंग करके भी की जा सकती है, और अलग-अलग शॉट लेकर ऑप्टीकल प्रिंटिंग से भी करवाई जा सकती है। श्वेत श्याम फिल्मों में तो ऐसे शॉटों में कोई खास दिक्कत नहीं आती थी। मगर रंगीन फिल्मों के प्रिन्ट में दिक्कत आ जाती है। एक रंग उड़ जाने का डर रहता है।कई बार सम्पादक को किसी न किसी शॉट को ब्लाअप करवाने की जरूरत भी पड़ जाती है। जैसे दो शॉट आपस में लग नहीं पा रहे हैं और उनके बीच में कोई क्लोजअप लगाना जरूरी हो, और निर्माता शूटिंग करने के मूड में नहीं हो, तो जिस कलाकार का क्लोजअप लगाना हो उसका कोई शॉट ढूँढकर ब्लोअप करवा लिया जाता है यानी मिड लाँग या मिड क्लोज से क्लोज शॉट करवा लिया जाता है। यह काम ऑप्टीकल प्रिन्ट करने वाले करते हैं; यह ब्लोअप और कारणों से भी करवाने पड़ जाते हैं । जैसे कलाकार की अनवरतता मार खा रही हो अथवा पूरे क्लोजअप की जगह कलाकार के चेहरे का कोई खास अंश बताना हो तो उसको ब्लोअप करवा लिया जाता है। ऐसी स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब निर्माता अथवा निर्देशक उस कलाकार की फिर से शूटिंग नहीं करना चाहता हो अथवा उस कलाकार की तारीख नहीं मिल पा रही हो।

2.11 ध्वनि चढ़ाना

फिल्म सम्पादन में एक और भी प्रक्रिया आवश्यक होती है जिसको ध्वनि चढ़ाना कहा जाता है। एक जमाना था जब यह प्रक्रिया न तो सम्पादक जानते थे न उसका प्रयोग ही किया जाता था, मगर ज्यों-ज्यों सम्पादन के कार्य में चुस्ती आने लगी त्यों-त्यों ध्वनि चढ़ाना यानी एक शॉट की ध्वनि दूसरे शॉट पर चढ़ाना भी एक अनिवार्य आवश्यकता हो गई ।

वैसे जब ध्वनि और दृश्य निगेटिव की एक ही पट्टी पर

उतारी जाती थी तब इस प्रक्रिया का प्रयोग संभव ही नहीं था, क्योंकि ध्वनि या दृश्य काटने के साथ कभी ध्वनि कट जाती थी कभी दृश्य कट जाता था। यह प्रक्रिया तभी संभव हो सकी जब पिक्चर निगेटिव से साउण्ड निगेटिव को अलग कर दिया गया।

मूल रूप से एक शॉट को ध्वनि दूसरे शॉट पर चढ़ाना रिएक्शन के लिए किया जाता है। जब एक कलाकार किसी दूसरे कलाकार की आलोचना कर रहा हो, तब दूसरे कलाकार की प्रतिक्रिया लेनी आवश्यक हो जाती हैं वरना दृश्य अधूरा लगेगा। यह रिएक्शन कम्बाइण्ड शॉट में भी लिया जाता है और पृथक शॉट में भी लिया जाता है। जब कम्बाइन्ड शॉट में रिएक्शन शॉट लिया हो तब अलग से प्रतिक्रिया शॉट न तो लिया जाता है, न लगाया जाता है इस प्रक्रिया में साउण्ड दूसरे शाट पर चढ़ाना आवश्यक नहीं होता । यह सम्पादन प्रक्रिया साउन्ड सम्पादन प्रक्रिया कहलाती थी। उस वक्त साउण्ड से पिक्चर की फ्रेमें साढ़े उन्नीस फ्रेम अधिक रक्खी जाती थी। कारण यह था कि प्रोजेक्टर में साउण्ड हेड और पिक्चर हेड में इतना ही फर्क रहता है। उस वक्त क्लोज अप इन्सरशन आदि भी शॉट पूरा होने के बाद अलग से लगाए जाते थे। यह काफी लम्बे-लम्बे होते थे। एक फिल्म सम्पादक ने मुझे बताया था कि उस जमाने में क्लोजअप इन्सरशन नाप करके अठारह फीट तक का लगाया जाता था। यह इन्सरशन ध्वनि रहित रहते थे बशर्ते कि कलाकार को कहीं संवाद नहीं बोलना हो। मगर जब साउण्ड और पिक्चर अलग-अलग हो गये तो सम्पादन की सारी प्रक्रिया उथल-पुथल हो गई। इस संक्रान्ति काल में एडीटिंग की दो प्रक्रिया काम में आने लगी।

एक प्रक्रिया तो थी जिसमें साउण्ड और पिक्चर दोनों ही अलग-अलग प्रिण्ट कराए जाते थे। इस प्रक्रिया में धीरे-धीरे साउण्ड कटिंग की जगह पिक्चर कटिंग चालू हो गई । ध्वनि कम्पन काटा जाना भी इसी दौरान शुरू हो गया। इस प्रक्रिया में भी पहले इन्सरशन या क्लोजअप रिएक्शन अलग से दिये जाते थे। मगर

धीरे-धीरे यह क्लोज अप और इन्सरशन मूल शॉट के ही भाग बन गये। कहने का तात्पर्य यह है कि एक कलाकार संवाद बोल रहा है कि बीच-बीच में दूसरे कलाकारों के रिएक्शन शॉट भी डाले जाते हैं। साउण्ड तो पूरा रहेगा मगर बोलने वाले कलाकार के कई भाग बीच में कट जायेंगे और दूसरे कलाकारों के शाट बीच-बीच में लग जाएंगे। इन शाटों के लगने से कई फायदे होते हैं। वैसे मूल शॉट की लम्बाई में ही सारे रिएक्शन आ जाते हैं इससे फिल्म की लम्बाई काबू में रहती है। दूसरे मूल शॉट जहाँ पर भी कमजोर पड़ रहा हो वहां पर उतना ही हिस्सा काट दिया जाता है। मूल शॉट में कलाकार की कमजोरियां इससे छिप जाती हैं। इसका तीसरा फायदा यह है कि किसी भी शॉट में अगर लम्बाई बढ़ती है या कोई डायलाग बढ़ गया है या किसी डायलाग को हटाना है, तो यह काम भी आसानी से किया जा सकता है। क्लोज अप या इन्सरशन डालकर कोई भी शॉट कहीं भी काटा जा सकता है।

चौथा फायदा यह हुआ कि जो इन्सरशन और रिएक्शन क्लोज अप लगाए जाते थे उनकी लम्बाई स्वतः ही कम हो गयी।जितनी फ्रेम आप मूल शॉट की काटोगे उतनी ही दूसरे शॉट को लगेगी। परिणामस्वरूप रिएक्शन शॉटों में भी उपयुक्त रिएक्शन ढूँढकर लगाये जाते हैं। जितना जरूरी होता है, उतना ही टुकड़ा लगाया जाता है इस प्रक्रिया से फिल्म की सम्पादन प्रक्रिया में चुस्ती आ गयी है। फिल्म में से जहाँ भी बोरियत हो रही हो उसे पूरी तरह निकाला नहीं जा सकता आवश्यक हो तो उसको कम तो किया ही जा सकता है।

इसी संक्रान्ति काल में सम्पादन की दूसरी जो प्रक्रिया थी उसमें साउण्ड और पिक्चर का मेरिड प्रिन्ट निकाला जाता था। इस मेरिड प्रिण्ट का मतलब यह है कि शूटिंग तो अलग-अलग पिक्चर निगेटिव तथा साउण्ड निगेटिव पर किया जाता था मगर पाजीटिव प्रिन्ट निकालते वक्त थोड़ा पैसा बचाने के चक्कर में एक ही पट्टी पर ध्वनि और पिक्चर मुद्रित करवा ली जाती थी। इस प्रक्रिया से

निकालते हुए प्रिण्ट की स्थिति भी वही रहती थी जो एक ही पट्टी पर साउण्ड और पिक्चर की शूटिंग होने पर रहती थी, यानी सम्पादन के वक्त साढ़े उन्नीस फ्रेम का अन्तर रखना बहुत जरूरी होता था।

इन्सरशन और क्लोजअप भी बड़े अखरते थे, क्योंकि वे अलग से लगाने पड़ते थे। फिल्म की ट्रायल देखने वालों को ये आँखों में चुभते थे। इस प्रक्रिया में सारा सम्पादन कार्य हो जाने पर नए सिरे से साउण्ड और पिक्चर को अलग-अलग प्रिन्ट करवाना पड़ता था। निगेटिव काटते वक्त इन्सरशन और क्लोजअप नए सिरे से लगाने पड़ते थे।सम्पादक के लिए यह दोहरी मेहनत हो जाती थी। आजकल यह प्रक्रिया न तो सम्पादक अपनाता है और न निर्माता ही इसके लिए जिद करता है। दृश्य और ध्वनि अलग-अलग प्रिण्ट करवाकर ही सम्पादन कार्य किया जाता है।

हिन्दुस्तान में कोई बिरला ही ऐसा निर्माता-निर्देशक या सम्पादक होगा जो निगेटिव से एडीटिंग करता हो या करवाता हो मगर इसके भी अपवाद हैं। मशहूर निर्माता-निर्देशक केदार शर्मा के बारे में यह बात चर्चित है कि उनकी एडीटिंग सीधे निगेटिव से होती है। पॉजिटिव प्रिण्ट उसके बाद ही निकाला जाता है।

2.12 एडीटिंग टेबल पर बनती हैं फिल्में

फिल्म की पटकथा लिखते समय बहुत सारे ऐसे दृश्य, ऐसे शॉट लिख लिए जाते हैं जो उस वक्त अच्छे लगते हैं लेकिन शूटिंग करते वक्त निर्देशक के सामने और सम्पादन करते वक्त सम्पादक के सामने फिल्म की लम्बाई का ध्यान आ जाता है क्योंकि 4 हजार मीटर से बड़ी हो जाने पर फिल्म की लेवी दुगुनी हो जाती है। साथ ही शूटिंग करने में भी पैसा लगता है, समय भी नष्ट होता ही है। ऐसे में नतीजा यह होता है निर्माता और निर्देशक शूटिंग की प्राथमिकताएं तय करते हैं। सिर्फ दृश्यों की शूटिंग होती है, जो बहुत ही जरूरी समझे जाते हैं। फिर भी फिल्म की लम्बाई पर काबू नहीं रखा जा सकता। फिल्म कभी लंबी हो जाती है, कभी छोटी। जब

फिल्म लम्बी हो जाती है तब शूटिंग किए हुए सीन या तो निकालने पड़ते हैं या उनकी लम्बाई कम करनी पड़ती है। जब छोटी हो जाती है, तब नये सीन लिखवाकर शूटिंग की जाती है ताकि वांछनीय लम्बाई हो जाए। इस सारी प्रक्रिया में फिल्म के सन्दर्भ गड़बड़ा जाते हैं, उनको ठीक करना फिल्म सम्पादक का काम है। सम्पादक की मुसीबत ही मुसीबत है।

मेरी फिल्म पाताल नगरी की लम्बाई 18 हजार फीट से भी अधिक हो गयी थी। उसको काटकर 13हजार फीट करना पड़ा। तो कई प्रसंग और दृश्य निकालने पड़े। कई दृश्यों को इतनी बेरहमी से काटा गया कि जो दृश्य दर्शकों को पसंद आने लगते, उन्हें नदारद पाकर दर्शक मायूस हो जाते थे। प्रशंसा में बजाने के लिए उठे हुए हाथ थम जाते। सिर्फ खलनायक बी. एम. व्यास का ''हूँ'' लगभग डेढ़ हजार फीट कटा था। एक दूसरी फिल्म में लंबाई कम करने के लिए सभी दृश्यों के प्रारम्भ और अन्त का एक एक फ्रेम काटा गया था। फिल्म 'पाकीजा' में संगीत गुलाम मुहम्मद ने दिया था। उनकी मृत्यु के बाद नौशाद से भी 5 या 6 गीत रिकार्ड करवाए गये थे। ये गीत फिल्माए भी गये थे। मगर फिल्म के अन्तिम प्रारूप में सिर्फ गुलाम मुहम्मद के ही गीत रखे गये थे यानी कि 5 या 6 गानों के रिकार्ड एवं फिल्मांकन का खर्च निर्माता के सिर पड़ा। सुनीलदत्त की फिल्म 'मुझे जीने दो' की पटकथा शूटिंग के पहले मुझे देखने को मिली थी, जिसमें प्रारम्भ में हीरो डाकू क्यों बनता है इसका विस्तार से वर्णन किया गया था, मगर उसके रिलीज प्रिंट में वह सब निकाल दिया गया और ओपनिंग शॉट में डाकू सुनीलदत्त को अपने साथियों के साथ घोड़े पर भागते हुए ही दिखाया गया है।

कई बार फिल्म निर्देशक असमंजस में होता है कि फिल्म का क्लाइमेक्स क्या रखा जाए तब उनके सामने एक विकट समस्या आ खड़ी होती है। ऐसी सूरत में निर्देशक जो दो-तीन विकल्प बनते हैं, सबको फिल्मा लेते है। इन्हें बारी-बारी से लगाकर देखने वालों पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है। यह देखकर अंतिम निर्णय लिया

जाता है।

बंगाल के प्रसिद्ध निर्देशक देवकी बाबू ने एक बेहतरीन फिल्म बनाई थी। उसका नाम था - 'रत्न दीप' । इस फिल्म में उन्होंने दो-तीन क्लाइमेक्स फिल्माकर एक को अंतिम रूप से चुना था। विमलराय की फिल्म 'बन्दिनी' में भी इसी तरह कुल तीन क्लाइमेक्स अपनाए गये थे। इस फिल्म में नायिका नूतन के साथ दो नायक थे अशोक कुमार और धर्मेन्द्र । वे अंत तक इस दुविधा में पड़े रहे कि नूतन को किस नायक के साथ नत्थी किया जाए और अंतिम रूप देते वक्त तक यह तय नहीं कर पाए कि क्या करें। नतीजा यह हुआ कि इस फिल्म का क्लाइमेक्स कमजोर पड़ गया।

बॉम्बे टॉकीज के निर्माता सावक बाबा और लेखक-निर्देशक कमाल अमरोही की बहुचर्चित फिल्म 'महल' में भी कुछ इसी तरह की दुविधा उत्पन्न हो गयी थी। अलग-अलग जगहों पर रिलीज किये गये प्रिन्टों में अलग-अलग क्लाइमेक्स बताये गये थे। किसी किसी जगह नायक-नायिका अशोक कुमार और मधुबाला को दूसरे जन्म में मरते दिखाकर फिल्म समाप्त कर दी गई थी और कहीं-कहीं उन दोनों का तीसरा जन्म दिखकर सुखान्त फिल्मी अन्त किया गया था।

यह कहा जाता है कि फिल्म एडिटिंग टेबल पर बनती है। सम्पूर्णतया नहीं तो काफी अंश तक सही है। फिल्म का पहला प्रारूप पटकथा पूरी होने पर तब होता है और अंतिम प्रारूप सम्पादन में । फिल्म निर्देशक कुछ भी शूटिंग कर सकता है, मगर उसका अंतिम रूप सम्पादक ही तय करेगा । यह तभी संभव है जब निर्देशक सम्पादक को अच्छा शूटिंग मेटेरियल दे। जिसमें से सम्पादक अपनी जरूरत के शॉट निकाल कर सीन को ठीक से सम्पादित कर सके। अगर निर्देशक ने सम्पादक को मेटेरियल ही नहीं दिया तो सम्पादक भी कुछ नहीं कर सकता। ऐसी सूरत में अगर निर्माता शूटिंग करने के लिए तैयार हो तभी कुछ बात बन सकती है। अगर निर्माता ने अपने सिर को हिलाकर मना कर दिया तो तब कुछ भी

नहीं हो सकता ।

एक निर्देशक थे अकू जिन्होंने कई फिल्में बनाई थी। उनकी शूटिंग का तरीका यह था कि सम्पादक चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सकता था। इनके सीनों को फ्लैप काटकर जोड़ना मात्र ही सम्पादक का काम रह जाया करता था। दर्जनों फिल्मों को बनाने के बाद भी मुश्किल से एक-दो फिल्में इनकी चल पाई होंगी। गलती से होमी वाडिया ने उनको एक फिल्म निर्देशन करने के लिए सौंप दी। फिल्म का नाम था 'लाल दमन'। पचास-तीस दिन में फिल्म पूरी बना लेने वाले अकू साहब ने इस फिल्म को पूरी करने में 100 से भी अधिक दिन ले लिये। उसके बाद में भी हाथ वही लगे ढाक के तीन पात। फिल्म रिलीज हो कर फ्लॉप हो गयी। एक मजेदार बात यह हुई कि होमी वाडिया के बड़े भाई जमशेद वाडिया ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने होमी से कहा कि मै नये सिरे से कुछ सीन लिख देता हूँ उन्होंने गुजराती में बोला - जग्घा छे'' मगर होमी वाडिया ने नये सिरे से शूटिंग करने से साफ इन्कार कर दिया। कभी-कभी दर्शकों को एक अंत पसंद नही आने पर दूसरा अंत जैसे दुःखान्त से सुखान्त फिल्माया जाकर बदल दिया जाता है।

इस तरह यह सही है कि फिल्में अक्सर एडीटिंग टेबल पर ही तैयार होती हैं।

2.13 फिल्म की लम्बाई और संपादक का दायित्व

पटकथा लेखक जो कुछ लिख देता है फिल्म के अन्तिम प्रारूप में वैसा ही रहेगा यह संभव नहीं है। इसी तरह निर्देशक भी जिस क्रम से शूटिंग कर लेगा वह भी अन्तिम रूप से सम्पादन के वक्त वैसा ही रहेगा। यह भी सम्भव नहीं होता । सम्पादन की प्रक्रिया में जो दो चीजें ध्यान में रखी जाती हैं, यह है फिल्म की लम्बाई और दूसरी प्रासंगिकता।

फिल्म की लम्बाई के बारे में हम पूर्व किश्तों में कुछ जानकारी दे चुके हैं, फिर भी कुछ मूलभूत मुद्दों के बारे में यहाँ

बतलाना जरूरी है। फिल्म की लम्बाई सिनेमाटोग्राफ एक्ट के तहत सरकार द्वारा तय की हुई है। यह 4000 मीटर या 13400 फीट तय है। फिल्मों के शुरूआती युग में फिल्म की लम्बाई पर कोई नियंत्रण नहीं था। उस वक्त 18 से 19 हजार फीट तक की फिल्में आती थी। जो चार-साढ़े चार घण्टों तक पर्दे पर दिखलाई जाती थीं। फिल्म जितनी लम्बी होती थी उतनी ही अच्छी समझी जाती थी। छोटी फिल्में दर्शकों को निराश करती थी। दर्शक लोग तब कहते सुने जाते थे, अरे यह तो पंद्रह रील की, सत्रह रील की , बाइस रील की फिल्म है।

दूसरे महायुद्ध के दौरान जब फिल्म के निगेटिव,पाजिटिव का आयात सीमित हो गया तो फिल्म की लम्बाई पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक हो गया। फिल्म की लम्बाई तब अधिकतर 10 हजार फीट कर दी गई । निर्माताओं ने बड़ी चीख-पुकार की मगर उनकी कोई सुनवाई नहीं हुई । युद्ध खत्म होने पर ज्यों-ज्यों निगेटिव और पॉजिटिव का आयात बढ़ने लगा। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है एस एस. वामन की जेमिनी के बैनर पर बनी चन्द्रलेखा पहली फिल्म थी जो 15 हजार फीट से भी अधिक लम्बी फिल्म थी। धीरे-धीरे लम्बाई का यह बन्धन टूट ही गया। इसके बाद भारत सरकार ने फिल्म के पॉजिटिव पर लंबी लेवी लगा दी जो प्रति फुट की दर से लगती थी। इस लेवी की वजह से निर्माता को लम्बाई पर रोक लगाने के लिए विवश होना पड़ा। फिर भी कुछ निर्माता अधिक लेवी देकर लम्बी फिल्में बनती रहे। इसके बाद भारत सरकार ने एक नया कदम उठाया। उसने करीब 4 हजार मीटर वाली फिल्मों पर एक मुश्त लेवी लगा दी जो 4 हजार रूपये से भी ऊपर थी। उससे ऊपर जितनी भी लम्बाई की फिल्म बने उस पर भी इतनी ही लेवी अतिरिक्त लगा दी गई इस तरह दोहरी लेवी हो गयी और फिल्म की कीमतें बढ़ गई । इसका नतीजा यह हुआ कि हर प्रोड्यूसर यह चाहने लगा कि फिल्म की लम्बाई चार हजार मीटर से ज्यादा न रहे। यह काम फिल्म के सम्पादक का रहा कि वह इस काम किस तरह

से अंजाम दे। जो लोग दोहरी लेवी देने की स्थिति में हैं उनको तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अपनी अपनी इच्छा के अनुकूल फिल्म बना लेते हैं। उन फिल्मों में ज्यादा काट-छाँट की जरूरत नहीं पड़ती। इसलिए सीनों की प्रासंगिकता में भी ज्यादा फेरबदल नहीं होता। जो निर्माता फिल्म की लम्बाई सीमित रखना चाहते हैं और जिनकी पटकथा लम्बी या छोटी हो जाती है। उन्हें फिल्म के सम्पादन के वक्त बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता है। फिल्म छोटी होने पर उसकी लम्बाई बढ़ानी पड़ जाती है। क्योंकि छोटी लम्बाई की फिल्म वितरक लेने के लिए तैयार नहीं होते । फिल्म वितरक लोग निर्माताओं से करार करते वक्त यह लिखवा लेते हैं कि फिल्म की लम्बाई कितनी होगी। उस फिल्म में गाने और डान्स के दृश्य कितने होंगे। फिल्म की लम्बाई अधिक होने पर काटी जाती है। यदि फिल्म छोटी हुई तो कुछ भी अपने लायक दृश्यों को फिल्माकर उसे लम्बा कर लिया जाता है।

एक फिल्म बनी थी 'आज की सीता' जिसमें जया भादुड़ी हीरोइन थी और गोगी आनन्द निर्देशक थे। फिल्म 8 या 9 हजार की लम्बाई में खत्म हो गई । यह फिल्म काफी अच्छी बनी थी। मगर फिल्म वितरकों ने इतनी कम लम्बाई की फिल्मों को उठाने से इन्कार कर दिया। निर्माता ने निर्देशक से कहा कि वह नई शूटिंग करके फिल्म की लम्बाई बढ़ा दें। मगर गोगी आनन्द ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। मामला विवाद में पड़ गया। अंत में गोगी आनन्द की जगह दूसरे निर्देशक से नये दृश्य लिखवा कर शूटिंग करवाई गई। नतीजा यह हुआ कि फिल्म का अन्तिम प्रारूप ढिलमिल हो गया और फिल्म पिट गयी।

इसी तरह बी.आर. चोपड़ा ने एक फिल्म इत्तफाक, जिसमें राजेश खन्ना हीरो था, नन्दा हीरोइन, बनायी थी। इस मराठी नाटक पर बनी फिल्म की लम्बाई कम हो गई। अन्ततोगत्वा इसकी लम्बाई

बढ़ाने के लिए कैमरे के सामने अलग-अलग रंग उड़ाकर उनकी शूटिंग की गई और इन दृश्यों से लम्बाई बढ़ाने का काम निकाला गया। क्योंकि इसमें इस प्रक्रिया से फिल्म की कहानी पर कोई असर नहीं हुआ। अतएव फिल्म के कथानक की चुस्ती बनी रही और फिल्म हिट हो गई।

कई बार फिल्म की लम्बाई बढ़ाने के लिए सम्पादित किये हुए सीनों से काटे गये टुकड़ों को फिर से जोड़ कर काम चलाया जाता है। ऐसा करने पर फिल्म की चुस्ती भी खत्म हो जाती है साथ ही रोचकता में भी कमी आती है। लम्बी फिल्म को काटने के लिए प्रसंग के प्रसंग या सीन के सीन उड़ा दिये जाते हैं, जिससे सीनों की तारतम्यता पर असर पड़ता है। इस तारतम्यता को कायम रखने के लिए थोड़ी-बहुत नई शूटिंग करके जोड़-तोड़ बिठाई जाती है। इसको लिंक मिलाना कहा जाता है। मगर इस प्रक्रिया से भी फिल्म की दुर्गति तो हो ही जाती है। दर्शकों को जगह-जगह झटके लगते हैं और जगह-जगह खण्डित कथानक का आभास होने लगता है।

2.14 फिल्म में कथा की प्रासंगिकता

कभी-कभी गलती से पटकथा में ही अगर फालतू और अर्थहीन प्रसंग या शूटिग के वक्त उनकी उपादेयता नष्ट हो गयी हो जैसे कॉमेडी सीन को गंभीर सीन बना दिया गया हो तो उनके निकाल देने से फिल्म पर कोई असर नहीं पड़ता। लम्बाई कम करने का सबसे पहला प्रहार गाने, फाइटें, थ्रिल आदि पर ही होता है। जहाँ तक हो सके सीनों को सबसे बाद में काटा जाता है। तीन या चार अन्तरों के गानों को दो अन्तरों का है। मेरी फिल्मों में कई बार ऐसा करना पड़ा था।

ऐसा करने में कई बार फायदा भी होता है कि फाइटें या थ्रिल ज्यादा चुस्त और प्रभावी हो जाती हैं। हाँ गानों का हुलिया बिगड़ने का खतरा बना रहता है। कभी-कभी संगीत निर्देशक भी आपत्ति

करते हैं। विमल राय को एक बार ऐसी ही स्थिति में कटु अनुभव से गुजरना पड़ा था। उनकी एक फिल्म में एस. डी. बर्मन का संगीत था। फिल्म को अंतिम रूप देते वक्त विमल राय ने एकाध दो गानों के अन्तरे काट दिये थे। जब सचिन दा को मालूम पड़ा तो वे बहुत नाराज हुए और विमल दा से झगड़ा कर बैठे। मजबूर होकर विमल दा को काटे हुए संगीत के टुकड़े वापिस लगाने पड़े।

प्रासंगिकता का महत्व

सम्पादक के लिए एक और बात ध्यान में रखनी जरूरी होती है कि वह दृश्य शॉट, गाने, फाइट, आदि की प्रासंगिकता का ध्यान रखे। कोई भी दृश्य जब लिखा जाता है तब पता नहीं क्या सोच कर लिखा जाता है। लेकिन जब फिल्माया जाता है तब न केवल उसकी कभी-कभी धारणा बदल जाती है बल्कि कभी-कभी उसका अर्थ ही बदल जाता है। शूटिंग के वक्त लेखक मौजूद नहीं रहता। फिल्म के निर्देशक के दिमाग में नये-नये विचार आते रहते हैं। कभी-कभी निर्माता-निर्देशक कोई नई अंग्रेजी फिल्म देख आते हैं और उसमें से कोई सीन या प्रसंग पसन्द आ जाता है तो उसे अपना फिल्म में डालने की कोशिश करते हैं। चाहे फिल्म की पटकथा में वह फिट होता है या नहीं। ऐसी सूरत में पूरी पटकथा में तोड़-फोड़ हो जाती है। कभी-कभी फिल्म के नायक-नायिका की भी फर्माइश हो जाती है कि अमुक तरह का सीन इस फिल्म में जरूर रख लिया जाय क्योंकि इन लोगों को मना नहीं किया जा सकता, इसलिए वैसा सीन जैसी उनकी फर्माइश हो लिखवाया भी जाता है और फिल्माया थी। खास कर गानों की हालत में ऐसा बहुधा होता देखा गया है। जब कोई संगीतकार अच्छा गाना (यानी चलने वाला) देता है तब हर आदमी उस तरह के गाने को फिल्म में स्थान देने के लिए लालायित हो उठता है। यह सोचकर गाना पिक्चराइज कर लिया जाता है कि गाने की सिचुएशन तो बाद में बना ली जाएगी। बहुत से गाने इसलिए नहीं चल पाते कि वे सही सिचुऐशन पर नहीं होते

हैं। इसी वजह से कई बार फिल्मों के गाने तो दर्शक वर्ग की जुबान पर चढ़कर हिट हो जाते हैं। लेकिन फिल्म पिट जाती है। कई बार इसका उल्टा होता हुआ भी देखा गया है कि अच्छे गाने की वजह से रद्दी से रद्दी फिल्म भी टिकट खिड़की पर सफल हो गई।

एक गीत लेखक थे - नक्शब, जिन्होंने अशोक कुमार की मशहूर फिल्म 'महल' के गीत लिखे थे। इसमें 9 गाने थे जो सभी हिट हुए थे। इन्हीं गानों की लोकप्रियता की वजह से न केवल फिल्म हिट हुई बल्कि अशोक कुमार को नई जिन्दगी मिली और मधुबाला एवं निर्देशक कमाल अमरोही हिट हो गये। इसका एक मशहूर गाना तो अभी भी बहुत लोकप्रिय है, जिसके बोल हैं- आएगा-आएगा आने वाला' इसके संगीतकार खेमचन्द प्रकाश थे, जो बहुत ही मशहूर, राजस्थान में जन्मे संगीतकार थे। नक्शब ने इसी फिल्म का फायदा उठा कर एक फिल्म बनाई जिसका नाम था -'नगमा' जिसमें अशोक कुमार हीरो और उनकी (नक्शब की पत्नी) नादिरा हीरोइन थी। अशोक कुमार को चूँकि पैसे नहीं दिये गये इसलिए चार दिन की फ्री शूटिंग करने के बाद अशोक कुमार तो आए नहीं फिर सारी पिक्चर डुप्लीकेट से बनाई गयी। नतीजा वही हुआ जो अपेक्षित था। फिल्म बहुत घटिया बनी, मगर बहुत अच्छा संगीत होने की वजह से फिल्म सुपरहिट हो गयी। किन्हीं कारणों से नक्शब साहब फिल्म के निगेटिव लेकर पाकिस्तान भाग गये जहाँ पर वह फिल्म रिलीज होने पर सुपरहिट हो गई । नादिरा आज तक यहीं बैठी हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि पटकथा के हिसाब से जब शूटिंग नहीं की जाती और उसमें तोड़-फोड़ की जाती है। तब सारी प्रासंगिकता में भी तोड़-फोड़ होती है और फिल्म बदल जाती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पटकथा लिखते वक्त और शूटिंग के दौरान कहानी की रूपरेखा भी इस कदर बदल जाती है कि लेखक लोग मूलकथा को मामूली हेर-फेर करके पात्रों को बदल कर नये सिरे से बेच देते हैं। फिल्म लाइन में एक बात अक्सर सुनने को मिल

जाती है कि मशहूर कथाकार गुलशन नन्दा जब किसी उपन्यास को फिल्म के लिए बेच देते थे तो अक्सर उस पर बनी फिल्म देखने जाते थे। वे उस पर बनी फिल्म को देखकर उस कहानी से नये उपन्यास का मसाला पा जाते थे।

यह सब झमेला दो कारणों से होता है। पहला कारण तो यह होता है कि जब पटकथा को लेखक अंतिम रूप दे देता है अथवा पटकथा वन लाइन में लिखी जाती है, दूसरा कारण होता है सम्पूर्ण पटकथा लिखे जाने के बाद भी जब उसमें परिवर्तन किये जाते हैं और तोड़-फोड़ होती है।

2.15 संपादक की मुसीबत ही मुसीबत

दुर्भाग्य से भारत में अधिकांश फिल्मों की पटकथाएं वन लाइन स्टाइल (एक सत्रीय रूप) में लिखी जाती है इसमें न तो किसी दृश्य का विस्तार होता है न पात्रों के बारे में खुलासा होता है। जब फिल्म की शूटिंग के दिन आते हैं तब लेखक और निदेशक बैठकर तय करते हैं कि किस दृश्य में क्या-क्या होगा? दृश्य का प्रारम्भ क्या होगा उस दृश्य की गति क्या होगी, मध्य क्या रहेगा और अन्त क्या रहेगा? हर दृश्य में कोई न कोई कहानी को ट्विस्ट दिया जाता है ताकि कहानी में कुछ नया धमाका होता रहे। इसके बाद यह सब दृश्य संवाद लेखक को दे दिए जाते हैं। संवाद लेखक को सरसरी तौर पर यह कहानी सुना दी जाती है।संवाद लिखते समय न तो उसे स्क्रीन प्ले के बारे में कुछ मालूम होता है न ही कहानी के प्रधान मोड़ क्या हैं, इस बारे में । वह भी अपनी तरफ से संवादों में कोई न कोई ट्विस्ट देता रहता है। कभी-कभी उसे दृश्य को आगे बढ़ाने के लिए कुछ नए-नए चरित्र भी ढूँढने पड़ जाते हैं। ऊपर से फरमाइशी प्रोग्राम भी चलते रहते हैं।

इन पटकथाओं में न तो दृश्य के प्रारम्भ का पता रहता है न अन्त का। संवाद लेखक अपने हिसाब से जो उसको अच्छा लगे प्रारम्भ और अन्त बना देता है।कई बार दो शूटिंगों के बीच इतना

समय का अन्तराल आ जाता है कि किसी को कोई चीज याद ही नहीं रहती है। हर बार शूटिंग के पहले शूटिग की हुई फिल्म की ट्रायल भी देखनी पड़ जाती है। फिल्म लाइन में हर आदमी काम हो या नहीं हो अमूमन व्यस्त रहता ही है। इसलिए उसे इतना वक्त ही नहीं मिलता। देखा तो यह गया है कि ज्यादा वक्त देना वह अब अपनी हेठी समझता है। इसलिए लिखाई के वक्त घास काटने वाली बात होती है। आम तौर पर संवाद लेखक शूटिंग के ऐन मौके पर संवाद तैयार करके देता है। इस वजह से निर्देशक भी उसको ठीक से सोच-समझ नहीं पाता है। इसके अलावा कलाकार लोग भी कुछ न कुछ तोड़-फोड़ या फेरबदल करवाते हैं।इसी तरह कई बार संवाद भी बदलते रहते हैं। शूटिंग के दौरान अन्तराल पड़ने पर भी फिल्म पुरानी जैसी लगने लग जाती है क्योंकि कई दृश्य पुराने हो जाते हैं शूटिंग किये हुए भी और लिखे हुए भी। कई नए शॉट आते हैं। नये विचारों के आने से भी फेर-बदल या तोड़-फोड़ होती रहती है। कभी-कभी फिल्म के निर्देशक भी कुछ लफड़ा करने लगते हैं। जैसा चाहते हैं वैसा कर गुजरते हैं।

जब एक निर्माता ने अपनी फिल्म चालू की और फिल्म निर्देशक नया था और फिल्म निर्देशक हर बात मानता गया और जो कुछ सामने आया उसे स्वीकार करता गया। फिल्म पूरी होने के दौरान उसे दो-चार फिल्में मिल गई या एकाध फिल्म हिट हो गयी तो फिर उसके नखरे एकदम बढ़ जाया करते हैं। वह बोल देता है कि यह कहानी तो बदलनी पड़ेगी या नए सिरे से शूटिंग करनी पड़ेगी निर्माता उसे खुश रखने के लिए जैसा वह कहे वैसा ही करता चला जाता है।

2.16 सारांश

आज का दौर रंगीन फिल्मों का दौर है पूर्व में स्टूडियो होते थे। प्रोडक्शन हाउसेस हुआ करते थे। निर्माता द्वारा जब फिल्म आरम्भ की जाती थी तो स्टूडियो में सभी सुविधाएं उपलब्ध हो जाती

थीं। एक मास में स्टूडियो प्रणाली करीब-करीब समाप्त हो जाती है। ऊपर से तकनीकी विकास ने, प्रत्येक क्षेत्र में नई उपलब्धियाँ आ गई हैं।

इसीलिए अब निर्माता प्रत्येक सुविधा, अच्छी गुणवत्ता को ही लेता है। निर्माण की लागत भी अत्यधिक बन जाने के कारण, निर्माता अधिक से अधिक क्रेडिट या उधार पर काम करता है। उधर वित्त-पोषक विवरण, वर्कशॉप कन्ट्रोलर और विशेष रूप से ओवरसीज वितरक के साथ निर्माता को तालमेल बिठाकर काम करना पड़ता है।

2.17 शब्दावली

- ईस्टमैन निगेटिव	- रंगीन रॉ स्टाक का नाम या प्रक्रिया
- लेबोरेटरी	- रसायनशाला जहाँ फिल्म की धुलाई होती है।
- मैगनेटिक टेप	- ध्वनि के स्थानान्तरण हेतु
- साउण्ड स्पीकर	- लिप सिंक इसमें होठों को शब्द और पिक्चर से मैचिंग होती है।
- लिली	- किसी भी शॉट के अन्तिम हिस्से के भाग में तीन फ्रेम कलर विश्लेषण के लिए निकाला जाता है।

2.18 सन्दर्भ ग्रन्थ

- इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म्स प्रोडक्शन राजकृष्ण मिश्र
- फिल्म ऐज फिल्म वी. पी. परकिन्स
- सिनेमा एज ऐन आर्ट जे. आर. डिबरिश
- मूवी मुगल्स फिलिप फ्रेंच
- फिल्म एण्ड रियलिटी राय आर्मेश
- माय फेयर लेडी एलेन जे लरनर

2.19 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) साउण्ड पिक्चर मैचिंग की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन कीजिए। शूटिंग साउण्ड से एडिटिंग कैसे की जाती है?

(2) रंगीन फिल्मों की एडिटिंग के लिए लिली का महत्व बताते हुए, लेबोरेटरी में फिल्म की धुलाई, प्रिन्टिंग और रफ प्रिन्ट के कारोबार का वर्णन कीजिए।

(3) शूटिंग के पश्चात सम्पादन की शुरूआत कैसे होती है? इसका विस्तार से वर्णन करते हुए सम्पादित कक्ष के विषय में बताए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) ईस्टमैन कलर कहते हैं-

(1) पूर्वी कान्टीनेन्ट को

(2) रॉ स्टाक फिल्म का

(3) लिली कटिंग

(4) रसायनशाला का करार

(ख) लैबोरेटरी कहते हैं -

(1) रसायनशाला जहाँ फिल्म का पोस्ट-प्रोडक्शन होता है।

(2) स्टूडियो

(3) साऊन्ड ट्रक

(4) कैमरा ट्रॉली

(ग) परफोरेटेड मैगनेटिक टेप -

(1) रेडियो में प्रयुक्त होता है।

(2) वीडियो में प्रयोग में आता है।

(3) शूटिंग की साउन्ड के ट्रान्सफर के लिए, मैग्नेटिक टेप का काम प्रयोग में आता है।

(4) गाने की रिकार्डिंग में इस्तेमाल होता है।

(घ) लिली कटिंग का अर्थ है -

(1) रश प्रिंट निकालना

(2) शूटिंग करना

(3) सम्पादन करना

(4) शूटिंग के अंतिम हिस्से से 3 फ्रेम कलर, विश्लेषण के लिए काटे जाते हैं।

उत्तर (क) 2, (ख) 1, (ग) 3, (घ) 4

इकाई -4 संपादन के आधार

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सम्पादन के आधारभूत तत्व

4.3 स्टोरी बोर्ड

4.4 शॉट्स की तारतम्यता

4.5 शॉट्स लिस्ट

4.6 व्यवस्था

4.7 कद्दू संगीत

4.8 सम्पादन हिदायत

4.9 अच्छे सम्पादन के लिए

4.9ए सम्पादन के कार्य

4.10 सारांश

4.11 शब्दावली

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

4.13 प्रश्नावली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे-

(1) सम्पादन में आधारभूत तत्वों के समावेश के विषय में।

(2) शाट लिस्ट या डोप शीट क्या होती है।

(3) डिजाल्व पाइप क्या होते हैं।

(4) इलेक्ट्रॉनिक सम्पादन के घटक क्या होते हैं।

(5) इलेक्ट्रॉनिक सम्पादन के प्रकार के विषय में।

(6) ग्रिफिथ का सम्पादन सूत्र।

4.1 प्रस्तावना

फिल्में कई प्रकार की होती हैं। जब हम, फिल्म निर्माण का निर्णय लेते हैं तब हमें यह तय करना पड़ता है कि किस प्रकार की फिल्म बनेगी। यदि वृत्त चित्र का निर्माण करना होता है, तो काम दूसरी तरह होता है और अगर फीचर फिल्म बनाना है तो कार्य प्रणाली दूसरे प्रकार की होगी। वृत्त चित्र में शूटिंग के बाद पटकथा बनाई जा सकती है। जबकि फीचर फिल्म में पटकथा सबसे पहले बनाई जाती है। उसी प्रकार फिल्म के दो फार्मेट होते हैं। अगर फिल्म टी वी पर दिखाई जानी है या फिर सेटलाइट चैनल पर दिखाई जाती है तो उसका निर्माण वीडियो पर होगा। यद्यपि फीचर फिल्म और वीडियो फिल्म दोनों ही मास मीडिया का हिस्सा हैं। वीडियो इलेक्ट्रानिक मीडिया में आता है जबकि फिल्म, फिल्म मीडिया में आती हैं। इसमें कैमरा मशीन का प्रयोग होता है । रॉ स्टाक यानी कच्ची फिल्म पट्टी लगती है, लैब या रसायनशाला में निगेटिव की धुलाई होती है। उधर वीडियों में रॉ स्टाक के स्थान पर यू-मेटिका वीडियो टेप या डिजिटल टेप का प्रयोग होता है। वीडियो शूटिंग का परिणाम शूटिंग के समय ही दिखाई देता है जबकि फिल्म में धुलाई, छपाई के बाद ।

4.2 सम्पादन के आधारभूत तत्व

(1) शूटिंग आलेख - पटकथा में शाट्स का विवरण दिया होता है। विस्तार से दृश्य का विवरण होने के बावजूद, शूटिंग से पूर्व शॉट्स डिवीजन कर लिया जाता है। यह कार्य कैमरामैन करता है। फिर भी शूटिंग के समय, प्रत्येक शॉट डोप शीट या क्यू शीट में लिखा जाता है डोप शीट का फार्मेट निम्नलिखित प्रकार का होता है-

(2) डोप शीट

स्थान : समयः

लोकेशनः दिन/रात

क्रमांक	विवरण दृश्य का	किस प्रकार का शॉट	एन.जी./ ओ के	टेक नम्बर

(3) उपरोक्त फार्मेट में प्रत्येक शॉट का विस्तार से विवरण देकर डोप शीट को एक्सपोज्ड टिन या डिब्बे में रख दिया जाता है। लैब में जब एक्सपोज्ड निगेटिव की धुलाई होती है या उसे विभिन्न प्रकार के केमिकल से निकाला जाता है। ऐसा करने से शूटिंग के समय कैमरा जो फ्रेंम बनाता है वह उभर कर आ जाते हैं तभी तो प्रिंट निकालते समय शूटिंग में लिये गये दृश्य दिखाई पड़ने लगते हैं। इसी रश प्रिन्ट से रफ कट बनाने के लिए पटकथा तथा शूटिंग डोप शीट की आवश्यकता पड़ती है।

4.3 स्टोरी बोर्ड -

स्टोरी बोर्ड बनाने की प्रक्रिया बहुत पुरानी है। इसमें प्रत्येक दृश्य को रेखांकित किया जाता है। प्रत्येक दृश्य में कितने शॉट्स होंगे और प्रत्येक शॉट कितने फ्रेम का होगा। यह स्टोरी बोर्ड में इंगित रहता है। फ्रेम की गतिविधि को जब ग्राफिक्स के माध्यम से दर्शाया जाता है तो फिल्म पर्दे पर कैसी दिखेगी, इसकी जानकारी होने लगती है। दृष्टान्त के माध्यम से ड्राइंग तथा लाइन स्केल से स्टोरी बोर्ड बनता है। भारत में महान फिल्मकार, सत्यजीत रे किसी भी फिल्म की शूटिंग करने से पूर्व उसकी पटकथा का स्टोरी बोर्ड तैयार करते थे। स्टोरी बोर्ड का बार-बार अध्ययन किया जा सकता

है और उसमें शॉट्स के नये एन्गिल डाले जा सकते हैं। पटकथा और स्टोरी बोर्ड बन जाने के बाद फिल्म के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है, फिल्म कैसी लगेगी, कैसी बनेगी यह आसानी से जाना जा सकता है। कई बार नए विचारों का जन्म होता है और दृश्यगत समायोजन की आवश्यकता पड़ती है। यह दृश्यगत समायोजन स्टोरी बोर्ड में आसानी से किया जा सकता है।

4.4 शॉट्स की तारतम्यता

टाइम फ्रेम, सीमा वक्त, आवाज का विवरण, संवाद ग्राफिक्स और शीर्षक तथा विशेष प्रभाव का विवरण दिया जाता है। शॉट्स कितनी देर का है एन.जी. यानी नाट गुड यानी, प्रयोग में न आने वाला और ओ. के. यानी ठीक-ठाक और प्रयोग में आने वाला शॉट। पटकथा में स्टोरी बोर्ड में, कलाकारों के दृश्य होते हैं जबकि स्टोरी बोर्ड में, और डोप शीट में फिल्म की कहानी के किरदार क्या करते हैं, कब करते हैं, कितना देर कैमरा के सामने रहते हैं यह सब होता है । रंगीन शाट्स अनेक होते है। उनको शार्टिंग में छाँटकर बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार सम्पादन के लिए शॉट्स को विश्लेषणात्मक विवरण की आवश्यकता होती है; डोप शीट या विश्लेषणात्मक विवरण न होने से सम्पादक कुछ नहीं कर सकता है।

4.5 शॉट्स लिस्ट

शॉट लिस्ट या डोप शीट - इसमें फिल्म का पूर्ण विवरण होता है। इसमें स्थान , तिथि फिल्म या टेप या शॉट्स का विवरण होता है। यह शॉट्स का सत्यापित रिकार्ड होता है। जिसमें सेट, टेप, फिल्म तथा शॉट्स के प्रकार एवं अवधि दी जाती है। शीर्षक को विशेष प्रभाव के माध्यम से शूट करके लगाया जाता है। डोप शीट में किस प्रकार का शॉट लिया गया है यानी लाँग शॉट है या मिड शॉट क्लोज अप है या फिर मशीन का मास्टर शॉट । डोप शीट का अध्ययन करके यह पता लगाया जा सकता है कुल शॉट्स

कितने हैं । नेचर ऑफ शॉट्स क्या है और कुल अवधि शॉट्स की क्या है।

दृष्टांत - एक समारोह : कवरेज शूटिंग की

(1) दर्शक या श्रोता

(2) स्कोर बोर्ड का शॉट

(3) स्कोर बोर्ड का वाद

(4) प्रकाश या बिजली के शॉट्स

(5) वातावरण के शॉट्स

(6) प्रतिक्रिया या रिएक्शन शॉट्स जैसे-तालियाँ या सिर हिलाना

(7) घटनाक्रम के शॉट्स

(8) दीप प्रज्जव्लित बैनर, आना-जाना।

इस प्रकार शूटिंग के पहले आलेख या पटकथा और स्टोरी बोर्ड बनाया जाता है और शूटिंग में सम्पादन के पूर्व, डोप शीट बनाई जाती है। इसी डोप शीट के आधार पर सम्पादन का कार्य होता है।

4.6 व्यवस्था

शूटिंग करते समय ही सम्पादन का ध्यान रखना पड़ता है जहाँ, एक तरफ पटकथा फिल्म पर्दे पर कैसी दिखेगी । इस बात का अनुमान देती है। शूटिंग किस हद तक पटकथा, को रूचिकर शॉट्स में परिवर्तित किया गया है, यह दर्शाता है। इसीलिए शॉट का रिकार्ड रक्खा जाता है । डोप शीट बनाई जाती है।

मास्टर शॉट - प्रत्येक दृश्य की शूटिंग में, सर्वप्रथम एक लाँग शॉट लिया जाता है। इस शॉट में दृश्य में दिखने वाली प्रत्येक वस्तु, पात्र, सेट, प्रापर्टी, विशेष प्रापर्टी, कास्ट्यूम (वेषभूषा), मेकअप, प्लेसिंग, अरेन्जमेन्ट तथा रोशनी तक का विवरण रिकार्ड हो जाता है। इस शॉट को लेने के बाद अन्य शॉट लिए जाते हैं, जैसे-मिड

शॉट, क्लोजअप इत्यादि ।

कटवेज - भवन सामान, प्रापर्टीज, सजावट का सामान, कपड़े, विशेष , गेटअप जैसे दाढ़ी, मूँछ, नकली बाल, जेवर, गहने या फिर अन्य कोई भी चीज जिससे दृश्य उभर कर आ सकता है या फिर कोई भी चीज जो विशिष्ट हो या उसका प्रभाव दृश्य या कथ्य को उभारने के लिए किया जाता है। उसके शॉट्स लिए जाते हैं चूँकि यह शाट्स बात कहने के लिए नहीं बल्कि दृश्य को उभारने के लिए होते हैं इसलिए इनको छोटा रक्खा जाता है। यह शाट्स 10 सेकेन्ड से 20सेकेन्ड तक के हो सकते हैं।

शॉट्स - शूटिंग के समय मास्टर शॉट के बाद एम एस शॉट क्लोजअप, अति-क्लोजअप इत्यादि , कटिंग के लिए, लिए जाते हैं। इनका रिकार्ड सम्पादन के लिए डोप शीट में रखा जाता है।

4.7 कट् टू संगीत (कट् टू म्यूजिक)

कट् टू म्यूजिक - संगीत डालने की प्रक्रिया सम्पादन में इस प्रकार होती है-

(1) संगीत तो दृश्य को उभारने के लिए किया जाता है इसे सीन का बिल्डअप करना कहते हैं।

(2) दृश्य को फेड इन, फेड आउट करने के लिए, संगीत का प्रयोग किया जाता है।

(3) संगीत के फ्रेम को गतिमान बनाने के लिए प्रयोग मे लाया जाता है।

(4) भावनात्मक दृश्यों को संगीत के माध्यम से सम्पादित किया जाता है। इससे दृश्य में निखार आता है और वह अधिक प्रभावी हो जाते हैं।

(5) मूवमेन्ट को कट् करने के लिए मूवमेन्ट के प्रभाव को बढ़ाने के लिए अथवा मूवमेन्ट को रूचिकर बनाने के लिए, संगीत का उपयोग किया जाता है।

(6) किसी कठिन समस्या या गुत्थी को सुलझाने के लिए या फिर उसका परिदृश्य स्पष्ट करने के लिए संगीत का प्रयोग किया जाता है।

(7) संगीत को एक औजार के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। जब जूम का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार टिल्ट अप, टिल्ट डाउन पैनिंग को असरदार बनाने के लिए संगीत का प्रयोग किया जाता है।

(8) अगर उपरोक्त समायोजन (VII) सम्भव नहीं है तो शूटिंग के समय ही एक कैमरा स्पीड के माध्यम से आवश्यक प्रभाव रचा जा सकता है। यह स्पीड का समायोजन 4 से 20 सेकण्ड तक का हो सकता है।

(9) वीडियो में वाइट बैलेन्स और फिल्म लाइटिंग का ध्यान रखने से सम्पादन के लिए अच्छा शूट उपलब्ध हो सकता है । जब तक शूटिंग से निकला हुआ माल, अच्छी गुणवत्ता का नहीं होगा। सम्पादन के परिणाम अच्छे कहाँ हो सकते हैं।

4.8 सम्पादन हिदायत

(1) अच्छे सम्पादन के लिए प्री-रोल में, उचित मारजिन देना आवश्यक होता है। यह प्री-रोल 5 से 10 सेकण्ड का होता है। इस समय के बाद स्टॉप से रिकार्ड बटन को वीडियो में जाते हैं। उसी तरह फिल्म में कैमरा प्री-रोल करने के बाद वास्तविक शूट लिया जाता है । प्री-रोल का अर्थ है सम्पादक को समय देना, कलाकार को समय देना, कैमरामैन को समय देना, मार्जिन प्रस्तुत करना। ऐसा करने से शॉट की कटिंग उचित प्रकार से होती है और मुख्य शॉट छोटा नहीं पड़ता ।

(2) इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शूटिंग मैटिरियल यानी एक्सपोज्ड निगेटिव या एक्सपोज्ड वीडियो टेप कच्चा माल है। जिससे, सम्पादक को एक निश्चित कहानी की बुनावट रचनी पड़ती है।

(3) वीडियो में काउन्टर्स होते हैं यानी समय अवधि आ जाती है इसका तात्पर्य है वीडियो में समय अवधि का विवरण दिया जाता है, जबकि फिल्म में गिनती वाले नम्बर होते हैं। नम्बर बढ़ते जाते हैं निगेटिव के और रश प्रिन्ट में । जितनी देर का शाट रिकार्ड हुआ है या शूट हुआ है उतनी देर की गिनती या अंक आ जाते हैं ।

(3) फिल्म निर्माण में, सम्पादन सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है यह रचनात्मक क्रिया फिल्म को दर्शनीय बनाती है, कहानी बुनती है और फिल्म को रूचिकर बनाती है।

(4) फिल्म के टिन या वीडियो के टेप, डोपशीट के अनुसार व्यवस्थित किए जाते है।

(5) सम्पादक खुद शॉट्स को छाँटता है। इसमें कौन शॉट्स कहाँ है और कब, किस शॉट को लगाना है इसकी जानकारी उसे रहती है।

(6) सम्पादक, सम्पादन के माध्यम से रचता है, नियंत्रित करता है। उस शॉट्स और स्पेस को जो कथा की अनुभूति कराता है कहानी का अनुभव कराता है। बाह्य फ्रेम ही वह विधि है जिसके माध्यम से फिल्म में कोई बात कही जाती है । फिल्म में तो बस करीब आधा इन्च का फ्रेम होता है, लेकिन उस फ्रेम में फोरग्राउण्ड, बैकग्राउण्ड और सबजेक्ट ऐक्शन होता है इसी फ्रेम में गति पैदा करना, कटिंग से पेस्टिंग में सम्पादक फिल्म की थीम की मुख्य कथा वस्तु की रचना करता है।

(7) कथा, कहानी, संवाद के हिसाब से सम्पादक शाट्स की कटिंग करता है। शॉट्स को काटकर एक तार्किक आधार पर उनको जोड़ने का तात्पर्य होता है लोगों को यानी पात्रों को घटनाओं के यानी दृश्य के साथ रखना, जोड़ना, उन्हें जीवन्त करना।

4.9 अच्छे सम्पादन के लिए

अच्छे सम्पादन के लिए शूटिंग के समय, निम्नलिखित बातों

का ध्यान रखना चाहिए।

(1) इसमें 10 सेकण्ड का अन्तर होना चाहिए। संवाद बोलने में। यानी कैमरा स्टार्ट होने के 5 से 10 सेकण्ड के बाद कलाकारों से अभिनय कराना चाहिए। संवाद बुलवाने का आदेश देना चाहिए।

(2) यह गिनती करके प्राप्त किया जाता है इसमें 5, 4, 3, 2, 1 की गिनती के बाद कलाकार को अभिनय करने का क्यू या आदेश देना चाहिए।

(3) कलाकार को स्वयं कुछ सेकेण्ड का पोज देकर अभिनय करना चाहिए। संवाद अभिनय से पूर्व और संवाद अभिनय समाप्त होने के बाद भी कुछ सेकण्ड का अन्तराल कलाकार और कैमरामैन को देना ही चाहिए। जिससे शूटिंग में, पूरा दृश्य अंकित किया जा सके।

(4) शूटिंग समुचित मात्रा में की जानी चाहिए।प्रत्येक शॉट में कटिंग के लिए मारजिन की आवश्यकता होती है।

(5) शॉट्स का कम्पोजीशन - फिल्म निर्माण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसी के माध्यम से अविश्वास, उत्तेजना और किसी भी प्रतिक्रिया भावनात्मक अभिव्यक्ति, प्रतिरोध तथा टेन्सन को बढ़ाया जाता है।

(6) हेडरूम - शाट्स के कम्पोजीशन में हेडरूम का विशेष ध्यान रखना चाहिए। ऐसा नहीं करने से, पात्र वस्तु या स्थान टी वी या वीडियो के पर्दे से चिपका हुआ दृष्टिगत होगा। फ्रेम में सिर के ऊपर थोड़ी जगह छोडनी ही चाहिए। एक प्रकार के पात्र वस्तु या स्थान जिसका भी शॉट लिया जा रहा है उसको हेड स्पेस तथा साइड स्पेस देकर फ्रेम के केन्द्र में रखना चाहिये।

(7) **कलाकार की गेज या लुक या दृष्टि -** कलाकार को कैमरा की तरफ देखते समय निर्देशक के आदेश का ध्यान रखना चाहिए। आदेश के बाद 5.10 सेकण्ड का खाली लुक या मूक दृष्टि लेन्स के

ऊपर देने के पश्चात, अभिनय आरम्भ करना चाहिए।

(8) घुटनों, ठुड्डी (चिन), हाथ का शॉट लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए घुटनों, चिन या हाथ के शॉट के बाद उसी की तारतम्यता में बंद करना चाहिए। इसे ब्लास्ट कट या हेमलाइन कट कहा जाता है।

4.9ए सम्पादन के कार्य

(1) दृश्यों को जोड़ना

(2) दृश्यों को अन्य शॉट्स या दृश्य से अलग शॉट्स से मिलाना।

(3) सीक्वेन्स की रचना करना।

(4) शॉट्स के माध्यमों से कहानी बताना या फिर किसी भी व्यवस्थित घटनाक्रम की रचना करना।

(5) शूट से हटाना या सुधारना गल्तियों को

(6) छोटा करना या बढ़ाना समय अवधि को

(7) कच्ची शूटिंग के मैटेरियल यानी फुटेज को बाकी के एवं रूचिकर दर्शनीय बनाना।

(8) ग्राफिक्स स्लाइड्स फोटो फिल्म या वीडियो को तार्किक आधार पर हस्तान्तरित करना।

(9) संवाद सहित एवं संवाद रहित दृश्यों को संगीतमय संस्तुति में परिवर्तित करना।

(10) कट् - कट् स्विच वीडियो होता है एक प्रकार का जिसके माध्यम से एक शॉटस से दूसरे शॉट में जाते है।

(11) डिजाल्व - समय के अन्तराल

(12) **वाद्य** - ''वाद्य'' वह तरीका है जिसके माध्यम से सम्पादक मिटा सकता है (घुमा सकता है), मोड़ सकता है, ठोकर मार सकता है या बाहर कर सकता है। उस इमेज को जिस पर काम होता है।

(13) **फेड –** यह किसी शॉट को धीरे-धीरे परिवर्तित कर सकता

है। आरम्भ करने या समाप्ति करने के लिए

4.10 इलेक्ट्रानिक सम्पादन का उद्देश्य

बहुत कम ही टी.वी के कार्यक्रमों का सीधा प्रसारण किया जाता है यहाँ तक कि स्थानीय समाचार और खेल समाचारों में भी सम्पादित कड़ियों का समूह शामिल होता है । सीधे प्रसारित होने वाले खेल कार्यक्रमों में भी पूर्व सम्पादित फीचर फिल्म और पार्श्व कार्यक्रम दिखलाये जायेंगे। इसके साथ ही रिप्ले भी दिखाया जाता है। टीवी कार्यक्रमों के निर्माताओं द्वारा सम्पादन की क्रिया अपनाए जाने के निम्नलिखित कारण हैं -

उनके द्वारा फुटेज शॉट बाहर अथवा स्टूडियो में लिए जाते हैं। कहानी को निरंतरता देने के लिए संपादन किया जाता है क्योंकि शॉट में उपयुक्त क्रम में करने पर ही कहानी सार्थक बन पड़ती है। एक कैमरे से लिए गये शॉट भिन्न-भिन्न समय और भिन्न-भिन्न स्थान के होते हैं और घटनाएं बिखरी होती हैं। इन्हें निश्चित क्रम में लगाने पर ही कहानी का स्वरूप स्पष्ट हो पाता है।

सम्पादन का दूसरा सामान्य उद्देश्य यह होता है कि संपृक्त किये गये फुटेज को परिष्कृत किया जाए। इसके लिए उचित अवधि निर्धारित की जाती है। एक बार शॉट का चयन किया जाता है और उन्हें तर्कसंगत क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है। इस प्रकार दृश्य का अवधि निर्धारण संपादन के अन्तर्गत ही आता है।

सम्पादन का तीसरा उद्देश्य यह होता है कि फुटेज में नये दृश्य और श्रव्य के तत्व मिश्रित किये जायें। इस चरण में दृश्य स्विचर, डी. वी. ई., पेंटबाक्स एक से अधिक प्लेबैक स्त्रोत और खर्चीले सम्पादन तंत्र की आवश्यकता होती है।

4.11 इलेक्ट्रानिक संपादन के घटक

आजकल वीडियो टेप को प्रसारण के क्षेत्र में मानक माना जाता है। वीडियो टेप 10 मिनट की अवधि तक होता है। पहले

वीडियो टेप के स्थान पर फिल्म का उपयोग होता है।

सम्पादक को मिनी वीडियो कैमरा का ज्ञान होना चाहिए । वीडियो कैमरा के मुख्यतः दो भाग होते हैं -

(1) इलेक्ट्रानिक ट्यूब - दृश्य को पकड़ने के लिए काम आता है।

(2) जूम लेंस - दृश्य को एक फ्रेम में रखने के काम आता है।

वीडियो कैमरा के दूसरे घटकों में फिल्टर , स्विच व्यूफाइण्डर, केबल आदि होते हैं। कैमरे के द्वारा सबसे आसानी से श्वेत रंग पकड़ा जाता है। यह दृश्य कैमरा ट्यूब से इलेक्ट्रान की धारा के द्वारा रिकार्डर तक ले जाया जाता है। वहाँ टेप कैसेट में दृश्य को कोड करके संचित कर लिया जाता है। ध्वनि को दूसरे इलेक्ट्रान पुंज द्वारा केबल से गुजरते हुए टेप के किनारे के ट्रैक पर रिकार्ड किया जाता है।

क्षेत्र में कार्य करने वाले इलेक्ट्रॉनिक रिपोर्टर के पास निम्नलिखित उपकरण होने चाहिए।

- दो या दो से अधिक माइक्रोफोन जिससे रिकार्डिग के समय ध्वनि मिश्रण संभ्व हो सके।
- त्रिपाद स्टैण्ड जिससे कैमरा स्थायी रूप से टिका रहे।
- कम प्रकाश वाले स्थान पर कार्य करने के लिए कैमरा माउण्टेड लाइट होना चाहिए।
- अतिरिक्त बैटरी

टी वी समाचारों में सिनेमा की ही भाँति पाँच तरह के शॉट होते हैं।

ई.एल.एस. - अतिरिक्त लम्बा शॉट

एल.एस. - लम्बा शॉट

एम. एस. - मीडियम शॉट

सी. यू. - क्लोज अप शॉट

ई.सी.यू. - अति क्लोज अप शॉट

जूम लेन्स - इस लेंस की नजदीक आने और दूर जाने की क्षमता के आधार पर इसे जूम कहते हैं। जूम इन का अर्थ नजदीक आना तथा जूम आउट का अर्थ विषय से दूर जाना होता है।

पैन - जब कैमरा स्वतः हिल कर दाहिने या बायें मुड़ जाता है तो उसे पैन कहते हैं।

4.12 इलेक्ट्रानिक संपादन के प्रकार

दृश्य-श्रव्य की आवश्यकता और उपकरणों की उपलब्धता के आधार पर इलेक्ट्रानिक संपादन को निम्नलिखित प्रकारों में बाटा जा सकता है।-

(i) ऑनलाइन तथा ऑफलाइन सम्पादन (Online & offline edit)

(ii) स्ट्रेट कट सम्पादन (Straight cut edit)

(iii) एसेम्बल और इनसर्ट सम्पादन (Assemble & Insert edit)

(iv) ए0बी0 रोल सम्पादन (AB roll edit)

(v) नॉन लीनियर संपादन (Non linear edit)

4.12.1 ऑन लाइन तथा ऑफ लाइन सम्पादन

परम्परागत वीडियो टेप संपादन को आनलाइन तथा आफलाइन संपादन में विभाजित किया जा सकता है। ऑनलाइन सम्पादन के अन्तर्गत मूल फुटेज टेप के एक के बाद एक दृश्य में सम्पादन किया जाता है। इसके बाद सभी सम्पादित अंशों को एक साथ व्यवस्थित कर दिया जाता है। इस संपादन की विशेषता है कि कम खर्च में और तेज गति से संपादन होता है।

ऑफलाइन सम्पादन का लक्ष्य मूल फुटेज की प्रतियाँ तैयार करके उनमें सम्पादन की क्रिया कार्यक्रम तैयार होने तक किया जाता है। इसमें सम्पादन के लिए इलेक्ट्रानिक निर्देशों की एक सूची तैयार

की जाती है। जिसे सम्पादन निर्णय सूची कहते हैं। इस सूची को टी. वी. आर. और दूसरे उपकरणों में लोड कर दिया जाता है। इनमें कम्प्यूटर नियंत्रित सूची के आधार पर स्वतः सम्पादन होता है। लम्बे और अपेक्षाकृत जटिल कार्यक्रमों का सम्पादन ऑफलाइन विधि से किया जाता है। इस सम्पादन से निर्माता को सस्ती एवं कम गुणवत्ता की वीडियो गियर से ई.डी.एल बनाने की छूट मिल जाती है। इसके साथ ही ई डी एल में संशोधन की सुविधा भी होती है। ऑफलाइन सम्पादित कार्यक्रम में परिवर्तित करने की प्रक्रिया को ई.डी.एल. लाण्डरिंग कहते हैं।

4.12.2 स्ट्रेट कट संपादन

वीडियो निर्माण के क्षेत्र में जिस परंपरागत ऑनलाइन सम्पादन का उपयोग होता है उसे स्ट्रेट कट सम्पादन या नियंत्रण ट्रैक सम्पादन कहते हैं । इस तंत्र में एक प्लेबैक मशीन और एक रिकार्डिंग मशीन होती है। इन दोनों को सम्पादन नियंत्रक द्वारा चलाया जाता है। कभी-कभी यह संपादन नियंत्रक रिकार्डिंग मशीन में ही हो जाता है। इस उपकरण में संपादन वीडियो टेप पर स्थित वैद्युत तरंगों के माध्यम से किया जाता है।

4.12.3 एसेम्बल और इनसर्ट सम्पादन

भिन्न-भिन्न फॉरमेट के अन्तर्गत ऑडियो, वीडियो और कंट्रोल ट्रैक संकेत को वीडियो टेप पर अलग-अलग स्थानों पर रखा जाता है। संपादन की प्रक्रिया सभी ट्रैक में एक जैसी ही होती है। टेप पर मध्य में वीडियो ट्रैक तथा इसके दोनों किनारों पर लीनियर ऑडियो ट्रैक और कंट्रोल ट्रैक होता है।

एसेम्बल सम्पादन में एक साथ सभी वीडियो और ऑडियो ट्रैक को रिकार्ड किया जाता है। इस संपादन प्रक्रिया में सबसे इरेज हेड का टेप से सम्पर्क होता है और जैसे-जैसे टेप आगे बढ़ता जाता है उस पर की सभी चीजें वीडियो-ऑडियो और कंट्रोल ट्रैक तरंगें मिटती जाती हैं।

जब टेप स्थायी कंट्रोल ट्रैक पर बढ़ता है हेड में नयी तरंगें रिकार्ड होती हैं। इसके साथ श्रव्य हेड में नयी श्रव्य तरंगें और चलनशील वीडियो हेड में नये दृश्य रिकार्ड होते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि टेप पर मौजूद सभी मूल सूचनाएं मिट जाती हैं और नयी सूचनाएं रिकार्ड हो जाती हैं। इस प्रकार एसेम्बल संपादन के अन्तर्गत पूरी टेप की द्वितीय प्रति तैयार हो जाती है। वस्तुतः एसेम्बल संपादन में इनसर्ट संपादन हेतु टेप तैयार करते हैं। यह कार्य कम्प्यूटर में डिस्क फार्मेटिंग के समान ही होता है।

इन्सर्ट सम्पादन में एसेम्बल संपादन की तुलना में बहुत विविधता और विकल्प मौजूद होता है इनसर्ट सम्पादन में यह सुविधा है कि आप बिना कंट्रोल ट्रैक की निरंतरता को रोके नया ऑडियो या वीडियो बीच में ही रिकार्ड कर सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी नेता का सिर और गर्दन 20 सेकेण्ड के वक्तव्य में रिकार्ड किया गया है और उस दृश्य को और रूचिकर बनाने के लिए इनसर्ट संपादन के द्वारा 10 सेकण्ड का अन्य दृश्य उसमें जोड़ा जा सकता है। यह वीडियो इनसर्ट संपादन का उदाहरण है।

4.12.4 ए.बी.रोल सम्पादन

चलचित्रों का संपादन करते समय आप्टिकल प्रिन्टर में पहले फिल्म का ए रोल को बी रोल में भेज कर किया जाता है। इसके अन्तर्गत विशेष प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। किसी बिन्दु पर यदि दोनों रोल की छवियाँ उभयनिष्ठ होती हैं तो प्रिन्टर द्वारा फेड और डिजाल्व उत्पन्न कर देता है। ए बी रोल संपादन अपेक्षाकृत ज्यादा मंहगा है इसमें विशेष प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

4.12.5 नॉन लीनियर सम्पादन

1990 के दशक में संपादन तकनीकी के विकास के क्रम में नॉन लीनियर संपादन का विकास हुआ। इस आधुनिक तकनीकी में एक या एक से अधिक प्लेबैक वीडियो टेप से मास्टर टेप पर रिकार्ड

किया जाता है नॉन लीनियर संपादन तेजी से लीनियर संपादन का स्थान लेता जा रहा है। लीनियर और नॉन लीनियर संपादन में मुख्य अंतर दृश्यों तक पहुँच और वीडियो वातावरण में होता है।

	लीनियर संपादन	**नान लीनियर संपादन**
दृश्य पहुँच	सीरियल	रैन्डम
वीडियो वातावरण	एनालॉग	डिजीटल
तकनीकी	वी टी आर	कम्प्यूटर का उपयोग

वीडियो कंप्रेसन तकनीक के विकास के साथ संपादन की दुनिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। अधिक मेमोरी क्षमता वाले हार्ड डिस्क के आविष्कार से एक साथ दर्जनों ऑडियो और वीडियो कोड को संचित किया जा सकता है।

नॉन लीनियर संपादन के गुण दोष

गुण–

1. कम खर्चीला सम्पादन होता है।
2. रैण्डम एक्सेस की सुविधा के कारण तेजी से संपादन सम्भव है।
3. नॉन लीनियर तकनीकी में मरम्मत खर्च नगण्य होता है।
4. एक साथ कई डिजीटल वीडियो प्रभाव उत्पन्न किये जा सकते हैं।
5. नॉन लीनियर संपादन तंत्र में नेटवर्किंग की सुविधा होने से एक साथ कई लोग संपादन की क्रिया में भाग ले सकते हैं।

दोष –

1. संपादन शुरू करने से पूर्व टेप फुटेज को डिस्क में स्थानान्तरित करना होता है

2. निर्माताओं के समक्ष उचित मूल्य में पर्याप्त संचय क्षमता की हार्ड डिस्क नहीं मिल पाती।

4.13 इलेक्ट्रानिक संपादन कला

वीडियो सम्पादन के लिए उपकरण और तकनीकी दक्षता एक अपरिहार्य आवश्यकता है पिछले पृष्ठों में हमने तकनीकी के स्तर पर इलेक्ट्रानिक संपादन की चर्चा की। तकनीकी दक्षता के साथ वीडियो संपादक को संपादन की कला में भी दक्ष होना चाहिए। मनुष्य सैकड़ों वर्षों से दृश्यों का संपादन करता आया है। इसमें कई महत्वपूर्ण सौन्दर्य सिद्धान्तों को मानक माना गया है।

विद्यार्थी प्रायः फुटेज की शूटिंग करने के बाद उसका संपादन भी स्वयं करते हैं। परन्तु बड़े मीडिया संगठनों में शूटिंग और संपादन अलग अलग व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। अनुभवी वीडियोग्राफर संपादन को मस्तिष्क में रखते हुए शूटिग करते है।

नॉन लीनियर संपादक को वीडियो के प्रत्येक अंश को पहचान कर उसे डिजीटल में परिवर्तित करके संचित होने के लिए भेजना पड़ता है।

4.14 सम्पादन की समग्र रणनीति

अच्छा सम्पादक सदैव धृष्टता रहित हाता है। दर्शक को यह पता नहीं चलना चाहिए कि संपादक द्वारा दृश्य के साथ कोई भी छेड़छाड़ किया गया है। संपादक का प्रयास होना चाहिए कि वह टी. वी. कार्यक्रम या सिनेमा के द्वारा संदेश का संप्रेषण कर दे। ऐसे कट से बचना चाहिए। जिससे स्थैतिक दृश्य चलचित्र में बदल जाए। इससे मूल संदेश विकृत हो सकता है। जम्प कट से बचना चाहिए। इसी से दर्शकों का ध्यान कहानी पर केन्द्रित रखा जा सकता है। एक व्यक्ति या वस्तु दृश्य से उसी व्यक्ति या वस्तु के समान दूसरे दृश्य में गलत तरीके से संपादन को जम्प कट कहते हैं। दो दृश्यों की एक साथ कटिंग करने पर विषय की मुद्रा बदल सकती है। दो दृश्यों के बीच में नया दृश्य डालने से जंप कट का भ्रम समाप्त हो जाता है।

4.15 ग्रिफिथ का संपादन सूत्र

प्रख्यात अमेरिकी सिनेमा निर्माता डी. डब्ल्यू. ग्रिफिथ ने चलचित्रों और टीवी के दृश्य व्याकरण में सुधार के लिए महती योगदान किया। ग्रिफिथ ने कल्पना की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए नये दृश्यों को प्रवेश कराने का सुझाव दिया। ग्रिफिथ का सूत्र है एल.एस., एम.एस.सी.यू. अर्थात आप को क्रमागत रूप से सभी क्रियाओं को एक लंबे शॉट में दृश्यांकित करना होगा। इसे कवर शॉट या स्टैब्लिशिंग शॉट भी कहते हैं। यदि इस शॉट में बाद में दिखाये जा सकने वाले सभी शॉट उपस्थित हों तो इसे मास्टर शॉट कहते हैं। यह शॉट दर्शकों को बताता है कि सेट पर लोग और वस्तुएँ किस प्रकार व्यवस्थित हैं। इस मास्टर शॉट में कटिंग करके सुगठित शॉट या मध्यम शॉट बनाया जा सकता है। अन्ततः यदि दृश्य और विस्तार की मांग करता है तो आप क्लोजअप कर सकते है। इसके बाद सम्पादक दृश्य को पुनः मीडियम शॉट और क्लोजअप शाट के बीच रखकर देखता है। यदि एक्शन में विस्तृत व्यू की आवश्यकता होती है जिससे एक्शन को समझा जा सके। तो आप पुनः लम्बे शॉट पर कट कर सकते हैं इसी प्रकार यदि आप जंप कट किए बगैर दो टाइट शॉट को सम्पादित नहीं कर पाते हैं तो पुनः लम्बे शाट में वापस आ सकते हैं। लम्बे शॉट में पुनः वापस आने पर दर्शकों को स्थान स्थिति के भाव से परिचित कराया जा सकता है। यह स्थिति टेलीविजन के दर्शकों के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके दर्शक प्रायः कार्यक्रम को देर से देखना प्रारम्भ करते हैं। ऐसे में यदि सभी शॉट क्लोजअप में दिखाये जाते हैं तो एक्शन से परिचित होने में कठिनाई आती है।

4.16 सारांश

मार्शल मैकलुहान के अनुसार- 'रेडियो के कारण सूचनाओं के आदान-प्रदान में अद्‌भुत तेजी आ गयी है। इसने पूरे विश्व को गाँव के आकार में संकुचित कर दिया है।'

सूचना तकनीक में निरंतर प्रगति के कारण वर्तमान युग को सूचनाओं का युग कहा जाता है। आज अधिक सूचनाओं का स्वामी ही शक्तिशाली माना जाता है।सूचनाएं धीरे-धीरे ब्रह्म का रूप लेती जा रही हैं। ऐसे में सूचनाओं के संचरण के लिए उपलब्ध मौजूदा परिदृश्य में व्यापक परिवर्तन होना स्वाभाविक है। मुद्रित माध्यमों में जहाँ सूचनायें और समाचार देर से मिलते हैं। वहीं इलेक्ट्रानिक मीडिया ने सूचना संप्रेषण को तत्क्षण पत्रकारिता का पर्याय बना दिया है। सूचना के प्रवाह के दौरान उनका परिष्कृत स्वरूप दर्शकों और श्रोताओं के समक्ष आये, इसके लिए संपादन की अधुनातन तकनीकी को प्रयोग में लाया जाता है। आज कल वी टी आर मशीन और नॉन लीनियर संपादन तकनीक के कारण इलेक्ट्रानिक संपादन के क्षेत्र में जहाँ क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है, वहीं उसमें और विकास की संभावना को बरकरार रखा है। रेडियो के क्षेत्र में सम्पादन की उपादेयता कबीर की इन पंक्तियों से स्पष्ट होती है।

''बोलत ही पहचानिए, साहू चोर को घाट ।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बात''।।

4.17 शब्दावली

ए.बी.रोल सम्पादन - फिल्म और वीडियो टेप संपादन की तकनीक जिसमें कम से कम दो प्लेबैक स्रोत इस्तेमाल होते हैं।

एसेम्बल सम्पादन - ऐसा सम्पादन जिसमें टेप पर मौजूद सभी संकेत मिटा दिए जाते हैं। इसके तुरंत बाद नये संकेत सभी ट्रैक में रिकार्ड किये जाते हैं।

कंट्रोल ट्रैक सम्पादन - सम्पादन कंट्रोलर से ऑपरेटर द्वारा टेप पर निश्चित किए गये स्थानों पर संकेतों को गिनकर व्यवस्थित किया जाता है।

कवर शॉट	-	इसे ही लाँग शाट भी कहते हैं।
कट वे शॉट	-	विषय से जुड़े हुए शॉट जो पहले के दृश्यों में नहीं दिखायी देते हैं।
कट इन शॉट	-	विषय से जुड़ा हुआ शॉट जो पूर्व दृश्य में मौजूद होता है।
ई.डी.एल.	-	सम्पादन निर्देशों की डिजीटल सूची जिससे कम्प्यूटर आधारित उपकरणों द्वारा संपादन किया जाता है।
इनसर्ट सम्पादन	-	पहले से मौजूद वीडियो अथवा ऑडियो के स्थान पर नया रिकार्ड किया जा सकता है। एसेम्बल संपादन से भिन्न इसमें एक साथ मात्र वीडियो, मात्र ऑडियो अथवा दोनो का मिश्रण संपादित किया जा सकता है।
जम्प कट	-	ऐसा सम्पादन जिसमें एक ही विषय के दो शॉट को जोड़ा जा सकता है। इससे स्क्रीन पर प्लेबैक के दौरान विषय दिखायी दे जाता है।

4.18 संदर्भ ग्रन्थ

ई. जर्नलिज्म	-	डा. अर्जुन तिवारी संजय बुक सेन्टर वाराणसी
''टैक्स्ट बुक ऑफ एडिटिंग एण्ड रिपोर्टिंग''	-	एम. के . जोसेफ डामिनेंट पब्लिकेशन एण्ड वितरक, नई दिल्ली-110002
''फण्डामेन्टल ऑफ टेलीविजन प्रोडक्शन''	-	रैलेफ डोनॉल्ड थॉमस स्वान सुरजीत पब्लिकेशन 7के कोल्हापुर रोड कमलानगर, नई दिल्ली

4.19 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) सम्पादन किसे कहते हैं?

(ii) इलेक्ट्रानिक संपादन प्रिन्ट सम्पादन से कैसे भिन्न है?

(iii) इलेक्ट्रानिक संपादन के कौन-कौन से मुख्य घटक हैं?

(vi) नॉन लीनियर एवं लीनियर संपादन में अंतर बताइये?

(v) शॉट कितने प्रकार के होते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(i) इलेक्ट्रानिक संपादन के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

(ii) सम्पादन की समग्र रणनीति क्या होनी चाहिए।

(iii) ग्रिफिथ के सम्पादन सूत्र की व्याख्या कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

(क) सी.यू. का पूर्ण रूप क्या है?

(i) क्लोज अप (ii) कामन अप

(iii) केयर अप (vi) कोई नहीं

(ख) ई.डी.एल. का निर्माण किस सम्पादन में होता है।

(i) ऑन लाइन सम्पादन (ii) ऑफ लाइन सम्पादन

(iii) दोनों (vi) कोई नहीं

(ग) ऑफ लाइन सम्पादित कार्यक्रम में परिवर्तन करने को क्या कहते हैं-

(i) ई.डी.एल.लाण्डरिंग (ii) सम्पादन

(iii) इनसर्ट (vi) चेंस वे

(घ) किस प्रकार के सम्पादन में पूरी टेप की डुप्लीकेट तैयार की जाती है-

(i) एसेम्बल संपादन (ii) इनसर्ट सम्पादन

(iii) लीनियर सम्पादन (vi) नॉन लीनियर सम्पादन

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

क) (1)

ख) (2)

ग) (1)

घ) (1)

इकाई -5 रिकार्डिंग एवं डबिंग

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 साउण्ड रिकार्डिंग

5.2.1 साउण्ड रिकार्डिस्ट

5.3 फिल्म की डबिंग

5.4 री-रिकार्डिंग

5.5 फिल्म संपादन

5.5.1 फिल्म संपादक

5.5.2 फिल्म संपादन प्रक्रिया

5.5.3 संपादन में प्रयुक्त उपकरण

5.6 प्रोडक्शन कण्ट्रोलर

5.7 उपसंहार

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

5.10 प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(1) फिल्म में साउण्ड रिकार्डिंग तथा साउण्ड रिकार्डिस्ट एवं उसका दायित्व।

(2) फिल्म की डबिंग की प्रक्रिया

(3) फिल्म में टाइटल देना व उसकी उपयोगिता।

(4) फिल्म संपादन प्रक्रिया, संपादक, उसके कार्य तथा प्रयुक्त उपकरण।

(5) फिल्म प्रोडक्शन तथा उसके नियंत्रण का कार्य ।

5.1 प्रस्तावना

रिकार्डिंग तथा डबिंग फिल्म निर्माण का विशिष्ट तकनीकी पक्ष है। फिल्म दृश्य तथा आवाज का सम्मिश्रण पक्ष है। बिना आवाज के आज फिल्म की कल्पना करना भी बेमानी है। त्रुटिहीन ध्वन्यांकन फिल्म की परफेक्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डबिंग के द्वारा ही सही आवाज या फिल्म का भाष्यांतर संभव होता है।

फिल्म संपादन पोस्ट-प्रोडक्शन का महत्पवूर्ण कार्य है। संपादन के बाद ही फिल्म अपनी गति और परिपूर्णता के साथ दर्शक के लिए तैयार होती है। फिल्म के महत्वपूर्ण दृश्यों की, शॉट को क्रमवार तरीके से व्यवस्थित करने की कला ही फिल्म संपादन है।

5.2 साउण्ड रिकार्डिंग

फिल्म के संवाद, ध्वनियों, बैकग्राउण्ड म्यूजिक आदि जो भी आवाजें होती हैं उनकी रिकार्डिंग की व्यवस्था साउण्ड रिकार्डिंग कही जाती है। फिल्म को निर्दोष और भव्य स्वर प्रदान करने का काम साउण्ड रिकार्डिंग द्वारा ही होता है। यह एक तकनीकी प्रक्रिया है जिसमें विविध अत्याधुनिक उपकरणों की सहायता ली जाती है।

5.2.1 साउण्ड रिकार्डिस्ट

फिल्म की शूटिंग के दौरान (शूटिंग चाहे स्टूडियो में हो या आउटडोर) हर आवाज को सही जगह से पकड़कर सही ढंग से रिकार्ड करने की जिम्मेदारी साइड रिकार्डिस्ट की होती है। आम तौर पर संवाद फिल्म की शूटिंग के साथ ही रिकार्ड किये जाते हैं।

स्टूडियो में जहाँ शूटिंग होती है, उस फ्लोर के साथ ही रिकार्डिंग रूम होता है यहाँ साउण्ड मशीन लगी होती है। साउण्ड रिकार्डिस्ट अपने मुख्य सहायक के साथ यहाँ बैठे रहते हैं। सैट पर

जहाँ शूटिंग चल रही होती है, माइक लगा होता है यह माइक बहुत शक्तिशाली होता है और सांसों की आवाज भी स्पष्टतया पकड़ लेता है। सैट पर कलाकार स्थिर तो रहते नहीं, चलते-फिरते रहते हैं, अतः इस माइक को दांए-बाएं, ऊपर-नीचे घुमा फिरा सकने के लिए एक स्टैण्ड पर लगाया जाता है। इस स्टैण्ड को दृश्य की जरूरत के मुताबिक पात्रों से उपयुक्त दूरी पर रखने का काम जो व्यक्ति करता है उसे 'बूम मैन' कहते हैं।

साउण्ड रिकार्डिस्ट को विशेष रूप से दो बातों का ध्यान रखना होता है। पहली चीज है आवाज का वाल्यूम। सारे संवाद एक ही तीव्रता से नहीं बोले जाते। कहीं आवाज तेज होती है और कहीं धीमी। उसे अपने विवेक का निर्णय करना होता है कि रिकार्ड करने के लिए उनकी कितनी तीव्रता रखी जाये। दूसरी प्रमुख बात संवादों या हरकतों के साथ उत्पन्न होने वाली ध्वनियों से सम्बन्धित है। मान लो कोई कलाकार बात-चीत करता हुआ दरवाजा खोलकर अन्दर आ रहा है। तब दो आवाजें होंगी। एक तो संवादों की दूसरी दरवाजा खोलने की ।

कुछ ध्वनियां तो सेट पर शूटिंग के साथ रिकार्ड कर ली जाती हैं, लेकिन कुछ ऐसी होती हैं जिन्हें उसी वक्त रिकार्ड नहीं किया जा सकता। उन्हें अलग से रिकार्ड किया जाता है और बाद में दृश्य के साथ मिलाया जाता है।

5.3 फिल्म की डबिंग

डबिंग भी रिकार्डिंग का एक ही भाग है। कभी कभी ऐसा होता है कि संवाद पकड़ सकने वाला माइक कलाकारों के नजदीक लाना सम्भव नहीं होता। ऐसा ज्यादातर आउटडोर शूटिंग में होता है। अतः जब शूटिंग का प्रिन्ट बनकर आ जाता है तो उसे परदे पर दिखाया जाता है और उस दृश्य से सम्बन्धित कलाकार साथ में संवाद बोल देते हैं और उन संवादों को रिकार्ड कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी जब कलाकार फिल्म की भाषा के

उच्चारणों में अपरिपक्व होता है तो पर्दे के पीछे से दूसरा व्यक्ति उसे अपनी आवाज देता है या डब कराता है।

डबिंग उन फिल्मों के लिए बहुतायत से प्रयुक्त होती हैं जो दूसरी भाषा में होती है। जैसे-भारत में जब हॉलीवुड की फिल्में प्रस्तुत की जाती हैं तो हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा में स्थानीय लोगों द्वारा पुनः संवादों को दूसरी भाषा में डब किया जाता है। इसी प्रकार एनीमेशन फिल्मों में चूँकि पर्दे पर कार्टून या एनीमेटेड चरित्र होते हैं अतः पीछे से विविध स्वरों में उनकी आवाज डब हो जाती है और एहसास होता है कि पर्दे पर कार्टून पात्र ही बोल रहे हैं।

5.4 री-रिकार्डिंग

री-रिकार्डिंग, रिकार्डिंग का ऐसा हिस्सा है जिसके बारे में लोगों को बहुत कम मालूम होता है यह भी रिकार्डिंग के अन्य भागों की तरह ही तकनीकी प्यादा है। आसानी के लिए इनका अर्थ इस तरह समझा जा सकता है कि सब तरह की आवाजों का उचित सम्मिश्रण करके यही साउण्ड का अन्तिम ट्रेक बनाया जाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, संवाद अलग रिकार्ड किये जाते है। सम्बन्धित अलग प्रभाव देने वाली ध्वनियाँ अलग और पार्श्व संगीत अलग।

फिल्म का संपादन और साउण्ड रिकार्डिस्ट मिलकर री-रिकार्डिंग करते है। सब आवाजों को मिलाकर की जाने वाली मिक्स रिकाडिंग टेप पर की जाती है। टेप से इसे साउण्ड फिल्म के निगेटिव पर ट्रांसफर किया जाता है। साउण्ड के इस निगेटिव को लेबोरेटरी में प्रोसेस करके सम्पादक के पास भेज देते हैं। सम्पादक इसे फिल्म के साथ मिलाकर प्रिन्ट बनाता है। जिसे मैरिड रिलीज प्रिंट' कहते है। यही फिल्म का अन्तिम स्वरूप भी होता है।

5.5 फिल्म संपादन

एडीटिंग या सम्पादन का मतलब यह है कि किसी भी बिखरी

हुई चीज को यथा स्थान देना, जोड़ देना। कैमरा तो चित्र को चित्रित करता है, उनमें तारतम्य यानि लिंक नहीं होता।

प्रायः सबसे पहले वाले दृश्य के चित्र सबसे आखिर में लिए जाते हैं और आखिर और बीच के दृश्यों की फोटोग्राफी पहले कर ली जाती है। मतलब यह कि सैटिंग के अनुसार ही फोटोग्राफी भी चलती है।

फिल्म में किसी उद्यान में किसी भी कलाकार के अभिनय के जितने भी दृश्य होंगे - सब एकदम चित्रित कर जायेंगें - चाहे वो शुरू, बीच या अन्त के हों और क्लैपरमैन जो फिल्म की शूटिंग होने से पहले कैमरे के सामने एक काला सा तख्ता लेकर खट सा करता है, वह इसलिए कि उस तख्ते पर फिल्म कम्पनी का नाम, फिल्म का नाम, तारीख, रील और दृश्य नम्बर लिखा होता है।

जब चित्र पूरा हो जाता है तो हर सेट की शूटिंग की हुई फिल्म एडीटर के सामने लायी जाती है। हर रील के दृश्य के शुरू में क्लैपर के फोटो से पूरा विवरण मालूम करके एडीटर फिल्म के आवश्यक भाग रहने देता है और बेकार के हिस्सों को काटकर अलग रख देता है और फिर कथानक (स्टोरी) के मुताबिक टुकड़ों को जोड़ देता है।

यहाँ हर पल एडीटर को यह ध्यान रखना पड़ता है कि दृश्यों के बदलने की रफ्तार कहानी के कुल प्रभाव के लिए ठीक चल रही है या नहीं। यदि लगे कि उसमें ढीलापन आ गया है तो वह दृश्यों को और छोटे टुकड़ों में काटकर इस क्रम में जोड़ेगा कि कहानी ज्यादा रोचक लगती है।

फिल्म के दो टुकड़ों को जोड़ते समय उसे इस बात का ध्यान भी रखना होगा कि फिल्म का बहाव बराबर बना रहे । किसी दृश्य को समाप्त करते समय या नयी बात को शुरू करते समय दर्शक अटपटा न महसूस करे। इसी तरह दृश्य परिवर्तन के समय भी क्रम ठीक बना रहना चाहिए।

जैसा कि सब जानते हैं कि फिल्म के एक किनारे पर साउण्ड होती है, लेकिन ऐसा फिल्म पूरी तरह तैयार हो जाने के बाद ही होता है। पहले तो फिल्म अलग और ध्वनि अलग होती है। दोनों को उपयुक्त ढंग से जोड़ने का कार्य एडीटर ही करता है।

संवादों के अलावा उसे ध्वनि के कुछ और अंश भी कई जगहों पर जोड़ने होते है। घटनाओं के साथ-साथ कहीं पर ध्वनि सम्बन्ध को भी विशेष प्रभाव दिये जाते हैं कहीं गूंज होती है, कहीं भयानक डरावनी आवाजें। इन्हें रिकार्ड कर लेने के बाद सम्पादक के पास भेजा जाता है । वह इन्हें उपयुक्त ढंग से दृश्यों के साथ जोड़ देता है और फिल्म का प्रभाव इससे बहुत अधिक बढ़ जाता है।

5.5.1 फिल्म संपादक

फिल्म संपादक वह व्यक्ति होता है जो उसके संपादन के दायित्व का निर्वहन करता है। वह निर्देशक के साथ मिलकर स्क्रिप्ट के अनुरूप दृश्यों को पूर्वनिश्चित लंबाई के अनुसार काट-छाँट कर व्यवस्थित करता है। फिल्म संपादक को संपादन की मूलभूत बातों का जानकार होना चाहिए। पेसिंग, रिद्म, शॉट कट आदि के सिद्धान्तों का उसे पता होना चाहिए। लगातार स्क्रीन के सामने दबाव में काम की क्षमता का होना भी उसके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसे दर्शक की दृष्टि गतिशीलता के अनुरूप दृश्य को संयोजित करने की कला पता होनी चाहिए। संपादन में दृश्य और संवाद के संयोजन की कला भी उसके पास होनी चाहिए।

5.5.2 फिल्म संपादन प्रक्रिया

फिल्म संपादन का कार्य तब आरम्भ होता है जब फिल्म की शूटिंग पूरी हो जाती है। किसी फिल्म की लय, भावनात्मकता, गति और प्रभाव उसकी संपादन प्रक्रिया पर भी निर्भर करते हैं। संपादन की प्रक्रिया द्वारा ही फिल्म के विविध शॉट्स को जो अलग-अलग शूट किये गये होते है एक व्यवस्थित क्रम दिया जाता है।

संपादन की प्रक्रिया में फिल्म की गति और लय व्यवस्थित की जाती है। इसके तहत अनावश्यक दृश्यों को हटाया जाता है जिससे दृश्यों का तारतम्य तार्किक हो जाता है। हार्ड कट तथा सॉफ्ट कट भी संपादन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण कार्य है।

हार्ड कट में दृश्यों का अचानक परिवर्तन व्यवस्थित किया जाता है।दूसरी ओर कई दृश्य ऐसे होते हैं। जिसमें एक शॉट के बाद दूसरा शाट परिवर्तित होना दर्शक द्वारा चिन्हित नहीं होता यह सॉफ्ट कट की प्रक्रिया है। फिल्म संपादन में सामान्यतौर पर थ्री कट संरचना प्रयुक्त होती है। इसमें शॉट की शुरूआत, शॉट के मध्य भाग तथा शॉट के अंतिम भाग को व्यवस्थित किया जाता है।

संपादन की प्रक्रिया में ही दृश्य तथा ध्वनि का भी संयोजन किया जाता है। इसमें संवाद की सूचनात्मकता, संवाद की कसावट को ठीक किया जाता है । संपादन की प्रक्रिया द्वारा ही संवादों के दोहराव और आगे-पीछे क्रम होने की समस्या ठीक की जाती है संपादन की प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही कोई फिल्म प्रदर्शन के लिए तैयार होती है।

5.5.3 संपादन में प्रयुक्त उपकरण

वर्तमान संपादन प्रक्रिया पूरी तरह से डिजिटल तथा कम्प्यूटर आधारित हो गयी है। कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर की मदद से संपादन की यह प्रक्रिया पूरी की जाती है। एडीटिंग रूम में ध्वनि तथा दृश्य प्रदर्शन एवं मूल्यांकन हेतु विविध उपकरण तथा मिक्सर स्क्रीन कम्प्यूटर कार्ड की व्यवस्था होती है। इनकी मदद से ही संपादन की प्रक्रिया पूरी की जाती है।

5.6 प्रोडक्शन कन्ट्रोलर

छोटे बजट की फिल्म पच्चीस से चालीस लाख और बड़े बजट की फिल्म एक करोड़ से दो-ढाई करोड़ तक की बनती है। निर्माता कुछ पैसा (जितना उसके पास होता है या वह लगा सकता

है) अपने पास से लगाता है तथा कुछ फिल्म डिस्ट्रीब्यूटरों अथवा फाइनेंसरों से लेता है। कितना रूपया बाहर से लिया गया, कितना किस बाबत खर्च किया गया और कितना चुकाया गया, यह सब देखने की जिम्मेदारी फिल्म प्रोडक्शन कन्ट्रोलर की होती है।

प्रोडक्शन कन्ट्रोलर वह व्यक्ति है जिसके हाथ से सारा रूपया खर्च होता है और जो यह निश्चय करता है कि किस मद में कितना रूपया पैसा खर्च करना होगा। कभी-कभी उसके गलत निर्णय से निर्माता व निर्माण संस्था को लाखों का नुकसान उठाना पड़ सकता है, ऐसा नुकसान प्रोडक्शन कन्ट्रोलर की बेईमानी करने पर हो सकता है।

इसलिये इस कार्य के लिए निर्माता, यदि सम्भव हो अपने सगे-सम्बन्धी को ही नियुक्त करता है या खूब परखे हुए व्यक्ति को रखता है। प्रोडक्शन कन्ट्रोलर का मुख्य कार्य यह देखने का होता है कि शूटिंग के लिये जिन चीजों की जरूरत होगी, वह जुटा ली गई हैं या नहीं। उसकी देखभाल में एक पूरा ऑफिस काम करता है।

फिल्म निर्माण के विविध भागों (अंगों) से सम्बन्धित लोग उसके पास आते हैं और वह उन सबकी जरूरतें पूरी करता है। वह निर्माता-निर्देशक से मिलकर शूटिग के समय की सब आवश्यकताओं का पता लगाकर उनका इन्तजाम करता है।

फोटोग्राफी के लिये लगभग कितनी फिल्म चाहिये होगी, अपने पास स्टॉक में कितनी फिल्म हैं, शेष के लिये क्या प्रबन्ध करना होगा। कला निर्देशक किस तरह का सैट लगाने वाला है उसके लिये क्या-क्या सामान चाहिये, वह सामान कहाँ से खरीदा जाएगा (या किराये पर लिया जायेगा और किस तरह स्टूडियो पहुँचाया जायेगा)। सेट सजाने के लिए क्या मांगा गया है, यह सब प्रारम्भिक व्यवस्था वही करता है।

इन सब व्यवस्थाओं के बाद अनुमान लगाता है कि रोजमर्रा

की शूटिंग पर कितना खर्च आयेगा? जब शूटिंग होती है तो बहुत से कलाकार और कर्मचारी दैनिक वेतन पर काम करने वाले भी होते हैं। उन सबके दिन के खाने व चाय-पानी की व्यवस्था करनी होती है। उसके लिये पैसों का प्रबन्ध और सबका हिसाब करने का जिम्मा भी प्रोडक्शन कन्ट्रोलर का होता है।

स्टूडियो या होटल बुक कराना, किराये पर सामान मंगाना, खरीददारी करना- सब बातें उसके निर्देश पर होती है। फिल्म निर्माण के हर अंग के बारे में उसे पता होना चाहिए तभी कुशलता के साथ वह इस कार्य को पूरा कर पायेगा।

5.7 उपसंहार

इस आधार पर कहा जा सकता है कि फिल्म को पूरा करने में ध्वनि लिप्यांकन संपादन, आदि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। निर्देशक की परिकल्पना को गति, तारतम्य तथा आवाज और स्वरूप देने का काम यही प्रक्रियाएं करती है। इनके बिना फिल्म पूरी हो पाना संभव नहीं है।

आजकल तकनीक के स्तर पर भारत की फिल्मों को जो अन्तर्राष्ट्रीय पहचान मिल रही है उसमें बेहतर साउण्ड रिकार्डिंग व्यवस्था तथा उच्चस्तरीय संपादन व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। यह कार्य तकनीकी कौशल तथा मानवीय श्रेष्ठता दोनों की मांग करते हैं अतः इनके संयोजन पर विशेष बल देना चाहिए।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

(1) क्रासफेड - ध्वनि मिश्रण के दौरान एक ध्वनि स्रोत को कम करना तथा दूसरे को धीरे-धीरे बढ़ाना, जैसे संगीत के बाद कमेण्ट्री का आना।

(2) डायरेक्ट साउण्ड - वह मूल ध्वनि जो छवि के फिल्मांकन के साथ-साथ स्वाभाविक रूप से रिकार्ड की गयी हो।

(3) इनवलप - ध्वनि के स्वरूप को निश्चित प्रभाव या आकार

देने की तकनीक।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

(1) डॉ. अर्जुन तिवारी - संपूर्ण पत्रकारिता

(2) बेन लाँग - मेकिंग डिजिटल वीडियोज

5.10 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) फिल्म में साउण्ड रिकार्डिंग प्रक्रिया तथा उसकी उपयोगिता बताएं।

(2) फिल्म संपादन प्रक्रिया का वर्णन करें ।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) डबिंग क्या होती है?

(2) फिल्म संपादक के गुण बताएं।

(3) प्रोडक्शन कण्ट्रोलर के कार्य बताएं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) विदेशी भाषा की फिल्म में स्थानीय भाषा की आवाजें व्यवस्थित होती हैं-

(1) डबिंग द्वारा (2) शूटिंग द्वारा
(3) निर्देशन द्वारा (4) इनमें से कोई नहीं

(2) संपादन भाग है -

(1) स्क्रिप्ट का (2) प्री-प्रोडक्शन का
(3) पोस्ट-प्रोडक्शन का (4) प्रोडक्शन का

(3) प्रोडक्शन में शामिल है-

(1) योजना (2) संपादन
(3) वितरण (4) शूटिंग

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

(1) 1

(2) 3

(3) 4

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

3

फिल्म निर्माण तकनीकी-।

इकाई-1 5
फिल्म निर्माण तकनीकी-।

इकाई-2 20
फिल्म तकनीकी -॥

इकाई-3 35
संकट-मोचन

इकाई-4 49
सम्पादन प्रासंगिकता

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
श्री एम0 एल0 कनौजिया	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापन

1- प्रो0 राम मोहन पाठक - वाराणसी

2- डॉ0 अर्जुन तिवारी - इलाहाबाद

सम्पादन

1- श्री राजकृष्ण मिश्र

लेखक मंडल

PGDEM&FP - 04

1- सुनील कुमार श्रीवास्तव - इलाहाबागद

2- राघवेन्द्र मिश्र - काशी

3- श्री राजकृष्ण मिश्र - लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से कुलसचिव श्री एम0 एल0 कनौजिया, द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2008

मुद्रक : नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद, मुद्रित। फोन - 2548837

इकाई - 1 फिल्म निर्माण तकनीकी -।

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 फिल्म छायाकार

1.2.1 ऑपरेटिव कैमरामैन

1.2.2 सह छायाकार

1.2.3 छायाकार : संगठन तथा स्थिति

1.3 विशेष प्रभाव विशेषज्ञ

1.4 मेकअप तथा मेकअप मैन

1.5 वस्त्र सज्जाकार

1.6 केश सज्जाकार

1.7 उपसंहार

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 प्रश्न

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे :-

(1) फिल्म निर्माण का तकनीकी पक्ष और उसकी विशेषताएं।

(2) फिल्म छायांकन तथा छायाकार एवं उनकी कार्यप्रणाली, संगठन, स्थिति इत्यादि।

(3) फिल्मों में विशेष प्रभाव का उपयोग तथा उसके विशेषज्ञ ।

(4) मेकअप कला तथा फिल्मों में मेकअप का महत्व ।

(5) वस्त्र सज्जाकार तथा फिल्म में वस्त्र सज्जाकार की उपयोगिता एवं दायित्व।

(6) फिल्म निर्माण के अन्य तकनीकी सहायक।

1.1 प्रस्तावना

फिल्म एक तकनीकी विधा है। निर्देशक तथा कहानीकार की परिकल्पना को मूर्त रूप देने में अनेक प्रकाश की तकनीकों, प्रौद्योगिकी तथा तकनीकी विशेषज्ञों की मदद लेनी होती है। तकनीकी रूप से फिल्म एक जटिल उत्पाद है जिसमें छायांकन, विशेष प्रभाव आदि के लिए उच्च स्तरीय प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है। इस प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के लिए उच्च कौशल युक्त विशेषज्ञ भी महत्वपूर्ण होते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ कलात्मक तकनीकें भीं फिल्म निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त जरूरी हैं। मेकअप और वस्त्र सज्जा को इसी श्रेणी में रखा जाता है। चरित्रों तथा स्थितियों का चित्रण यथार्थपरक या कहानी की माँग के अनुरूप हो, पात्र को आकर्षित करने में सफल हो, इसमें मेकअप तथा वस्त्र सज्जा की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है।

फिल्म को एकरूप देने में इनका भी योगदान होता है। निर्देशक की टीम के यह भी महत्वपूर्ण सदस्य होते हैं तथा उसकी परिकल्पना को साकार करने की जिम्मेदारी इनके ऊपर भी होती है। यह तकनीकी विशेषज्ञ अपने काम को जितने कुशल तरीके से अंजाम तक पहुँचाते हैं, फिल्म उतनी ही सुन्दर, आकर्षक और महत्वपूर्ण साबित होती है तथा लम्बे समय तक दर्शकों के दिलो-दिमाग में बनी रहती है।

फिल्म की कहानी लेखक सोचता है उसके प्रस्तुतीकरण का जो खाका निर्देशक के दिमाग में उभरता है, उसे परदे तक पहुँचाने के लिए कई तरह की विधियों का सहारा लेना पड़ता है । गीत लिखे जाएंगे, संगीत तैयार होगा, कलाकार अभिनय करेंगे- लेकिन यह सब बिल्कुल उसी रूप में परदे पर कैसे उतरेगा? इनमें से ही चीज वैज्ञानिक विधियों से पुनः प्रस्तुत करने योग्य रूप में परिवर्तित की जाती हैं यह काम तकनीशियनों का होता है।

लेखक, निर्देशक या कलाकार अपनी ओर से इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि उनके काम में किसी तरह की कोई कमी न रहने पाए। इसी तरह तकनीशियनों को भी छोटी से छोटी बात को ध्यान में रखना होता है। जरा सी भी लापरवाही से सब की मेहनत मिट्टी हो सकती है। फिल्म किसी कारण से थोड़ी धुंधली रह गयी तो फिर कौन उसे देखने जाना चाहेगा? फिर उसकी जरा भी कीमत नहीं रह जाती।

इसी तरह बहुत सी चीजें ऐसी होती हैं, जिन्हें लेखक या निर्देशक सुधार नहीं सकते, लेकिन कुशल तकनीशियन अपनी कला से उस कमी को दूर कर देता है।

मशीनों पर, रसायनों पर और अन्य कच्चे माल पर नियंत्रण करके फिल्म को सजाने-संवारने वाले इन तकनीशियनों का महत्व अब दिन पर दिन बढ़ रहा है। फिल्म कला में हो रहे नये-नये प्रयोग इन्हीं के माध्यम से संभव हो रहे है। तरह-तरह के कैमरे ईजाद हो रहे हैं। आवाज रिकार्ड करने के तरीके बदल रहे है। फिल्मों के रंगीन हो जाने से इस क्षेत्र में क्रान्ति ही हुई है।

1.2 फिल्म छायाकार

फिल्म का छायाकार वह व्यक्ति है जो निर्देशक के सामने स्पष्ट किन्तु अमूर्त फिल्म को मूर्त रूप देने का श्रीगणेश करता है। छायाकार अर्थात कैमरामैन के नाम से आम तौर पर लोग उसके काम को सिर्फ फोटो खीचने या कैमरा चलाने तक सीमित समझते है। वास्तविकता यह है कि उसका काम तकनीक के क्षेत्र में निर्देशक के समान ही महत्वपूर्ण है। सारी फिल्म का सौन्दर्य उसी के निखारे निखरता है।

कोई भी व्यक्ति, कोई भी बिल्डिंग कोई भी चीज कितने ही कोणों से देखी जा सकती है। सभी कोणों से वह एक सी दिखाई नहीं देती। कहीं से मामूली, कहीं से भद्दी और वही चीज कहीं से देखने पर खूबसूरत लग सकती है। छायाकार का प्रमुख कार्य हर चीज का यही कोण, जिससे देखने पर वह सबसे ज्यादा खूबसूरत मोहक लगे, ढूँढ निकालना है। अपने इसी निर्णय के बल पर वह साधारण चीजों में भी सौदर्य पैदा करके दिखा सकता है । हालाँकि फिल्म का शॉट लिए जाते समय कैमरा प्लेसिंग निर्देश करता है। जो लोग छायांकन के क्षेत्र में आना चाहते हैं, उनमें यह शक्ति या यह गुण तो अवश्य ही होना चाहिए। यह कलात्मक दृष्टि दरअसल नैसर्गिक होती है, लेकिन प्रयत्न करके और अध्ययन के बल पर उसे उत्पन्न भी किया जा सकता है। मामूली से मामूली चीज के बारे में चलते-फिरते, घूमते हर समय इस तरह के कोण का अध्ययन इस क्षेत्र के लोगों की आदत बन जाना चाहिए।

इसके बाद आती है प्रकाश व्यवस्था । प्रकाश व्यवस्था में भी प्रकाश नहीं, छाया उसकी सबसे बड़ी मित्र होती है। किसी व्यक्ति का फोटो देखिए, जिस पर किसी तरह की कोई छाया न हो, साफ- सुथरा चेहरा दिखाया गया हो, जैसा आम तौर पर फोटो स्टूडियो वाले खींच देते हैं। इसके मुकाबले उसी व्यक्ति का कोई फोटो, जिस पर उचित कोणों से प्रकाश कम करके छाया का असर दिया गया हो या प्राकृतिक प्रकाश का

उपयोग करके छायाएं भी साथ रहने दी गई हों कलात्मक दृष्टि से आपको ज्यादा अच्छा लगेगा।

इसी तरह फिल्म की फोटोग्राफी में इस बात का पूरा ध्यान रखना होता है कि सारी जगह प्रकाश उड़ेल देने की जगह छायाओं का कहाँ और कितना उपयोग किया जा सकता है। यह निर्णय अलग अलग छायाकार अपने-अपने ढंग से करते हैं। यही निर्णय किसी को बढ़िया और किसी को मामूली साबित करता है। कोई छायाकार अभिनेता के चेहरे पर इस ढंग से रोशनी डालता है कि चेहरा स्पष्ट दिखे और चेहरे की हर चेष्टा स्पष्टतः कैमरे द्वारा पकड़ी जा सके। इसी चीज को कोई दूसरा छायाकार आधे या एक भाग को कुछ अंधेरे में रखकर इस तरह दिखाना चाहेगा कि उन छायाओं से ही चरित्र के बारे में कुछ अनुमान लगाया जा सके कि वह व्यक्ति रहस्यमय है, अपराधी है या चिंताकुल है। किस जगह, किस खास ढंग की व्यवस्था करके क्या प्रभाव उत्पन्न करना है, यह वह सोचता है। नये आने वालों को इसलिए इस तरह का अध्ययन करते रहने की लत होनी चाहिए। फिल्म देखते समय भी उन्हें यह सोचना चाहिए कि कहाँ, क्या प्रकाश व्यवस्था दी गयी और इन्हीं स्थितियों में इसमें सुधार या फेरबदल की क्या गुंजाइश है।

छायाकार को शूटिंग शुरू होने से पहले आकर कला निर्देशक द्वारा तैयार तथा सजाए गये सेट पर प्रकाश व्यवस्था करनी होती है। पटकथा के अनुसार वह यह जानता है कि सेट पर जो घटनाएं फिल्माई जाती हैं वे किस समय घट रही हैं। अर्थात समय कौन सा है -दिन, दोपहर, रात या शाम, उसी के हिसाब से वह प्रकाश देता है। स्टूडियो में ऊंचाई पर प्रकाश देने वाले बड़े-बड़े सोलर लगे रहते हैं, इनकी मदद से वह सेट को इस तरह आलोकित करता है कि सारा प्रकाश स्वाभाविक मालूम पड़े।

इसके लिए छायाकार को इस बात की पूरी परख होनी चाहिए कि जिस दिन चटकीली धूप निकली हो, किस तरह के कैमरे में, किस तरह का प्रकाश आता है, खिड़कियों की स्थिति का क्या असर पड़ता है और प्रकाश की तीव्रता किस समय कैसे घटती-बढ़ती है। प्रकाश की इस तीव्रता पर बादल, वर्षा या कुहरे का क्या प्रभाव होता है। दिन के किस पहर में व्यक्ति या वस्तुओं की छाया किस तरफ और कितनी पड़ती है। यह सब बारीकियां अध्ययन की प्रवृत्ति से पकड़ में आती है।

1.2.1 ऑपरेटिव कैमरामैन

प्रकाश व्यवस्था करना छायाकार के काम का एक अंग हुआ। दूसरा भाग है कैमरे का संचालन। हमारे यहाँ जो व्यक्ति प्रकाश व्यवस्था करता है, आम तौर पर वही

कैमरे का संचालन भी करता है । विदेशों में प्रमुख छायाकार सिर्फ प्रकाश व्यवस्था करता है उसे फोटोग्राफी का निर्देशक कहा जाता है। कैमरा संचालन दूसरा व्यक्ति करता है जो ऑपरेटिव कैमरामैन कहलाता है। उसका काम कैमरे का संचालन मात्र होता है। अब यह पद्धति धीरे-धीरे हमारे यहाँ भी लोकप्रिय हो रही है।

कैमरे का संचालन जो व्यक्ति करता है, उसे इस बात का बराबर ध्यान रखना होता है कि जो कलाकार और जितनी अन्य वस्तुएँ उस दृश्य में जरूरी हैं वे कैमरे के क्षेत्र में बराबर आ भी रही है कि नहीं। कहीं चलने-फिरने के समय पात्र कैमरे की सीमा से बाहर तो नहीं निकल जाते ।

फिल्म का कैमरा स्थिर नहीं होता । वह भी पात्रों के साथ, दृश्यों के समय चलता-फिरता है। कभी वह सामने आता है कभी पीछे जाता है। कभी-कभी तो वह चेहरे के एकदम ही समीप आ जाता है। यह सब कैमरे की गतिविधियां होती हैं। दृश्य के अनुसार उनका उल्लेख पटकथा में किया होता है। ऑपरेटिव कैमरामैन को इस बात का घ्यान भी रखना होता है कि जब कैमरा दूसरों की गतिविधियां अंकित कर रहा है, वह अपनी रफ्तार तो गलत नहीं चला रहा है। कैमरे को रबड़ के पहियों वाली गाड़ी में रखकर इसे इधर-उधर घुमाया जाता है। कभी उसे क्रेन पर रख कर ऊँचाई से दृश्य लेना होता है, कभी ऐसी ही किसी दूसरी चीज पर रखकर उस चीज की गति भी नियंत्रित रखनी होती है। कभी तेज, कभी धीमी गति से परदे पर आने वाले दृश्य में भी वही असर आएगा जो बुरा व अस्वाभाविक मालूम होगा। अतः कैमरे की गति को संभालने का दायित्व भी उसी का होता है।

कैमरे के इस कला पक्ष के साथ-साथ छायाकार को उसके तकनीकी पहलुओं की भी पूरी जानकारी होनी चाहिए। इस जानकारी में अलग-अलग तरह की फिल्मों का ज्ञान, विभिन्न लैंसों का प्रभाव आदि अनेक बातें शामिल हैं।

चलचित्र छायाकारी के क्षेत्र में आने के इच्छुकों मे जिन स्वाभाविक गुणों का होना आवश्यक है वे हैं उत्सुक दृष्टि, कलात्मक रूचि तथा तत्संबंधी ज्ञान, तकनीकी ज्ञान प्राप्ति के प्रति आकर्षण, दृश्य संबंधी याददाश्त, सजाने-संवारने की प्रवृत्ति तथा प्रकाश व छाया के प्रभाव का ज्ञान ।

1.2.2 सह-छायाकार

जिस तरह निर्देशक के कुछ सहायक होते हैं, उसी तरह छायाकार के भी तीन-चार सहायक होते हैं। सहायकों की संख्या छायाकार पर निर्भर करती है। कोई सिर्फ दो

सहायकों से काम कराता है, किसी के चार सहायक भी होते हैं।

जहाँ छायाकार कैमरे का संचालन स्वयं नहीं करता, वहाँ ऑपरेटिव कैमरामैन उसका प्रमुख सहायक होता है। ऑपरेटिव कैमरामैन के काम छायाकार के साथ समझाए जा चुके हैं उसके बाद जो सहायक होते हैं, उनमें से एक का काम सिर्फ प्रकाश देने वाले बिजली के बड़े-बड़े हण्डे होते हैं, जो स्टूडियो के स्टेज में ऊंचाई पर लगे होते हैं। आवश्यकतानुसार इन्हें ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं घुमाया जा सकता है और इनकी तीव्रता भी कम ज्यादा की जा सकती है। कम प्रकाश देने वाली छोटी लाइट 'बेबी लाइट' कहलाती है।

छायाकार को भी सेट पर शाम दिखानी होती है, कभी किसी गुफा को प्रकाश देना होता है कभी किसी स्टूडियो के स्टेज पर ही बाजार, गली या चौराहा भी बना लिया जाता है। अनेक सोलरों और बेबी लाइट्स की मदद से वह सेट को उपयुक्त रूप से प्रकाशित करता है अपने मीटर व सहायक उपकरणों की सहायता से वह यह जांचता चलता है कि फिल्म पर इतनी रोशनी का असर कैसा आएगा। उपयुक्त प्रकाश व उपयुक्त छायाएं प्रस्तुत करने के लिए अनेक छोटी-बड़ी लाइटें सेट के अनेक कोणों से देनी होती है। उनमें छोटी से छोटी लाइट का भी अपना असर होता है।

शूटिंग करते समय अगर इनमें से कोई लाइट बुझ गयी तो बहुत संभव है कि तुरंत उसका पता न लगे, लेकिन सहायक छायाकार की दृष्टि इस चीज को तुरंत भांप लेती है कि वह कौन सी छोटी सी लाइट गड़बड़ा गयी है। वह इन पर नजर न रखे और शूटिंग कर ली जाए तो फिल्म पर वांछित असर न आने से सारी मेहनत बेकार जाए,इसलिए उसका काम महत्व का है।

छायाकार का दूसरा सहायक फोकस करने का काम करता है । किसी भी कैमरे का लेंस सभी दूरियों पर स्पष्ट फोटो नहीं लेता। विभिन्न दूरियों के लिए उसे हर बार आगे-पीछे करके उस जगह स्थिर करना होता है। जहाँ से वह स्पष्ट फोटो ले सके। सिने कैमरा चूँकि अपनी जगह से घूमता-फिरता रहता है और उन पात्रों तथा जगहों की दूरी बदलती रहती है। जिनका वह चित्र ले रहा है तो कैमरे को हर दूरी के लिए निरंतर फोकस में रखे रहने की जरूरत बनी रहती है । कैमरे के लेंस को घुमाकर उसे फोकस में लाया जाता है। अतः एक सहायक निरंतर कैमरे के पास बैठकर उसे फोकस में करता रहता है। इसके लिए लेंस से लक्ष्य की दूरी ठीक मालूम होनी चाहिए। अतः एक अन्य सहायक यह दूरी नापकर उसे बताता रहता है । इस प्रकार तीन-चार विभिन्न काम तीन-चार विभिन्न सहायकों को सौपे जाते हैं।

जिन लोगों को फोटोग्राफी संबंधी कुछ ज्ञान होता है, मगर जिन्हें इस कला का कुछ भी ज्ञान नहीं, या जिन्हें छायाकार अपना सहायक बनाने योग्य नहीं समझता, उन्हें वह पहले काम समझने के लिए साथ रख लेता है, उन्हें एप्रेंटिस कहा जाता है। जब छायाकार समझता है कि उन्हें कुछ काम आ गया, तब उन्हें सहायक नियुक्त करता है।

निर्देशक की हर कल्पना को साकार रूप तो छायाकार ही देता है, अतः उसे इस बात का ज्ञान सहज ही होता चलता है कि निर्देशक किस चीज को किस ढंग से सोचता है। छायाकार को अलग-अलग निर्देशकों के साथ काम करने का मौका मिलता है। इससे वह यह भी जान जाता है कि किसकी क्या खूबी है। यदि छायाकार में पर्याप्त उत्साह है तो वह इन सबकी अच्छाइयों के आधार पर निर्देशन का अपना स्वतंत्र ढंग अपनाकर इस क्षेत्र में सहज ही प्रवेश कर सकता है।

छायाकार के साथ विभिन्न लोग काम करते है। वह हर कलाकार के बारे में उसकी प्रतिभा तथा शारीरिक व्यक्तित्व के बारे में औरों की अपेक्षा अधिक जानकारी रखता है। अतः स्वयं निर्देशन करते समय कलाकारों के चुनाव में आसानी रहती है। निर्माण का हर पक्ष उसके सामने से गुजरता है और उसकी जरूरतों का ख्याल रखता है। बाह्य शुटिंग के लिए जगह का चुनाव करते समय उसकी राय महत्वपूर्ण होती है। इन सब कारणों से वह निर्माण के क्षेत्र में भी कदम रख सकता है। इस तरह के उदाहरण मौजूद है, जहाँ निर्देशक और छायाकार एक ही व्यक्ति हैं। छायाकार से निर्देशन के क्षेत्र में आने वालों की तो कमी नहीं है। यह भी एक तथ्य है कि जो लोग छायांकन के क्षेत्र से निर्देशन में आए उन्हें विशेष सफलता मिली क्योंकि वे कैमरे के माध्यम पर अधिकार पाए हुए लोग थे और वे जानते थे कि उससे क्या-क्या चमत्कार कर सकना संभव है। ख्यातिप्राप्त निर्देशक स्वयं विमल राय, नितिन बोस, लोकप्रिय निर्माता निर्देशक वी. शान्ताराम सभी छायांकन के क्षेत्र से निर्देशन में आए।

1.2.3 छायाकार : संगठन तथा स्थिति

फिल्म उद्योग के विभिन्न विभागों की तरह छायाकारों का भी अपना संगठन है। इसका नाम है वेस्टर्न इंडिया सिनेमेटोग्राफर्स एसोसियेशन' । यह संस्था काफी समय से काम कर रही है और अपने सदस्यों के हितों की रक्षा के लिए इसने बहुत कुछ किया है।

इस संगठन की सदस्यता चार प्रकार की है - पहले में एक्टिव मेम्बर आते हैं। ऐक्टिव मेम्बर वह छायाकार हो सकता है जिसने स्वतंत्र छायाकार के रूप में पांच वर्ष या इससे अधिक समय तक काम कर लिया हो। पांच फीचर-फिल्मों की स्वतंत्र

फोटोग्राफी कर लेने वाले छायाकार संगठन की प्रबंध समिति की राय में इसके बराबर ही महत्व का काम पूरा कर लेने वाले छायाकार को भी एक्टिव सदस्य बना लिया जाता है।

दूसरी तरह के सदस्य एसोसिएट मेम्बर कहलाते है।जिस किसी ने ऑपरेटिव कैमरामैन के रूप में एक फिल्म की फोटोग्राफी की हो, अथवा प्रबंध समिति की राय में इतने ही महत्व का कोई काम किया हो, उसे एसोसिएट मेम्बर बना लिया जाता है। तीसरे प्रकार के जूनियर मेम्बर होते हैं। इसके लिए किसी छायाकार के साथ सदस्य के सहायक के रूप में एक वर्ष तक कार्य किया होना चाहिए। योग्यता तथा अनुभव बढ़ने पर जूनियर मेम्बर एसोसिएट और एसोसिएट ऐक्टिव मेम्बर हो सकता है।

ऊपर दिये तीनों तरह के सदस्यों के लिए न्यूनतम शिक्षा मैट्रिक पास निर्धारित की गई है। लेकिन कैमरे को उठाने, रखने वाले और उनकी देखभाल करने वाले कुछ सहायक ऐसे भी होते हैं। जिनकी शिक्षा इस स्तर तक नहीं हुई हो। इस तरह के सहायकों को एसोसिएशन का एटेंडेंट सदस्य बना लिया जाता है। लेकिन उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होता।

जैसा कि हर जगह होता है, बढ़िया करने वाले को ज्यादा पैसा मांगने से कोई रोक नहीं सकता, छायाकारों पर भी यही बात लागू होती है। फिर भी इस संगठन की ओर से न्यूनतम पारिश्रमिक की दरें निर्धारित की गई हैं किसी भी निर्माता के लिए काम शुरू करने के पूर्व छायाकार अथवा सहायक छायाकार के लिए संगठन से इस आशय का पत्र ले लेना आवश्यक होता है कि छायाकारों के इस संगठन के साथ उस निर्माता का कोई विवाद नहीं चल रहा है। यदि निर्माता ने किसी छायाकार का पैसा रोक लिया हो तो उसे अगली बार कोई भी छायाकार नहीं मिल सकेगा।

1.3 विशेष प्रभाव विशेषज्ञ

फिल्म निर्माण एक अछूता सा पक्ष है विशेष प्रभाव विशेषज्ञों का। यह काम बहुत मेहनत, बहुत कल्पना और बहुत तकनीकी ज्ञान की मांग करता है। इसलिए इस ओर जाने का साहस कम ही लोग करते है। फिल्म तकनीक में जो लोग अपनी जगह बनाना चाहें और जिनमें मेहनत का माद्दा हो, वे इस क्षेत्र में आकर नाम और धन दोनों कमा सकते हैं।

विशेष प्रभाव क्या होते हैं ? इनके दो रूप हैं एक तो जिन्हें आप देखते हैं और हैरत से दांतों तले उंगली दबा लेते हैं। कुछ लोग सिर्फ चकित हो कर रह जाते हैं और

कुछ ही सोचने की कोशिश करते हैं कि यह सब कैसे फिल्माया गया होगा। दूसरा रूप वह है जिसे सब देखते हैं लेकिन उसके बारे में आम आदमी की उत्सुकता नहीं जागती। वह उसे भी फिल्म के प्रवाह का एक अंग मान लेता है। लेकिन उसका प्रभाव विशेष, महत्व का होता है।

इस दूसरे तरह के प्रभावों से बात शुरू करें । फिल्म शुरू होते ही आप परदे पर उन कलाकारों के नाम पढ़ते हैं जिन्होंने फिल्म में काम किया है। फिल्म का नाम, तकनीशियनों का नाम तथा फिल्म निर्माण से संबंधित और सभी व्यक्तियों का नाम बारी-बारी आता है। नाम प्रस्तुत करने का यह ढंग आप हर फिल्म में अलग पाएंगे। कहीं एक किताब खुल जाती है और हर पृष्ठ में एक नाम टंका रहता है। किसी जगह नाम एक तरफ से आकर दूसरी तरफ पलटते जाते हैं और कहीं बहुत से अक्षर, एक-दूसरे में उलझे हुए आकर परदे पर फैल जाते हैं और फिर स्वयं ही अपनी जगह नियत करके सही नाम बना देते हैं। इसी तरह के अनेक ढंग हो सकते हैं।

यह सब फिल्म का छायाकार नहीं करता। यह काम वे लोग करते हैं जिन्होंने विशेष प्रभाव देने में ही योग्यता बढ़ा ली है। इस काम के लिए उनके विशेष कैमरे और विशेष लैंस होते हैं। वर्षों के अनुभव के बाद इस कला पर अधिकार हो पाता है।

फिल्म आगे चलती है और एक दृश्य धीरे-धीरे धुंधला पड़ता चला जाता है। आप देखते हैं कि उसी धुधंलके में से एक और दृश्य उभरता चला आ रहा है। यह दो दृश्यों का प्रभाव छायाकार नहीं दे सकता। वह दोनों को अलग-अलग फोटोग्राफ करता है। विशेष प्रभाव उत्पन्न करने वाले ही यह सब व्यवस्था करते हैं जब अंधेरे में से एक दृश्य धीरे-धीरे उभरता जाता है उसे 'फेड इन' कहा जाता है। इस तरह धीरे-धीरे अंधेरे में डूबते दृश्य को 'फेड आउट' कहा जाता है। इस तरह के प्रयोग फिल्म के प्रवाह को नियमित बनाए रखते हैं। हम फिल्म देखते समय उनकी उपयोगिता को महसूस तो जरूर करते हैं, पर तकनीक की तरफ ध्यान नही जाता।

कुछ दृश्य ऐसे होते हैं जिनके बारे में दर्शक सोचने पर बाध्य हो जाता है। अनेक फिल्मों की कहानी में भूकंप का जिक्र होता है। मकान गिरते हैं, लोग उनके मलबे में दबते दिखाई देते हैं। जमीन में दरारें आ जाती हैं और दर्शक को यह सब स्वाभाविक भी लगता है। भूकंप का वह दृश्य कहाँ से आया। वह भूकंप प्रभाव विशेषज्ञ की देन होती है।

इसी तरह कभी मोटर दुर्घटना का जिक्र होता है तेजी से दौड़ती कार उलट कर

खड्ड में जा गिरती है और उसमें आग लग जाती है। बम के विस्फोट से मकान उड़ जाते हैं । बाढ़ मकानों को बहा ले जाती है एक नहीं अनेक उदाहरण ऐसे दिए जा सकते हैं इन सबको वास्तविक रूप में फिल्मा सकना संभव नहीं है। आठ मंजिली इमारत की छत पर लड़ते हुए नायक और खलनायक को नीचे से नहीं फिल्माया जा सकता । यह सब चीजें ऐसी है। जिनमें विशेषज्ञों की मदद लेनी पड़ती है।

अब फिल्म की कहानी अपना बंधा हुआ रूप तोड़ने लगी है। लेखन के नये प्रयोग नयी तकनीक की मांग करते हैं । दर्शक एक से एक अदभुत चीजें देखना चाहता है। उसी हिसाब से विशेष प्रभाव विशेषज्ञों का कार्यक्षेत्र बढ़ता चला जाता है।

अनेक फिल्मों की सफलता तो इस विशेष प्रभाव के चलते ही बनी है। प्रभावी विशेष प्रभाव लोगों को चमत्कृत करने में समर्थ होते हैं। अत्याधुनिक इलेक्ट्रानिक उपकरणों, कम्प्यूटर, मल्टीमीडिया के प्रयोग ने विशेष प्रभाव को अत्यन्त महत्वपूर्ण बना दिया है।

फिल्म जुरासिक पार्क, टाइटैनिक, स्पाइडर मैन, हैरी पॉटर, कोई मिल गया आदि की सफलता में उसमें प्रयुक्त विशेष प्रभावों की भूमिका को कहीं से भी कम नहीं किया जा सकता। विशेष प्रभावों के चलते ही रहस्यमयी पात्र एवं असंभव घटनाओं और परिस्थितियों को चित्रित करना फिल्म में संभव हो सका है।

1.4 मेकअप एवं मेकअप मैन

इस संसार में कोई भी एक्टर बनकर पैदा नहीं होता । इसलिए कोई भी फिल्मी कलाकार बन सकता है, यदि वह अपने में एक कलाकार की खूबियाँ पैदा कर ले।

क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में अनुभव करने और प्रकट करने की शक्ति होती है- लेकिन यह काम जितना आसान है उतना ही मुश्किल भी है। कुछ व्यक्तियों को भ्रम है कि फिल्म में खूबसूरत, गोरे रंग वाले व्यक्ति ही ज्यादातर लिए जाते हैं , किन्तु ये गलत है।

वह इसलिए क्योंकि मेकअप के आविष्कार ने इस चीज को गलत सिद्ध कर दिया है। मेकअप यानि पाउडर और रंग इस प्रकार मुख पर पेन्ट किये जाते हैं कि सुन्दर व्यक्ति असुन्दर और भद्दा सुन्दर प्रतीत होने लगता है। बूढ़ा जवान और जवान बूढ़ा नजर आता है।

रंग चाहे जैसा हो किन्तु चेहरे और शरीर की बनावट सुन्दर अच्छी होनी चाहिए। मेकअप में श्रृंगार ध्वनि और कार्यकलाप तीनों एक तरह से चलने चाहिए।

अगर किसी स्त्री का एक सुन्दर राजकुमारी का मेकअप कर दिया गया है और उसकी आवाज राजकुमारियों जैसी नहीं हैं और चलती ऐसे है जैसे घुड़दौड़ हो रही हो, तो यह रोल चौपट हो जाएगा।

जैसा चेहरे का श्रृंगार हो, वैसी ही आवाज, पोशाक और चाल-ढाल होनी चाहिए।

फिल्मी दुनिया में शूटिंग के वक्त हर एक्टर, एक्ट्रेस को लिपिस्टिक लगानी पड़ती है और दर्शक जो फिल्म में सफेद कपड़े देखते हैं, उनका रंग हल्का आसमानी या पीला होता है, आंखों की भवों पर काला पेन्ट वरना कैमरा उतारे हुए चित्र में आंख, नाक और होंठ में कोई अन्तर नहीं दिखलाई दे।

मेकअप मैन

मेकअप मैन का मुख्य कार्य होता है, कलाकार के चेहरे की त्वचा को कैमरे के अनुकूल बनाना। चेहरा सुन्दर हो, नैन-नक्श तीखे, पर त्वचा खुरदरी हो तो सारी बात बिगड़ जायेगी। कैमरे द्वारा जब फोटो लिये जाते हैं, उस समय कभी दूर से फोटो ली जाती है, कभी चेहरे के एकदम पास से।

पास के दृश्यों में जिन्हें 'क्लोजअप' कहा जाता है,त्वचा का यह खुरदरापन कभी-कभी भद्दा मालूम हो सकता है। युवतियों में ही नहीं, पुरूष कलाकारों में भी कभी-कभी इस प्रकार का खुरदरापन बुरा मालूम होता है। उसे किस प्रकार छिपाया जाये, यह मेकअप मैन जानता है।

फिल्म मेकअप की कला सीखने के लिए किसी अच्छे मेकअप मैन का सहायक बनकर काम सीखा जा सकता है। आजकल बड़े-बड़े शहरों में ब्यूटी क्लीनिक खुल गये हैं, जहाँ इस कला को थोड़ा-बहुत सीखा जा सकता है।

मेकअप ललित कलाओं में आता है, इसमें कोई भारी या शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम नहीं करना होता। सिर्फ अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता है।

1.5 वस्त्र सज्जाकार

वस्त्र सज्जा की भी फिल्मों में महत्वपूर्ण उपयोगिता है। वस्त्र सज्जाकार का कार्य फिल्म के कलाकार को इस रूप में प्रस्तुत करना होता है जिससे वह परिस्थिति के अनुकूल लगे। पात्र को यथार्थ रूप देने में वस्त्र सज्जाकार का योगदान महत्वपूर्ण होता है। कई अभिनेताओं को बेहतर लुक देने का कार्य वस्त्र सज्जाकारों ने ही किया है।

ऐतिहासिक या धार्मिक फिल्मों में तो कला निर्देशक तथा वस्त्र सज्जाकार का

कार्य ही सबसे अधिक नजर आता है। जब पात्र वास्तविक हो तब उनकी रूपसज्जा को उनकी छवि के अनुरूप बनाना पड़ता है। फिल्म गांधी में वस्त्र सज्जा के वैविध्य तथा प्रभाव को देखा जा सकता है। एडवोकेट गाँधी, राजनेता गांधी और अन्ततः महात्मा गांधी के रूप में एक ही व्यक्ति की तीन तस्वीरें प्रस्तुत करने में वस्त्र सज्जा की भूमिका महत्वपूर्ण रही।

वस्त्र सज्जाकार एक कलाकार होता है।उसकी कला में रचनात्मकता तथा संयोजन का अच्छा सम्मिश्रण होता है। उसे इतिहास तथा देशकाल, परिस्थिति की अच्छी समझ भी होनी चाहिए।

वस्त्र सज्जाकारों ने अनेक कलाकारों के आकर्षण में चार-चाँद लगाया है। अमिताभ के काले सूट, देवानन्द की काली शर्ट, ऐश्वर्या राय के कामदार वस्त्र लोकप्रियता में चार-चाँद लगाने में सहायक हुये हैं। आजकल फिल्मकार वस्त्र सज्जा पर भी विशेष ध्यान दे रहे हैं तथा मंहगे ड्रेस डिजाइनरों की सेवाएं फिल्म में परिधान व्यवस्था के लिए ली जा रही है।

1.6 केश सज्जाकार

फिल्म में पात्रों के हेयर स्टाइल की जिम्मेदारी हेयर ड्रेसर की होती है। यह भी वृहद रूप से फिल्म मेकअप का ही एक भाग है। हेयर ड्रेसर या केश सज्जाकार चेहरे की बनावट और कहानी की मांग के अनुरूप कलाकारों का केश विन्यास करता है। कई कलाकारों की लोकप्रियता में उनकी हेयर स्टाइल का भी योगदान रहा है। अमिताभ बच्चन ने जब अपनी हेयर स्टाइल बदली तो उनका लुक बेहतर हुआ और उन्हें सफलता मिली। फिल्म प्रशंसक अपने चहेते कलाकार की हेयर स्टाइल की नकल करते हैं। साधना, अमिताभ, शाहरूख खान आदि की हेयर स्टाइल पर्याप्त लोकप्रिय रही है।

कहानी की मांग के अनुरूप कभी-कभी ऐसा भी केश-विन्यास सामने आता है कि चरित्र बिल्कुल अलग दिखाई देता है। फिल्म नगीना में अमरीश पुरी, फिल्म दिल चाहता है और मंगल पाण्डेय में आमिर खान, फिल्म साजन में संजय दत्त की केश-सज्जा इसका उदाहरण है जिसमें कलाकार की मेहनत साफ नजर आती है।

1.7 उपसंहार

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि फिल्म को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करने में छायाकार, विशेष प्रभाव विशेषज्ञ, मेकअप विशेषज्ञ, वस्त्र सज्जाकार, केश सज्जाकार

सभी का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

यदि कैमरामैन खूबसूरती से दृश्यों को कैमरे में नहीं उतार पाये या उसकी फ्रेमिंग दोषपूर्ण हो जाय तो फिल्म का प्रभाव कम हो जाता है। इसी प्रकार विशेष प्रभावों का दर्शकों को चमत्कृत करने में महत्वपूर्ण योगदान होता है। जैसा कि माना जाता है कि फिल्म देखना एक वशीभूत करने वाली प्रक्रिया है जिसमें विशेष प्रभाव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इसी प्रकार मेकअप, वस्त्र सज्जा, केश-सज्जा का भी फिल्म की अनुकूलता और सौन्दर्य में योगदान होता है। फिल्म निर्माण एक टीमवर्क है। निर्देशक की टीम में छायाकार, विशेष प्रभाव विशेषज्ञ, वस्त्र सज्जाकार, मेकअप मैन और केश-सज्जाकार भी अनिवार्य हिस्सा होते हैं।

1.8 परिभाषिक शब्दावली

(1) बीटाकैम कैमरा -आधुनिक किस्म का वीडियो कैमरा जिसमें अत्याधुनिक चित्रांकन की सुविधा है। इसके परिणाम अत्यन्त स्तरीय और श्रेष्ठ होते हैं। इस कैमरे में कैसेट भी कैमरे के भीतर ही लग जाते हैं और यह कैमरा कम से कम प्रकाश में भी काम कर लेता है।

(2) बिग क्लोजअप - किसी चेहरे या वस्तु का अत्यन्त नजदीक से लिया गया शॉट जैसे चेहरे की आँख, होंठ आदि ।

(3) कैप्चरिंग - डी वी कैमरा से शूट किया हुआ वीडियो कम्प्यूटर में डाउनलोड किया जाता है तो उसे कैप्चरिंग कहते हैं।

(4) एक्स्ट्रीम लांग शॉट - अत्यन्त विस्तार लिए एक दृश्य जिसमें व्यापक फलक और दूर तक के ऑब्जेक्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

(5) लाँग शाट - एक्स्ट्रीम से थोड़ा पास का शॉट, पर इसमें भी वही आब्जेक्ट शामिल होते हैं।

(6) मिड लाँग शॉट - इसमें व्यक्ति के घुटनों के ऊपर की लंबाई कवर की जाती है जिससे उसके भाव भी पढ़े जा सकें।

(7) मीडियम शॉट - इसमें व्यक्ति के कमर के ऊपर का हिस्सा सिर तक लिया जाता है।

(8) क्लोजअप शॉट - व्यक्ति के कंधे के ऊपर का भाग - चेहरा लिया जाता है।

(9) एक्स्ट्रीम क्लोजअप - बिग क्लोजअप को एक्स्ट्रीम क्लोजअप भी कहते हैं।

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

(1) अरूणा वासुदेव - द न्यू इण्डियन सिनेमा

(2) गैस्टॉन राबर्ज - द सब्जेक्ट ऑफ सिनेमा

(3) बी. डी. गर्ग - सो मैनी सिनेमाज, द मोशन पिक्चर इन इण्डिया

1.10 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. फिल्म निर्माण में छायांकन की भूमिका पर चर्चा करें ।
2. विशेष प्रभाव विशेषज्ञ भी फिल्म की सफलता में योगदान देता है, स्पष्ट करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. केश सज्जाकार के कार्य बताइये।
2. ऑपरेटिव कैमरामैन का दायित्व बताएं।
3. मेकअप मैन की क्या भूमिका होती है?
4. वस्त्र सज्जाकार के क्या दायित्व हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. भानु अथैया ने वस्त्र सज्जा की -

   (क) मुगले आजम (ख) गाँधी

   (ग) सांवरिया (घ) कोई मिल गया।

2. एक्स्ट्रीम क्लोजअप शॉट में दृष्टिगोचर होता है -

   (क) केवल चेहरा (ख) केवल आँख, होंठ

   (ग) पूरा शरीर (घ) इनमें से कोई नहीं।

3. बीटाकैम है -

   (क) विशेष प्रभाव उपकरण (ख) मूवी कैमरा

   (ग) रिकार्डिंग इंस्ट्रूमेन्ट (घ) इनमे से कोई नहीं।

4. सिनेमैटोग्राफी शब्द का प्रयोग होता है -

(क) फिल्म निर्देशन हेतु (ख) फिल्म निर्माण हेतु

(ग) अभिनय प्रशिक्षण हेतु (घ) फिल्म छायांकन हेतु

5. विशेष प्रभाव का अप्रतिम उदाहरण है -

(क) जुरासिक पार्क (ख) गांधी

(ग) गॉड फादर (घ) दीवार

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

1. ख

2. ख

3. ख

4. घ

5. क

इकाई -2 फिल्म तकनीकी - ॥

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 फोटोग्राफी

2.3 त्रिआयामी चित्रण

2.3.1 तीसरे आयाम का तकनीकी रहस्य

2.4 त्रिआयामी कैमरा

2.5 मूवी कैमरा

2.6 डिजिटल तकनीक

2.7 एनीमेशन

2.8 उपसंहार

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

2.11 प्रश्न

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(1) सेल्युलाइड क्या है तथा उसका आकर्षण ।

(2) मूवी फिल्म में फोटोग्राफी का प्रयोग ।

(3) त्रिआयाम की फिल्म में उपस्थिति और उसका रहस्य ।

(4) छायांकन हेतु प्रयुक्त कैमरा, एनीमेशन तकनीक, डिजिटल तकनीक।

(5) तकनीकी पक्षों का सिने निर्माण में योगदान ।

2.1 प्रस्तावना

सिनेमा एक चमत्कारी विधा है। यह कैमरे का चमत्कार है। संभव, असंभव सब कुछ विशाल सेल्युलाइड स्क्रीन पर दर्शक देखता है और अचंभित होकर तालियाँ बजाता है। उसके तर्कों पर आकर्षण इस कदर हावी होता है कि उसे कुछ भी सोचने का मौका नहीं मिलता।

कैमरे का चमत्कार फिल्म की जान होता है। कैमरा दर्शक के लिए खूबसूरती भय, स्नेह, रोमांस सब कुछ प्रस्तुत करता है। विशालकाय सिल्वर स्क्रीन का कोई कोना कैमरे की नजरों से अछूता नहीं होता ।

तकनीकी विकास ने फिल्म को और भी समृद्ध किया है। यह शुरूआत थ्री डी या त्रिआयामी चित्रण से हुई थी। इसके बाद आज का जमाना डिजिटल तकनीक और एनीमेशन का है। साफ-साफ बोलती हुई वैविध्यपूर्ण तस्वीरें और असंभव चमत्कारों को आँखों के सामने उपस्थित करते एनीमेशन के चमत्कार । इक्कीसवीं सदी का सिनेमा एकदम नयी भाषा और ताजगी से लबरेज है।

आज का सिनेमा अपनी तकनीकी श्रेष्ठता के चलते गांव देहात के सिनेमा हालों से लेकर महानगरों के मल्टीप्लेक्स तक लोगों का मनोरंजन कर रहा है।

सेल्युलाइड फिल्म -

फिल्म की चौड़ाई सवा इन्च होती है। फिल्म के दोनों ओर चौकोर सूराख होते हैं, जो प्रोजेक्टर की गरारियों में फंस जाते हैं - जिससे फिल्म फिसलती नहीं है। कलाकार के एक सेकण्ड का अभिनय बारह के करीब 'फोटो-फ्रेमों' में चित्रित होता है।

2.2 फोटोग्राफी

फिल्मी फोटोग्राफी के हुनर में भी फरीदून ईरानी, द्वारका दिवेचा, जी. सिंह ने काफी ख्याति प्राप्त की है। इससे पहले हरदीप बहुत मशहूर फोटोग्राफर माना जाता था।

फोटोग्राफी में कलाकार को भव्य, उद्दीपन की चरम सीमा, समाप्ति दिखाने के दो ढंग है -

1. जब दर्शक किसी चीज की बड़ी तस्वीर देखते हैं और फिर वह धीरे-धीरे कैमरा हटाने की वजह से छोटी से छोटी होती जाती है।

2. धुंधली सी तस्वीर से कैमरा आगे बढ़ते रहने के कारण पूरा बड़ा चित्र सामने आ जाता है। बड़े चित्र के रूप में भावनाओं का चर्मोत्कर्ष दिखाया जाता है।

एक ही कलाकार का डबल रोल दिखाने के लिए कैमरा ट्रिक से लिया जाता है। जैसे फिल्म 'उस्ताद' में अशोक कुमार को एक ही साथ पिता व पुत्र के डबल रोल में दिखाया गया था और आमने-सामने बातें करते हुए भी।

इसके लिए ऐसा होता है कि कैमरे के लेंस का आधा भाग ढक लिया जाता है और एक पोशाक में एक पिता के रूप में एक कलाकार का चित्र डायलाग बोलते हुये उतार लिया जाता है।

लेकिन उस कलाकार के सामने दूसरे कलाकार के सामने न होने पर भी डायलाग इस प्रकार बोलने पड़ते हैं जैसे अपने सामने वाले व्यक्ति को वह सम्बोधित कर रहा हो। फिर पिता के रोल में अभिनय समाप्त होने के बाद कैमरे में फिल्म को लौटा लिया जाता है और वही पहले वाला कलाकार पुत्र की पोशाक पहन कर पिता को सम्बोधित करता हुआ अभिनय करता है।

और जब पिता-पुत्र दोनों का अभिनय पूरा हो जाता है तो रील को दो भागों में काटकर अलग कर लिया जाता है और फिर एक ही हिस्से को उलट कर एक ही कलाकार के अभिनय को इस तरह जोड़ा जाता है कि एक ही कलाकार दो विभिन्न भूमिकाओं में एक साथ एक ही स्थान पर दिखाई देता है।

दर्शक देखते हैं कि स्टंट फिल्मों में प्रायः हीरो-हीरोइनों को बड़े ऊंचे-ऊंचे महलों और मीनारों पर से कूदते हुये दिखाते हैं। वो कैमरा ट्रिक होती है। पहले कूदने के लिये तैयार अभिनेता का चित्र ऊपर से ले लेते हैं और कोई भी उसकी शक्ल का बना हुआ पुतला ऊपर से गिराकर ऊपर से नीचे कूदने वाले असली अभिनेता को पड़े हुये दिखा दिया जाता है।

देखने वाले यही समझते है कि वह इतनी ऊंचाई से नीचे कूदा है । छोटी चीज को बड़ा व बड़ी चीज को छोटा, नकली को असली और असली को नकली दिखाना भी कैमरामैन की फोटोग्राफी ट्रिक्स का कमाल है।

2.3 त्रिआयामी फिल्म

मिठाई की एक बड़ी प्लेट परदे से निकलकर आपकी तरफ बढ़ने लगती है।

आपकी इच्छा होती है कि हाथ बढ़ाकर प्लेट ले लें, लेकिन अफसोस हाथ कुछ नहीं आता।

इसी प्रकार आग की लपटें परदे पर शुरू होकर सीधे आपकी आँखों का निशाना साधती है। फिर एक त्रिशूल या तलवार परदे से निकलकर सीधा आपके सीने की तरफ बढ़ने लगता है। आप एकबारगी सिहर उठते हैं।

अचानक एक खोपड़ी सिनेमा के परदे से निकलकर हाल में तैरती हुई आपकी तरफ आती है। आप सहम जाते हैं, और फिर थोड़ी हिम्मत बटोर कर उस हंसती हुई खोपड़ी को छूने की कोशिश करते हैं।

कांच की एक गोली आपकी तरफ लपकती है, आपको लगता है कि आपकी आंख में आकर वह लग जायेगी और आप अपनी सीट से हट जाते हैं।

ये दृश्य दर्शकों को एक नयी दुनिया में ले जाते हैं, तथा एक अजीब सा अहसास कराते हैं, और स्वप्न जीवियों की खातिर फंटासी का जाल भी फेंकती है। यह दुनिया है 'थ्री-डायमेंशनल' (थ्री-डी) यानि तीन आयामों वाली फिल्मों की दुनिया।

आमतौर पर जो फिल्में हम देखते हैं वे दो आयामों वाली होती है, यानि उनमें लम्बाई और चौड़ाई तो होती है, लेकिन गहराई नहीं होती। इससे सामने और पीछे की वस्तुओं के बीच की दूरी का पता नहीं चलता। यानि यदि दो कलाकार आपस में बात कर रहे हैं, तो हम नहीं बता पाते कि वे एक-दूसरे से दो फीट की दूरी पर हैं या दस फीट की दूरी पर।

यही है तीसरा आयाम जो थ्री डी फिल्मों में जुड़ गया है। इससे हर दृश्य यों लगता है जैसे हम चित्र नहीं देख रहे हैं, बल्कि उस दृश्य से सचमुच रूबरू हैं।

एम.सी.पुन्नूस उर्फ अप्पाचन, देश की पहली थ्री-डी फिल्म 'माई डियर कुट्टिचेतन' (मलयालम) के निर्माता हैं। उनके बेटे जिजो के निर्देशन में बनी यह फिल्म हिन्दी में डब करके 'छोटा चेतन' के नाम से प्रदर्शित की गई। परन्तु देश की पहली हिन्दी फिल्म निःसन्देह 'शिवा का इन्साफ' है जिसके निर्माता रोमू सिप्पी हैं।

रोमू सिप्पी ने जहाँ एरीविजन थ्री-डी कैमरे का प्रयोग किया वहीं अप्पाचन ने तकनीकी प्रणालियों में से स्टीरियो विजन को चुना। थ्री-डी फिल्म के लिए कुछ विशेष उपकरणों की आवश्यकता होती है। कैमरे का थ्री-डी लेंस, थियेटरों में प्रोजेक्शन के लिये थ्री डी लेन्स, साधारण परदे के स्थान पर सिल्वर स्क्रीन और दर्शकों की आंखों पर

लगाने के लिए पोलराइजिंग ग्लासेज।

थ्री-डी लेन्स के अलावा थ्री-डी फिल्म दिखाने के लिए सिल्वर स्क्रीन बहुत आवश्यक है। थ्री-डी के लिये आवश्यक है कि प्रकाश परदे से परावर्तित होकर दर्शकों की तरफ आये। आम सफेद परदों से यह सम्भव नहीं है। सिल्वर स्क्रीन पर फिल्म दिखाने के लिये कम रोशनी की जरूरत होती है जिससे बिजली की काफी बचत होती है। फिल्म देखने के लिए जो चश्मा आंखों पर लगाया जाता है, उसमें पोलराइजिंग जिलेटिन फिल्म का प्रयोग किया जाता है।

थ्री-डी फिल्म बनाने के लिए आला दरजे का तकनीकी कौशल चाहिए, साथ ही सेट्स की बारीकियों और गिमिक्स की जरूरतों की समझ होनी चाहिए। थ्री-डी की पहली जरूरत है, दृश्य में गहराई का प्रभाव । जब तक आप हर दृश्य में सामने के भाग में कोई वस्तु या व्यक्ति नहीं रखेंगे, पीछे के भाग की दूरी का आभास नहीं पा सकेंगे। इसलिये पटकथा थ्री-डी को ध्यान में रखकर लिखी जाती है। फिल्म के लिए सैट को बनाने में भी बहुत सतर्कता बरती जाती है। रूटीन रोशनी से काम नहीं चलता। सही कोणों पर पर्याप्त रोशनी पड़े, इसके लिये नयी व्यवस्था करनी पड़ती है। पृष्ठभूमि के रंगों पर भी बराबर ध्यान देना होता है तथा टेक लेते समय निर्देशक और कैमरामैन को बराबर जागरूक रहना पड़ता है। बीच-बीच में रशेज देखकर यह पक्का करना पड़ता है कि फिल्मांकन थ्री-डी में हो रहा है या नहीं। इसलिए थ्री-डी बनाने में साधारण (टू डी) फिल्म की अपेक्षा बहुत ज्यादा वक्त लगता है और खर्चा भी दो गुना हो जाता है।

2.3.1 तीसरे आयाम का तकनीकी रहस्य

किसी थियेटर में बैठकर थ्री-डी देखते हुए हम सोच में पड़ जाते हैं- यह तो सचमुच यों लग रहा है जैसे हमारे सामने ही सब कुछ हो रहा है। जैसे हम खुद घटना स्थल पर मौजूद हैं।

क्यों होता है हमें यह अनुभव?

क्या है इस फिल्मी करिश्मे का रहस्य ?

इसे कहते हैं स्टीरियोस्कोपिक सिनेमेटोग्राफी। स्टीरियोस्कोपिक सिनेमेटोग्राफी से रफ्तार से भागती हुई ऐसी तस्वीरें दिखाई जा सकती हैं जिनमें दो आंखों वाले हम सब लोग गहराई का आभास पा सकते हैं और चित्रों की दुनिया जीती-जागती लगने लगती है।

वैसे तो सभी फिल्में या स्थिर चित्र गहराई का थोड़ा आभास देते हैं। एक आंख से देखने पर भी गहराई के कुछ संकेत मिलते ही हैं, जैसे कि पास की चीजें साफ, दूर की धुंधली नजर आती हैं। पृष्ठभूमि की स्थिर वस्तुओं के सामने से किसी वस्तु का चलना तथा दीवार और सड़क का फर्क भी गहराई के इस आभास का उदाहरण है।

इन संकेतों के आधार पर हम आमतौर पर तीसरे आयाम का अन्दाज लगाते है।। वैसे यह सिर्फ एक आभास होता है, क्योंकि चित्र तो चपटा हो जाता है, लेकिन स्टीरियो फिल्म या थ्री-डी में दो आंखों से देखने पर एक ऐसा बिम्ब तैयार होता है, जिसकी गहराई सचमुच मापी जा सकती है, हालांकि इसका कोई अस्तित्व नहीं होता और प्रत्येक दर्शक के लिए इसकी स्थिति अलग होती है।

हमारे सिर में ढाई इंच की दूरी पर स्थित दोनों आंखें किसी किसी वस्तु को थोड़ी अलग-अलग स्थितियों से देखती हैं और रेटिना पर वस्तु के अलग-अलग रूप प्रतिबिम्बित होते हैं।जैसे-जैसे वस्तु आंखों से दूर होती जाती है इन दृश्यों का भेद कम होते-होते समाप्त हो जाता है।

एक सीमा तक अलग-अलग कोणों से किसी वस्तु को देख सकने की हमारी आंखों की क्षमता के कारण ही हमें तीनों आयामों का आभास हो पाता है। थ्री-डी सिनेमेटोग्राफी में इसी क्षमता का उपयोग किया जाता है।

तीनों आयामों को हूबहू रेकार्ड करके इच्छानुसार देखने की विधियां हैं, 'होलोग्राफी' और 'स्टीरियोस्कोपी' । होलोग्राफी में दृश्य लहरियों को फिल्म पर संग्रह करके ठीक हालत में छोड़ा जाता है, जिससे कि तीन आयामों का आभास होता है। फिलहाल होलोग्राफी पर खूब प्रयोग चल रहा है, पर अब तक फिल्म या टेलिविजन में इसका उपयोग नहीं हो सका है। हालांकि इस तरीके में बड़ी सम्भावनायें हैं, क्योंकि बिना किसी खास परदे के ये फिल्में दिखायी जा सकती हैं और खास चश्में से देखी जा सकती हैं।

स्टीरियोस्कोपी में एक लेन्स और फिल्म प्रणाली के जरिये बायीं और दायीं आंख वाले बिम्बों को एक ही फिल्म स्ट्रिप पर अलग-अलग रेकार्ड किया जाता है और चित्रों के इस अलगाव को दर्शकों की आंखों तक ले जाना होता है। परदे पर दो तस्वीरें एक के ऊपर एक प्रोजेक्ट की जाती है और हाल में दर्शक चाहे जहां बैठा हो, उसकी बायी आंख को केवल दायी आंख वाला चित्र ही दिखाई देता है।

बिम्बों का अलगाव या तो आंखों पर किया जा सकता है या फिर परदे पर। यदि आंखों पर कार्य करना है तो जितने दर्शक हों, उतने अलगाव-उपस्कर चाहिए और यदि परदे पर काम करना है तो एक से काम चल सकता है। इसलिए परदे पर अलगाव ज्यादा फायदेमन्द है, लेकिन तकनीकी समस्याओं के कारण अब तक इसका विकास नहीं हो सका है।

आंखों पर अलगाव वाले उपस्कर की सबसे पहले पेशकश की थी 1958 में डी. अलमीडा ने। प्रत्येक दर्शक को एक-एक चश्मा दिये जाने का प्रस्ताव था, जिसमें एक गोल घूमने वाला या दायें-बायें हिलने वाला शटर होता था, ताकि बारा-बारी से बांयी और दायीं आंख को ढका जा सके। इन चश्मों की गति का प्रोजेक्टर की गति से ताल-मेल बैठाना होता था, जो कि एक के बाद एक बायीं और दायीं आंख ही तस्वीरें प्रोजेक्ट करते थे। इस प्रणाली में शोर शराबा और दूसरी मुश्किलें तो थीं ही, बिजली के झटकों का अंदेशा था, सो इस पर आगे काम नहीं हुआ।

बाद में 1911 में एनाग्लिक पद्धति का सुझाव दिया डुक्रास डु हॉरॉन ने। इसमें दोहरे बिम्बों को पूरक रंगों में फिल्म पर छाप कर, उन्हीं पूरक रंगों वाले फिल्टरों (चश्में) से देखा जा सकता था। अगर फिल्म पर बायी आंख वाला बिम्ब नील-हरे रंग में है और दायीं आंख वाला बिम्ब लाल रंग में, तो दर्शक की बायीं आंख लाल फिल्टर के माध्यम से, केवल नीला-हरा बिम्ब देखती है। क्योंकि लाल फिल्टर लाल रंग को सोख लेता है यह प्रणाली सस्ती थी लेकिन उसमें कुछ खामियाँ थीं। एक तो यह कि इससे केवल श्वेत-श्याम (ब्लैक एण्ड व्हाइट) फिल्में देखी जा सकती थी। क्योंकि बिम्ब अलगाव के लिए रंगों का उपयोग किया जाता था। दूसरे श्वेत-श्याम फिल्में भी साफ नहीं देखी जा सकती थीं। तीसरे उम्दा रंगों के इस्तेमाल के बावजूद चश्मे में आवश्यक रंग पूरी तरह से सोखे नही ंजा सकते थे। जिसके कारण चित्र के पीछे छाया नजर आती थी। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि चूंकि आंखें किसी बिम्ब को अलग-अलग रंगों में देखती थीं, इसलिए 'रेटिना द्वन्द' पैदा हो जाता था, जिसे कुछ ही मिनट देखने के बाद भारी सिरदर्द और कुछ लोगों को उल्टी की शिकायत होती थी।

पोलराइज्ड या ध्रुवीकृत प्रोजेक्शन से ये सारी खामियाँ काफी हद तक दूर हो जाती हैं। वैसे अनचाहे बिम्ब को पूरी तरह गायब कर देने में अभी पूरी सफलता नहीं मिल पायी है। इस सिद्धान्त को 1811 में ऐडरटन ने इंग्लैंण्ड में पेटेन्ट किया था,

लेकिन पैंतालीस वर्षों बाद ही इसका व्यावसायिक उपयोग हो सका, जब अमेरिका में ई. एच. लैण्ड ने पोलरॉयड का आविष्कार किया। पोलरायड एक प्लास्टिक पोलराइजिंग शीट पदार्थ है, जो काफी सस्ता होता है। फिल्म पर बायीं आंख वाले बिम्ब को ध्रुवीकृत करके परदे पर प्रोजेक्ट किया जाता है।

जब इस बिम्ब को धातुई परदे (जो कि इसे डीपोलराइज किये बिना परावर्तित करता है) पर प्रोजेक्ट किया जाता है, तो दर्शक अपनी आंखों पर लगे पोलराइजिंग चश्मे के बायीं आंख वाले भाग से यह फिल्म देख सकता है।

इसी प्रकार दायीं आंख अपना निर्धारित बिम्ब देखती है। बाद में लैंड और माहलर ने मिलकर वेक्टोग्राफ नामक तकनीकी विकसित की, जिसमें फिल्म पर दो स्वतः ध्रुवीकृत बिम्बों को छापना सम्भव हो सका। पचास के दशक में पोलरायड कारपोरेशन ने सिनेमा के लिए वेक्टोग्राफ का इस्तेमाल शुरू किया, लेकिन यह व्यवासायिक रूप नहीं पा सका।

2.4 त्रिआयामी कैमरा

फिल्म देखने के लिए किसी भी प्रकार का चश्मा लगाना मुश्किलें लाता है, इससे छूत की बीमारी के फैलने का भी डर बना रहता है। इसलिए वैज्ञानिक कोई तरीका ढूंढने में लगे हुए हैं कि बायीं आंख के बिम्बों का अलगाव परदे पर किया जा सके।

अमेरिका में आइब्ज और इंग्लैण्ड में गैंबर के अलावा इस दिशा में सारा कार्य सोवियत संघ में ही हुआ है। इन्टीग्रल स्क्रीन या रैस्टर नामक इस परदे पर दो स्टीरियो बिम्ब बनते है और उसी समय अलग-अलग दर्शक की आंखों तक पहुँचते हैं।

परदे की पेंदी पर एक काल्पनिक केन्द्र से खड़ी पट्टियां पंखे के रूप में ऊपर तक फैलती है। प्रोजेक्ट से बायीं और दायीं आंखों वाले बिम्ब इन पट्टियों से मेल खाने वाली दूरी पर प्रोजेक्ट किये जाते है। बायीं आंख के देखने के लिए ये पट्टियाँ दायीं आंख वाले बिम्ब को ढक देती हैं और दायीं आंख के लिए बायीं आंख वाले बिम्ब को।

इस प्रकार दर्शक को थ्री-डी प्रभाव दिखाई देता है, लेकिन इस व्यवस्था में सभी दर्शकों के लिये एक जैसे बिम्ब दिखाना सम्भव नहीं है।इसलिए इसका व्यावसायिक उपयोग नहीं हुआ है।

परदा तो महत्वपूर्ण है ही, लेकिन उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कैमरा। फिल्मों

के लिये थ्री-डी कैमरा बनाना काफी मुश्किल काम था। ऐसी तस्वीरें खींचना, जिनको एक बड़े परदे पर थ्री-डी में दिखाना हो, बड़ा पेचीदा काम था। जब दर्शक बहुत दूर की वस्तुएं (जिन्हें अनन्त वस्तुयें कहा है) देखता है, तो उसकी आंखों के दृश्य अक्ष समान्तर होते हैं।

सिनेमा में इस स्थिति को रूपान्तरित करने के लिए जरूरी है कि अनन्त वस्तु का प्रतिनिधित्व करने वाले बायें और दायें परदा बिन्दु, आंखों की दूरी, यानि ढाई इन्च की दूरी पर हों। अब आप कल्पना कीजिए कि बायीं और दायी आंख वाले बिम्ब बराबर समंजित हैं तो यह बिन्दु भी बराबर मिल सकेंगें।

यह भी कल्पना कीजिए कि एक 35 मिलीमीटर फिल्म 35 फीट चौड़े परदे पर दिखाई जा रही है। अब यदि कैमरे से 12 फीट की दूरी पर की वस्तु और बहुत दूर की वस्तु दोनों को एक साथ परदे पर देखना हो तो दोनों के बिन्दु परदे पर 16 इन्च की दूरी पर केन्द्रित होंगे और दायीं आंख, बायें बिन्दु पर। ऐसा लगेगा, मानो वह वस्तु सिनेमा हाल में आ गयी है और आंखों की आपसी दूरी छह गुना अधिक दूरी होने पर वस्तु पांच गुना करीब आ जायेगी।

यानि अगर दर्शक परदे से 60 फीट की दूरी पर बैठा है, तो उसकी आंखों पर दस फीट की दूरी पर मिल जायेगी। हालांकि वे साठ फीट दूर से परदे पर ही केन्द्रित होंगी। आंखों के फोकस और मिलन स्थल के बीच इतने अधिक फर्क में आंखों पर असहनीय दबाव पड़ता है। इसका इलाज है कैमरे में बायें और दायें लेन्स के बीच ढाई इंच से कम दूरी रखना। व्यावसायिक थ्री डी कैमरा में इस बात का पूरा ख्याल रखा जाता है।

इस प्रकार का पहला कैमरा बनाया जे.ए. नालिग ने। इस कैमरे से बनायी गई पहली थ्री डी फिल्म न्यूयार्क विश्व मेला 1939 में एक विशाल दर्शक वर्ग को दिखाई गई थी। इसमें डेढ़ इन्च की दूरी वाली दो 35 मिलीमीटर फिल्में इस्तेमाल की गई थी।

धीरे-धीरे तकनीकी विकसित होती गयी, दो कैमरों, दो फिल्मों, दो प्रोजेक्टरों वाला जमाना लद गया और एक ही फिल्म, एक ही कैमरे और एक ही प्रोजेक्टर का जमाना आ गया। 1966 में राबर्ट बर्नियन ने एक थ्री-डी पोलराइजिंग प्रणाली बनायी जिसमें दो फिल्मों के बजाय एक ही फिल्म का उपयोग होने लगा।

'स्पेसविजन' नामक इस प्रणाली में 35 मिलीमीटर के पिक्चर फ्रेम को दो आड़े

भागों में बांटा जाता है। और दोनों बिम्बों के बीच थोड़ी जगह छोड़ी जाती है। इस आधुनिक कैमरे में दो लेन्स एक बगल में एक आड़े रखे जाते है।दृश्य का प्रकाश इनमें से पार होकर एक दर्पण पर पड़ता है जो इसे मुख्य कैमरा लेन्स पर परिवर्तित करता है। दोनों बिम्ब एक के ऊपर एक पड़ते हैं और प्रत्येक 4+6 मिलीमीटर फ्रेम में ये दोनों बिम्ब छपते हैं। और जब इनको परदे पर प्रोजेक्ट किया जाता है, तो दोनों बिम्ब एक के ऊपर एक उभरते हैं और पोलराइजिंग चश्में से देखने पर थ्री-डी का प्रभाव दिखाई देता है।

साधारण चपटी फिल्म में स्थान को प्रतिबिम्बित नहीं किया जाता। तीसरा आयाम दर्शक की कल्पना पर छोड़ दिया जाता है। और अन्य दृष्टि की मान्य परम्परा के आधार पर चपटी फिल्मों, चपटे छायाचित्रों और कलाकृतियों को जीवित और वास्तविक समझा जाता है।

फिल्म जितनी अच्छी और साफ होती है, उसकी गहराई की उतनी ही अच्छी और साफ होती है, उसकी गहराई की उतनी ही अच्छी कल्पना की जा सकती है। यदि फिल्म में नायिका के चेहरे का बड़ा क्लोजअप दिखाने के तुरन्त बाद बाग में नायक के साथ नाचते हुये उसके दूर से छोटे चित्र दिखाये जायें तो भी दर्शक को अजब नहीं लगता।

लेकिन थ्री-डी में ? यदि हीरोइन के चेहरे का बड़ा क्लोजअप दिखाना हो तो आवश्यक है कि वह परदे से निकल कर दर्शकों के करीब हाल में आये। इस चेहरे को देखने के लिए भले ही आंखों में दर्द क्यों न हो जाये।

अब यदि फिल्म में निरन्तरता बनाये रखने के लिए लांग शॉट दिखाते समय इस चेहरे को कन्वर्जेस प्रणाली की मदद से परदे पर वापस भेज दिया जाये तो भी दर्शक के मन में हीरोइन का वह विशालकाय चेहरा बना रहेगा। इस प्रकार कन्वर्जेन्स के उपयोग से साधारण रैखिक स्थान, अरैखिक स्टीरियोस्कोपिक स्थान में बदल दिया जाता है। मसलन, यदि एक नर्तकी मध्यम क्लोजअप में नृत्य कर रही है तो, जब उसके हाथ कैमरे की तरफ आते हैं, वे चार गुना, लम्बे दिखाई देते हैं और जैसे ही वह मुड़ती है, सामान्य हो जाते हैं। इस प्रभाव को कम तो किया जा सकता है परन्तु खत्म नहीं किया जा सकता।

यही हाल तब होता है जब परदे के सामने वाले स्थान पर बिम्बों को उभारने की कोशिश की जाती है । यदि पेड़-पौधों और चलते हुए लोगों को जमीन के साथ परदे

के बाहर लाने की कोशिश की जाये, तो मुसीबत हो जी जाती है।

क्योंकि लगता है कि पेड़ और लोग हवा में खड़े हैं, जमीन पर नहीं। इसका एक ही हल है कि परदे के सामने हाल में थोड़ी दूरी पर एक काल्पनिक स्टीरियो खिड़की बनायी जाये। यह दर्शक और असली परदे के लगभग बीच में बनायी जा सकती है। जहाँ ऐसी जमीन से जुड़ी वस्तुयें प्रदर्शित की जा सकती हैं।

थ्री-डी की कुछ खामियाँ ही फिल्मकारों को गिमिक्स दिखाने का मौका दे रही हैं। सिनेमा हाल में लटकता हुआ पेड़ या सबको छूने की कोशिश करती हाथी की सूंड़ हर दर्शक के बिल्कुल करीब आती नर्तकी या सीधे आंखों का निशाना साधते कागज के विमान। थ्री-डी ने फिल्मकारों को गहराई के तीसरे आयाम के साथ-साथ रहस्य का चौथा आयाम भी दिया है।

साधारण दो आयाम वाली फिल्मों में गहराई का आभास इस बात से मिलता है कि जो वस्तु कैमरे से जितनी दूर होती है, वह उतनी ही छोटी दिखायी देती है। थ्री-डी में मनुष्य की दृष्टि के वास्तविक प्रतिरूपण से गहराई का प्रभाव मिलता है।

बायीं और दायीं आंख ही वस्तु के दो अलग-अलग रूप देखती है और दायीं आंख, दायां भाग दोनों दृष्टियों के मिलने से तीसरे यानि गहराई वाले आयाम का आभास होता है। थ्री-डी कैमरा एक ही वस्तु के ऐसे ही बायें और दायें भाग वाले चित्र लेता है जो एक साथ परदे पर प्रोजेक्ट किये जाते हैं।

पोलराइजिंग चश्मे लगाकर देखने पर हमारी बायीं आंख, बायां और दायीं आंख, दायां भाग देखती है और दोनों दृष्टियां मिलकर गहराई का आभास कराती हैं।

पोलराइज्ड फिल्म प्रोजेक्शन

दो प्रोजेक्टर 1 तथा 2 बायीं और दायीं आंख के दृश्य प्रदर्शित करते हैं। इसमें खड़े और आड़े पोलराइज्ड प्रकाश को सिल्वर स्क्रीन नष्ट किये बिना परावर्तित करता है।

इसलिए ध्रुवीकृत फिल्म वाले चश्मे से देखने पर बायीं और दायीं आंख के दृश्य सही आंख के द्वारा ही देखे जा सकते है। नई प्रणाली में केवल एक ही प्रोजेक्टर दोनों दृश्य प्रदर्शित करता है।

थ्री डी की सीमायें

दर्शक और परदे के बीच स्टीरियो खिड़की के न बनने से हाथी के सामने की रेलिंग सही स्थान पर दिखाई नहीं देगी, क्योंकि वह सिनेमा हाल के अन्दर खड़ी दिखाई

देगी। सिर्फ हाथी की सूंड जैसी सामने उभरने वाली वस्तुयें या हवा में उड़ने-वाली वस्तुयें ही सचमुच हाल में सच्चाई का वातावरण बना सकती है। स्टीरियो खिड़की के उपयोग से परदे के सामने का प्रदर्शन उपयोगी भाग बढ़ जाता है इसके कारण परदा छोटा लगने लगता है लगभग खिड़की जितना ही।

2.5 मूवी कैमरा

एक मूवी कैमरे में नई फिल्म को एक स्पूल से गेट में भेजा जाता है। एक गोल घूमने वाला शटर लेंस के जरिये आने वाले प्रकाश को नियंत्रित करता है।

यह साधारण कैमरों की तरह ही उल्टा बिम्ब बनाता है। जब शटर बन्द होता है तब एक क्लॉ प्रणाली नपे-तुले रूप में फिल्म को गेट में से आगे बढ़ाती हैं। इन कदमों के बीच-बीच में फिल्म स्थायी रहती है। और शटर खुलता और बन्द होता है।

इस प्रकार दृश्य एक के बाद एक लिए गये चित्रों की एक श्रृंखला के रूप में छायांकित होता है। रिफ्लेक्स व्यूफाइंडर में एक दर्पण शटर का इस्तेमाल होता है। जब शटर बन्द होता है तो कैमरा लेंस से दृश्य का बिम्ब उनके दर्पण से परावर्तित होकर व्यूफाइन्डर में जाता है। इसलिए छायाकार (कैमरामैन) को वही कुछ दिखाई देता रहता है जो लेन्स देखता है।

थ्री डी कैमरे में थ्री डी लेंस लगाने होते हैं और साधारण कैमरे में ये लेन्स लगाने के लिए कुछ परिवर्तन करके थ्री डी कैमरे का निर्माण किया जा सकता है। आज फिल्मांकन के लिए अत्याधुनिक कैमरे प्रयुक्त किये जा रहे हैं लेकिन आरम्भ में कैमरा संचालन अत्यन्त दुरूह हुआ करता था। शुरूआती कैमरे बहुत आवाज करते थे। इसे रोकने के लिए ब्लिम्ज्ड कैमरों का प्रयोग शुरू हुआ। इन कैमरों में फिल्म, मैगजीन तथा मोटर वाले हिस्से को एक कपड़े से ढक दिया जाता था। कम्बलनुमा या रेडीमेड कवर को बर्नी कहा जाता है। आजकल मल्टीचिप कैमरा भी इस्तेमाल किये जा रहे हैं। यह कैमरा रेड,ब्लू तथा ग्रीन इमेजिंग में सक्षम होते हैं तथा डिजिटल तकनीक पर आधारित होते हैं । इनसे बेहतरीन गुणवत्ता का छायांकन संभव होता है।

2.6 डिजिटल तकनीक

आज का दौर कम्प्यूटर का दौर है। फिल्म निर्माण में भी कम्प्यूटर का प्रवेश तथा हस्तक्षेप कदम-कदम पर हो चुका है। कम्प्यूटर ध्वनि और प्रकाश की भाषा नहीं

समझता है। वह संख्या या डिजिट (0 तथा 1) की भाषा समझता है। अतः जब पारम्परिक एनालॉग सिस्टम पर शूट किया जाता है तो उसे कम्प्यूटर पर एडिटिंग करने के लिए डिजिटल डेटा में परिवर्तित करना होता है इससे दृश्य की गुणवत्ता भी नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।

डिजिटल कैमरा इस्तेमाल किये जाने पर यह समस्या नहीं होती। जो भी दृश्य शूट किया जाता है उसकी गुणवत्ता संपादन के दौरान कम नहीं होती। आज लगभग सभी इलेक्ट्रानिक उपकरण डिजिटल तकनीक का अनुसरण कर रहे हैं। एनालॉग उपकरण तथा प्रणालियों की मांग निरन्तर कम होती जा रही है। टेलीविजन प्रसारण तो लगभग पूरी तरह डिजिटल हो गया है। आजकल केबल टीवी के लिए भी फिल्में बनाने का दौर बढ़ रहा है जिसमें डिजिटल तकनीक काफी मददगार हो रही है।

2.7 एनीमेशन

एनीमेशन फिल्म बनाने की वह पद्धति है जिसमें हल्के परिवर्तन के साथ कई सारे चित्रों को एक श्रृंखला में शूट करके स्थिर चित्रों के गतिमान होने का भ्रम उत्पन्न किया जाता है । विशेष तौर पर कार्टून फिल्मों के लिए एनीमेशन तकनीक प्रयोग की जाती है। अब कम्प्यूटर के विकास ने एनीमेशन को अत्यन्त प्रभावी बना दिया है।

एनीमेशन फिल्म में चित्रों को चलायमान रूप में दिखलाने के लिए विशेष कैमरे का प्रयोग किया जाता है । शूटिंग के लिए कैमरे को एक निर्धारित विशिष्ट कैमरा स्टैण्ड पर माउण्ट किया जाता है। यह कैमरा आगे और पीछे गतिमान हो सकता है तथा एक-एक फ्रेम अलग से शूट करता है।

भारत में भी कार्टून या एनीमेशन फिल्मों का दौर जोर पकड़ रहा है। हनुमान, गणेश, कृष्णा आदि फिल्में खूब लोकप्रिय हो रही हैं। इसी के साथ मुख्यधारा सिनेमा में भी एनीमेशन का प्रयोग हो रहा है। कोई मिल गया फिल्म में एलियन नामक चरित्र एनीमेशन की ही देन था। एक अन्य फिल्म में तोता तथा कुत्ता जो पूरी फिल्म में मुख्य भूमिका में थे, एनीमेशन द्वारा ही विकसित किये गये थे। आज निर्माता-निर्देशकों को यह तकनीक काफी पसंद आ रही है।

एनीमेशन के चमत्कार को आसान बनाने में कम्प्यूटर की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मल्टीमीडिया की सहायता से उन कल्पनाओं को भी साकार कर लिया जा रहा है जिनका फिल्मांकन किसी भी तरीके से स्टूडियो में या कैमरे से संभव नहीं हो

सकता।

2.8 उपसंहार

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आज का सिनेमा तकनीकी चमत्कार को नमस्कार कर रहा है। तकनीकों ने सिनेमा की गुणवत्ता को भी निखारने में मदद की है। साथ ही साथ दर्शकों को कुछ नया देने और उन्हें अचम्भित करने में भी यह तकनीकें मददगार हो रहीं हैं।

फिल्मांकन के काम को नये और शक्तिशाली कैमरों ने आसान बना दिया है। डिजिटल तकनीक ने सिनेमा की गुणवत्ता को और निखारने का काम किया है। एनीमेशन के चमत्कार से निर्देशक अपनी उस परिकल्पना को भी साकार कर ले रहा है जो कैमरे की मदद से संभव नहीं था। निश्चित तौर पर इससे सिनेमा, और विकसित तथा समृद्ध हुआ है।

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

(1) कैमरा बूम - विशेष परिस्थितियों में छायांकन करने के लिए प्रयुक्त कैमरा उपकरण जिसमें कैमरा ट्राली और क्रेन की सहायता से हवा में झूलते हुए शॉट लेता है। इसे क्रेन की सहायता से संचालित किया जाता है।

(2) कैमरा रिपोर्ट - असिस्टेंट कैमरामैन द्वारा तैयार की जाने वाली प्रतिदिन की वह विस्तृत रिपोर्ट जिसमें अभी तक लिए गये शॉट, उनकी लम्बाई, टेक संख्या तथा उसकी टिप्पणी होती है। इससे संपादन करते समय सुविधा होती है।

(3) आई मैक्स तकनीक - यह अत्याधुनिक विशेष प्रकार की सिनेमा प्रदर्शन की तकनीक है। इसमें पारम्परिक सिनेमा फारमैट (35 एम एम) से 10गुनी बड़ी तथा पारंपरिक वाइड स्क्रीन (70 एम एम) से तीन गुनी बड़ी छवि को एक विशाल पर्दे पर प्रदर्शित किया जाता है। इसका आस्पैक्ट रेशियो 15:70 होता है तथा इसके लिए लगभग आठ मंजिलें भवन के बराबर की स्क्रीन की आवश्यकता पड़ती है। अत्याधुनिक डिजिटल सराउण्ड-साउण्ड उपकरणों की सहायता से इस पर फिल्म का प्रदर्शन किया जाता है।

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

(1) **बेन लांग** - मेकिंग डिजिटल वीडियोज

(2) **क्लाइंट इकर** - प्रोफेशनल वेब डिजाइन

(3) **डॉ. अर्जुन तिवारी** - आधुनिक पत्रकारिता

2.11 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) सिने जगत में त्रिआयामी चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

(2) डिजिटल तकनीक तथा एनीमेशन की उपयोगिता बताइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) त्रिआयामी का अर्थ बताएँ।

(2) आईमेक्स तकनीक क्या है?

(3) एनीमेशन फिल्म क्या होती है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

(1) भारत की पहली हिन्दी थ्री डी फिल्म -

(क) मुगले आजम (ख) हनुमान

(ग) शिवा का इंसाफ (घ) इनमें से कोई नहीं।

(2) एनीमेशन फिल्म है -

(क) कोई मिल गया (ख) कृश

(ग) हनुमान (घ) ताल

(3) डिजिटल संकेतक है -

(क) एनालॉग का (ख) एनीमेशन का

(ग) कैमरा का (घ) डिजिट का

(4) मोटर की आवाज कम करने हेतु कैमरे पर लगाया जाने वाला कवर कहलाता है।

(क) ट्राइपॉड (ख) बर्नी

(ग) आईमैक्स (घ) आइपॉड

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

1. ग
2. ग
3. घ
4. ख

इकाई -3 संकट-मोचन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पात्र परिचय

3.3 साफ सुथरी कालोनी

3.4 सुमन बालों को पोंछते हुये

3.5 एक गली में मकान

3.6 बीमार माँ

3.7 बाहर से घंटी बजती है

3.8 सीक्वेन्स दो - सुमन भट्टाचार्य के कमरे में

3.9 सारांश

3.10 शब्दावली

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

3.12 प्रश्नावली

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगें-

(1) कथासार से,पटकथा कैसे बनती है।

(2) यह संलग्न पटकथा को देखकर जाना जा सकता है।

(3) पटकथा के आधारभूत तत्व क्या हैं।

(4) पटकथा में, स्टोरी लाइन या कथासार का समावेश किस प्रकार किया जाता है।

(5) दृश्य, पटकथा में किस तरह बनाए जाते हैं।

(6) पटकथा में संवाद कैसे डाला जाता है।

3.1 प्रस्तावना

एक लघु फिल्म, एक रील की या फिर दो रील की, सामान्य रूप से होती है।

वैसे लघु फिल्म तीन रील की भी बनाई जा सकती है। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। वैसे एक रील 16 एम एम गेज या वीडियो में, 10 मिनट की होती है। दो रील या ढाई रील यानी 25 मिनट के कार्यक्रम या लघु चित्र में बनती है।ऐसा इसलिए होता है चैनल के कार्यक्रम का एलाट 30 मिनट का होता है। लेकिन, विज्ञापन के लिए 5 मिनट का समय छोड़ दिया जाता है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक होता है, जिससे नियत कार्यक्रम चार्ट में दी गई फिल्मों और कार्यक्रमों पर,विपरीत प्रभाव न पड़े। नियत बिन्दु का कार्यक्रम चार्ट में आने वाले तीन महीने या एक महीने के कार्यक्रमों का विवरण नियत करके जारी कर दिया जाता है। एक रील में अनुमानतः 400 फिट का फिल्म मैटेरियल होता है।जिसकी अवधि 10 मिनट की आती है। जिसमें ब्लैक और लीडर फिल्म सम्मिलित होती है। फिल्म का 16 एम एम गेज जो वीडियो के समकक्ष माना जाता है, इसके एक मिनट समय में 37.5 फिट फिल्म निकलती है।

3.2 पात्र परिचय

पात्र परिचय		कास्ट्युम्स	प्रोप्स
सुमन	नवविवाहिता वर्किंग गर्ल		
गोयल	टीचर	साड़ी-ब्लाउज	1. लब बर्ड्स 2. तोता
मैडम	दफ्तर की बॉस	पैन्ट-बुशशर्ट	3. कुत्ता झबरे वाला
भट्टाचार्य	मैनेजर		4. मनी प्लान्ट 5. तस्वीरें
पदमा	23/24 की वर्किंग गर्ल		6. फूस की झाड़ू 7. वेनेटी बैग
			8. पेन-स्माल 9. पेंसिल नीली
			10. पैड 11. टाइप किया हुआ लेटर और लिफाफा - दो
			12. कई पोस्टर-परिवार कल्याण

3.3 एक साफ सुथरी कालोनी

सीन एक साफ-सुथरी कालोनी में उगते हुए सूरज को कम्पोज करते हुए कैमरा सुमन के फ्लैट पर आकर ठहर जाता है।फ्लैट के दरवाजे पर एक झबरे बाल वाला कुत्ता बैठा है। बरामदे में एक पिंजरे में तोता और एक पिंजरे में लव बर्ड्स है। दूसरी तरफ

एक नौकरानी फूस की झाड़ू से बुहार रही है। गमलों में कुछ फूल हैं और मनीप्लान्ट की डालियाँ लटक रही हैं।सुमन अभी बिस्तर पर अलसायी सी अधलेटी है। वह धीरे से अंगड़ायी लेती है और उठकर खिड़की से पर्दे हटाने लगती है पैरों में स्लीपर डालकर वह बाहर आती है जहां झबरे बाल वाला कुत्ता लाड़ करने लगता है। वह भी उसके ऊपर हाथ फेरती है। उसके चेहरे पर उल्लास और खुले आसमान की तरफ देखकर तोते की पिंजड़े की तरफ आती है, पिंजड़े को घुमा देती है और फिर लव बर्ड्स के पिंजड़े को हिलाती हुई दालान से अन्दर की तरफ चली जाती है।

विशेष ध्वनि - बांसुरी की ध्वनि कोयल की आवाज

वायस ओवर - सुमन के तेइस बरस के जीवन में यही महीना सबसे अधिक उमंग, सुख और सन्तोष का बीता था। पहले दस दिन तो मानो उल्लास से गद्‌गद्‌ स्वप्न में बेखबर सी थी। जितनी आशा और कल्पना की थी जो कुछ चाह सकी थी उससे अधिक पाकर समेट न सकने के गर्व का उन्माद था उसके अन्दर।

विशेष ध्वनि - पड़ी किताबें सितार की मध्यान्तर लहरी गूंज रही है। तोता चीख उठता है, सुमन की हंसी का स्वर।

वायस ओवर - सुमन ने हिसाब और सोच-समझ के काम लिया था। भाग्य और नक्षत्र भी कुछ पक्ष में थे। सितम्बर की 30 को बृहस्पतिवार था, पहली अक्टूबर को ईद, दूसरी को महात्मा गांधी जयन्ती, की छुट्टी, तीसरी को रविवार।

3.4 सुमन बालों को पोंछते हुए

सीन-दो - सुमन टावल से बालों को पोछते हुए आकर ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठ जाती है और अपने बालों में कंघी करने लगती है बीच-बीच में रूककर वह शीशे में अपने को और अपने पति के साथ की तस्वीर देखती है। बैकग्राउण्ड में रेडियो का संगीत बज रहा है। बालों को ठीक करने के बाद वह अपने माथे पर बीचोंबीच में गोल बिन्दी लगाती है। ड्रेसिंग टेबुल से उठकर वैनिटी बैग पलंग पर रखती है और उसके अन्दर के सामान की इधर-उधर ठीक करते हुए थोड़ा बहुत मेकअप का सामान रखती है और पेन, रूमाल डालती है। सुमन ने नये कपड़े पहन लिये हैं, उसके बदन पर नयी साड़ी है। वह अपना वैनेटी बैग खोलकर देखती है तब तक नौकरानी उसके लिये नाश्ता लगा चुकी है।

सुमन नाश्ता करने के बाद वेनेटी बैग उठाती है तभी उसकी नजर ड्रेसिंग टेबल पर रखी हुई चन्द तस्वीरों पर जाती है। वह बैग से हाथ हटाकर ड्रेसिंग टेबल की तरफ बढ़ जाती है और एक तस्वीर उठा लेती है।

विशेष ध्वनि - रेडियो का स्वर । खड़ी मांग में सिन्दूर लगाते-लगाते रूक जाती है। रेडियो बन्द करना।

वायस स्त्रोता - उसने सोमवार से केवल छः दिन छुट्टी ली, हो गयी दस दिन की। कम्पनी के दफ्तर में तनखाह बृहस्पतिवार को ही मिल गयी थी। फैलाव न करके जो कुछ तैयारी उसे करनी थी वह पहले से थी।

सुमन को धुंधली-धुंधली याद है, जब उसने कमला और रत्ना के साथ स्कूल जाना आरम्भ किया था एक गली में रहते थे। उस मकान में जगह कुछ खुली थी। तब उससे छोटा भाई घुटने चलता था।

भैंस वाली बुढ़िया जरा सा गोबर उठा लेने से बकने लगती। रत्ना जगह साफ करने के लिए गोबर उससे ही मांगती। तब माँ प्रायः दही जमाती थी। लस्सी सुमन को बहुत अच्छी लगती । नरेन्द्र उससे छीनकर पी जाता तो वह रो पड़ती थी। नरेन्द्र और रत्ना उसे अक्सर पीट देते ।

3.5 एक गली में मकान

सीन-तीन - एक गली में एक छत वाला मकान - कुछ खुली हुयी जगह- कच्चा आंगन, छोटा भाई घेंटू चलता हुआ, माँ रसोई, चौके में कमला के साथ काम करती - रत्ना और सुमन बीरू को लेकर गली में खेलती रहती-बीरू कोठरी या आंगन में हग-मूत देता। रत्ना सुमन से साफ कराती-गली में पड़ोसी भैंस वाली बुढ़िया रत्ना जगह साफ करने के लिए गोबर सुमन से मांगती- बुढ़िया गोबर उठाने पर बकने लगती। माँ लस्सी बनाती। लस्सी सुमन से नरेन्द्र छीनकर पी जाता तब सुमन रोने लगती नरेन्द्र और रत्ना उसे पीट देते।

विशेष ध्वनि - फ्लैश बैक सितार की ध्वनि । छः साल की बच्ची सुमन। गाँव की किसी पनचक्की की आवाज। बच्चों का शोरगुल, रोने की आवाज ।

वायस ओवर - खूब याद है, कमला की शादी से पहले एक बहन और हुई थी।माँ बहुत दिन बीमार रही थी। मुन्नी बच नहीं सकी। कमला के ब्याह के बाद श्यामा हुई।

रत्ना की शादी की उसे खूब याद है। तब वह सयानी थी। सब कुछ समझती थी। उसकी दसवीं की परीक्षा समीप थी। उस पर शादी की चख-चख। कोठरी के बाहर छज्जे में लैम्प रखकर वह पढ़ रही होती थी तो भीतर पिता -माता में परेशानी की बातें शुरू हो जाती।

3.6 बीमार माँ

सीन-चार - बीमार माँ - बगल में नयी पैदा हुई बच्ची। फिर बच्ची की जगह सूनी। कमला का ब्याह -श्यामा नयी बच्ची माँ के बगल में। रत्ना की शादी - शादी की चख-चख कोठरी के बाहर छज्जे में लैम्प रखकर सुमन पढ़ रही होती - भीतर माता-पिता की परेशानी की बातें -नरेन्द्र किताबें लेकर कहीं और पढ़ने के लिये जाते हुए - सुमन किताबें लेकर अपनी सहेली के यहाँ जाते हुए।

विशेष ध्वनि - नवजात शिशु की रोने की आवाज। रात को वीराने में झिंगुरों की आवाज। माँ बाप की फुसफुसाहट।

वॉयस ओवर - सुमन दस दिन के अवकाश के बाद दफ्तर गयी। वहाँ मांग भरकर या नयी बहुओं जैसा सिंगार कर जाना उसने ठीक नहीं समझा था। पहले से केवल कानों में बिंदियों जैसे टाप्स अधिक थे और नाखूनों पर विवाह की रीति के लिय रचायी गयी मेंहदी की लाली शेष थी। पद्मा को कुछ दिन पहले ही उसने बता दिया था। चित्रा,बकुल और कुछ लोगों ने भांप लिया। दो-चार लोगों ने बधाई देकर शुभकामना प्रकट की। मिसेज सिलवा ने जाना था लेकिन प्रकट नहीं किया था।

3.7 बाहर से घंटी बजती है

सीन-पाँच - एकाएक बाहर से घंटी बजती है - सुमन अपनी यादों से निकलकर तस्वीर को गाल से हटाकर वापस ड्रेसिंग टेबल पर रख देती है। नौकरानी रिक्शा ले आयी थी। सुमन वैनेटी बैग उठाकर बाहर निकल जाती है।

विशेष ध्वनि - रात को वीराने में झींगुरों की आवाज । माँ-बाप की फुसफुसाहट।फ्लैश बैक, वाइल्ड साउण्ड ।

3.7.1

सीन-एक - सीक्वेन्स -दो : सुमन दफ्तर आती है। अपनी मेज तक पहुँचते-पहुँचते पद्मा, चित्रा, बकुल ओर कुछ अन्य लोगों से मिलती-जुलती है - हंसते-हंसाते बधाई, धन्यवाद का सिलसिला पूरा करते-करते वह मिसेज सिलवा को विश करती है।

विशेष ध्वनि - एक आफिस के माहौल की तरह विभिन्न स्वर। कई स्वर 'बधाई हो' कहकर हंसने लगते हैं।

वॉयस ओवर - दफ्तर में उसका नाम सुमन मेहरा था। तीसरे-चौथे दिन से कुछ लोग उसे मिसेज गोयल पुकारने लगे। सप्ताह पूरा होने तक सुमन ने दफ्तर में विवाह की लिखित सूचना दे दी।

3.7.2

सीन-दो - कुछ लोग-मिसेज गोयल को नाम से पुकारना-दफ्तर को लिखित सूचना देना।

विशेष ध्वनि - चेन्ज आफ डेज सुमन मेहरा की नेम प्लेट ।

वॉयस ओवर - 31 अक्टूबर को चपरासी ने दोपहर के बाद वेतन का लिफाफा देकर रसीद पर दस्तखत कराने के बाद एक और बन्द लिफाफा दिया।

3.7.3

सीन-तीन - 31 अक्टूबर को चपरासी वेतन का लिफाफा -रसीद, एक और बन्द लिफाफा- इस लिफाफे की भी एक और रसीद दोनों लिफाफों पर नाम सुमन मेहरा लेकर आया। दूसरा लिफाफा पहले खोला-पढ़ते ही कलेजा धक- पत्र फिर पढ़ा -तीसरी बार भी बज्रपात- पांवों तले से धरती निकल गयी। सुमन का माथा चकरा गया। लिफाफे तीन बजे मिले थे। शेष समय कुछ कर न सकी।

विशेष ध्वनि - दफ्तर का माहौल, म्यूजिक एफेक्ट ।

वॉयस ओवर- सुमन को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। पत्र था या नोटिस था। कम्पनी को आपकी सेवा की आवश्यकता न रहने के कारण - नौकरी तीस नवम्बर को समाप्त हो जायेगी।

गोयल पूछता है क्यों क्या हुआ ऐसी घबराहट या परेशानी क्यों?

3.7.4

सीन-चार -दफ्तर से निकलते समय सुमन थकी हुयी और उदास थी बस से न जाकर उसने रिक्शा ले लिया था। गोयल कालेज से लौटकर घर में, उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। गोयल उसके स्वागत के लिये उठा मुस्कुराकर बाहें फैला दी। सुमन ने अपनी बाहें

उसके सीने में दबा दिया और धधक उठी।

गोयल हैरान था - सुमन कुछ बोल न पाई -पर्स से दोनों लिफाफे निकाल कर गोयल के हाथ में दे दिये। सिसक-सिसक कर आंखों को पोंछती रही। गोयल ने उसे बांहों में लेकर धैर्य बंधाया। सुमन की आंखें विवश क्रोध के आंसुओं से डबडबाई थी। सुमन चुपचाप खामोश निगाहों से दूर ब्लैक में देखती रहती है।। सुमन की आंखें भर आती हैं।

विशेष ध्वनि - वायलिन या सारंगी की ध्वनि ।

वॉयस ओवर - गोयल ने कहा! हम ऐसे तो निराश्रय नहीं हो गये हैं। उसे छै सौ तो मिल रहा था और फिर आई0बी0कम्पनी ही तो सब कुछ नहीं थी। योग्यता और सामर्थ्य हो तो बीसियों जगह काम कर सकती थी। वेतन ज्यादा भी मिल सकता था। पर सुमन का कहना था कि बात वेतन की नहीं। यह उसका अपमान था। यह झूठ था कि आवश्यकता नहीं थी। ऊपर से दो-तीन की और जरूरत थी।

दूसरे दिन दफ्तर पहुँचते ही पद्मा ने पूछा 'क्यों री तबियत तो ठीक है ना' सुमन ने चिन्ता का कारण बता दिया। पद्मा ने उसे सलाह दी कि उसकी रिपोर्ट अच्छी थी इसलिये उसे बॉस के सामने रीप्रेजेन्टेशन जरूर करना चाहिये।

3.7.5

सीन - एक - सीक्वेन्स तीन - दूसरे दिन दफ्तर पहुँचते ही सुमन को पद्मा ने टोका- सुमन ने चिन्ता का कारण बता दिया - पद्मा ने सलाह दी - सुमन मिसेज सिलवा से मिली - मिसेज सिलवा बॉस से मिलने की इजाजत दे दी ।

वॉयस ओवर- भट्टाचार्य साहब रीजनेबल और कन्सीडिरेट थे। सुमन ने मिसेज सिलवा की मार्फत बास से बात करने का अवसर मांगा। सिलवा ने आपत्ति नहीं की ।

3.8 सुमन-भट्टाचार्य के कमरे में

सीन -दो -

वॉयस ओवर - सुमन ने मि. भट्टाचार्य से धैर्य से निवेदन किया, "काम में कभी न्यूनता नहीं बतायी गयी। दोनों वर्ष वेतन में वृद्धि हुई। इस वर्ष भी उसके व्यवहारपूर्ण अनुशासन में रहा था। अनुभव बढ़ेगा तो कम्पनी की वह बेहतर सेवा करेंगी।

3.8.1

सीन-तीन - सुमन मि0 भट्टाचार्य के कमरे में दाखिल हुयी ।

पद्मा केबिन के पास कान लगाकर खड़ी हो जाती । भट्टाचार्य ने पलक झपक कर हाथ में थामे सिगार से कश लिया। सुमन की आँखें भर आयी थी। भट्टाचार्य ने सिगार राखदानी पर रख दिया। हाथ का अंगूठा कनपटी पर दबाकर पल भर को पलकें मूँद ली। कुछ पल के बाद उसने सुमन को देखा। सुमन थैंक्यू के बाद जाने लगी तो भट्टाचार्य कुछ झिझक से मुसकराये।

वॉयस ओवर - मि. भट्टाचार्य ने कहा कि उन्होंने सुमन की रिपोर्ट देखी थी लेकिन कम्पनी अपनी नीति के अनुसार ऐसा ही उचित समझती थी। सुमन कह रही थी यदि दिया गया काम वह निबाह न कर सकती या उसका कोई अपराध दोष बता दिया जाता तो उसे कोई शिकायत न होती और फिर कम्पनी को कार्यकर्ताओं की जरूरत थी।

भट्टाचार्य मान रहा था कि कम्पनी को कार्यकर्ताओं की जरूरत तो थी और सुमन का काम सन्तोषजनक था, किसी अपराध की शिकायत भी नहीं थीं लेकिन कम्पनी ऐसा ही उचित समझती थी। सुमन निराशा में दुस्साहस कर गयी। उसने भट्टाचार्य से सीधा सवाल किया कि योग्य और निर्दोष मानी जाने पर भी उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया गया। उसे अकारण दण्ड क्यों दिया गया। उसे न्याय चाहिए था।

भट्टाचार्य ने सुमन को दिलासा दी कि इसमें दण्ड या अपमान जैसी कोई बात नहीं थी। तसल्ली के लिए सुमन को मिसेज सिलवा से मिलने की सलाह देते हुए भट्टाचार्य ने सुमन को शादी की मुबारकवाद दी और वादा किया कि वह भी मिसेज सिलवा से कहेंगे।

3.8.2 सीन - एक सीक्वेंस चार

सुमन के जाने पर मिसेज सिलवा सदा की तरह मुस्कुरायीं। मिसेज सिल्वा ने सिर हिलाया। सुमन के चेहरे पर दृढ़ता थी। सिलवा ने सामने पड़े कागज पर नीली पेंसिल से दो-तीन वृत्त बनाये ओर तब सुमन की ओर देखा। सुमन को चोट लगी ओर उसने साहस किया सिलवा मुस्कुरायी। सुमन में आत्मविश्वास था।

वॉयस ओवर- लन्च के बाद मिसेज सिलवा ने सुमन को बुलाया। अफसर के सौजन्य से उत्साहित होकर सुमन ने साहस और भरोसे से बात की। काम में अपनी पाबन्दी अपने काम की सराहनापूर्ण रिपोर्ट का संकेत, दो बार वेतन वृद्धि होने देने के बाद उसे अनावश्यक बनाने की असंगति, अपमान, अकारण दण्ड अन्याय। मिसेज सिलवा ने सुमन को बताया कि उसके ऊपर कोई लांछन नहीं था। केवल कम्पनी को अपने हित का विचार था। सुमन ने फिर भी कारण जानने की जिद की। उसने सोचा नौकरी जा

रही है तो डरे क्यों? सिलवा ने सुमन को विश्वास दिलाया कि उसके प्रति उनको और कम्पनी को सहानुभूति और शुभकामना ही है।

सुमन ने फिर भी भविष्य के मार्गदर्शन के लिये कारण जानने की जिद की क्योंकि व्यवहार तो सहानुभूति और शुभकामना का नहीं था। सिलवा ने सुमन से नाराज न होने को कहते हुए उससे पूछा कि उसने अपना नाम सुमन मेहरा से मिसेज गोयल बदल देने का अनुरोध किया था न। फिर बधाई देते हुए उन्होंने गोयल क्या करते हैं, कितना वेतन पाते हैं और उसे नौकरी की जरूरत क्या है; पूछा। सुमन ने नौकरी जारी रखने की जिद की क्योंकि वह पैरासाइट नहीं बनना चाहती थी।

3.8.3

सीन- दो - मैडम ने कुछ पल मौन रहकर पेंसिल से कागज पर वृत्त बनाये सुमन उठकर बाहर चली गयी। उससे अपनी मेज पर जाकर पर्स उठाया और घर की तरफ पैदल चल दी। सुमन के दिमाग में मैडम की आवाज गूँज रही थी।

सुमन सड़क पर चली जा रही थी। सुमन बाजार से निकलने लगी थी। सुमन एक पार्क के कोने पर फव्वारे को देखती रहती है।

वॉयस ओवर - मैडम ने बताया कि कम्पनी के कार्यकर्ताओं को ग्यारह मास कार्य के उपलक्ष्य में एक मास सवेतन छुट्टी देती थी। यह तो था कि सुमन ने दो वर्ष से छुट्टी नहीं ली थी क्योंकि वह एक कर्मठ लड़की थी जिसके लिये कम्पनी ने दो मास का अतिरिक्त वेतन दिया था उसे। लेकिन सुमन सदा ऐसा नहीं कर सकेगी क्योंकि उसका विवाह हो गया था। अब आठ नौ मास या बरस भर में वार्षिक छुट्टी ही नहीं, डेढ़ मास की मेटरनिटी लीव की जरूरत पड़ सकती थी। सुमन ने संकोच से स्वीकार किया कि ऐसा हो सकता था। मैडम ने आगे कहा ऐसा होने की पूरी सम्भावना ही नहीं थी, सुमन को उसकी इच्छा और आशा भी हो सकती थी। सुमन के सात बहिन-भाई थे इसका भी पता था मैडम को। फिर मेटरनिटी लीव के साथ दो-ढाई मास की मेडिकल लीव जुड़ जाना साधारण बात थी। ऐसी छुट्टी देना कम्पनी के लिए कानूनी और मानवीय मजबूरी थी। डेढ़-दो साल के बाद फिर वही चक्कर। ऐसी छुट्टी से पहले और बाद में शारीरिक अवस्था से शैथिल्य के कारण काम का असामर्थ्य । सरकारी नौकरी की बात दूसरी थी पर निजी कारोबारी मजदूरी काम की देना चाहते थे। कार्यकर्ता कितना ही कुशल और परिश्रमी हो यदि परिस्थितियों के कारण काम का सामर्थ्य न रहे तो उसका भरोसा क्या किया जाए।

यही कारण था दुनिया भर में लोग विवाहिता स्त्रियों को काम देने में झिझकते थे। कम्पनी ने नौकरी मिस सुमन मेहरा को दी थी। मिस मेहरा के काम से कम्पनी सन्तुष्ट ही लेकिन मिसेज गोयल की कौन जाने।

सुमन ने कहा वह ही तो है मिसेज गोयल। लेकिन मैडम ने कहा, उस स्थिति में जब उसे मैटरनिटी लीव की जरूरत होगी शायद वह वह न रहे।

3.8.4 सीन-तीन

सुमन पार्क में खेलते हुये बच्चों को देख रही थी। सुमन आगे बढ़ती है तो मैडम की आवाज जैसे दूर बड़ी दूर, से आ रही थी। अखबार - सड़क- बाजार- चेतावनी और परामर्श के चिन्ह, लाल तिकोन-नियोजित परिवार सुखी परिवार डाक्टर से राय लीजिए। सुमन के चेहरे से उदासी उड़कर संकोच की लाली आ गयी। अफसर के प्रति सम्मान से मुसकान दबाये रही। सुमन घर पहुँच जाती है। पलंग पर वैनेटी पर्स फेंककर सीधा लेट जाती है। मैडम-मैडम का बच्चा । सुमन को अपने परिवार की स्थिति याद आ गयी।

विशेष ध्वनि - घूमती हुई गडमड तस्वीरें। फ्लैश बैक । इण्टरकट मान्टेज ।

वॉयस ओवर - मैडम ने रास्ता निकालने की गरज से सुमन को बताया कि वह एक योग्य और कर्मठ लड़की है तो कम्पनी को भी अपने हित की चिन्ता थी। कम्पनी की साधारण रणनीति के अनुसार आर्डर तो हो गया था लेकिन मैडम ने सुमन से कहा यदि वह भरोसा दिलाये कि अभी तीन-चार वर्ष उसे मैटरनिटी लीव की जरूरत नहीं पड़ेगी और उसके बाद कम से कम पांच वर्ष तक और फिर बस, तो उसके मामले में पुनः विचार किया जा सकता था।

सुमन ने झेंपते हुए कहा कि वह खुद ऐसा नहीं चाहती थी लेकिन सब तो चान्स की बात थी। चान्स के वश तो अनजान और बेपरवाह होते है। जबकि सुमन तो पढ़ी-लिखी और समझदार थी मैडम ने कहा । मैडम ने सुमन से पूछा कि क्या उसे अखबार देखते वक्त सड़कों बाजारों से गुजरते वक्त चेतावनी और परामर्श के चिन्ह ''लाल तिकोन नहीं दिखायी देते- नियोजित परिवार, सुखी परिवार, डाक्टर से राय लीजिए- यह सब नहीं देखती वह। प्राकृतिक आवश्यकता के या आवेश तो होता ही है वर्ना नर-नारी में आकर्षण क्यों हो लोग विवाह क्यों करें पर बचाव के स्थायी-अस्थायी अनेक सरल उपाय जो हैं जिसे जो माफिस आये। सबसे सरल एक गोली रोज पांच

रूपया महीने का खर्च।

मैडम ने कहा कि वह खुद दुर्भाग्य से विधवा हुई तब केवल पच्चीस की थी। लड़का तब तीन का था। वह चाहती तो दूसरा विवाह हो सकता था लेकिन उन्हें विश्वास था कि एक लड़का उनकी मातृत्व भावना के सन्तोष के लिए पर्याप्त था। लड़का मंसूरी स्कूल में था। तीन सौ मासिक देना पड़ता था। दो-तीन बच्चों को कौन ढंग से पाल सकता था। अधिक बच्चे पैदा करके अपने और उनके साथ निर्दयता क्यों की जाय।

3.8.5 सीन - चार

एक बच्चा दूध पर, दूसरा गोद में और तीसरा रो-रोकर आंचल खींचता हुआ। सुमन ने वितृष्णा से सिर हिलाया। बचाव के उपाय। कैलेण्डर दूसरे दिन जब सुमन दफ्तर पहुंची - तब तक उसके दिमाग की धुंध मिट चुकी थी और वह सीधे मैडम के केबिन में पहुँच गयी।

वॉयस ओवर- मैडम ने सुमन से पूछा था कि डियर क्या तुम्हारे यही अरमान हैं कि एक बच्चा दूध पर, दूसरा गोद में ओर तीसरा रो रोकर आंचल खींचा करें।

मैडम कह रही थीं कि सुमन को देखना चाहिए विवाहित जीवन में बचाव के उपायों से बेपरवाही स्त्री के लिये आत्मघात की भूल थी। भरोसा केवल निरोधक उपायों का था अपने को रोकने या चांस की बातें केवल धोखा थी। आखिर आदमी कितना संयम करेगा साल में तीन सौ चौंसठ दिन संयम कर ले फिर भी हर साल गर्भ हो सकता था।

मैडम ने सुमन की जांच की कि यदि उसे उनकी बातें जंचती थीं तो कम्पनी उसकी नोटिस पर पुनः विचार की कोशिश करेगी।

सुमन ने आभार प्रकट करते हुए मैडम की बातों से पूर्ण मतैक्य प्रकट किया था।

3.8.6 सीन- पाँच -

मैडम सिलवा को आश्वासन देकर सुमन अपने स्थान पर लौटी तो आश्वस्त थी। पद्मा-सुमन, सुमन का चेहरा-पद्मा की खीस -सुमन की ठिठोली-पद्मा की जिद।

वॉयस ओवर - छुट्टी के बाद सुमन का चेहरा प्रसन्न देखकर पद्मा ने पूछा था कि संकट टल गया ना। सुमन के हाँ लगता है, कहने पर पद्मा पीछे पड़ गयी जानने के लिये कि मैडम से उसकी क्या बात हुई थी। जिद करने पर सुमन ने कहा कि मैडम ने संकट मोचक उपाय बताया था । संकट मोचक उपाय का अर्थ जानने के लिए जब पद्मा

ने और जिद की तो सुमन को बताना पड़ा।

3.9 सारांश

35 एम. एम. गेज की फिल्म में एक मिनट की फिल्म जब प्रोजेक्टर से निकलती है तो वह 100 फिट के करीब होती (99 फिट के आस-पास) है जबकि 16 एम एम गेज की फिल्म 1 मिनट में 37.5 फिट निकलती है। वीडियो 16 एम एम फिल्म गेज के समकक्ष होता है। पटकथा जो इकाई एक में दी गयी सिनटिसस या कथासार से बनाई गई है, किसी भी लघु फिल्म का आधार होती है।कथासार देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि फिल्म की कहानी क्या होगी। लेकिन पटकथा देखकर यह जाना जा सकता है फिल्म कैसी बनेगी। इस प्रकार लघु फिल्म की अवधि एक रील या दो रील की ही होती है एक रील 10 मिनट अवधि की होती है। लेकिन वीडियो में अवधि समयगत होती है। अवधि वीडियो टेप की लम्बाई के साथ इंगित होती रहती है। लघु फिल्मों का अधिकता से प्रयोग प्रचार-प्रसार के लिए किया जाता है या फिर किसी खास मेसेज या संदेश के लिए लघु फिल्मों का निर्माण किया जाता है। सर्वप्रथम फिल्म्स प्रभाग ने 35 एम एम गेज से सैकड़ों फिल्में बनाई। यह सब लघु फिल्में थी। तत्पश्चात् दूरदर्शन ने अधिकतर लघु फिल्मों का निर्माण करवाया।

3.10 शब्दावली

-	पात्र परिचय	-	किरदार के नाम इत्यादि
-	कॉस्ट्यूम	-	वेशभूषा पहनावा
-	प्रोव्स	-	सेट पर प्रयोग में आने वाला सामान
-	सीन	-	दृश्य
-	सीकवेन्स	-	कई दृश्यों से एक सीकवेन्स
-	विशेष ध्वनि	-	खास आवाजें
-	वॉयस ओवर	-	पार्श्व ध्वनि

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

- इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म्स प्रोडक्शन — राजकृष्ण मिश्र

- फिल्म एज फिल्म — वी पी परकिन्स
- सिनेमा ऐज एन आर्ट — जे वी डिबरिश
- मूवी मुगल्स — फिलिप फ्रेन्च
- फिल्म एण्ड रियलटी — एलेन जे लरनर
- माय फेयर लेडी — राय आर्मेश

3.12 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) पात्र परिचय का अर्थ बताइये।

(2) कास्ट्यूम किसे कहते हैं?

(3) प्रोव्स से क्या तात्पर्य होता है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) पटकथा के आधारभूत तत्वों का वर्णन करते हुये एक सीन लिखें।

(2) सीकवेन्स और सीन का बंटवारा कैसे किया जाता है।

(3) पटकथा कैसे लिखी जाती है? एक कथासार बनाकर पटकथा के दो दृश्य बनाने का कष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) पात्र कहते हैं -

(1) कहानी के किरदार को ।

(2) निर्देशक को

(3) कैमरामैन को

(4) सम्पादक को

(ख) वॉयस ओवर का अर्थ है-

(1) संवाद

(2) पार्श्वध्वनि

(3) विशेष ध्वनि

(4) पात्र की आवाज

(ग) प्रोव्स कहते हैं -

(1) वेशभूषा को

(2) मेकअप को

(3) सेट पर प्रयोग में अने वाला सामान

(4) वेश-भूषा

(घ) कास्ट्यूम का प्रयोग होता है।

(1) सम्पादन में

(2) छायांकन में

(3) निर्देशक में

(4) पहनावा, वेश-भूषा में

उत्तर -

(क) 1

(ख) 2

(ग) 3

(घ) 4

इकाई -4 सम्पादन प्रासंगिकता

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 पटकथाओं के घपले और सम्पादन

4.3 पटकथाओं में घपले

4.4 प्रासंगिकता हटने पर

4.5 प्रासंगिकता क्या है?

4.6 प्रासंगिकता कैसे बदलती है?

4.7 टेम्पो और मोन्टाज

4.8 फ्लैशबैक तकनीक

4.9 फ्लैश फारवर्ड और ड्रीम सीकवेन्स तकनीक

4.10 मानसिक कुंठाएं और उसका फिल्मांकन

4.11 फाइटों का सम्पादन कक्ष

4.12 ऐक्शन का सम्पादन

4.13 नृत्यगीत का सम्पादन

4.14 सारांश

4.15 शब्दावली

4.16 संदर्भ ग्रन्थ

4.17 प्रश्नावली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगें-

(1) पटकथा का महत्व

(2) पटकथाओं के घपले

(3) प्रासंगिकता क्या है

(4) फ्लैशबैक तकनीक क्या होती है

(5) फाइटों का सम्पादन कैसे होता है

(6) ऐक्शन का सम्पादन कैसे होता है

4.1 प्रस्तावना

फिल्म के निर्माण की आधारशिला, पटकथा लेखन है। कई बार पटकथा के अनुसार फिल्म नहीं बनती है। पटकथा पहले लिखी जाती है और फिल्म की शूटिंग करने में, समय लगता है, इस बीच में विचारों के विनिमय और चर्चा से नई बात सामने आती है। निर्देशक खुद अपनी तरफ से शूटिंग के समय परिवर्तन करता रहता है। कई बार लेखक और निर्माता भी, पटकथा में परिवर्तन के सुझाव दिया करते हैं। पटकथा पूरी तरफ लिखे जाने पर भी,कोई इस बात की जिम्मेदारी नहीं ले सकता, फिल्में पटकथा के अनुसार बन रही है। ऐसी परिस्थिति में सबसे अधिक परेशानी उठानी पड़ती है सम्पादक को। क्या काटे क्या रक्खे, क्या लाइन अख्तियार करे जो भी फिल्म बनती हुई देखता है। अपनी राय, पेश कर देता है। ऐसे में सम्पादक झुंझला कर घास की तरह, फिल्म, काट डालता है। कई बार फिल्म निर्देशक से सम्पादक अपना पीछा छुड़ा कर अलग हो जाता है। कई बार रील की रील उड़ा दी जाती है और कई बार उल्टी-सीधी रील लग जाया करती है। इसीलिए सम्पादक और निर्देशक में ताल-मेल होना आवश्यक है।

4.2 पटकथाओं के घपले और सम्पादन

एक फिल्म बनी थी 'नकद नारायण' । इसमें मोतीलाल हीरो थे फिल्म के लेखक दिग्दर्शक थे आई.एस.जौहर। इस फिल्म की शूटिंग पूरी होते-होते उनकी एक फिल्म फिल्मिस्तान के बैनर पर बनी नास्तिक हिट हो गई। अब क्या था आई. एस. जौहर ने नकद नारायण के निर्माता को स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वे इस फिल्म में बहुत ज्यादा दृश्यों की शूटिंग करना चाहेंगे। निर्माता के पास और कोई चारा नहीं था इसलिए उसने बाजार से पैसा उधार लेकर शूटिंग की व्यवस्था कराई। इसके बाद भी फिल्म बॉक्स आफिस पर पिट गयी। बेचारा निर्माता इसके बाद 'देवरे को दो आषाढ़' वाली कहावत की शिकार हो गया। यह निर्माता था- सूर्य नारायण कानव जो बेचारा फिर

जीवन में कोई फिल्म नहीं बना सका। यही हाल जौहर ने'मिस इण्डिया' के निर्माता रावत का किया।

एक और फिल्म बनाई थी मौनी भट्टाचार्या ने जिसका नाम था 'जाल' जिसमें माला सिन्हा हीरोइन थी और विश्वजीत थे हीरो। निरूपाराय ने खलनायिका की भूमिका की थी । निर्माता-दिग्दर्शक भेरू रहन पंचासिया और अब्दुल्ला-कहानी और पटकथा थी दिवंगत ध्रुव मुकर्जी की जैसी उनकी आदत थी उन्होंने एक सत्रीय पटकथा लिखकर निर्माता को थमा दी। निर्माता को फिल्म पूरी होने तक कहानी बिल्कुल भी समझ में नहीं आई। न यह जान पड़ा कि वह क्या फिल्म बना रहा है।निर्माता और निर्देशक दोनों ही मेरे मित्र हैं। अतएव निर्माता ने कई बार मुझे निर्देशक को समझाने के लिए कहा कि वह फिल्म ठीक से बनाये मगर फिल्म में मेरा कोई भी काम नहीं था इसलिए मैने निर्देशक के काम में परिवर्तन का कोई संकेत नहीं दिया। मौनी भट्टाचार्या की इसके पहले 'मुझे जीने दो' जैसी हिट फिल्म पूरी होने पर जब निर्माता ने उसकी ट्रायल दिखाई सबकी एक ही राय बनी कि वह फिल्म दर्शकों को जरा भी रास नहीं आएगी और मिट जाएगी। लिहाजा फिल्म के एक वितरक श्री राम वोहरा ने निर्माता के कहने पर लेखक और निर्देशक को अपने पास बुलाया और उनको कहा कि अभी भी वक्त है आप फिल्म को कुछ सुधार सकते हैं। ध्रुव चटर्जी जाने-माने सस्पेन्स फिल्मों के पटकथा लेखक थे और मौनी भट्टाचार्या भी अपने आपको कुशल पटकथा लेखक मानते थे इसलिए उन्होंने एक ही जवाब दिया कि इससे बेहतर फिल्म तो कभी नहीं बन सकती।

नतीजा यह हुआ कि फिल्म भी पिट गई वितरकों को इसके कारण भारी घाटा भी उठाना पड़ा।

ये सब नाटक तो करते हैं निर्देशक और पटकथा लेखक परेशान होता है कि क्या काटे क्या बनाये। क्या लाइन अप करे क्या नहीं करे। जिस-जिस को भी फिल्म दिखाई जाती है वह अपनी राय दे जाता है और जितने मुँह हों उतनी ही बातें हो जाती हैं। ऐसे में सम्पादक भी झुंझला कर घास काट डालता है । कई बार तो ऐसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं कि सम्पादक फिल्म निर्देशकों को तौबा करके भाग छूटता है। कई बार ऐसा होता है कि फिल्म में से रील की रील भी उड़ा दी जाय तो देखने वालों को यह पता तक नहीं चल पाता कि क्या हुआ? कभी-कभी रील उल्टी-सीधी भी लग जाती है। तब भी तारतम्य में गड़बड़ी का पता नहीं लगता। दोष पटकथा लेखक का रहता है। पर मत्थे वह सम्पादक के मढ़ दिया जाता है।

4.3 पटकथाओं में घपले

फिल्म की पटकथा पूरी लिखी जाने के बाद भी उस पर बनी फिल्म किस हद तक उस पटकथा का प्रतिनिधित्व करेगी यह नहीं कहा जा सकता । ज्यों-ज्यों वक्त गुजर जाता है फिल्म निर्देशकों और लेखकों के दिमाग में नये-नये विचार आने लगते हैं। निर्माता लोग भी नई-नई फिल्मों (खासकर अंग्रेजी) को देखते रहते हैं। जो भी दृश्य संवाद पसंद आ जाते हैं उन्हें वे येन-केन-प्रकारेण अपनी फिल्म में ठूंसने का प्रयत्न करते रहते हैं इस वजह से भी फिल्म में तोड़-फोड़ अक्सर होती ही रहती हैं इससे फिल्म की लाइन गड़बड़ा जाती है।

इनके मुख्य कारणों के अलावा भी कुछ न कुछ, छोटी-बड़ी स्थितियाँ ऐसी भी बनती हैं जिनकी वजह से फिल्म की प्रासंगिकता पर असर पड़ता है। यथा जब एक लेखक एक ही कहानी को एक से अधिक फिल्म निर्माताओं को बेच देता है, तब उस कहानी को लेकर निर्माताओं में विवाद खड़ा हो जाता है। इस सूरत में दोनों में से एक निर्माता को अपनी कहानी में परिवर्तन करना ही पड़ता है।

बहुत वर्ष पहले ऐसा ही एक वाक्या फिल्म उद्योग में घट गया था। एक फिल्म बनी थी 'कभी अंधेरा कभी उजाला' जिसमें किशोर कुमार हीरो थे। निर्देशक थे सी.पी,दीक्षित। निर्माता थे प्रिन्स हरिसिंह आफ बारिया 'इन प्रिन्स साहब के दुर्भाग्य से लेखक महोदय ने वही कहानी एक और निर्माता को भी बेच दी। उन्होंने बनानी शुरू कर भी दी। उसने भी फिल्म के नायक भाग्य से किशोर कुमार ही थे। आखिर किशोर कुमार की वजह से लेखक का भांडा फूट गया और दोनों निर्माताओं ने अदालत की शरण ली। परिणामस्वरूप दूसरी फिल्म के निर्माता को अपनी कहानी में परिवर्तन करना पड़ा और वह फिल्म पिट गई। इसी तरह कभी-कभी हिट अंग्रेजी फिल्म पर भी कई निर्माता एक साथ फिल्म बनाने की घोषणा कर देते हैं। फिल्म बनना शुरू भी हो जाती है बाद में जब निर्माता को असलियत मालूम पड़ती है तब उनके सामने बड़ी मुसीबत खड़ी हो जाती है। ऐसी सूरत में निर्माता यह कोशिश करते रहते हैं कि उनकी फिल्म जल्दी पूरी हो जाए। प्रयत्न यह रहता है कि दूसरे निर्माता की फिल्म से पहले लग भी जाए अन्यथा कहानी में परिवर्तन करने के अलावा और कोई चारा नही रहता है, परिणाम तो जो होना है वही होता है। कभी-कभी एक ही तरह का दृश्य कई फिल्मों में आ जाता है। जिस फिल्म का दृश्य अच्छा होता है वही 'क्लिक' हो जाता है। समझदार निर्माता

अपना दृश्य तुरन्त बदल देता है। वाल्ट डिस्ने ने दो हमशक्ल लड़कियों पर आधारित एक पारिवारिक फिल्म बनाई थी, जो बहुत लोकप्रिय हुई थी। उस पर आधारित एक फिल्म ए.वी.एम. ने भी बनाई थी जिसका नाम 'दो कलियाँ' था। इसमें दो हमशक्ल लड़कियों की भूमिका आज कल की नीतू सिंह ने की थी। तब उसका नाम बेबी सानिया था। फिल्म के हीरो विश्वजीत तथा हीरोइन माला सिन्हा थी। यह फिल्म भी दर्शकों ने पसंद की तथा बहुत चली थी।

कई सालों बाद फिर इस फिल्म के कथानक को दोहराया गया जिसमें मिथुन चक्रवर्ती नायक थे और नायिका श्रीदेवी थी। थोड़े दिनों पहले ऋषि कपूर ने ऐसा दावा किया था कि इसके फिल्म निर्माता को उन्होंने इस कहानी पर फिल्म बनाने का सुझाव दिया था और उस फिल्म में स्वयं ऋषि कपूर हीरो बनने वाले थे। निर्माता ने उनके बजाय मिथुन चक्रवर्ती को ले लिया तो ऋषि कपूर ने एक अन्य निर्माता को कहकर इसी कहानी पर फिल्म चालू करवा दी।

इसी तरह के घपलों का एक और ताजा उदाहरण दक्षिण भारत के फिल्म केन्द्र मद्रास से आई दो फिल्में हैं। एम.एल.ए. लोग कैसे होते हैं इस थीम पर आधारित दो फिल्में एक साथ बन गई जिसमें एक का नाम था आज का एम.एल.ए.रामाधरन। इसमें राजेश खन्ना हीरो था। दूसरी फिल्म में अमिताभ बच्चन नायक था। थीम की एकरूपता की वजह से इनके निर्माताओं में यह होड़ लग गई थी कि कौन पहले फिल्म पूरी करके रिलीज करता है। नतीजा इस होड़ का यह हुआ कि दोनों ही फिल्में बहुत ही घटिया स्तर की बनी। ऊपर से सेंसर कैची लेकर बेरहमी से काटता चला गया। अमिताभ बच्चन ने अपने राजनीतिक प्रभाव से अपनी फिल्म को सेंसर से पास करवा लिया और वह पहले रिलीज हो गई । अन्ततोगत्वा राजेश खन्ना की फिल्म भी रिलीज तो हुई मगर बुरी तरह पिट गई । हालांकि क्वालिटी की दृष्टि से अमिताभ की फिल्म भी कोई खास नहीं थी।

एक और बड़ा कारण होता है जिसका फिल्म की प्रासंगिकता को प्रभावित करने में बड़ा हाथ रहता है, वह है सेंसर, सेंसर में जाने पर फिल्म को किस बेदर्दी से काटा जाएगा यह नहीं कहा जा सकता । सेंसर ने कई सारे लेखकों की एक सूची बना रखी है जिनकी कहानियों को बहुत बारीकी से देखा जाता है तथा काटा जाता है।इससे अर्थ का अनर्थ होता जाता है। कई बार पूरी फिल्म को ही प्रतिबंधित कर दिया जाता है। मेरी कई फिल्में इसी तरह झमेले में पड़ चुकी हैं। इसमें मेरी एक फिल्म बहुरूपिया भी थी।

आखिर फिल्म की थीम को ही बदलना पड़ा तब सेंसर सर्टीफिकेट मिल सका। चूँकि निर्माता फिल्म की दोबारा शूटिंग नहीं करना चाहता था, इसलिए कलाकारों से नए संवाद डब करवा कर काम चलाया गया। चूँकि लिए मूवमेन्ट और संवादों का कोई इस्तेमाल नहीं था। इसलिए डब किये हुए कई सीन बहुत ही अखरते थे। हाल ही में श्रीराम बोहरा की फिल्म 'औरत' जिसके निर्देशक बी.आर. इशारा थे भी सेंसर के चक्कर में बुरी तरह फंस गये थे। उस फिल्म में भी सेंसर की आपत्ति कहानी पर ही थी। आखिर कई अपीलों के बाद भी फिल्म में भारी काट-छाँट करनी पड़ी, तब जाकर फिल्म प्रदर्शित हो सकी। फिल्म तो पिटनी ही थी सबसे बड़ा नुकसान उसकी गुणवत्ता को हुआ। जगह-जगह कथानक में बड़े-बड़े गैप नजर आने लगे। इन सब कारणों से सम्पादक चाहते हुए भी फिल्म को सुधार नही पाता है अच्छे निर्माता तो दुबारा शूटिंग कर लेते हैं लेकिन उससे भी फिल्म की गुणवत्ता तो प्रभावित होती ही हैं। हलवे मे एक बार नमक डाल दिया जाय तो कितनी भी शक्कर डालते रहो वह मजा नहीं आ पाता है, यही हाल पैंबंद लगी फिल्मों का होता है।

4.4 प्रासंगिकता से हटने पर

प्रासंगिकता का सबसे बड़ा असर पड़ता है फिल्म के गानों, फाइटों और फिल्म पर। इन दोनों की सिचुऐशन बड़ी सोच-समझ कर निकालनी पड़ती है। सिचुऐशन उपयुक्त नहीं होने पर दर्शकगण ऊब कर बीड़ी पीने चले जाते हैं।

कई बार ऐसा भी होता है कि लोगों के ऊब जाने पर उन दृश्यों को काटना भी पड़ जाता है। उदाहरण के लिए बी.आर. चोपड़ा की फिल्म 'हमराज' में भारी खर्चा करके एक गाना मुमताज और सुनीलदत्त पर फिल्माया गया था। मगर फिल्म रिलीज होने पर दर्शकों ने उसे हूट कर दिया। यह स्थिति कई जगहों पर रही तब उस गाने को फिल्म से निकाल देना पड़ा। ऐसे बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं जिससे यह तथ्य साफ होता है कि हर चीज अपनी-अपनी जगह पर ही ठीक लगती है। बहुत बार संगीतकारों, हीरो, हीरोइनों या अन्य पात्रों के कहने पर कोई गाना रिकार्ड करके फिल्मा लिया जाता है, मगर फिल्म के संपादन के वक्त उस गाने को फिल्म में लगाने के लिए कोई उपयुक्त जगह ही नहीं मिलती। नतीजा यह होता है कि या तो उस फिल्मी गाने को लगाया ही नहीं जाता अथवा लगाने के बाद जनता की फरमाइश पर उसको काटना पड़ जाता है। ऐसे दौर में अक्सर निर्माता का बड़ा नुकसान होता है।

शम्मी कपूर की फिल्म ''ब्रह्मचारी'' में एक गाना दर्शकों ने देखा होगा, सराहा भी होगा, बोल हैं उस गाने के 'आजकल तेरे मेरे प्यार के चर्चे हर जुबान पर सबको खबर हो गई.....।' वस्तुस्थिति यह है कि यह गाना उसी निर्माता की पहले बनी फिल्म के लिए रिकार्ड किया गया था, संगीतकार शंकर-जयकिशन के कहने पर, मगर निर्माता ने उसको फिल्माया नहीं। ब्रह्मचारी के वक्त शम्मीकपूर और मुमताज के प्यार के चर्चे फिल्मी दुनिया और फिल्म के दर्शकों में बहुत जोरों से हो रहे थे। उसका फायदा उठाकर निर्माता ने उस गाने को ब्रह्मचारी में डाल दिया। वह गाना हिट हो गया। कई बार यह भी देखने को मिला होगा कि गाना ग्रामोफोन रिकार्ड में तो है पर फिल्म में नहीं है। इसकी वजह सिर्फ यह होती है कि गाना तो रिकार्ड हो जाता है मगर उसके लिए फिल्म में कोई उपयुक्त स्थिति नहीं मिल पाती। गाना रिकार्ड करते वक्त ऐसा लगता है कि यह गाना हिट हो जाएगा इसलिए रिकार्ड तो कर लिया जाए। फिर कहानी में इसके लिए उपयुक्त स्थिति बाद में बनाते रहेंगे। लेकिन बाद में पता लगता है कि कथा और पटकथा में ऐसी कोई जगह ही नहीं है कि उस गाने को लगाया जा सके। इस तरह ठूंसा गया गाना न तो दर्शकों को भाता है न ही कथा को ही गति और बल दे पाता है। अच्छे संपादक हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि फिल्म में अप्रासंगिक गाना नहीं आ पाए। इसके अलावा अच्छे संपादक इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि मध्यांतर पर गाना नहीं रखा जाए, क्योंकि मध्यांतर आते-आते दर्शक बीड़ी पीने, चाय पीने लगते हैं और गाने का सारा मजा ही किरकिरा हो जाता है। गाने वैसे फिल्म की पटकथा स्थिति को देखते हुए ही लिखवाए जाते हैं, मगर सुप्रसिद्ध निर्माता एस. मुखर्जी (शशधर मुखर्जी) इसके अपवाद हैं। मुखर्जी मोशाय बहुधा यह किया करते कि फिल्म के संगीत निर्देशक को बिठाकर गाने तैयार करवाया करते थे। गाने पसंद आ जाने पर उन्हें वे तुरंत रिकार्ड भी करा लेते। इसके बाद कथा तथा पटकथा लेखकों को वे गाने सुनवाकर कहा करते थे कि गानों के आधार पर आप अपनी पटकथा तैयार कीजिए।

फिल्म के प्रारकंभ में भी आम तौर पर कोई गाना नहीं रखा जाता है। शुरू में सम्पादन थोड़ी लूज रही है, ताकि दर्शकों के आने तक कोई महत्वपूर्ण प्रसंग और गीत निकल नहीं जाए। दर्शक उसका आनंद लेने से वंचित नहीं रह जाए। उदाहरण के लिए अगर प्रारंभ में गाना रखना है तो उसके लिए हीरो या हीरोइन को आते हुए, इंतजार करते हुए दिखाया जाएगा। उसके बाद गाना फिल्माया जाएगा। अगर फाइट लेनी है तो थोड़े मोटर, बाइसिकल आदि के कई सारे शॉट् लिए जायेंगे। यही बात एक्शन पर भी

लागू होती हैं। यदि वे प्रासंगिक नहीं हैं तो दर्शक को मजा ही नहीं आएगा।

मध्यांतर हमेशा ऐसी जगह किया जाता है, जहाँ लोगों की उत्सुकता बनी रहे कि आगे क्या होगा और वह बीड़ी पीना, चाय पीना, छोड़कर वापिस आ बैठे। मध्यांतर हमेशा उत्सुकता बनाए रखने वाला होना चाहिए। कहानी का वह अंश सस्पेंस वाला रहना चाहिए। मध्यांतर के बाद जब फिल्म शुरू होती है तब भी फिल्म का संपादक इस बात का ध्यान रखता है कि फिल्म कुछ लूज रहे। कुछ शॉट्स ऐसे रखे जिन्हें दर्शक नहीं भी देख पाएं तब भी उसका काम चल सके। उसका महत्वपूर्ण भाग नहीं निकलना चाहिए। इसी तरह फिल्म के अंत में जब हीरो-हीरोइन का मिलाप हो जाए उसके बाद कोई दृश्य रखना बेमानी भी होता है। ऐसे वक्त में हीरो-हीरोइन के किसी पुराने गाने की ही एकाध लाइन दोहरा दी जाती है। पर इस सिद्धान्त का भी एक बहुत बड़ा अपवाद है। एस.एस.एस. नायडू की पक्षीराज के बैनर पर बनी फिल्म 'आजाद' जिसमें दिलीप कुमार हीरो और मीनाकुमारी हीरोइन थी, में फिल्म में मुख्य खलनायक के मर जाने के बाद भी फिल्म कई रीलों तक चलती रही और मीनाकुमारी पर तीन गाने फिल्माए गए थे। इस सारे कथ्य का मकसद यह बतलाना था कि दिलीप कुमार के माँ-बाप कौन हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इसके बाद भी फिल्म हिट हो गई। इसका शायद एक कारण यह सुप्रसिद्ध गाना ''अपलम चपलम चपलाई रे दुनिया को छोड़ तेरी गली आई रे'' रहा होगा।

4.5 प्रासंगिकता क्या है ?

जब फिल्म बनाने के लिए कहानी पसन्द कर ली जाती है तब पटकथा लेखकों को पटकथा लिखने के लिए बिठलाया जाता है। पटकथा लेखक कहानी की थीम को ध्यान में रखते हुए पटकथा तैयार करेंगे। अच्छी पटकथा के बारे में यह कहा जाता है कि जिस पटकथा में सीन में से सीन निकले और पटकथा बहती हुई नदी की तरह प्रारम्भ से अन्त तक पहुँच जाए वही अच्छी होती है। यह तभी संभव होता है कि सीन के बाद सीन जो भी लिखे जाएं-एक दूसरे के बारे में प्रासंगिक हों। जैसे पटकथा लेखक प्रारम्भ में यह बतलाता है कि नायक या नायिका बड़ी तेजी से घोड़ा या गाड़ी सेभागते हुए जा रहे हैं और वह अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचते हैं और दूसरे सीन में यह दिखलाया जाता है कि उसकी मां या उसका बाप बहुत बीमार है तब दर्शक के मन में यह भावना आएगी कि उसका तेजी से कार भगाना या घोड़ा भगाना उचित था। नायक के घर जा पहुंचने

पर अगर यह दिखाया जाए कि घर बिल्कुल खुशहाल है तो उसका तेज रफ्तार से घोड़ा या कार भगाना बेमानी हो जाएगा, मगर चरित्र-चित्रण करने के लिए कि हीरो या हीरोइन समय से ज्यादा तेज (फास्ट) हैं तो वह दृश्य प्रासंगिक हो जाएगा। जैसे हृषिकेश मुकर्जी द्वारा बनाई गई एक फिल्म में देव आनन्द बहुत तेजी से कार भगाता है, इतनी तेजी से कि नायक कभी भी दुर्घटना में फंस सकता है। उसका चरित्र उभारने के लिए यह दृश्य रखा गया था। जब कोई पात्र बहुत तेजी से गाड़ी भगाते हुए दिखलाया जाता है तो दर्शक पहले से ही अनुमान लगा देते हैं कि दुर्घटना अवश्य ही होकर रहेगी।

राजकपूर की फिल्म 420 में फिल्म की शुरूआत कुछ इस तरह की गई थी जिसमें वह पैदल-पैदल ''मेरी जूता है जापानी.... ''गाना गाते हुए चला जा रहा दिखाया जाता है। चलते-चलते एक गाड़ी को देखकर राजकपूर सड़क पर बेहोश पड़े रहने का नाटक करता है। गाड़ी जब उसके पास में आती है तब गाड़ी का मालिक उसे बेहोश पड़ा देखकर गाड़ी रोकता है और उसे उठाकर गाड़ी में लिटा लेता है। गाड़ी के चलते-चलते लेटे हुए राजकपूर को कुछ खुराफात सुझती है तो वह गाड़ी के मालिक प्रसिद्ध चरित्र अभिनेता नीमो की बेटी बनी इन्द्रा बिल्ली के साथ छेड़खानी करने लगता है। नीमो उसे सड़क पर उतार कर गाड़ी लेकर चला जाता है। कैमरा उसकी गाड़ी के पीछे लगी नम्बर प्लेट पर अटक जाता है। जिस पर लिखा हुआ था 420 राजकपूर के मुँह से अनायास ही निकल जाता है श्री 420। इसके साथ ही फिल्म के टाइटल शुरू हो जाते हैं। यह सारे दृश्य फिल्म में रखने के मुख्य कारण थे राजकपूर का चरित्र-चित्रण करना। फिल्म के मुख्य खलनायक को स्थापित करके टाइटिल की शुरूआत करना। इन तीनों कारणों से यह सारी की सारी दृश्यवाली प्रासंगिक बन गई थी।

इसके विपरीत जब कोई पटकथा लेखक अपने अलग-अलग कथ्य कहे जिनका आपस में कोई तालमेल नहीं हो तो सारी पटकथा अप्रासंगिक बनकर रह जाएगी।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि शूटिंग के दौरान हुई गड़बड़ियों की वजह से फिल्म की प्रासंगिकता बहुत गड़बड़ा जाती है। उसे सुधारने का काम सम्पादक का होता है। सम्पादक शूटिंग किए गए सीन को ऊपर-नीचे करता रहता है। फिल्म की अनवरतता को बनाए रखने की कोशिश करता रहता है। इसमें उसके सामने कई कठिनाइयाँ आती हैं जैसे ड्रेस की कन्टीन्यूटी की, कलाकारों की कन्टीन्यूटी की, संवादों का जोड़-तोड़ आदि-आदि। जिन दृश्यों में ड्रेस की कन्टीन्यूटी नहीं होती है उन सीनों को कहीं भी

लगाने से कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। मगर एक कलाकार घर से एक पोशाक में निकलता है और दूसरे सीन में वह अन्य पोशाक में प्रवेश करता है तो दर्शकों को यह दृश्य बहुत ही बुरा लगेगा। इन दोनों सीनों का आपस में तालमेल बिठलाने के लिए बीच में एक और सीन देना पड़ता है, जिसमें कलाकार को कपड़े बदलते हुए दिखलाया जाता है, लेकिन वह सीन कुल मिलाकर लम्बाई बढ़ाने वाला और निरर्थक होता है, मगर निर्माता लोग सामान्य रूप से नई शूटिंग करते नहीं हैं और इस नई शृंखला को वैसे ही चलने देते हैं यह सोचकर कि दर्शक यह गलती को कहाँ पकड़ पाएगा।

एक फिल्म बनी थी 'जादूमहल' इसमें हीरो विलेन के साथ आकाश में फाइट करता है। उसमें उसने एक ड्रेस पहन रखी थी। विलेन द्वारा उसे नीचे फेकने पर जब हीरो पृथ्वी पर आने लगता है, आकाश में तब दूसरी ड्रेस में और पृथ्वी पर गिर जाता है तब तीसरी ड्रेस में था। नगर निर्माता ने इतनी बड़ी गलती को भी दुरूस्त करने की जरूरत नहीं समझी। ऐसी गलतियाँ तो बड़ी-बड़ी फिल्मों में भी होती ही रहती हैं। कभी दाढ़ी के नमूने बदल जाते हैं, तो कभी मूंछों के। कभी लंगड़ाता पैर दायां तो कभी बायां हो जाता है। खैर इन गलतियों को तो सम्पादक दुरुस्त कर नहीं सकता। यह तो तभी ठीक हो सकती है, जब निर्माता दूसरी शूटिंग करे।

कुछ ही सम्पादक ऐसे हैं जो फिल्म के निर्देशक और निर्माता को नये सिरे से शूटिंग करने के लिए मजबूर कर सकते हैं। इसमें एक ऋषिकेश मुकर्जी भी हैं। उनको कोई गलती अखरी या सीन पसन्द नहीं आया तो वे नई शूटिंग करवा देते हैं, पर इधर कई सालों से उन्होंने फिल्मों में सम्पादन करना ही छोड़ दिया है।

4.6 प्रासंगिकता कैसे बदलती है?

फिल्म - सम्पादकों और फिल्म निर्देशकों में अक्सर इस बात का झगड़ा चलता रहता है कि कौन-सा दृश्य, और कौन-सा शॉट कहाँ पर लगाया जाएगा, क्योंकि दृश्य या शॉट ऊपर-नीचे करने पर अक्सर उनका मूल अर्थ या मकसद ही बदल जाता है। जैसे एक दृश्य चल रहा है, जिसमें दो-तीन आदमी षड्यंत्र रच रहे हैं और कोई एक अन्य आदमी उनकी बातें सुन रहा है, तब इस दृश्य का कई तरह से ट्रीटमेन्ट किया जा सकता है। **पहला-**सुनने वाला पात्र आ रहा है और उसको कुछ लोग बातचीत करते हुए दिखलाई पड़े। उनकी बातें सुनने के लिए वह आदमी छिपकर खड़ा हो जाता है। उनकी बातें खत्म हो जाने पर वह आदमी चला जाता है। अगर थोड़ा-सा शक षड्यंत्रकारियों

को करवाना है तो कोई पर्दा हिलता हुआ या चलते-फिरते व्यक्ति की जूतों की आवाजें डाली जा सकती हैं।

दूसरा-षड्यंत्रकारी बातें कर रहे हैं। इसमें एक या दो शॉट बीच में किसी के सुनने के लिए डाले जा सकते हैं। इसका मतलब यही होगा कि वे आदमी आपकी बातें सुन रहे हैं। **तीसरा-**षड्यंत्रकारियों की पूरी बातें खत्म होने के बाद कैमरा पैन करके यह दिखाया जा सकता है कि कोई आदमी छिपकर उनकी बातें सुन रहा था। ये तीनों ही ट्रीटमेन्ट प्रासंगिक हैं। इनमें से किसी एक को काम में लिया जा सकता है। अंतिम निर्णय सम्पादक का रहेगा कि वह कौन सा तरीका काम में ले। मगर षड्यंत्रकारियों की बातों के बीच किसी आदमी या किसी पात्र को आकर, खड़े होकर सुनना अप्रासंगिक हो जाएगा क्योंकि इसका मतलब यह निकलेगा कि उस पात्र ने सिर्फ ये बातें सुनी जो उसके आने के बाद हुई। अगर डायरेक्टर सिर्फ यही दिखलाना चाहता है कि उस आदमी ने सिर्फ षड्यंत्र का थोड़ा ही हिस्सा सुना तो यह ट्रीटमेन्ट उचित होगा।

प्रासंगिकता को इस तरह भी समझा जा सकता है कि जैसे एक घोड़ा भाग रहा है और उसके पीछे उसे पकड़ने के लिए कुछ लोग भाग रहे हैं तो पहले घोड़े के शॉट और पीछे भागने वालों के शॉट डालने पड़ेंगे। मगर सम्पादक ने उस दृश्य को ऐसे सम्पादित कर दिया कि सवार लोगों का शॉट पहले लग गया और अकेला घोड़ा आगे जाने वाले सवारों का पीछा कर रहा है तो समूचे सीन का अर्थ ही बदल जाएगा। यहाँ यह मतलब निकलेगा कि घुड़सवार आगे वाले सवारों का पीछा कर रहा है। पर ऐसी भूलें आम तौर पर नहीं होती। क्योंकि फिल्म पटकथा में यह स्पष्ट किया रहता है कि किस दृश्य में क्या-क्या हो रहा है और कभी जरूरत पड़े तो फिर शूटिंग को ऊपर-नीचे सम्पादित किया जा सकता है। यह उदाहरण सिर्फ पाठकों को समझाने के लिए दिए गए हैं। इसी दृश्यों को अपने क्रम से हटाकर उनकी जगह दूसरा क्रम बनाना अर्थ ही बदल देता है। जैसे हीरो-हिरोइन के मिलने के बाद उनका प्यार हुआ और प्यार की परिणति शादी में हुई। तब शादी का शॉट सारे प्यार-प्रसंग हो जाने के बाद लगेगा मगर उनकी शादी का शॉट पहले लगा दिया गया तब ऐसा लगेगा कि प्यार प्रसंग जो भी हैं वे सब शादी के बाद के हैं। इस तरह से अर्थ ही बदल जाता है। इस गलती को दुरूस्त करने के लिए फिर कोई तरकीब लगानी पड़ती है और शादी के शॉट के बाद जो प्यार प्रसंग के शॉट लगेंगे उनको फ्लैश-बैक की तरह ट्रीट किया जाएगा। कभी-कभी कथा को सीधे-सीधे फिल्मा लिये जाने के बाद समझ में आती है कि अच्छा यह रहेगा कि फिल्म को

शादी के दृश्य से शुरू किया जाए। अतएव शादी का दृश्य पहले लगा दिया जाएगा। अब यह समस्या खड़ी हो जाएगी कि बाकी के दृश्य कैसे लगाए जाएं। इसके लिए सुहागरात के सीन में हीरो-हीरोइन के कुछ संवाद डालकर कथा कुछ इस तरह शुरू की जाएगी कि हीरो-हीरोइन कैसे मिले? उनका प्यार-किन-किन धरातलों में गुजर कर शादी में परिणति तक आया। उन दृश्यों को यहाँ आवृत्त किया जाएगा जिनमें प्रसंग की वे स्थितियां स्पष्ट हों।

सम्पादक कौन-कौन चलते हुए शॉट नहीं काटेगा-

- चलती हुई ट्राली
- जूम शॉट
- क्रेन वाले शॉट

इन तीनों शॉटों को नहीं काटने का कारण एक ही है कि ऐसे शॉट काटने से फिल्म में जर्क आएगा इसलिए उन शॉटों को चलते हुए काटने की जगह बनाने के लिए दो तरीके निर्देशक के पास होते हैं। शॉट के बाद दूसरी भी ट्राली या जूम शॉट है तो उसको काटने में कोई कठिनाई नहीं होगी। दूसरा तरीका यह है कि चलती ट्राली या जूम शॉट में जहाँ-जहाँ दूसरे शॉट डालते हैं, वहाँ-वहाँ मार्क करके कैमरे को रोक दिया जाए यानी ट्राली या जूम चलते - चलते रूक जाएगा और फिर जाने के बाद फिर चालू हो जाएगा। सम्पादक की कैंची वहीं पर चलेगी जहाँ ट्राली या जूम रुके हुए हैं। क्रेन शॉट तो काटने का सवाल नहीं उठता मगर उस शॉटों में भी जहाँ-जहाँ क्रेन रुकी है, वहाँ-वहाँ काटकर दूसरे शॉट लगाए जा सकते हैं।

4.7 टेम्पो और मोन्टाज

प्रासंगिकता के बाद संपादक का दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व है टेम्पो का ध्यान रखना। टेम्पो का अर्थ है कथा प्रवाह यानी कहानी की गति की तीव्रता। वास्तव में कहानी की गति इस पर निर्भर करती है कि कम से कम लंबाई में अधिक-से-अधिक दृश्य हों और अधिक-से-अधिक कहा जाए यानी गागर में सागर भरने वाली बात की जाए। पर यह तभी संभव है जब सीन छोटे-छोटे हों। पहले जब पूरी फिल्म में 60-70 सीन होते थे, तब फिल्म की लंबाई पूरी करने के लिए सीन लंबे लिखने पड़ते थे और एक्शन तथा फाइट भी लंबे रखने पड़ते थे। एक जमाना था जब फाइट की लंबाई 500-1000 फीट तब भी रखी जाती थी। ऐसी सूरत में कथानक की गति धीमी ही रहती थी आजकल 15000 फीट की एक फिल्म में सौ से अधिक सीन रखे जाते हैं। ऐसे में न तो सीन

लंबे लिखे जा सकते हैं और न ही फाइट व एक्शन ही लंबे रखे जा सकते हैं। फाइट व एक्शन सीन का तो यह हाल है कि उनकी लंबाई 100-150 फीट से ऊपर नहीं रखी जाती। मेरी फिल्म 'गोल्डन आइज' में कुछ फाइटों की लंबाई 60-100 फीट के अन्दर ही थी। ऐसी सूरत में फिल्म की गति तो स्वतः ही बढ़ जाती है।

आजकल फिल्म संपादन की तकनीक में काफी परिवर्तन आ गया है और जब तक अत्यावश्यक नहीं हो फिल्म कट-टू-कट ही संपादित की जाती है यानी डिजाल्व, फेड आउट, वाइप आदि का प्रयोग नहीं किया जाता, सीन का टर्न ओवर और सिर्फ संवादों और इमेजेज के जरिए ही मिला लिया जाता है। इससे भी फिल्म की लंबाई में काफी बचत हो जाती है। एक सुविधा और है कि संपादक इस प्रक्रिया में शुरू व अंत के फालतू संवाद आसानी से काट सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि फिल्म की गति में तीव्रता लाने का काम संपादन की प्रक्रिया में तय होता है, पर हर फिल्म में गति की तीव्रता एक सी नहीं रखी जा सकती। टेस्ट फिल्मों, जिन्हें आजकल एक्शन ड्रामा कहा जाता है, की गति सामाजिक फिल्मों की गति से तेज होगी। सामाजिक, चरित्र, प्रधान, धार्मिक, पौराणिक, संत पुरुषों के जीवन पर बनी फिल्में सभी की अपनी-अपनी गति रखी जाती है। भावनात्मक सीन की गति तेज रखने पर वे बेअसर हो जाते हैं। यह सब परिस्थितियाँ संपादक के हाथ बांध कर रखती है।

फिल्म मे टेम्पो लाने की जरूरत इसका व्यावहारिक प्रयोग पहली बार प्रसिद्ध रूसी निर्देशक सर्जी ने अपनी फिल्म ''बेटलशिप पटोमाफिन' में किया था। फिल्म 1905 की रूसी क्रांति में एक नौसैनिक जहाज पर हुई क्रांति पर आधारित थी। इसे 1917 की रूसी क्रांति की सफलता के बाद मनाया गया था। इस फिल्म की गति की तीव्रता ने फिल्म जगत में एक क्रांति ला दी थी और दूसरे निर्देशकों ने इसका अनुगमन किया। सर्जी इसेन्सटिन ने उस प्रक्रिया को मोन्टाज कहा था। इस रूसी शब्द का अर्थ है टेम्पो यानी तीव्र गति। पहले पहल मोन्टाज शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था। मगर धीरे-धीरे इसका अर्थ संकुचित और लाक्षणिक हो गया। टेम्पो पूरी फिल्म की गति के लिए काम में लिया जाने लगा और मोन्टाज कतिपय घटना विशेष की गति के लिए प्रयुक्त होने लगा।

4.8 फ्लैश बैक तकनीक

मोन्टाज दो किस्म के होते हैं, लेकिन उन दोनों किस्मों को फिल्माने का तरीका तकरीबन एक ही है। पहली प्रक्रिया में कई सारे छोटे-छोटे दृश्य जो एक ही श्रृंखला के हों, उनको अलग से फिल्माया जाता है और फिर श्रृंखला को संपादित कर दिया जाता

है। जैसे एक बच्चे को बड़ा होता हुआ दिखलाने के लिए उसको पालने में झुलाना, थोड़ा बड़ा बताकर खिलौनों से खेलता दिखाना, उसके बाद स्कूल जाते समय सह उम्र के मित्रों के साथ खेलते और अंत में कालेज जाते बतलाना आदि। यह मोन्टाज की एक श्रृंखला बन जाती है।

दूसरी प्रक्रिया में जब एक शॉट या एक दृश्य के ऊपर कई सारे दृश्य सुपर इम्पोज कर दिए जाते हैं तब भी उसे मोन्टाज ही कहा जाता है। उदाहरण के लिए डाकू लोग किसी गांव को लूट रहे हैं तो डाकू या खलनायक के चेहरे के क्लोज अप पर लूटपाट के दृश्य सुपरइम्पोज कर लिए जाते हैं।

फ्लैश बैक क्या है?

फिल्म की कथा को कहने के लिए निर्देशकों के पास कई तकनीकें उपलब्ध हैं। फिल्म का कथानक कहीं से भी शुरू किया जा सकता है और पूर्व कथानक बाद में फिल्माया जा सकता है। इस तकनीक को फ्लैश बैक कहते हैं। सम्पादक को इस प्रक्रिया में कुछ खास नहीं करना होता है। फ्लैश बैक के दृश्यों को सम्पादित करके उनको अपनी जगह डाल देना होता है। जहाँ फ्लैश बैक डाला जाता है वहाँ पर उसके पूर्व दृश्य में ऐसा संकेत दे दिया जाता है कि वहाँ फ्लैश बैक आएगा या संकेत संवाद, कैमरे को पात्र के क्लोज पर ले जाकर दिया जाता है। यही फ्लैश बैक तकनीक किसी याददाश्त को वापिस लाने के लिए भी काम में ली जाती है। जिन लोगों ने राजकपूर की फिल्म आवारा देखी होगी, उन्हें याद होगा कि यह समूची फिल्म फ्लैश बैक में ही बनाई गई थी। राजकपूर पर हत्या के मुकदमे से फिल्म की शुरूआत हुई थी। वकीलों की बहस के दौरान राजकपूर की वकील नरगिस ने राजकपूर की दास्तान फ्लैश बैक में सुनाना चालू की जो फिल्म के अंत तक कुछ दृश्यों को छोड़कर चलती रही।

फ्लैश बैक की कठिनाइयाँ

फ्लैश बैक की अपनी कई कठिनाइयाँ होती हैं। पहली तो यह कि तय करना कि कथा को फ्लैश बैक में कहना ठीक रहेगा या नहीं। सम्पादक इस प्रश्न पर निर्देशक और निर्माता से विचार-विमर्श करने के बाद तय करेगा कि फिल्म का अमुक हिस्सा फ्लैश बैक में डाला जाए या नहीं। अगर यह तय हो गया कि फ्लैश बैक रखना है तो उसकी जगह बनाकर फ्लैश बैक डाल दिया जाएगा अन्यथा वे दृश्य फिल्म के प्रारंभ में डाल दिये जायेंगे।

दूसरी कठिनाई यह आती है कि फ्लैश बैक फिल्म के कथानक में डालना सर्वाधिक प्रभावी रहेगा। यह जरूरी नहीं है कि पटकथा में जहाँ फ्लैश बैक रखा गया था, सम्पादक उस फ्लैश बैक को वहीं रखे। उचित कारणों से सम्पादक भी एक फ्लैश बैक को दूसरी जगह भी रख सकता है, जहाँ वह अधिक मौजूं हो।

तीसरी कठिनाई लेखक के सामने आती है, वह यह कठिनाई कि जो बात किसी पात्र के सामने घटित नहीं हुई हो जिसके बारे में किसी ने उसे बताया नहीं हो उसे वह और किसी को कैसे बतलाएगा। ऐसा करना स्वाभाविक नहीं लगेगा। मगर फिल्म वाले इस नियम की अवहेलना करते हैं। स्वयं राजकपूर की फिल्म ''आवारा'' में यह भूल हुई थी, जो फिल्म को देखते वक्त दर्शकों को अखरती भी है। फिल्म में राजकपूर की दास्तान लेखक ने राजकपूर से नहीं कहकर नरगिस से कहलवाई। इस वजह से कई ऐसे प्रसंग फिल्म में थे तो नरगिस द्वारा कहे जाने के कारण उचित नहीं लगते थे। जैसे राजकपूर द्वारा देखा गया दुःस्वप्न जिसके बारे में नरगिस को किसी तरह का अनुमान भी नहीं हो सकता था। इस फिल्म के लेखक ख्वाजा अहमद अब्बास थे। इसके विपरीत राजकुमार कोहली की फिल्म ''नागिन'' में रीनाराय और जितेन्द्र (इच्छाधारी नाग एवं नागिन की भूमिका में) के प्रेम प्रसंग जितेन्द्र के मरने के उपरान्त कई जगह उनको दो गानों के टुकड़ों में डाले गये थे। इन बिखरे हुए दृश्यों ने समूची फिल्म को एक लड़ी में बांध रखा था और फिल्म को बड़ा सम्बल दिया था, वरना कथा बिखरी हुई थी क्योंकि एक नागिन को अपने मरे पति या प्रेमी के सात हत्यारों से अलग-अलग बदला लेना था।

इस तकनीक का और कई प्रसंगों में प्रयोग किया जाता है जैसे किसी को बार-बार किसी एक दुःखद घटना की याद दिलाती हो। मान लीजिए किसी एक परिवार के कई सदस्यों की हत्या एक साथ कर दी जाती है और उस परिवार का एक बच्चा इस घटना को छिप कर देख रहा है। वह उन हत्यारों को भी अच्छी तरह देख लेता है तथा मन ही मन यह निश्चय करता है कि वह इनसे बदला लेगा। इस स्थिति में इस घटना का पुनरावलोकन कराया जाता है। इसके दो कारण होते हैं- पहला तो यह है कि बदला लेने वाले पात्र को बार-बार याद आये कि उसे बदला लेना है। दूसरी यह कि उसकी याददाश्त में हत्यारों की पहचान बनी रहे ताकि वह किसी गलत शख्स से बदला नहीं ले बैठे।

एक और सूरत में इस तकनीक का चयन किया जाता है। कई फिल्मों में हीरो-हीरोइन अपनी याददाश्त किसी कारणवश खो बैठते हैं और वैसी ही परिस्थितियाँ वापस

उपस्थित होने पर उनकी याददाश्त अचानक ही वापिस आ जाती है। वह दिखलाने के लिए कि उनकी याददाश्त वापस आ जाती है, बीती हुई घटनाएँ वापस दोहराई जाती हैं। रेण्डम हार्वेस्ट नामक सुप्रसिद्ध अंग्रेजी फिल्म पर आधारित बनी कई एक हिन्दी फिल्मों में यह तकनीक अपनाई गई थी।

अपराध और सस्पेंस में दर्शकों को भुलावे में रखने के लिए बहुत से दृश्य दिखाये नहीं जाते सिर्फ उनका परिणाम ही दिखलाया जाता है। किसने हत्या की यह भी शेडो में रक्खा जाता है, मगर जब अंत में अपराधी पकड़ा जाता है तब निर्देशक साफ-सफाई देने के लिए ही कथा को दिखाता है। इस तकनीक का सबसे अच्छा उदाहरण राज खोसला की फिल्म ''वो कौन थी'' में मिलता है। फिल्म के क्लाइमेक्स में खलनायिका साधना (जो डबल रोल में थी) के मरने के बाद जब खतरनाक प्रेम चोपड़ा पकड़ा जाता है, उसके बाद पुलिस अधिकारी राज मेहरा फिल्म की गुत्थियाँ खोलता है। यह फ्लैश बैक में ही दिखलाया जाता है। यह खुलासा काफी लम्बा हो जाता है और दर्शकों को बोर भी करता है, मगर निर्देशक और सम्पादक के पास इसके अलावा कोई चारा भी नहीं होता। कई बार जवाब बहुत सारे प्रसंगों का खुलासा या तो छूट जाता है या दिया नहीं जाता। जैसे 'वो कौन थी' में इस बात का कोई खुलासा नहीं दिया गया कि मनोक कुमार की गाड़ी के वाइपर अपने आप कैसे चलने लग गये थे। ऐसी गलतियाँ लेखक की भी हो सकती है और संपादक की भी, एक बात ध्यान में रखने की है कि शूटिंग करते वक्त जो सीन बाद में दिखलाने हैं वे भी सेटों के हिसाब से एक साथ कर लिए जाते हैं। बाद में सम्पादन के दौरान अपनी जगह डाले जाते हैं।

4.9 फ्लैश फार्वर्ड और ड्रीम सीक्वेन्स तकनीक

जिस तरह फिल्मों में फ्लैश बैक का अपना महत्व है उसी तरह फ्लैश फार्वर्ड का भी उतना ही महत्व है। हालांकि फ्लैश बैक की तरह फ्लैश फार्वर्ड का प्रयोग दिखाई कम पड़ता है। जब कभी कोई पात्र एक काम कर गुजरता है और उससे होने वाले प्रभाव के बारे में चिन्तन करता है, तो उसे दिखलाने के लिए दृश्यावली फिल्माई जाती है, उसी को फ्लैश फार्वर्ड कहते हैं।

जिन लोगों ने हॉलीवुड के सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक अल्फ्रेड हिचकॉक की फिल्म 'साइको' देखी होगी उनको अवश्य ही यह बात याद होगी कि फिल्म के प्रारम्भ में एक लड़की, जिसने एक बैग में चोरी की है, गाड़ी में जाते हुए दिखाई गई थी। फिर यह

बतलाया गया था कि किस तरह उसकी चोरी पकड़ी जाती है। किस तरह उसका पीछा किया जाता है और किस तरह वह पुलिस वालों की गिरफ्त में आती है। हालांकि वह पकड़ी नहीं जाती और एक होटल में उसका खून कर दिया जाता है। उस चोर लड़की द्वारा चोरी का परिणाम सोचा जाना फ्लैश फार्वर्ड था।

ऐसे दृश्यों को सम्पादित करने में कोई विशेष किस्म की तकनीक अपनाने की जरूरत नहीं पड़ती। सिर्फ यही कि लिए हुए दृश्यों को ठीक से सम्पादित करके अपनी नियत जगह पर लगा देना भर होता है। अब सम्पादन के वक्त सम्पादक कितना चमत्कार कर सकता है, यह उसकी कुशलता पर निर्भर करता है।

फ्लैश फार्वर्ड की शुरूआत आमतौर पर उसके क्लोजअप से की जाती है, जो अपने काम के परिणाम सोच रहा है और अन्त भी उसके क्लोजअप से ही करना पड़ता है। यह क्लोज अप उन परिणामों के प्रभावित होता दिखलाया जाता है। फ्लैश फार्वर्ड की तकनीक कोई नई नहीं है। कोई 50 वर्ष पहले बंगाल में बनी पृथ्वीराज कपूर की एक फिल्म देखी थी, जिसका नाम था, 'मिलाप'। इस फिल्म में पृथ्वीराज के अलावा उसके साथ हीरोइन थी एमर्लिन। साथ ही उसकी बहिन (पृथ्वीराज की) की भूमिका में अपने जमाने की मशहूर हीरोइन विमला थी। पृथ्वीराज कपूर एक ऐसे वकील थे, जिनके पास कोई काम नहीं था, शहर में इस बेकारी की स्थिति में उनका रोमांस एमर्लिन से हो जाता है, जो काफी खर्चीला रहता है। पृथ्वीराज ऐसी सूरत में कहीं डाका डालने की संभावनाओं पर सोचता है, साथ ही में वकील होने के नाते यह भी सोचता है कि उसका परिणाम क्या होगा। अन्त में वह डाका डालने का विचार त्याग देता है। इस दृश्य को सम्पादित करते वक्त इस बात का ध्यान रखा गया था कि पूरी दृश्यावली चमत्कारिक रूप में रखी जाए। पूरा सीक्वेंस जब तक चलता रहा दर्शकों को यही लगता रहा कि पृथ्वीराज ने वास्तव में डाका डाल दिया है और अब उसका परिणाम भुगत रहा है। सीक्वेन्स समाप्त होने के बाद दर्शकों को यह आभास होता था कि पृथ्वीराज दिवास्वप्न देख रहे थे। यह फ्लैश फार्वर्ड फिल्म बड़ा ही खूबसूरत दृश्य बन पड़ा था।

ड्रीम सीक्वेन्स

हिन्दुस्तानी फिल्मों में जब से 'आवारा' का ड्रीम सीक्वेन्स हिट हुआ उसके बाद से फिल्मों में ड्रीम सीक्वेन्सों की बाढ़ सी आ गई। उसके तुरन्त बाद प्रदर्शित होने वाली फिल्मिस्तान की फिल्म 'नागिन' में भी उतना ही खूबसूरत ड्रीम सीक्वेन्स फिल्माया गया

था। आमतौर पर ड्रीम सीक्वेन्स में हीरो-हीरोइन पर कोई गाना फिल्माया जाता है। दुःस्वप्न भी दिखलाना हो तब भी निर्माताओं, निर्देशकों की कोशिश यही रहती है कि उसमें भी कहीं न कहीं गाना आ ही जाए। जैसे 'आवारा' तथा 'नागिन' के दुःस्वप्न वाली स्थितियों में भी तीन-तीन गाने फिल्माए गए थे। आवारा में राजकपूर सोते वक्त दुःस्वप्न देखता है और नागिन में सांप काटने से मरने के उपरान्त हीरोइन वैजयन्तीमाला की आत्मा नरक में भटकती रहती है।

ड्रीम सीक्वेन्स, फ्लैशबैक और फ्लैश फार्वर्ड में फर्क करना जरूरी है। जहाँ फ्लैश-फार्वर्ड जागृत अवस्था में दृश्यों में ही फिल्माए जाते हैं, वहीं ड्रीम सीक्वेन्स निद्रित अवस्था के भाग हैं। ड्रीम सीक्वेन्स फिल्माने और सम्पादित करने के दो तरीके हैं।

पहली तकनीक हैं-हीरो, हीरोइन या दोनों को स्वप्न आ रहा है, यह दिखलाने के लिए यह जरूरी है कि दोनों को नींद में सोता हुआ दिखलाया जाए। कैमरा जूम करके या ट्रॉली से उनके फेस पर जाता है। उसके बाद सम्पादन के वक्त उन क्लोज अप पर ऑप्टीकल प्रिंटिंग से गोल घूमता हुआ एक इन्द्रधनुषी चक्रवात डाल दिया जाता है जिससे दर्शकों को यह लगे कि हीरो या हिरोइन सपना देखेंगे। स्वप्न समाप्त होने पर जब हीरो या हीरोइन पर कैमरा वापिस आएगा तब वे नींद में से अचानक उठ बैठेंगे और उसके चेहरे पर वो भाव दर्शाये जाएंगे जो स्वप्न के अनुकूल हैं। अगर स्वप्न उनके मनोनुकूल था तो वे उसकी मधुर स्मृति संजोये रहेंगे और सपना अगर उसके विपरीत हुआ तो चेहरे पर वैसे भाव रहेंगे। कभी-कभी स्वप्न ऐसा भी दिखाया जाता है कि हीरो-हीरोइन के बीच में खलनायक आ गया है। हीरो को मारपीट या खून करके हीरोइन को पकड़कर ले जाता है तब हीरो या हीरोइन एक जोर की चीख के साथ जग जाएंगे। अगर थोड़ी-सी वास्तविकता का पुट दिया गया हो तो हीरो के चीखने के साथ ही उस हीरोइन की चीख भी सुनाई पड़ेगी और यह दिखलाया जाएगा कि वास्तव में खलनायक हीरोइन को उठाकर ले जा रहा है। ऐसे दृश्य आने वाली घटनाओं का पूर्वाभास दिलाने के लिए भी निर्देशक कर लेता है कि सपने को वास्तविक रूप से घटित होते दिखलाये और अन्त में बताए कि वो सपना था।

दूसरी तकनीक में हीरो-हीरोइन को सोते हुए दिखलाया जाएगा और यह दिखलाया जाएगा कि उसकी आत्मा शरीर त्याग कर बाहर किसी खूबसूरत जगह पर पहुँच गई है। इसी तरह हीरोइन की आत्मा को भी शरीर से बाहर जाते हुए दिखलाया जाएगा। ये दोनों आत्माएं मिलकर के जो दृश्य करना हो या गीत गाना हो वैसा करेंगे

और अन्त में हीरो-हीरोइन को उसी मूड में जागते हुए दिखलाया जाएगा।

4.10 मानसिक कुँठाएं और उनका फिल्मांकन

बहुत वर्षों पहले मशहूर सस्पेंस फिल्मों के निर्देशक अल्फ्रेड ने एक फिल्म बनाई थी। जिसका नाम था- 'स्पैला का ठण्ड' जिसमें ग्रेगरी पैक हीरो थे, जो एक बहुत ही दुःसाध्य मानसिक कुण्ठा से ग्रस्त थे। हीरोइन थी इन्ग्रिड वर्नामैन, जिन्होंने एक मानसिक चिकित्सक की भूमिका की थी। ग्रेगरी पैक के बचपन में खेल-खेल में उनके भाई की तीखी नोकदार दीवार (बाउण्ड्री वॉल) पर गिरकर मृत्यु हो जाती है। इससे ग्रेगरी पैक के दिमाग में यह बात गहराई तक बैठ जाती है कि भाई की मृत्यु का कारण वे स्वयं थे। धीरे-धीरे यह बात एक मानसिक कुण्ठा में परिणत हो जाती है पर जब भी वे या उनके सामने कोई भी शख्स लम्बी-लम्बी तीन लाइनें खींच देता या उसी तरह की कोई चीजें सामने आ जाती तब वे मानसिक परेशानी का भयंकर रूप से उद्वेलित हो जाया करते थे। इस स्थिति में उग्र और हिंसक भी हो जाते थे। ऐसे दौर में उन पर बड़ी मुश्किल से काबू पाया जाता था।

बाद में अल्फ्रेड हिचकॉक ने ही एक और फिल्म बनाई थी मिनी। उसमें यह दिखाया गया था कि हीरोइन को चोरी की आदत पड़ी हुई है। एक पुलिस इंस्पेक्टर (जिसका भूमिका जोसफ कोटन ने की थी) उसको पकड़ने के लिए पूरी कोशिश करता है, मगर उसे इस बात का एहसास है कि वह लड़की जरूर किसी मानसिक कुण्ठा से पीड़ित है। वह चाहते थे कि उनको और हीरोइन को किसी तरह यह मालूम पड़ा जाए कि उसकी कुण्ठा की वजह क्या है, तो उसका ठीक से उपचार हो सके और वह ठीक से सामान्य जीवन जी सके। फिल्म के अन्त में यह मालूम पड़ता है कि वह अपनी माँ की पिता के प्रति बेवफाई से दुःखी थी क्योंकि उसकी माँ ने पकड़े जाने पर उसके पिता की हत्या कर दी थी। माँ के प्रति घृणा ने धीरे-धीरे मानसिक कुण्ठा का रूप ले लिया और वह चोरी करने लग बैठी।

हॉलीवुड में ही एक और फिल्म बनी थी। 'थ्री फेसेज ऑफ ईव'' जिसमें नायिका की भूमिका निभाने वाली जो अनी वुडवर्ड्स को अपनी प्रथम फिल्म में ही हॉलीवुड का विश्वप्रसिद्ध ऑस्कर फिल्म पुरस्कार मिला था, इस लड़की ने विभाजित व्यक्तिगत (स्लिप्ट पर्सनैलिटी) की भूमिका की थी। जो लड़की दिन को सीधी-सादी और घरेलू सामान्य महिला का जीवन बिताती है, वही लड़की रात को एक अल्ट्रा फैशनेबिल लड़की बन जाया करती है। हीरोइन ने व्यक्तित्व परिवर्तन (पर्सनालिटी चेन्ज ओवर) के दृश्य बखूबी निभाए थे। इस विभाजित व्यक्तित्व के पीछे भी उसकी एक मानसिक कुण्ठा थी, जिसकी जड में उसकी माँ द्वारा अपने आंशिक से प्रेम के कारण बाप की हत्या करना था। जब उसकी याददाश्त में यह बात फिर आ जाती है तो उसकी कुण्ठा बिखर जाती है और वह

सामान्य जीवन बिताने लगती है।

इसी फिल्म को आधार बनाकर नर्गिस के भाई अख्तर मियाँ ने हीरोइन को ही लेकर एक फिल्म बनाई थी। मगर वह फिल्म चली नहीं। विगत काल के सुप्रसिद्ध निर्माता-निर्देशक जयंत देसाई ने भी अल्फ्रेड हिचकॉक की फिल्म 'स्पैल वाउण्ड' को आधार बनाकर एक फिल्म बनाई थी 'मिस माला', जिसमें वैजयन्ती माला हीरोइन और किशोर कुमार हीरो थे।

व्याभिचारिणी और वेश्यावृत्ति करने वाली माँ से घृणा करने वाले पुत्र की मानसिकता को आधार बना कर हॉलीवुड में मर्डर मिस्ट्री फिल्में बनी हैं। उसमें एक फिल्म तो इतनी हिट हुई थी कि कई भारतीय निर्माताओं ने इस तरह की फिल्म बनाने का विचार किया, मगर जहाँ तक मुझे ध्यान है कोई भी निर्माता वैसी फिल्म नहीं बना पाया।

मैंने भी अपने फिल्म लेखन काल के दौरान निर्माता, निर्देशक राजेश नन्दा के लिए लिखी एक स्क्रिप्ट में ऐसी ही एक परीक्षण किया था। उसमें भी एक पात्र था, जिसकी भूमिका रंजन ने की थी। इस फिल्म में रंजन एक मानसिक कुण्ठा से ग्रस्त थे। उनके बचपन में एक हादसा गुजरा था कि उनकी माँ अपने प्रेमी की खातिर, प्रेमालाप करती हुई पकड़े जाने पर बीमार बाप की हत्या कर देती हैं। माँ के प्रति उनके दिल में घृणा पैदा हो गई कि वे अपनी जवानी में जवान लड़कियों,खासकर वेश्याओं की, जब भी उन्मादित अवस्था होती, तब वे उनकी हत्या कर देते थे। निर्माता के दुर्भाग्य से यह फिल्म पूरी नहीं हो पाई।

निर्देशकों को पास ऐसी फिल्मों के सीन फिल्माने के दो तरीके रहते हैं- पहला तरीका तो यह है कि मानसिक कुण्ठा का कारण फिल्म के अन्त में दिखलाया जाए। जैसा कि थ्री फेसेज आफ ईव और मिनी में अपनाया गया था। इसके लिए क्लाइमेक्स के पहले दृश्यों के जरिए ऐसा वातावरण बनाया जाता है जिसके दबाव में आकर हीरो, हीरोइन को विस्मृतियों की याद आ जाती है। इन सीनों में हीरो लगातार हीरोइन पर दबाव डालता रहता है कि वह अपनी विस्तृत यादों को स्मृति पटल पर उभारे और अचानक हीरोइन को बचपन की यादें आँखों के सामने मूर्त नजर आने लगती हैं। इस सीन को यानी जब यादें आने लगती हैं, उनको अलग से ही फिल्माना पड़ता है। ऐसे दौर में फिल्म संपादक के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह सीन की इन्टेन्सिटी को बराबर कायम बनाये रखें। थोड़ी-सी भी गफलत या गलत कटिंग हो गयी तो सीन एकदम प्रभावहीन हो जाएगा। याददाश्त की अचानकता भी बनी रहनी चाहिए, यह भी जरूरी है।

दूसरा तरीका यह है कि ऐसे मानसिक कुण्ठाग्रस्त पात्र को बार-बार उस दृश्य

की याद दिलाई जाए और उनसे प्रभावित होकर वह ऐसा कोई कार्य कर बैठे जो जघन्य अपराध हो। इसके लिए उसको यह दृश्य बार-बार याद आए, कोई न कोई तरीका खोजना पड़ता है, जो कि माध्यम बन सके। कहावत मशहूर है कि सांड लाल कपड़ा देखकर भड़क उठता है। उसी तरह ऐसी कोई वस्तु देखकर कुण्ठाग्रस्त पात्र भड़क उठता है। राजेश नन्दा की फिल्म में मैंने खून जैसे रंग का एक भव्य माध्यम रखा था, जिसे देखकर रंजन को अपनी माँ के द्वारा किये गये अपने पिता के खून की याद आ जाया करती है। तब वह मानसिक रूप में उद्वेलित हो जाता था, जिसकी झोंक में वह किसी न किसी लड़की का खून कर बैठता था। यह खून जैसे रंग का धब्बा किसी भी कारणवश नजर आ जाया करता था जैसे शराब की बोतल गिर जाने से लाल रंग की शराब फैल जाना।

जगह-जगह सीन की पुनरावृत्ति करने से एक ही दृश्य को कई बार फिल्माना पड़ता है, जिन्हें संपादित करके अलग-अलग यथास्थान डालते रहना होता है। इन सीनों में भी अचानकता, भयावह स्थितियाँ आदि प्रभावी बनाए रखने की जरूरत होती हैं।

4.11 फाइटों का सम्पादन कक्ष

इन फाइट मास्टर्स का फाइट और एक्शन फिल्माने का अलग तरीका होता है। आम तौर पर फाइट और एक्शन में प्रभाव (इफेक्ट) उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है, न कि वास्तविकता लाने की। जैसे किसी पात्र के मुँह पर मुक्का मारना है तो सचमुच मुँह पर मुक्का नहीं मारा जाता। या तो मुक्का मुँह के बाजू से निकाल दिया जाता है अथवा मुँह का एक्शन कैमरे पर लाकर छोड़ दिया जाता है। दूसरे शॉट में जिस कलाकार को मुक्का पड़ना है उसके मुँह को कैमरे में रखकर कैमरे से बाहर निकाल दिया जाता है बाकी का कमाल साउंड का होता है।

इसी तरह किसी कलाकार को चाकू या छुरा लगा हुआ दिखाने पर उसे सचमुच चाकू या छूरा नहीं मारा जाता, नोक अंदर घुसते स्प्रिंगदार चाकू के खोल में खून भर देते हैं। इससे जब चाकू का वार किया जाता है तो शरीर के लगते ही चाकू शरीर के बजाय खोल में घुस जाता है। चाकू के खींचने पर ऐक्शन करते वक्त चाकू का फल खून में सना हुआ वापिस निकल आता है। साथ ही कलाकार भी चाकू लगने का अभिनय करता है और चाकू लगने के घाव वाले स्थान पर अपने खून से भरा हुआ हाथ धर देता है, जो पहले से ही खून में भरा रखा जाता है। बस इस तरह दिखाया जाता है, मानो उससे कलाकार का खून बह रहा है।

ये सारे शॉट अलग-अलग लिए जाते हैं। इसके बाद उन्हें जोड़कर संपादित किया जाता है। शॉटों को काटते वक्त वह ध्यान रखा जाता है कि यह सारा एक्शन

अधिक से अधिक प्रभावशाली बने। एक्शन और फाइटों में कलाकार कम से कम भाग लेते हैं और डुप्लीकेटों से काम चलाया जाता है। मुख्य कलाकार सिर्फ क्लोज अप के लिए ही इस्तेमाल किए जाते हैं। इसलिए क्लोज अप लगाते वक्त बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। कभी-कभी कुछ कलाकार स्वयं एक्शन करने के लिए स्थिर हो जाते हैं और अड़ भी जाते हैं। ऐसी सूरत में खतरे की संभावना बनी रहती है। अमिताभ बच्चन का फिल्म 'कुली' में क्या हाल हुआ, इससे तो सभी पाठक परिचित ही होंगे। वह मरते-मरते बचा था। इसी तरह जिद्द करके प्राण भी अपनी टांग तुड़वा बैठे थे। फिल्म निर्देशक ने ऐसा खतरे से भरा एक्शन करने से मना किया था। उनको चार फीट ऊँची जगह से कूदना था। प्राण साहब जिद्द कर बैठे कि यह एक्शन मैं खुद ही करूँगा और कूदने में उनकी टांग टूट गई।

मेरी एक फिल्म 'जादू' में घोड़ा दौड़ाने में अपने आपको माहिर समझते हुए अभिनेता रंजन ने घोड़े की सवारी से गाँठ ली, खूब तेज दौड़ाया भी, मगर घोड़े की टांग टूट जाने से वे सिर के बल पत्थर पर गिर पड़े। निर्माता का सौभाग्य था कि उनका सिर फूटा नहीं, मरे नहीं किन्तु सिर के पिछले भाग में चोट जरूर आई थी। वे काम नहीं कर पाए। कभी-कभी कलाकार दुस्साहसी भी देखे जाते हैं। सी.एम. त्रिवेदी की फिल्म 'हरिदर्शन' में बाल कलाकार राजकुमार, शेर (जो जीवित था के पिंजरे में घुस गया था) जब तक सीन की शूटिंग पूरी नहीं हुई वह बैठा ही रहा।

कहने का तात्पर्य यह है कि निर्माता-निर्देशक पूरी कोशिश करते हैं कि कलाकार खतरनाक एक्शन खुद नहीं करे। किन्तु कलाकार कभी हेकड़ी में खुद करने का हठ कर लेते हैं, ऐसे में उन्हें खुद नतीजा भुगतना ही पड़ता है।

शूटिंग के दौरान फाइट मास्टरों के पास कोई स्क्रिप्ट तैयार नहीं होती है। जैसे-जैसे वे शूटिंग करते रहते हैं, नए-नए आइडिए, नए-नए विचार आते रहते हैं, वे शूट करते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि यह संपादक के लिए तकलीफदेह रहता है। किसी शॉट में हाथ ऊँचा है, तो किसी में नीचा, किसी में बाईं टाँग आगे है तो किसी में दाईं टाँग आगे, ऐसी सूरत में संपादक दूसरे लोगों के क्लोजअप के इंसरशन डालकर काम चलाता है। इन शॉटों को रिएक्शन शॉट कहा जाता है, जो संपादक की सहूलियत के लिए ही फिल्माए जाते हैं।

शॉटों की मार्किंग

पॉजीटिव प्रिन्ट बन जाने के बाद सहायक संपादक और सहायक निर्देशक

आपस में मिलकर कागज पर लिखे हुए निर्देशों के अनुसार शॉटों को लाइन में लगाते हैं। अगर साउन्ड लिया हुआ है तो साउंड के साथ और साउंड नहीं लिया हुआ है तो उसके बगैर। यह काम पूरा होने पर फाइट मास्टर को बुलाया जाता है और उसे मार्किंग करने के लिए कहा जाता है। अगर लाइन सही बनी हुई है तो मार्किंग में कुछ कठिनाई नहीं होगी और अगर लाइनिंग गड़बड़ है तो मार्किंग में बड़ी कठिनाई होगी। उसके बाद संपादक फाइट मास्टर की सलाह लेकर फाइट को काटता है। इसमें दो बातों का ध्यान रखा जाता है कि पहले फाइट अधिक से अधिक प्रभावोत्पादक बने तथा फाइट के दृश्य की लंबाई भी कम रहे। आजकल पहले की तरह फिल्म में लाये फाइट सीन और दृश्य उतने ही प्रभाव छोड़ने वाले होंगे। वे वास्तविकता के नजदीक लगने चाहिए, मगर आमतौर पर फाइट मास्टर बहुत व्यस्त रहते हैं इसलिए ये लोग संपादन के वक्त नहीं आ पाते। नतीजा यह होता है कि फाइट को संपादित करना निर्देशक की सलाह से संपादक की जिम्मेदारी बन जाती है। ऐसी सूरत में संपादक फाइट की एक लाइन बनाता है और अपने हिसाब से ही काट देता है। इस बात का ध्यान वह जरूर रखता है कि फाइट में भी कथा प्रवाह बना रहे। उसकी शुरूआत तथा अंत भी प्रभावशाली होने चाहिए।

संपादक की मुसीबत यह भी रहती है कि पांच, सात से दस हजार फीट की फाइट को 200 से 250 फीट कैसे रखे। संपादक को कई बार दूसरे के दृश्य या शॉट उड़ाने पड़ जाया करते हैं। मेरी फिल्म 'गोल्डन आई' में एक सिक्वेन्स था जिसमें हीरो की कार पर हेलीकाप्टर से खलनायक के आदमी हथगोले फेंकते हैं। हीरो उनसे बचते हुए निकल जाता है। इस दृश्य को फिल्माने में डुप्लीकेट द्वारा कार चलाने से शॉट, हीरो के क्लोजअप हेलीकाप्टर द्वारा हाथ गोले फेंकने के शॉट अलग से भी और कार के साथ कम्बाइण्ड भी लिए गए थे। हेलीकाप्टर से दो हथगोलों के रूप में नारंगियाँ फेंकी गई थीं। मगर जमीन पर सचमुच बम फटे थे। विशेषज्ञों से बम बनवाकर उसे भूमि में छिपाया गया था तथा उनको बिजली के तारों से जोड़कर बिजली का करंट प्रवाहित करके उड़ाया गया था। इन सारे शॉटों को तरतीब से जोड़कर संपादित करने में संपादक को बड़ा परिश्रम करना पड़ा था। शूटिंग चार कैमरों से की गई थी और 20 हजार फीट फिल्म एक्सपोज की गई थी क्योंकि इस तरह की शूटिंग में एन.जी. शॉट नहीं निकाले जाते, इसलिए पूरी ही शूटिंग जो कि 20 हजार फीट थी प्रिन्ट करवाई गई थी। इस 20 हजार फीट शूटिंग से अंतिम रूप में संपादित हुआ सिक्वेन्स 400 या 450 फीट रहा था।

फाइटें दो किस्म की होती है। एक तो 'सोलो' और दूसरी 'मास'। सोलो फाइट में भी कई तरह की फाइटें होती हैं जैसे एक पात्र अकेला दूसरे पात्र से लड़ता है, आदि। मास फाइट में कई सारे पात्र अन्य कई सारे पात्रों से लड़ते हैं। ये फाइटें जगह बदल जाने पर भी बिखरी हुई नहीं होती हैं। मगर कुछ फाइटें ऐसी भी होती है जिसमें एक्शन अलग-अलग स्थानों पर होता है जैसे एक किले के अन्दर भी। दरवाजों के इर्द-गिर्द होगी तो दीवारों की बुर्जों पर भी होगी। फाइट मास्टर अपने दिमाग में एक खाका बनाकर अलग-अलग फाइटों को अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग तौर-तरीकों से फिल्मायेगा। सम्पादक का काम होगा कि अलग-अलग स्थानों पर फिल्मायी हुई फाइटों को तरतीब से जोड़ कर उनका सम्पादन करना।

सोलो फाइट का सम्पादन जरा भी मुश्किल नहीं होता है, क्योंकि दो पात्र ही आपस में लड़ते हैं। एक से अधिक पात्रों के साथ भी अगले पात्र को लड़ने में फिल्माते वक्त भी मेहनत जो जरूर करनी पड़ती है, मगर उसमें विभ्रम (कन्फ्यूजन) रहने के अवसर कम रहते हैं। एक बार लाइन बन जाने पर उसे प्रभावशाली ढंग से काटना भर होता है। कौन सा शॉट कहां पर लगाना ज्यादा प्रभावशाली रहेगा, यही तय करना रहता है।

मगर मास फाइटों में अगर ठीक से सम्पादन नहीं हुआ तो विभ्रम (कन्फ्यूजन) की संभावना रहती है। ऐसे में फाइट और दर्शक दोनों ही विभ्रमात्मक स्थिति के शिकार होंगे। एक स्थान पर भी फिल्माई गई मास फाइटों में कई समूह आपस में लड़ते रहते हैं। इनको सम्पादित करने का सही तरीका यही होता है कि अलग-अलग लाइन बनाई जाए। उनको अलग-अलग ही सम्पादित किया जाये। बाद में यही सम्पादित की गई लाइनें इन्टरकटिंग करके लगाई जाएं। अच्छे सम्पादक यही तरीका अपनाते हैं, मगर नौसिखिये या कम अनुभवी सम्पादक सब शॉटों को एक साथ लगाकर कटिंग कर देते हैं। नतीजा यह होता है कि एक पात्र एक स्थान पर लड़ते-लड़ते दूसरे स्थान पर लड़ता दिखाई पड़ जाता है। ऐसी सूरत में इस तरह सम्पादित की गयी फाइटों को नये सिरे से नई तरतीबों से लगाना पड़ता है। यह प्रक्रिया समय की बर्बादी तो करवाती ही है, प्रभावशाली भी नहीं हो पाती। जब दो या तीन एक्शनों का इन्टरकटिंग करना है तब भी उचित यही रहता है कि उनको अलग-अलग लाइन में लगाकर सम्पादित करके सही जगह पर लगाया जाए। जैसे एक बन्द गोदाम में कोई फाइट चल रही है या रेप हो रहा है और उसकी मदद के लिए कोई आ रहा है तो दोनों एक्शनों का इन्टरकटिंग ही करना पड़ेगा। सही तरीका यही है कि दोनों को अलग-अलग सम्पादित करके फिर दोनों की एक कहानी बनाकर इन्टरकटिंग किया जाए क्योंकि सही जगह शॉट पड़ता है तो उसका

सही-सही प्रभाव भी आएगा।

कटिंग का ड्रामा

लिखने वाला सीनों में तो ड्रामा लिखता ही है, फाइट मास्टर भी अपनी फाइटों में अधिक से अधिक ड्रामेटिक स्थितियाँ बनाने की कोशिश करता है, लेकिन शॉट कटिंगों का ड्रामा अपने आप में बहुत ही प्रभावशाली होता है। उदाहरण के लिए एक फिल्म 'काला गुलाब' के क्लाइमेक्स में फिल्म के हीरो अशोक कुमार की खलनायक तिवाड़ी से फाइट होती है। आखिरी शॉट में दर्शाया गया था कि तिवाड़ी अशोक कुमार पर खंजर का वार करता है और अशोक कुमार उसके बाद भी उठकर खड़ा हो जाता है। इस शॉट ने दर्शकों के मन पर यह छाप छोड़ी कि अशोक कुमार इस फाइट में मारा गया,मगर दूसरे शॉट में अशोक कुमार को उठते हुए दिखाया गया था और तीसरे शॉट में तिवाड़ी को लड़खड़ाकर गिरकर मरते हुए दिखाया गया। मतलब यह हुआ कि जब तिवाड़ी ने अशोक कुमार को खंजर मारा तब अशोक कुमार कैमरे से आउट था और तिवाड़ी ने मिड क्लोज में खंजर का वार किया था। मगर उसके साथ ही निर्देशक के कन्सेप्शन के अनुसार अशोक कुमार का खंजर तिवाड़ी के पेट में घुस गया था और अशोक कुमार की जगह तिवाड़ी मर गया।

मेरी फिल्म 'पुरस्कार' में खलनायक अभि भट्टाचार्य अपने आदमियों को किसी एक पात्र को मार डालने का हुक्म देता है और इस काम को अंजाम देने के लिए फरियाल को साथ ले जाने का हुक्म देता है और इस काम को अंजाम देने के लिए फरियाल को साथ ले जाने का हुक्म देता है। इस हुक्म के साथ शॉट कट होकर कैमरा दूसरे शॉट पर चला गया था जिसमें फरियाल अभि भट्टाचार्य को कहती है कि वह नहीं आएगी। यह कटिंग बहुत पसन्द की गई थी क्योंकि ड्रामेटिक स्थिति बहुत प्रभावशाली बन पड़ी थी। हालांकि यह कटिंग लिखते वक्त ही कर दी गई थी मगर इसका श्रेय मुझे मिलने की जगह सम्पादक शान्ताराम सावन्त को मिला था। फाइटों में ऐसी ड्रामेटिक कटिंगों की बहुत ही महत्ता रहती है क्योंकि वास्तव में न कोई मरता न घायल होता है। न ही किसी को चोट लगती है। खाली इसका दिखावा किया जाता है इसलिए कटिंग में थोड़ी सी भी कमजोरी रह जाने पर चोरी पकड़ी जाती है। शॉट छोटे-छोटे लिये जाते हैं और कटिंग के बाद और भी छोटे हो जाते हैं। अगर शॉट लम्बा हुआ तब भी उसको प्रभावशाली बनाने के लिए कलाकारों के कई इंसरसन लिये जाते हैं जैसे डुप्लीकेट लोग लड़ते एक जगह से दूसरी जगह तक पहुंचते-पहुंचते सौ फीट तक फिल्म चली तो इस शॉट की लम्बाई कम करने और प्रभावशाली बनाने के लिए बीच में वास्तविक कलाकारों के कई सारे फाइटिंग क्षेत्र के क्लोजअप ले लिए जाएंगे ताकि इन्टरकटिंग के वक्त शाटों की कमजोरी को निकाला

जा सके और एक शॉट के कई शॉट बनाये जा सकें। ऐसे समय में कटिंग का ड्रामा भी बहुत ही अच्छा बताया जा सकता है। कभी-कभी फिल्मों में दर्शकों ने यह भी देखा होगा एक एक कलाकार काफी ऊँचाई से कूद कर जमीन पर आ जाता है या रस्सों के सहारे एक छोर से दूसरे छोर पर पहुँच जाता है। यह काम कलाकार तो करते नहीं, विशेषज्ञ डुप्लीकेटों से कराया जाता है। इस सीनों को फिल्माने के लिए कई शॉट लेने पड़ते हैं, जैसे 1. जिस पात्र को कूदना है उसका जम्प करने का और कैमरे से बाहर जाने का एक शॉट 2. लाँग शॉट डुप्लीकेट के ऊपर से कूद कर नीचे आने का एक शॉट जिसमें जमीन पर गिरने का शॉट नहीं लिया जाता और कैमरे को जमीन से आउट रक्खा जाता है। 3. आउट-फील्ड से जमीन पर गिरने का शॉट और चौथा उन शॉटों के साथ पंचिंग करातेहुए जमीन पर गिरकर उठने का शॉट। हीरो के जमीन पर गिरने का शॉट नेट में भी लिया जाता है और जमीन पर मोटे-मोटे गद्दे डालकर भी लिया जाता है। इन सारे शॉटों को सम्पादक कलात्मक ढंग से जोड़ेगा कि दर्शकों को आभास नहीं होने देगा कि सारा एक्शन डुप्लीकेट ने किया और हीरो महाशय तो सिर्फ क्लोज अप ही दे गये थे।

4.12 एक्शन का सम्पादन

फाइटों की तरह एक्शन का भी फिल्मों को लोकप्रियता के साथ चलाने में बहुत बड़ा योगदान रहता है। इसलिए निर्माता लोग एक से बढ़कर एक एक्शन फिल्माते रहते हैं। तरह तरह की चेंज (दौड़) के अलावा अनेक तरह के खतरनाक दृश्य शुरू से ही फिल्माये जाते रहे हैं। आजकल खतरा कुछ ज्यादा ही बढ़ गया है मोटरों और मोटर साइकिलों के खतरनाक करतब आम बात हो गयी है। ऊँची-ऊँची सीढ़ियां चढ़ाना, खतरनाक कुदानें भरना, मोटर गाड़ियों के रोमांचक दृश्य फिल्माना, ऐसे शॉट अधिकतर खतरनाक शॉट देने वाले डुप्लीकेट किया करते हैं और भारी पैसा वसूल किया करते हैं। अब तो मर्दों के अलावा लड़कियां भी ऐसे खतरे भरे शॉट देने में नहीं झिझकती हैं फिल्म 'शोले' में हेमामालिनी द्वारा दिऐ गये एक खतरनाक ढंग से तांगे चलाने का शॉट एक लड़की ने हेमामालिनी का डुप्लीकेट करके दिया था। एकाध-दो लड़कियां तो ऐसी भी हैं जो मोटर साइकिल के बहुत ही खतरनाक शॉट दिया करती हैं। फाइट मास्टर इन लोगों से काम लेते वक्त अधिक से अधिक खतरनाक शॉट सोचा करते हैं मगर इन शॉटों को भी यह दिखाने के लिए कि हीरो या हीरोइन खुद ही ऐसे शॉट दे रहे हैं। उनके क्लोज अप भी लेने पड़ते हैं।

इन सीनों को फिल्माते समय कभी-कभी एक से अधिक कैमरे भी काम में लिये

जाते हैं और कभी-कभी ऐसे शॉट देने वाले कलाकारों की आन पर भी आ बनती है।हाथ पैर टूटना या अन्य अंगों पर चोट लगना तो मामूली बातें हैं। कई लोग तो अपनी जान भी गंवा बैठे हैं, जिनमें मलयाली फिल्मों के एक स्टण्ट हीरो भी होते थे। उन्हें हेलीकॉप्टर से जब वह उड़ रहा था लटकने का शॉट देना था। उन्हें यह कहा भी गया था कि यह शॉट डुप्लीकेट से ले लिया जायेगा। चूँकि वे खुद स्टण्ट मैन रह चुके थे, अतः उन्होंने जिद की कि वे ऐसे शॉट खुद ही देंगे। नतीजा यह हुआ कि हेलीकॉप्टर उड़ते वक्त रस्सी उनके हाथ से छूट गई और काफी ऊँचाई से गिरने के कारण उनकी मृत्यु हो गयी ऐसा ही एक शॉट देते वक्त धर्मेन्द्र का डुप्लीकेट एक फाइटर हेलीकाप्टर से फिसल कर समुद्र में जा गिरा और उसकी लाश तक का पता नहीं चल सका।

रामानन्द सागर की एक फिल्म में रणधीर कपूर को एक पहाड़ से कूदकर दूसरे पहाड़ पर मोटर बाइक के साथ जाना था। शॉट तो डुप्लीकेट को ही देना था। मोटर बाइक को एक पहाड़ से कुदाने पर बीच रास्ते में मोटर बाइक बन्द हो गयी और वे धड़ाम से नीचे आ गये। डुप्लीकेट को सौभाग्य से खरोंच भी नहीं आयी और उसने दुबारा तैयार होकर वही शॉट दिया।

एक इटालियन फिल्म आयी थी जिसमें कुछ लोग योजना बना कर कहीं लूट-पाट करके एक मोटर में भागते हैं और पुलिस उनका पीछा करती है जिस मोटर में वे भाग रहे थे वह खास किस्म की बनाई गई थी और ऊँचाई बहुत कम थी। उस मोटर ने वो - वो करतब दिखाए थे, जिनको देखकर दर्शक दांतों तले उंगली दबाने लगे। ऊंची-ऊंची सीढ़ियां चढ़, जाना लोगों के फ्लैटों में एक तरफ से घुसकर दूसरी तरफ से निकल जाना। बड़े-बड़े ट्रक के पहियों के बीच से निकल जाने के दृश्य बड़े रोमांचक बने थे।

ऐसे दृश्यों को सम्पादित करते वक्त सम्पादक को बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है और कुशलतापूर्वक काम करना पड़ता है लाइन बनाने के बाद जब मूवी ओला पर मार्किंग की जाती है तब भी और जब शॉट काटते हैं तब भी। सम्पादक को किस फ्रेम से शॉट काटना है इसका निर्णय बड़ी सावधानी से करना पड़ता है। इस निर्णय का कोई पैमाना नहीं है खाली आंख से देखकर ही निर्णय लेना पड़ता है। इसलिए पहली कटिंग हमेशा ही लूज रखी जाती है ताकि उसको दुबारा-तिबारा देखकर अंतिम रूप दिया जा सके। अंतिम रूप देने के पहले निर्देशक और निर्माता भी अपनी टांग लगाते रहते हैं। फलां शॉट खराब है उसको निकाल दो, फलां शॉट अच्छा है वह नहीं लगा है, लगा दो। इस शॉट को कम कर दो, उस शॉट को बढ़ा दो आदि निर्देश दिए जाते रहते हैं उन निर्देशों को ध्यान में रखते हुए वह फिर नए सिरे से सम्पादन करता है, अंतिम रूप देता है।

एक जमाने में जब दारासिंह हीरो हो गया था तब फिल्मों में फ्री स्टाइल कुश्तियों का एक और दौर आया था। उनको फिल्माने के लिए भारत और विदेशों से फ्री स्टाइल के नामी पहलवानों को बुलाया जाता था। कुछ सोलो फाइटें भी होती थीं और कुछ एक आदमी के साथ एक से अधिक फाइट लड़ते थे।

मेरी फिल्म 'थीफ ऑफ बगदाद' और 'हरक्यूलिस'में किसी-किसी कुश्ती में आठ आठ पहलवान तक दारासिंह से लड़े थे। इन कुश्तियों को फिल्माने में भी कई कैमरे लगाने पड़ते थे। थीफ ऑफ बगदाद की कुश्ती में चार कैमरे लगाये गये थे। चूँकि इन कुश्तियों को एक नियत समय में ही फिल्माना पड़ता था और एक बार किया गया एक्शन दोहराना संभव नहीं होता था इसलिए एक से अधिक कैमरे लगाना जरूरी हो जाता था। नतीजा यह होता था कि फिल्म में 100 या 150 फीट की फाइट रखने के लिए दो-तीन हजार से पांच हजार फीट तक फिल्म एक्सपोज करनी होती थी। मुसीबत आती थी तब बेचारे सम्पादक की जिसके लिए यह मुश्किल होता था कि कौन सा एक्शन रक्खे और कौन सा निकाले। रिपीट एक्शन तो निश्चय ही नहीं रक्खा जायेगा। हर शॉट और हर एक्शन का इण्टर-कटिंग करना भी जरूरी था। कुश्ती को कैसे अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाया जाए वह सब सम्पादक के विवेक पर निर्भर करता है। फाइट और एक्शन उस वक्त तक प्रभावी रहते हैं जब तक कि उनमें आवाज नहीं पड़ जाए। फाइट और एक्शन के समय तो आम तौर पर आवाज नहीं ली जाती, उन्हें सम्पादन के बाद ही अलग से डाला जाता है इसलिए ट्रायल दिखाने के लिए अस्थायी तौर पर आवाज उठा दी जाती है साथ ही म्यूजिक भी मिक्स करवा ली जाती है लेकिन फाइनल एडीटिंग के वक्त इनको नए सिरे से डाला जाता है।

4.13 नृत्य-गीत दृश्यों का संपादन

फाइट और एक्शन की तरह ही गीतों और नृत्यों के फिल्मीकरण की अनवरतता (कन्टीन्यूटी) रखना जरूरी नहीं माना जाता। नृत्य निर्देशक गीत की एक एक पंक्ति के लिए भी अलग-अलग स्थान खोजता रहता है और निर्माता एक-एक पैन नहीं तो भी कम से कम एक अन्तरे के लिए वस्त्राभूषण भी बदलता रहता है। कई बार तो ऐसा भी देखा गया है कि हीरो हीरोइन ने फिल्म में जितनी ड्रेसें पहनी हैं, वे सब बदल-बदल कर एक नृत्य में काम में ले लेते हैं। इसके मूल में नृत्य और गानों को समृद्ध और चमत्कारिक रूप से फिल्माए जाने की भावना ही काम करती रहती है।

इस पुस्तक के प्रारम्भ में गीतों और नृत्यों को फिल्माए जाने की प्रक्रियाओं पर

विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है। फाइटों और एक्शन की तरह ही सम्पादक को गीतों और नृत्यों के सम्पादन में भी उतना ही परिश्रम करना पड़ता है। कुशलता भी उतनी ही बरतनी पड़ती है। गीत और नृत्य फिल्माये जाते वक्त फिल्म निर्देशक के सहायकों को उस प्रक्रिया का अनुभव रखना जरूरी है अन्यथा गीत और नृत्य निर्देशक उसको गलत ढंग से इंटरकटिंग कर लेगा।

नृत्यों का शॉट डिवीजन

नृत्य निर्देशक गीत को कई बार सुनकर उसका शॉट डिवीजन करता है। उन शॉट डिवीजनों को सहायक निर्देशक कागज पर उतारेगा ओर म्यूजिक (संगीत) के सामने निर्देशित कर देगा, मगर ठीक वैसा ही फिल्मांकन हो ही जाएगा ऐसा जरूरी नहीं है क्योंकि नृत्य निर्देशक के दिमाग में नये विचार नये शॉटों की धारणा बनती रहती है। कभी एक शॉट के दो शॉट कर देता है। आजकल की पद्धति तो इतनी परिष्कृत हो गई है कि नृत्यों में अक्सर एक बीट में दो शॉट ले लेते है।इन सबकी जानकारी सहायक निर्देशक को ही रखनी पड़ती है। पहले के मुकाबले शॉट छोटे-छोटे लिये जाते हैं और उनमें विविधता भी कुछ अधिक ही रहती है।

फिल्मीकरण के बाद जब पॉजिटिव प्रिन्ट सम्पादक की टेबिल पर आ जाता है तो सबसे पहला काम सहायक निर्देशक और सहायक सम्पादक का यह होता है कि सारे शॉटों को या फिल्मी भाषा में उस मसाले को लाइन में लगा दिया जाता है। इस प्रक्रिया में थोड़ी सी भी चूक हुई तो सब किया। कराया उलट-पुलट हो जाएगा और फिर नये सिरे से उन्हें लाइन में लगाना पड़ेगा। कभी-कभी इस दौरान सहायक नृत्य निर्देशक जो आजकल आम तौर पर कोई नृत्यांगना ही होती है इनकी मदद के लिए आ जाती है। बशर्ते कि उसके पास कोई काम नहीं हो। वर्ना उसकी जिम्मेदारी वहीं खत्म हो जाती है, जब नृत्य का फिल्मांकन खत्म हो जाता है।

नृत्य गीत की मार्किंग

नृत्यों और गीतों की मार्किंग करवाना भी नृत्य निर्देशक का ही काम होता है, मगर वे इतने व्यस्त रहते हैं कि वक्त पर आ नहीं पाते है। इस स्थिति में मार्किंग कराने की जिम्मेदारी भी फिल्म संपादक पर ही रहती है, फिल्म निर्देशक भी इसमें अपना योगदान करता है मगर आजकल ऐसी प्रवृत्ति चल पड़ी है कि एक बार फिल्म निर्देशक ने अपना मन्तव्य बतला दिया तो उसके बाद सेट पर भी वह अकर्मण्य हो जाता है। बहुत बार तो वह सेट पर आता भी नहीं है। अगर नृत्य का पहले से रिहर्सल किया हुआ है तब तो फिल्म निर्देशक बिल्कुल ही बेखबर हो जाता है। लाइन में लगने के बाद फिल्म संपादक गाने के साथ फिल्म पॉजीटिव लगाकर अपने मार्किंग के हिसाब से उसको

काटता है। यह पहला कटिंग लूज कटिंग या ढीला-ढाला रहता है और उसे कई बार मूवी ओला पर देखकर दुबारा या तिबारा कई बार करेक्शन करके गीत या नृत्य को अंतिम रूप दिया जाता है । गीतों की कटिंग के वक्त सिंक्रोनाइजेशन का ध्यान तो रखा जाता है, मगर दो और चीजों का ध्यान रखना पड़ता है - एक तो यह कि गानों का प्रवाह नदी के प्रवाह की तरह बिना रूकावट के यानी कि कहीं ठहरे नहीं। दूसरे गाने में सम्पादक सम्पादन में जितना भी चमत्कार पैदा कर सके उतना पैदा करे। खासकर नृत्यों में, कैमरों में, डिस्को में।

एक जमाना था जब शॉट के अन्त में नृत्य निर्देशक और कैमरामैन कलाकार को यह कहते थे कि फलां पोज बना कर खड़े हो जाना। यह पोज स्थिर चित्र की तरह रहता था और काटा भी उसी तरह से जाता था। मगर धीरे-धीरे धारणाएं बदलने लगीं और आजकल क्रास पिक्चराइजेशन होने लगा है यानी तीन शॉटों में बीच के शॉट में ऊपर के शॉट में ऊपर और नीचे के शॉट के कुछ भागों को भी पुनरावृत (रिपीट)कर दिया जाता है, ताकि सम्पादक उस शॉट को काटते वक्त जरूरत पड़ने पर ऊपर के या नीचे के अंश को रखना भी चाहे तो रख सकता है। इससे पोज बनाने वाली स्थिति का निराकरण हो जाता है और गति में सहजता आ जाती है।

दिलीप कुमार की फिल्म 'आजाद' जिस पक्षीराज के बैनर पर एस.एम.एस.नायडू ने बनाया था में एक गीत ''अपलम चपलम चपलाई रे दुनिया को छोड़ तेरी गली आई रे'' की अत्यधिक लोकप्रियता के बाद अन्य निर्माताओं में भी एक होड़ मच गई कि गीत को अधिक से अधिक तेज गति वाला बनाया जाये।

गीत और नृत्य की गति को तेज रखने के लिए गीत के बोल भी फास्ट होने ही चाहिये, साथ में फिल्मांकन के समय कलाकारों का मूवमेंट भी स्पष्ट होना चाहिये और छोटे-छोटे शॉट लेकर अधिक से अधिक शॉट लिये जाने चाहिये। सोहराब मोदी की फिल्म ''सिकन्दर'' में मोना शोरे पर एक गीत उसे हिण्डौले पर बिठाकर फिल्माया गया था। इसमें एक-एक अंतरे का कैमरा अपनी जगह फिक्स रखकर झूले में झूलती हुई मोना को दूर से कैमरे के सामने हिण्डोला लेते हुये फिल्मांकन एक अन्तरे में एक शॉट के हिसाब से किया गया था और इन शॉटों को जोड़ने के लिए अलग से कुछ क्लोज अप ले लिये जाते थे।

4.14 सारांश

इस इकाई में, आपको बताया गया, फिल्म निर्माता की प्रक्रिया कितनी दुष्कर होती है और सम्पादक को अनेक बार किन-किन परेशानियों का सामना करना पड़ता है। सम्पादक और निर्देशक में कई बार टकराव तो हो जाता है, तब फिल्मों में हुआ क्या होता और पटकथा के अनुसार फिल्म का शूट मैटेरियल मूल नहीं होता और निर्माता के प्रतिनिधि फिल्म सम्पादन के लिए सुझाव देते रहते हैं ऐसे में सम्पादक उल्टी सीधी फिल्म करता है और परिणाम स्वरूप फिल्म बिगड़ जाती हैं आवश्यकता है इस बात की, कि

लेखक, निर्माता, निर्देशक और सम्पादक के बीच, समुचित ताल-मेल होना चाहिये अन्ततोगत्वा निर्देशक और सम्पादन के मध्य सहयोग का वातावरण होने से ही एक अच्छी फिल्म बन सकती है। कई बार एक ही थीम पर एक से अधिक फिल्में बनने लगती हैं तब सम्पादक निर्देशक का प्रयास होना चाहिये अपनी फिल्म सर्वप्रथम रिलीज होने, करने का ।

4.15 शब्दावली

(1)	शूट	शूटिंग से उपलब्ध सामान
(2)	पटकथा	सिनारियो - पर्दे की फिल्म दिखने की कला पर्दे पर आने वाली फिल्म ।
(3)	सम्पादन	शूट मैटेरियल से फिल्म गठन
(4)	कन्टीन्युटी	अनवरतता - दृश्यगत विवरण की समानता
(5)	सेंसर	फिल्म को प्रमाणित कर प्रमाण-पत्र प्रदान करने को सेंसर कहते हैं
(6)	सम्पादन कक्ष	सम्पादक जहाँ फिल्म का गठन करता है, सम्पादन कक्ष कहलाता है।

4.16 संदर्भ ग्रन्थ

(1)	इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म्स प्रोडक्शन	राजकृष्ण मिश्र
(2)	फिल्म्स ऐज फिल्म्स	वी.पी. परकिन्स
(3)	सिनेमा एज एन आर्ट	जे.आर.डिबरिश
(4)	मूवी मुगल्स	फिलिप फ्रेंच
(5)	फिल्म एण्ड रियल्टी	रॉय आर्मेस
(6)	माय फेयर लेडी	एलेन जे लरनर

4.17 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) सेंसर किसे कहते हैं?

(2) शूट का क्या अर्थ है?

(3) कन्टीन्यूटी क्या होती है?

(4) सम्पादक क्या करता है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) पटकथाओं के घपलों पर प्रकाश डालते हुए प्रासंगिकता का विस्तार से वर्णन करें।

(2) मोन्टाज के महत्व को दर्शाते हुए फ्लैश बैक तकनीक का विवरण दीजिये।

(3) मानसिक कुंठाओं का फिल्मांकन कैसे किया जाता है और सम्पादन में उसका महत्व स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

क) शूट कहते हैं -

(1) सम्पादन कार्य को।

(2) शूटिंग मैटेरियल को।

(3) निर्देशन को ।

(4) पटकथा को।

(ख) पटकथा का अर्थ है -

(1) प्रदर्शन पर फिल्म पर्दे पर जैसी दिखेगी उसका दृश्यगत, विवरण।

(2) निर्देशक की क्यू शीट।

(3) कैमरामैन की लागिंग शीट।

(4) निर्माता का फिल्म बजट।

(ग) कन्टीन्यूटी होती है -

(1) फिल्म का रॉ स्टाक।

(2) निर्माता का अनुबन्ध।

(3) दृश्यों की तारतम्यता का विवरण। यह अनेक प्रकार का होता है, जैस- लोकेशन प्रापर्टीज, ड्रेस, मेकअप।

(4) वितरक की प्रासंगिकता।

(घ) सम्पादन कक्ष में बैठता है -

(1) निर्देशक।

(2) निर्माता।

(3) वित्त पोषक।

(4) सम्पादक।

उत्तर - (क) 2, (ख) 1, (ग) 3, (घ) 4

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

04

फिल्म संगठन

इकाई-1 5
फिल्म संस्थाएँ

इकाई-2 37
प्रशिक्षण संस्थाएं

इकाई-3 67
फिल्म शिक्षण-प्रशिक्षण व्यवस्था

इकाई -4 81
फिल्म सेंसर

इकाई-5 109
भारत में फिल्मों से संबंधित संगठन

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
श्री एम0 एल0 कनौजिया	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापन

1- प्रो0 राम मोहन पाठक - वाराणसी

2- डॉ0 अर्जुन तिवारी - इलाहाबाद

सम्पादन

1- श्री राजकृष्ण मिश्र

लेखक मंडल

PGDEM&FP - 04

1- सुनील कुमार श्रीवास्तव - इलाहाबागद

2- राघवेन्द्र मिश्र - काशी

3- श्री राजकृष्ण मिश्र - लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से कुलसचिव श्री एम0 एल0 कनौजिया, द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2008

मुद्रक : नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद, मुद्रित। फोन - 2548837

खण्ड-4 खण्ड-परिचय :

इस खण्ड में निम्नलिखित इकाइयाँ हैं :—

1. फिल्म संस्थाएं

2. फिल्म प्रशिक्षण संस्थाएं

3. फिल्म नीति

इस खण्ड में,

(i) सेन्सर बोर्ड

(ii) राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार

(iii) फिल्म प्रभाग

(iv) फिल्म समारोह निदेशालय

(v) क्षेत्र प्रचार निदेशालय

इन संस्थाओं के कार्य-कलाप का विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान, पुणे तथा कोलकाता के विषय में विस्तार से जानकारी दी गयी है। और अंत में, करीब सत्तर करोड़ राजस्व पर आधारित, उत्तर प्रदेश, फिल्म नीति की चर्चा की गई है। जो लोग उत्तर प्रदेश में, फिल्म बनाने में लगे हैं अथवा फिल्म निर्माण करना चाहते हैं, उनके लिए दुलर्भ सूचनाएं संग्रहित हैं।

इकाई 1 फिल्म संस्थाएं

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 फिल्म सेंसर बोर्ड

1.3 सेंसर

1.4 प्रचार सामग्री

1.5 सेन्सर बोर्ड का संगठन

1.6 सेन्सर बोर्ड का प्रमाण पत्र

1.7 भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार

1.8 फिल्म समारोह निदेशालय

1.9 फील्ड पब्लिसिटी निदेशालय (क्षेत्र प्रचार निदेशालय)

1.10 फिल्म्स डिवीजन, फिल्म प्रभाग

1.11 राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम

1.12 सारांश

1.13 शब्दावली

1.14 संदर्भ ग्रन्थ

1.15 सम्बन्धित प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे—

(i) फिल्म उद्योग के विषय में

(ii) फिल्म उद्योग की संस्थाओं के विषय में

(iii) फिल्म उद्योग की कौन सी संस्था क्या काम करती है

(iv) फिल्म निर्माण में फिल्म उद्योग की संस्थाओं का योगदान क्या है

1.1 प्रस्तावना

फिल्म उद्योग, आज एक महती संस्था के रूप में कार्य कर

रहा है। सालाना, 300 करोड़ रुपए का राजस्व आता है। प्रत्येक वर्ष 600 से लेकर 100 फिल्में 15 भाषाओं तथा बोलियों को मिलाकर बनाई जाती है। एक अनुमान के अनुसार पिछले 10 वर्षों में करीब 6000 से लेकर 7000 फिल्मों का निर्माण हुआ है। इनकी अत्यन्त असांख्यिकी आधार पर लागत 2000 से 25000 करोड़ रुपया आंकी जा सकती है।

3000 करोड़ की लागत, 3000 करोड़ का राजस्व के अतिरिक्त स्टूडियो, लैब, कैमरा, फिल्म सिटी और उपकरण की पूंजीगत लागत 2000 करोड़ से ऊपर होगी, जिसमें अगर जमीन और जायदाद की कीमत जोड़ी जाएगी तो, यह बढ़कर अत्यधिक हो जाएगी। ऐसे फिल्म उद्योग के लिए, अनेक संस्थाएं काम कर रही हैं। कुछ संस्थाएँ, फिल्म उद्योग से सीधी तरह से सम्बद्ध हैं लेकिन कुछ और परोक्ष रूप से सम्बद्ध है।

1.2 फिल्म सेन्सर बोर्ड

फिल्म को सेन्सर करने की आवश्यकता निम्न कारणों से प्रतीत होती है—

(i) क्योंकि फिल्म विचार और क्रिया को प्रेरित करता है।

(ii) प्रिण्ट मीडिया की तुलना में यह अधिक ध्यान आकर्षिक करती है।

(iii) इस फिल्म मीडिया की स्मृति पटल पर प्रभाव अत्यधिक समय के लिए होता है।

(iv) अभिनय, ध्वनि, कथन, कथोपकथन, संगीत तथा एक्शन से भरपूर फिल्म, सिनेमाहॉल के अंधेरे में अधिक प्रभावशाली होता है। क्योंकि उस दौरान कुछ समय के लिए, दर्शक दीन-दुनिया से अलग, पूर्णरूप से असम्बद्ध होकर फिल्म देखता है।

(v) इसलिए सिनेमा का 3 घंटों में अप्रत्याशित प्रभाव, मानवीय संवेदनाओं पर पड़ता है। दर्शक पर्दे पर चल रही फिल्म को देखकर हंसता है, रोता है, क्रोधित होता है, दया, ममता, माया, मोह, प्यार-मोहब्बत, घृणा, नफरत की अतीव प्रक्रियाएं उन तीन घंटों में उसके अन्दर होती है। ऊपर से हॉल के

बाहर निकलकर, अधिक से अधिक समय तक वह सब प्रतिक्रियाएं उसके अन्दर कसमसाती रहती है।

(vi) इस प्रकार से सिनेमा का प्रभाव, अच्छा और बुरा दोनों, हिंसक तथा अविसेक दोनों का पड़ता है। जो बुरा है, तो अत्यधिक बुरा दिखता है, जो हिंसक है, अत्यधिक हिंसक दिखायी देता है।

इस प्रकार से, सामाजिक प्रतिक्रिया को नियंत्रित करने के लिए, सेन्सर या नियंत्रक या नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

1.3 सेन्सर का कानून

सिनेमेटोग्राफ ऐक्ट 1952 और सिनेमेटोग्राफ (प्रमाणपत्र सर्टिफिकेट) नियम 1983 तथा 6 दिसम्बर 1991 को दिए गए दिशा-निर्देश, फिल्म सेन्सरशिप को नियंत्रित करते हैं।

दिशा-निर्देश, सेक्सन 5बी के अन्तरगत दिए गए हैं। सेक्सन 5बी के अनुसार :

उस फिल्म को प्रमाणित नहीं किया जाएगा जो प्रमाणित करने वाले अधिकृत अधिकारी की राय में, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध हैं, मित्र राष्ट्र के विरुद्ध हैं, सामाजिक सह्वयोत्तर नैतिक मूल्यों के विरुद्ध हैं या जो न्यायालय की अवमानना अथवा डिफेनेशन या मान-हानि के अन्तर्गत आता है।

फिल्मों को प्रमाणित करने के लिए निम्न प्रकार के वर्गीकरण बनाए गए हैंः-

- पूर्ण स्वतंत्र सार्वजनिक प्रदर्शन
- स्वतंत्र, अप्रतिबन्धित सार्वजनिक प्रदर्शन लेकिन माता-पिता के संरक्षण में।
- प्रतिबन्धित - मात्र वयस्कों के लिए
- प्रतिबन्धित किसी वर्ग-विशेष के लिए
- सर्टिफिकेशन - प्रमाणित किसी भी उपरोक्त के लिए किन्तु संशोधन के पश्चात्
- सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए नहीं प्रमाणित या अप्रमाणित।

1.4 पोस्टर पब्लिसिटी - प्रचार सामग्री

प्रचार-प्रसार के लिए और फिल्म की जानकारी देने के लिए, पोस्टर लगाए जाते हैं। अश्लील पोस्टर के विषय में, अनेक शिकायतें होती हैं। पोस्टर के द्वारा प्रचारित अश्लीलता भारतीय सिनेमेटोग्राफी कानून के तहत नहीं आती है, बल्कि वह, इंडियन पेनल कोड की धारा 292 के द्वारा नियंत्रित की जाती है।

इंडियन पैनल कोड के अनुसार कार्यवाही करने का अधिकार राज्य सरकार, केन्द्रीय शासित क्षेत्र तथा पुलिस को है।

कई राज्यों ने इस विषय में, कानून बनाए हैं। उधर मानव संसाधन मंत्रालय ने, महिला का अश्लील प्रस्तुतिकरण (प्रतिबन्ध) ऐक्ट बना रखा है, जिसका नियंत्रण बाल एवं महिला विकास विभाग द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। लेकिन इस कानून का इस्तेमाल केवल राज्य सरकार और पुलिस कर सकती है। पश्चिम बंगाल सरकार ने, पश्चिम बंगाल (फिल्म प्रचार सामग्री की कम्पलसरी सेन्सरशिप) ऐक्ट 1974, तमिलनाडु सरकार और अनेक नगर पालिकाओं ने इस विषय में नियम बनाए हैं।

भारत सरकार ने इस विषय में, फिल्म उद्योग से तालमेल करके एक स्क्रीनिंग समिति बनाई है, जिसका मुख्यालय मुम्बई में है और क्षेत्रीय इकाइयाँ, हैदराबाद, मद्रास तथा तिरुवन्तपुरम में हैं। वर्तमान में भारत सरकार, सूचना मंत्रालय के माध्यम से स्थिति का आंकलन कर रही है।

1983 के सिनेमेटोग्राफ (प्रमाणन) नियम 38 के अन्तर्गत यह आवश्यक बना दिया गया है कि प्रेस, पोस्टर, बिल, होर्डिंग और ट्रेलर में यह लिखना आवश्यक है किस प्रकार का प्रमाण पत्र फिल्म को मिलता है।

1.5 सेन्सर बोर्ड का संगठन

अध्यक्ष

वरिष्ठ ए.ओ.

महानगर के सचिव	आर.ओ. मुम्बई	आर.ओ. चेन्नई	आर.ओ. कोलकाता	आर.ओ. बैंगलोर	आर.ओ. बैंगलोर	आर.ओ. हैदराबाद	अतिरिक्त आर.ओ. तिरुवन्तपुरम
स्टाफ	स्टाफ	स्टाफ	स्टाफ	स्टाफ	स्टाफ	स्टाफ	स्टाफ

इस प्रकार
मुम्बई
चेन्नई
कोलकाता
बैंगलोर
हैदराबाद
तिरुवन्तपुरम

में क्षेत्रीय अधिकारी कार्यरत है, जबकि मुख्यालय पर अध्यक्ष को सलाह देने के लिए सेन्सर बोर्ड गठित किया जा सकता है। इस बोर्ड में, संस्कृति, कला, समाजशास्त्र, महिला तथा अन्य, महत्वपूर्ण क्षेत्र के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जाता है। कमेटी फिल्म देखती है। संतुष्ट ना होने पर, निर्माता या आवेदनकर्ता रिवीजन कमेटी को पुनः दिखाता है।

1.6 सेन्सर बोर्ड का प्रमाण-पत्र - नमूना

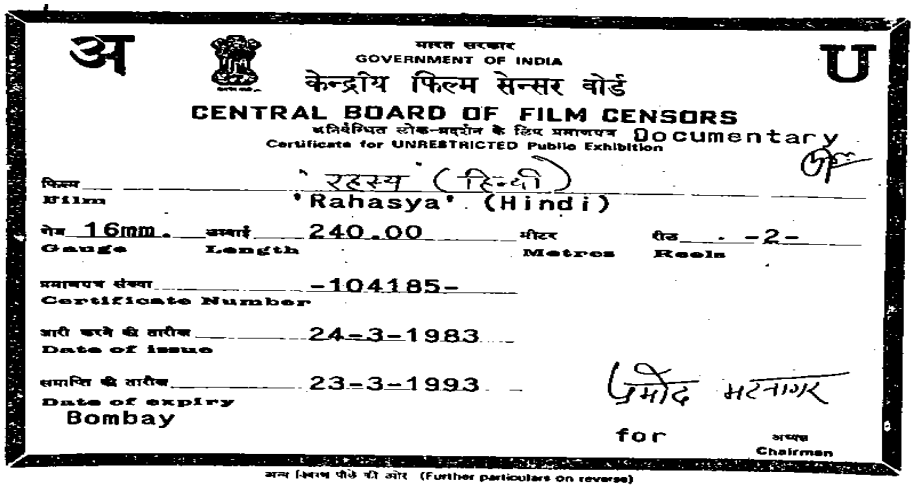
भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
केन्द्रीय फिल्म सेन्सर बोर्ड
CENTRAL BOARD OF FILM CENSORS
अनियंत्रित लोक-प्रदर्शन के लिए प्रमाणपत्र
Certificate for UNRESTRICTED Public Exhibition
अ
U
Documentary
फिल्म Film 'रहस्य' (हिन्दी) 'Rahasya' (Hindi)
गेज Gauge 16mm. लम्बाई Length 240.00 मीटर Metres रील Reels -2-
प्रमाणपत्र संख्या Certificate Number -104185-
जारी करने की तारीख Date of issue 24-3-1983
समाप्ति की तारीख Date of expiry 23-3-1993
Bombay
for
अध्यक्ष Chairman
अन्य विवरण पीछे की ओर (Further particulars on reverse)

B/107887

मुखपृष्ठ में दिये गये प्रमाणपत्र पर विशेष जानकारी

Continued from Overleat-Further particulars

1. यह प्रमाणपत्र चलचित्र अधिनियम, 1952 के अधीन बनाए गये चलचित्र (सेन्सर) नियम, 1958 के नियम 24/26 के अनुसार जारी किया गया है।

1. This certificate has been issued in accordance with Rule 24/26 of the Cinematograph (Censorship) Rules, 1958 framed under the Cinematograph Act, 1952.

2. उस दशा में, जब फिल्म की प्रति उस गेज में तैयार की जाती है जो प्रमाणपत्र में वर्णित गेज से भिन्न है, प्रमाणित लम्बाई वह लम्बाई समझी जाएगी जो उस गेज के अनुरूप तत्सम लम्बाई हो।

2. In the event of a copy of the film being prepared in a gauge other than that mentioned in the Certificate, the certified length shall be deemed to be the corresponding length appropriate to that gauge.

3. आवेदक का नाम Raj Krishna Mishra.

3. Name of applicant _____

4. निर्माता का नाम Raj Krishna Mishra.

4. Name of producer _____

तारीख 24-3-1983

Date _____

1.7 भारतीय, राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार

राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार, भारत में फरवरी 1964 में, स्थापित किया गया था। यह भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की एक मीडिया यूनिट है।

इसके उद्देश्य एवं क्रियाकलाप निम्न प्रकार से है :-

- राष्ट्रीय भारतीय सिनेमा के विषय में, खोज करना, अधिग्रहण करना तथा संरक्षण करना, फिल्म की पैतृक, कुल परम्परा का।
- विश्व सिनेमा के प्रतिनिधि संकलन की खोज करना, अधिग्रहण करना तथा संरक्षण करना।
- फिल्म के सम्बन्धित सांख्यिकी तथा सूचना सांख्यिकी (एसआईसीआई) का वर्गीकरण करना, उसका प्रलेख करना।
- सिनेमा के ऊपर शोध करना तथा शोध को प्रोत्साहित करना।
- फिल्म संस्कृति का विकास करना तथा भारतीय सिनेमा को विश्व-पटल पर स्थापित करने का प्रयास करना।

भारतीय राष्ट्रीय फिल्म का अभिलेखागार का मुख्यालय पुणे में है। इसके तीन क्षेत्रीय कार्यालय हैं :—

(i) बैंगलूर

(ii) कोलकाता

(iii) तिरुवन्तपुरम

1969 से भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म, अभिलेखागार फेडरेशन का सदस्य है और उसकी गतिविधियों में, सक्रिय भाग लेता रहा है।

फिल्म वितरण लाइब्रेरी

- विभिन्न सांस्कृतिक संगठन, फिल्म सोसाइटी तथा शिक्षण संस्थाएं, फिल्म लायब्रेरी जिसका संचालन भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार करता है, के सदस्य हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में वितरण लायब्रेरी, रेल यातायात तथा वायुयान सेवा से फिल्म का वितरण करता है।
- यह विदेशों में भी भारतीय सिनेमा को चर्चित बनाने के लिए, फिल्म का वितरण करता है।
- इसीलिए, सीमित फिल्म प्रिन्टों के लिए अग्रिम बुकिंग की व्यवस्था है।

  कई महत्वपूर्ण फिल्में जैसे, 'बाइसिकिल थीफ', ''पाथेर पांचाली'' लायब्रेरी के पास उपलब्ध है।
- विश्व प्रसिद्ध वृत्तचित्र ''उत्तर का नानूक'' (नानूक ऑफ नार्थ) भी लायब्रेरी के पास उपलब्ध है।
- फिल्म संस्कृति के विकास के लिए एन.एफ.ए. आई नेशनल फिल्म आरकविस ऑफ इंडिया, अपने बैंगलूर, कोलकता तथा तिरुवन्तपुरम में स्थित क्षेत्रीय कार्यालय से भी फिल्म की प्रिन्ट का वितरण करता है।
- भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार, अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार द्वारा संयोजित विशेष फिल्मों का विशेष प्रदर्शन आयोजित करता है।

  भारतीय, राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार संयुक्त प्रदर्शन, निम्नलिखित स्थानों पर आयोजित करता है :-

  मुम्बई

कोलकाता

बैंगलूर

हैदराबाद

कोचीन

जमशेदपुर

तिरुवन्तपुरम

पुणे

- फिल्म की समालोचना हेतु, फिल्म एण्ड टेलीविजन इंस्टीट्यूट आफ इंडिया के सहयोग से तथा अन्य शिक्षण संख्याओं के सहयोग से, राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार कार्यक्रम आयोजित करता है।
- **पुस्तकालय :** राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार में अनेक बहुमूल्य पुस्तकों, पत्रिकाओं का जखीरा है। सिनेमा और सम्बन्धित विषयों पर यह दुर्लभ सामग्री अन्य कहीं उपलब्ध नहीं है।
- इसके पास 25000 से दुलर्भ सामग्री है तथा विश्वभर के प्रकाशित पुस्तकों का भंडार उपलब्ध है।
- राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार का पुस्तकालय, विभिन्न भारतीय भाषाओं में 100 से अधिक पत्रिकाएं प्रकाशित करता है।
- यह विदेशों से, महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का संग्रह करता है।
- केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड (सेन्सर बोर्ड) से प्राप्त करीब 25000, फिल्म आलेख भी राष्ट्रीय अभिलेखागार के पुस्तकालय में उपलब्ध है।
- यह मूल्यावान धरोहर कई उन फिल्मों से सम्बन्धित है, जो आज उपलब्ध नहीं है या जो लुप्त हो चुकी है।
- 1920 से, अनेक सेन्सर बोर्ड के दुलर्भ अभिलेख, आज भी राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार के पास उपलब्ध है।
- 1930 से भारतीय फिल्म पत्र-पत्रिकाओं की बाउन्ड प्रतियाँ, पुस्तकालय में उपलब्ध हैं।
- राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखगार का पुस्तकालय, छात्रों, शिक्षण संस्थाओं शोधकर्ताओं तथा पत्रकारों को अपनी सेवाएं प्रदान

करने को तत्पर रहता है।

1.8 फिल्म समारोह निदेशालय

1.8.1

फिल्म समारोहों का निदेशालय भारत सरकार द्वारा 1973 में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह आयोजित करने के लिए स्थापित किया गया था। यह निदेशालय विदेशों में हो रहे समारोहों में भी भारत की उपस्थिति दर्ज कराता है, भारत में विदेशी फिल्मों के कार्यक्रम और भारतीय फिल्मों में कार्यक्रम विदेशों में आयोजित करता है और राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार समारोह आयोजित करता है।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान के रूप में निदेशालय अन्तराष्ट्रीय मैत्री, विश्व सिनेमा में नए आयाम, स्वस्थ प्रतियोगिता के अवसर पैदा करना और भारतीय फिल्मों का स्तर बढ़ाने में मदद करना, आदि कार्य करता है।

1.8.2 इफ्फी - 2006

पहला अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय फिल्म समारोह 1952 में मुम्बई में हुआ था। 1965 में तीसरे समारोह में, भारत में पहला प्रतियोगी समारोह, पेरिस-आधारित फेडरेशन इण्टरनेशनल डेस एसोसिएशन्स के प्रोडक्ट्यूरस डे फिल्म्स (एफ.आई.ए.पी.एफ) ने भारतीय महोत्सव को कान्ह, वेनिस कार्लोवी वेटी और मास्को के समानान्तर मान्यता प्रदान की। 1983 में 9वें आई.एफ.एफ.आई. महोत्सव में जिसमें 22 देशों ने हिस्सा लिया था। महोत्सव तीसरे देशों के सिनेमा के लिए महत्वपूर्ण धरातल प्रदान करता है।

1.8.3

1989 में 12वें महोत्सव को गैर-प्रतियोगी घोषित किया गया था। 1996 में 27वें महोत्सव में एशियाई महिला निदेशकों के लिए एक साल छोड़कर प्रतियोगी प्रभाग घोषित किया गया। 1998 में 29वें महोत्सव में इसे और बढ़ाया और एशियाई निदेशकों के लिए प्रतियोगी प्रभाग शुरू किया गया। यह कार्यक्रम हर साल 10 से 20 अक्टूबर के बीच होता है। यह तय हुआ है कि 2004 से यह

समारोह गोवा में ही आयोजित किया जाए और 35वां महोत्सव गोवा में 29 नवम्बर से 9 दिसम्बर 2004 के बीच हुआ था। 36वां महोत्सव गोवा में 24 नवम्बर और 4 दिसम्बर के बीच हुआ जिसमें एशियाई/अफ्रीकी/लेटिन अमरीकी फिल्म निर्देशकों का प्रतियोगी प्रभाग शामिल हुआ।

37वां महोत्सव 23 नवम्बर और 3 दिसम्बर 2006 के बीच गोवा में होगा।

1.8.4 दूसरे फिल्मी कार्यक्रम

फिल्म निदेशालय भारतीय फिल्मों के कार्यक्रम उन देशों में आयोजित करता है जिनसे सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता है। भारतीय दूतावास, बाह्य प्रचार विभाग-विदेशी मामलों का मन्त्रालय, भारत सरकार सहयोग, करके इसे सफल बनाते हैं।

1.8.5 भारतीय फिल्मों का चयन

विदेशी मेहमानों के लिए भारतीय पंडाल एक रूचिकर विषय होता है। इसमें राष्ट्रीय स्तर के सभी क्षेत्रों और भाषाओं के फिल्म निर्माता भाग लेते हैं। सिनेमा से जुड़ी बड़ी महान विभूतियों का पैनल विषय-वस्तु के आधार पर फिल्मों का चयन करता है। फिल्मों में अंग्रेजी में संवाद लिखे होते हैं तभी वे महोत्सव में प्रवेश पाती हैं। इनमें से ही कुछ फिल्में विदेश में हो रहे महोत्सव में भी भेजी जाती हैं।

1.8.6 विशेष कार्यक्रम

भारत और किसी दूसरे देश के बीच हुए समझौते के आधार पर विशेष कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं। सर्वाधिक सफल उदाहरणों में भारत का महोत्सव है जो कई देशों में दोतरफा समारोहों के तहत होता है। इसमें जो फिल्में प्रदर्शित की जाती हैं। उनमें उस देश की भाषा के उप-शीर्षक दिए जाते हैं। एक बार में 25 से 100 फिल्मों तक ऐसी व्यवस्था हो जाती है। इसी पैकेज के अन्तर्गत भारत में आयी विदेशी फिल्मों का भारत के विभिन्न देशों में प्रदर्शन फिल्म निदेशालय द्वारा आयोजित किया जाता है। भारतीय फिल्में इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमरीका, जापान, रूस और स्विटजरलैण्ड में दिखायी जा चुकी हैं। इसी प्रकार फ्रांस, रूस, जापान और स्विटजरलैण्ड

से आयी फिल्में भारत के कई शहरों में निदेशालय की मदद से दिखाई गई हैं।

1.8.7 छाप एकत्र करना और अभिलेखों को दर्ज करना

अभिलेख दर्ज करने वाली यूनिट निदेशालय के साथ सहयोग करके राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय तथ्यों को एकत्र करती है। इससे भारत में हो रहे महोत्सव के दौरान स्थानीय प्रेस के लिए काफी जानकारी मिल जाती है। प्रत्येक भारतीय फिल्म पर जानकारी एकत्र करके विदेश में होने वाले समारोहों में भेजी जाती है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :—

फिल्म समारोहों का निदेशालय

सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय

भारत सरकार

सीरीफोर्ट सांस्कृतिक काम्पलेक्स

अगस्त क्रान्ति मार्ग

नई दिल्ली - 11049

फोन नं0 26499398 फैक्स 91 11 26497214

ई-मेल : एसडीडीएफएफ एन आई सी आई एन या
डीडीएनएफआर. डीएफएफ@एनआईसी आईएन

1.8.9 राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार

कुछ राष्ट्रीय श्रेणियों के लिए सर्वश्रेष्ठ फिल्मों को पुरस्कृत किया ही जाता है। हर भाषा में फीचर फिल्म को भी सर्वश्रेष्ठ श्रेणी के लिए चुना जाता है। एक विशेष ज्यूरी पुरस्कार भी होता है। एक राष्ट्रीय पैनेल पुरस्कृत फिल्मों का चयन करता है कलाकारों के साथ ही, बहुत सारी प्रविष्टियों में से। यह पैनल फिल्म को किस श्रेणी के तहत पुरस्कृत किया जाए यह भी तय करता है। पुरस्कार स्वरूप एक स्मृत्ति चिह्न व नकद पुरस्कार की व्यवस्था है।

दिल्ली के पुरस्कार वितरण समारोह में राष्ट्रपति पुरस्कार प्रदान करते हैं। इसके पहले राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव का आयोजन होता है जिसमें पुरस्कार के लिए चयनित फिल्में प्रदर्शित की जाती हैं।

1.8.10 विदेशी फिल्म समारोहों में भागीदारी

औसतन, निदेशालय 50 समारोहों में हर साल फिल्में भेजता है साथ ही प्रतिनिधि भी। इसमें वेनिस, बर्लिन, कान्ह, मांट्रील, कार्लोवी चेरी, बैनकावर, सिडनी और मास्को प्रमुख हैं। फिल्म के प्रिन्ट पर उप-शीर्षक लिखे होते हैं। प्रविष्टियाँ भारतीय प्रभाग की फिल्मों में से चुनी जाती हैं। प्रमुख महोत्सवों में सरकार फिल्म निर्देशक की विदेश यात्रा महोत्सव के समय प्रायोजित भी कर देती है बशर्ते कि फिल्म महोत्सव की 'प्रतियोगी' प्रभाग में आ गयी हो।

निदेशालय भारतीय निर्माताओं की विदेश यात्रा को भी प्रोत्साहित करता है। जिनकी फिल्म विदेश में भेजे जाने के लिए चयनित नहीं हुई हैं किन्तु उन्हीं के खर्च पर निदेशालय ऐसे फिल्म निर्माताओं को अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करता है ताकि उन्हें कस्टम और रिजर्व बैंक में परेशानी न हो। उन्हें भी निदेशालय को फिल्म के प्रिन्ट बाहर भेजने से पहले सूचित करना चाहिए।

1.8.11 सांस्कृतिक आदान - प्रदान कार्यक्रम

निदेशालय फिल्म कार्यक्रम आयोजित करता है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से जो दो देशों के बीच समझौते का अंग होता है। ये फिल्म कार्यक्रम दो या अधिक शहरों में आयोजित किये जाते हैं।

समझौते के तहत सभी खर्च स्थानीय सरकार द्वारा वहन किए जाते हैं। जबकि विदेशी भूमि पर आवागमन, फिल्मों को पहुँचाने आदि की जिम्मेदारी उस देश की सरकार की होती है। सामान्यतया साल में छः ऐसे प्रोग्राम विदेशों में आयोजित होते हैं और इतने ही अपने देश में जिसमें प्रमुख विदेशी भाषा की फिल्में दिखाई जाती हैं।

1.8.12 अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव, भारत 2003

सारांश भारतीय परिदृश्य 2003 : फीचर फिल्म — अवर अरण्ये, अनवे सिवम। एन्टे वीड्, अप्पोनटेम/मकड़ी

मि0 एण्ड मिसेज अय्यर/ओरुथी/प्रोहोर/शुभो मुहूरत/ स्टम्बल अनाहत/भावुक/हाथी का अंडा/ मौनी निजहालकुथु/पदम ओन्नू :

ओरु विलयम/ सभालम/ सिंगारव्वा/तीन दीवारें।

फीचर फिल्म के अलावा अन्तहीन/दर्शन/काया पूछे माया से/ द मौरंग निजहाल/ द ट्रेजर इन द स्नो/ 00 : 00/अवचेतन द आई आफ दि फिश/ मीटिंग मंजीत/नारायण गंगाराम सर्वे/परमदथम/ उमा।

1.8.13 फिल्म समारोह निदेशालय सूचना और प्रसारण मंत्रालय (फि.स.नि.)

देश में राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय फिल्म समारोह आयोजित करने हेतु 1973 में भारत सरकार द्वारा स्थापित, फिल्म समारोह निदेशालय भारत के विदेशी समारोहों में भाग लेने में मदद करता है। फिल्मों को भारत में तथा भारतीय फिल्मों को विदेशों में दिखाने का कार्यक्रम और राष्ट्रीय पुरस्कार समारोह का आयोजन करता है। सांस्कृति आदान-प्रदान के चक्र के रूप में, फि.स.नि. अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता को बढ़ावा देता है। सिनेमा जगत् में नई प्रवृत्तियों के आगमन का प्रबन्ध करता है, स्वस्थ प्रतियोगिता उत्पन्न करता है तथा इस प्रक्रिया में भारतीय फिल्मों के स्तर को सुधारने में मदद करता है।

1.8.14 उद्देश्य

अच्छे भारतीय फिल्मों को देश में तथा विदेश में बढ़ावा देता है। विशिष्ट भारतीय फिल्मों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन का प्रबन्ध करता है। समारोहों में उत्कृष्ट अन्तर्राष्ट्रीय निर्देशकों द्वारा निर्मित फिल्मों को प्रदर्शित कर फिल्म निर्माताओं के परस्पर मिलने और एक -दूसरे को समझने के लिए मंच तैयार करता है।

1.8.15 गतिविधियाँ

भारत का अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह, राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार

1.9 फील्ड पब्लिसिटी निदेशालय

1.9.1 क्षेत्र प्रचार का निदेशालय

परिचय

क्षेत्र में प्रचार का निदेशालय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की एक इकाई है। इसका कार्य सरकार के विभिन्न कार्यक्रम और

नीतियों का प्रचार-प्रसार करना है उन 246 क्षेत्रीय इकाईयों द्वारा जो 22 क्षेत्रीय कार्यालयों के अन्तर्गत काम करती हैं।

क्षेत्रीय प्रचार 1953 में बना जिसमें 4 आंचलिक कार्यालयों के अन्तर्गत 32 क्षेत्रीय प्रचार इकाईयां काम करती हैं। इस प्रकार की व्यवस्था समग्र प्रचार कार्यक्रम 'पांच वर्षीय प्रचार संख्या' के तहत की गयी थी। मंत्रालय का इकाईयों और क्षेत्रीय कार्यालयों पर सीधा प्रशासनिक नियन्त्रण था बाद में एक समग्र रूप से निदेशालय 1959 में बना। क्षेत्रीय कार्यालयों को नियन्त्रित करने के लिए यह क्षेत्रीय प्रचार का निदेशालय कहलाया।

1962 में भारत-चीन युद्ध के बाद और 1965 में भारत-पाक युद्ध के बाद क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय की कार्य प्रणाली में कुछ आधारभूत परिवर्तन करना आवश्यक हो गया ताकि लोगों का मनोबल बढ़ाया जा सके और उन्हें बाहरी खतरों के प्रति मानसिक रूप से तैयार किया जा सके। 1963 में 34 नयी इकाईयां खोली गयीं और 1965 में 33, खासकर सीमा पार के क्षेत्रों में प्रचार के लिए।

परिवार कल्याण का महत्व समझते हुए 1965-66 के सूखे के बाद 1966 में पहली बार स्वास्थ्य और परिवार कल्याण इकाईयां स्थापित की गयीं। आज कुल 246 फील्ड इकाईयों में से 72 सीमा पर स्थित हैं।

1.9.2 उद्देश्य

क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय, सुदूर क्षेत्रों में पहुँच होने के कारण एक मजबूत और वैभवशाली भारत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह संभव है लोगों के विभिन्न विकास-सम्बन्धी योजनाओं और कार्यकलापों में सक्रिय योगदान से ये योजनाएं भारत सरकार की हैं व इन्हें निम्न वर्ग के लोगों तक पहुँचाना होता है।

इस काम में सहायता के लिए कार्यकर्ता, और उपयोगी सामग्री दी जाती है। ये लोगों में जागरण करके उन्हें मुख्य धारा में चलने की शक्ति प्रदान करने का महती कार्य करती हैं ताकि भारत जैसे सबसे बड़े लोकतन्त्र के हित सुरक्षित रखे जा सकें।

प्रमुख रूप से निदेशालय के कार्य और उद्देश्य निम्न हैं :

1. सरकार की नीतियों और कार्यक्रम को लोगों तक पहुँचाना और उन्हें उनके फायदे के लिए चलायी जा रही योजनाओं की जानकारी देना।
2. लोगों को सैद्धान्तिक बातों यथा लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्म निरपेक्षता की जानकारी देना और उनका विश्वास इन बातों में दृढ़ करना।
3. लोगों से विकास कार्यों में समन्वय स्थापित करना और उन्हें कल्याणकारी योजनाओं की ओर प्रोत्साहित करना।
4. सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों के प्रति लोगों की राय जानना और उनकी राय सरकार तक पहुँचाना। निदेशालय इस प्रकार सरकार और लोगों के बीच सेतु का काम करता है।

1.9.3 संगठनात्मक संरचना

क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय त्रि-स्तरीय प्रणाली में काम करता है:

1. मुख्यालय नई दिल्ली में
2. कार्यालय (क्षेत्रीय)
3. क्षेत्रीय प्रचार इकाईयाँ

कुल 22 क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो ज्यादातर राजधानियों में स्थित हैं। कुल 246 क्षेत्रीय प्रचार इकाईयाँ हैं जो देश भर में फैली हैं। ज्यादातर जिला मुख्यालय पर स्थित हैं।

1.9.4 निदेशालय मुख्यालय

क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय का मुख्यालय ईस्ट ब्लाक-IV, लेवेल-III आर0 के0 पुरम् नयी दिल्ली, 110066 में हैं। निदेशालय का मुखिया महानिदेशक होता है। मुख्यालय के चार अंग होते हैं। कार्यक्रम विभाग, तकनीकी विभाग, प्रशासनिक विभाग, राजभाषा विभाग।

कार्यक्रम शाखा में दो संयुक्त निदेशक, एक उपनिदेशक-तीन क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी/सहायक कार्यालय अधिकारी, एक सहायक मूल्यांकन अधिकारी और सहयोगी- कर्मी जैसे स्टेनो, यूडीसी,

एलडीसी, चपरासी वगैरह होते हैं। उपनिदेशक क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी/ सहगल प्रचार अधिकारी/सहायक मूल्यांकन अधिकारी किसी मामले की शुरूआत करते हैं और संयुक्त निदेशक के माध्यम से महानिदेशक के पास जमा करते हैं।

तकनीकी शाखा का मुखिया वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी (समूह अ अधिकारी) जो दो तकनीकी अधिकारियों (समूह-ब), दो तकनीकी सहायक (समूह-सी) और दूसरे सहयोगी स्टाफ के साथ काम करता है।

प्रशासनिक शाखा में चार विभाग होते हैंः प्रशासनिक विभाग, सतर्कता और सामान्य विभाग, बजट और लेखा विभाग और नगद विभाग। विभागीय प्रमुख मामले सहायक निदेशक/उपनिदेशक (प्रशासन) के पास जमा करते हैं।

राजभाषा शाखा में हिन्दी अधिकारी प्रमुख होता है। उसके सहयोगी एक हिन्दी अनुवादक और दूसरे कर्मी होते हैं।

1.9.5 क्षेत्रीय कार्यालय

कुल 22 कार्यालय हैं अधिकांश राज्य की राजधानियों में स्थित हैं। हर क्षेत्रीय कार्यालय 10 से 17 क्षेत्रीय प्रचार इकाईयों को नियन्त्रित करता है। एक संयुक्त निदेशक एजी ग्रेड का क्षेत्र का मुखिया होता है। तीन क्षेत्र चंडीगढ़, अहमदाबाद, और पटना का मुखिया क्षेत्रीय निदेशक होता है, ये एसएजी ग्रेज के होते हैं। क्षेत्रीय मुखिया नियुक्ति प्राधिकारी होता है। ग्रुप सी व डी पदों के लिए। सभी प्रशासनिक, बजट और दूसरे मामलों में वह प्रशासनिक अधिकारी (समूह ब) द्वारा सहयोग प्राप्त करता है। दूसरे कर्मी यथा- लेखाकार, यूडीसी, एलडीसी, चपरासी और चौकीदार हर क्षेत्रीय कार्यालय में होते हैं।

1.9.6 क्षेत्रीय इकाईयाँ

कुल 246 क्षेत्रीय इकाईयां हैं जो पूरे देश में फैली हैं। ज्यादातर जिला मुख्यालय पर एक इकाई में एक क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी, एक क्षेत्रीय प्रचार सहायक, एक एलडीसी, एक चालक, एक चपरासी और एक चौकीदार होता है। यह कार्यरत स्टाफ है, जो फील्ड ड्यूटी में रहता है। फील्ड इकाई में वाहन और दृष्ट-श्रवण

उपकरण होते हैं। हर यूनिट माह में 10 दिन टूर करती है। एफपीओ, एफपीए और चालक टूरिंग स्टाफ होते हैं।

1.9.7 निदेशालय-क्षेत्रीय प्रचार

22 क्षेत्रीय कार्यालयों से जो प्रदेश की राजधानियों में स्थित हैं, ये खबरें व जानकारी निदेशालय को पहुँचती रहती हैं मासिक कार्य रिपोर्ट के रूप में। जागरूकता, कार्यक्रम लोगों को राष्ट्रीय कार्यक्रमों की जानकारी देने के लिए आयोजित किए जाते हैं। सामान्यतया स्कूल और कालेज के छात्र, गांव के बड़े-बूढ़े, पंचायत के नेता, विचार बनाने वाले, स्वास्थ्य कर्मी, सामाजिक कार्यकर्ता, महिला स्वयंसेवी संगठन, ग्रामीण और जनजाति महिलाएं, सामाजिक और आर्धिक रूप से महरूम वर्ग के लोगों पर ये कार्यक्रम केन्द्रित होते हैं। एड्स जागरूकता, एनआईडीडीसीपी, राष्ट्रीय भाईचारा और साम्प्रदायिक सौहार्द, निम्न साझा कार्यक्रम, केन्द्र सरकार का, शारीरिक रूप से अक्षम लोगों की कल्याणकारी योजनाएं, वरिष्ठजन आदि। बराबर प्रचार में प्रयुक्त होते हैं। निदेशालय में कार्यकलाप वर्तमान वर्ष में नीचे दिए गए हैं।

1.9.8 निदेशालय के कार्यकलाप 2005-06 में (नवम्बर 2005 तक)

क्रम सं0	कार्यक्रम विस्तार	उपलब्धियाँ	लक्ष्य
1.	यात्रा के दिन	15637	22560
2.	फिल्म शो	26961	40656
3.	फोटो प्रदर्शनी	22784	15744
4.	जीवंत मनोरंजन	1436	इकाई में एक और दो टूप की उपलब्धता के अनुसार
	विशेष कार्यक्रम		
5.	व्याख्यान/निबन्ध/पहेली पेटिंग/रेखांकन/नारे लिखना प्रतियोगिता/ग्रामीण खेल/ रैली बेबी शो आदि	6759	4920
6.	समूह चर्चा	38988	40656
7.	सफलता की कहानी	421	3936
8.	जन प्रतिक्रिया रिपोर्ट	3758	5904

कार्यक्रम कार्यकलाप में कमी

अन्दर के भागों में या सीमा पर इकाईयां कई बार बहुत विषम परिस्थितियों में कार्य करती हैं। साजो-सामान की कमी भी आड़े आती है। पूर्वोत्तर में और जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद के चलते कानून व्यवस्था ध्वस्त रहती है, उसके चलते भी इकाईयों की कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । कोशिश की जा रही है कि लक्ष्यप्राप्ति उपलब्ध संसाधनों में ही की जाए।

1.9.9 सुझाव

कार्यक्रम की बेहतरी के लिए सुझाव निम्न पते पर आमंत्रित है-

महानिदेशक

क्षेत्र प्रचार निदेशालय

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय

ईस्ट-ब्लाक-4, लेवल-3

आर.के. पुरम

नई दिल्ली-110066

फोन 26106316 (टेली फैक्स)

ई-मेलः डीएफपीडीईएल @ एचयूबी, एन.आई.सी.आई.एन.

डीएफपीडीईएल @ डीईएल3.बीएसएनएल एनआईसीआईएन

क्षेत्रीय कार्यालयों और फील्ड कार्यालयों की जानकारी निदेशालय की वेबसाइट डब्लू.डब्लू.डब्लू.डी.एफ.पी.एन.आई.सी.आई.एन पर उपलब्ध है।

1.10 फिल्म्स डिवीजन - फिल्म प्रभाग

1.10.1

भारतीय फिल्म प्रभाग 1948 में स्थापित किया गया था। पिछले 50 वर्षो से संस्था भारतीय इतिहास को फिल्म में दर्ज करती रही है।

फिल्म प्रभाग के पास अभी डाक्यूमेन्ट्री, लघुफिल्म, प्रोत्साहन फिल्मों के 8000 शीर्षक हैं, इनमें सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व की

फिल्में हैं तो राजनीतिक फिल्में भी हैं।

यह भारत सरकार का प्रमुख फिल्मी माध्यम है और प्रशिक्षित व्यक्तियों, कैमरा, रिकार्डिंग/संपादन आदि सुविधाओं से लैस हैं। ये संसाधन विभाग के या बाहर के स्वतन्त्र निर्माता-निर्देशकों को भी उपलब्ध कराए जाते हैं।

फिल्म प्रभाग के संग्रह में हमारे गौरवपूर्ण अतीत की घटनाएं दर्ज हैं। उपलब्ध संसाधनों सहित यह केवल स्टोर कक्ष न होकर भविष्य निर्माण में सहयोग भी देने का काम करता है।

1.10.2 धरोहर

फिल्म डिवीजन के पास 8000 फिल्में हैं। इनमें सामाजिक - सांस्कृतिक से लेकर राजनीति-विषयक फिल्में हैं। जो लोग इनमें से कोई भी फिल्म खरीदने, प्रतिलिपि बनाने, वीएचएस कैसेट बनाने या वितरण के इच्छुक हैं वे निम्न पते पर सम्पर्क करें :

कार्यभार अधिकारी (वितरण)

फिल्म प्रभाग 24

गोपालराव देशमुख मार्ग

मुम्बई - 400026 भारत

ई-मेल : filmsd@bom4.vnsl.net.in

फैक्स : 089-022-2380 0308

यदि इस सामग्री का उपयोग भारत के बाहर किया जाना है तो अर्जी निम्न के माध्यम से आनी चाहिए:

प्रचार अधिकारी-पी.आर.14

बाह्य प्रचार विभाग

विदेश मंत्रालय, भारत सरकार

नई दिल्ली

टेली- 089-011-23389472

फैक्स - 089-011-237823/23387075

1.10.3 फिल्मों का वितरण

फिल्म डिवीजन द्वारा निर्मित फिल्मों में से कुछ राष्ट्रीय/

स्थानीय टीवी नेटवर्क पर दिखाई जाती हैं। देशभर के शिक्षण संस्थान और सामाजिक संगठन फिल्म डिवीजन से फिल्म लेते हैं। फिल्म की वीएचएस इच्छुक लोगों/संस्था को बेची जाती है काफी कम कीमत पर।

बाह्य प्रचार विभाग - भारतीय पैनेल के बाहर जाने पर अच्छी फिल्मों के प्रिन्ट वितरित करता है। रायल्टी के आधार पर फिल्मों का अधिकतम लाभ उठाया जाता है जब वे देश के बाहर वीडियो/ टीवी नेटवर्क पर प्रदर्शन हेतु भेजी जाती है।

फिल्म डिवीजन के 10 वितरण शाखा कार्यालय हैं जो बंगलूर, मुम्बई कोलकाता, हैदराबाद, लखनऊ, चेन्नई (मद्रास), मदुराई, नागपुर, तिरुवन्तपुरम और विजयवाड़ा में स्थित हैं। ये देश के 12,000 सिनेमा घरों में लगभग 90 से 100 मिलियन दर्शकों को हर हफ्ते सेवा प्रदान करते हैं। फिल्म डिवीजन फीड प्रचार निदेशालय और केन्द्र व प्रदेश सरकारों के विभिन्न विभागों की 16 मिमी0 चल इकाई को प्रिन्ट उपलब्ध कराते हैं।

1.10.4 कार्यकलाप

डॉक्यूमेन्ट्री समाचार पत्रिका/फीचर फिल्म का निर्माण मुम्बई में होता है, हालांकि शाखाएं नई दिल्ली, कोलकाता, बंगलूर में भी है। विभिन्न विभागों/मंत्रालय पब्लिक सेक्टर के लिए वीडियो फिल्मों का निर्माण। कृषि, रक्षा, परिवार कल्याण पर फिल्मों का निर्माण/फिल्म डिवीजन के थियेटर तन्त्र द्वारा फिल्मों का सिनेमा हाल में वितरण/दूसरे माध्यमों से फिल्मों का प्रचार-प्रसार क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय, उत्तर प्रदेश सरकार की चल-इकाईयां शिक्षण संस्थाएं और स्वयंसेवी संस्थाएँ, दूरदर्शन आदि को प्रिन्ट उपलब्ध कराना।

फिल्म डिवीजन के तन्त्र द्वारा प्रदेश सरकार की डाक्यूमेन्ट्री फिल्म और न्यूजरील का वितरण। प्रिन्ट की बिक्री, शॉट का संग्रह वीडियो कैसेट और डाक्यूमेन्ट्री के वितरण अधिकार और भारत और विदेश में फीचर। मुम्बई अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव डाक्यूमेन्ट्री, लघु और एनिमेशन फिल्मों में एक बार डाक्यूमेन्ट्री फिल्म डिवीजन द्वारा बनायी जाती हैं। विषय विस्तृत होते हैं जो मानव भाव व

मुद्राओं से सम्बन्धित होते हैं।

1.10.5 एनिमेशन फिल्मों का निर्माण

ग्रामीणोन्मुखी फीचर फिल्में तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, बंगाली, असमी, उड़िया और दूसरी पूर्वोक्त दक्षिण भाषी क्षेत्रों की भाषा में बनायी जाती है। फिल्म डिवीजन कथालेखन और अभिनय में स्थानीय कलाकारों का इस्तेमाल करता है, क्षेत्रीय भाषा व माहौल की चमक रखने के लिए।

डाक्यूमेन्ट्री फिल्मों की क्रय कमेटी-निजी एजेन्सियों द्वारा निर्मित कुछ फिल्में फिल्म डिवीजन द्वारा खरीद ली जाती हैं। ये खरीद सरकार के सुझाव पर मूल्यांकन कमेटी द्वारा की जाती हैं। फिल्म क्रय कमेटी सरकार द्वारा बनायी जाती है, जिसमें निम्न लोग सदस्य होते हैं।

1.10.6 निर्माण सुविधाएँ

फिल्म डिवीजन के पास अनुभवी और तकनीकी, अ-तकनीकी विशेषज्ञ होते हैं जो कहानी लेखन से वितरण तक मदद करते हैं। इसके पास मूवी कैमरा, वीडियो कैमरा, ध्वनि रिकार्डिंग और वीडियो उपकरण होते हैं। इसने अभी - अभी ऑनलाइन वीडियो-सम्पादन सुविधा (नवीनतम उपकरणों के साथ) शुरू की है। ये संसाधन (वीडियो सम्पादन सहित) बाहरी व्यक्तियों को भी किराए पर दिए जाते हैं।

फिल्म डिवीजन डाक्यूमेन्ट्री, समाचार पत्रिका बनाता है। मुम्बई के मुख्यालय में, फीचर फिल्में, बंगलूर और कोलकाता से कृषि, रक्षा, परिवार कल्याण पर फिल्में दिल्ली बनायी जाती है। फिल्में विभागीय लोगों द्वारा या फ्रीलांस काम करने वाले लोगों द्वारा बनायी जाती है। फ्रीलांस/स्वतंत्र काम करने वालों को एडवांस के रूप में सहायता की जाती है। ये लोग फिल्म डिवीजन को कुछ शुल्क अदा करके भी फिल्म निर्माण कर सकते हैं। फिल्म डिवीजन में आधुनिकतम कैमरे होते हैं और वीडियो फिल्मों के अच्छे सम्पादन की सुविधा भी।

1.10.7 फिल्म डिवीजन की साइबर भेंट

माउस दबाते ही पुरानी यादें ताजा हों। कल्पना करिए मशहूर कलाकार कुमार गंधर्व को आप 12 वर्ष की उम्र में गाते देख रहे हैं। 'यह एक बड़ा कार्य हैं जिसे फिल्म डिवीजन ने एक दिखाया है। वरिष्ठ फिल्म निर्माता डा0 जब्बार पटेल का कहना है। फिल्म डिवीजन की ब्रान्ड बैन्ड पर पोर्टल साइट www.filmsdivision.org. शुरू करते समय श्री पटेल विशेष मेहमान थे, फिल्म डिवीजन कॉम्प्लेक्स, मुम्बई में आयोजित एक समारोह में।

फिल्म डिवीजन के मुख्य निर्माता दीपांकर मुखोपाध्याय ने कहा, ''एक पत्रकार मित्र ने मुझे बताया फिल्म डिवीजन एक ज्वालामुखी पर बैठा है पर इसका भरपूर उपयोग नहीं कर रहा। 'यह सही है या गलत? उसने पूछा, मैंने कहा, यह गलत है। फिल्म डिवीजन इतना असहाय नहीं है यह भारतीय सिनेमा की धरोहर का एक भाग है और अब यह बहुमूल्य धरोहर विश्व में सभी के लिए उपलब्ध है। श्री मुखोपाध्याय ने फिल्म डिविजन की तारीफ करते हुए कहा।

पहले श्री संजय पटनायक, निदेशक, प्रशासन, फिल्म डिवीजन ने सूचित किया जनता व मीडिया के लोगों को कि फिल्म डिवीजन डिजिटल टीवी समस्याओं का हल है।

अशोक कुमार, महासचिव, भारतीय, डाक्यूमेन्ट्री निर्माता संघ के एक प्रश्न का जवाब देते हुए श्री पट्टानायक ने कहा था ''6 माह के लिए हमारी साइट मुफ्त होगी। परन्तु सामग्री डाउनलोड नहीं की जा सकती। हम व्यावसायिक हितों से चालित नहीं हो सकते। हम बाजार की ओर रूख करके ही कोई रणनीति बनाना चाहेंगे।

साइट शुरू करते हुए राजेन्द्र परमार, सह-संस्थापक और अध्यक्ष (संचालन) 'रिक्रिएट सोलुशन्स' एक लन्दन, आधारित निर्यात करने वाली कम्पनी मुम्बई में एक प्रमुख विकास केन्द्र सहित ने कहा, 'अन्तर्राष्ट्रीय ब्राडबैण्ड छेदन में भारत पीछे नहीं था। फिल्म डिवीजन की साइट www.filmsdivision.org. एक समग्र साइट है जो वीडियो की तलाश करने की सुविधा से लैस हैं। तुम श्रेणी या शीर्षक या निदेशक का चयन कर सकते हो और तुम इच्छित

वीडियो अंश भी देख सकते हो, उन्होंने कहा। श्री राम गनेश, सहायक निर्देशक (कास्टिंग), फिल्म डिवीजन ने धन्यवाद प्रस्ताव पास किया।

700 फिल्में जीवन के विभिन्न आयामों को छूते हुई बनी हैं जो 220 घंटों का प्रदर्शन कर सकती हैं। 24 घंटे रोज/ सातों दिन माउस को दबाते ही। साइबर स्पेस तुम्हारी ओर निहार रहा है।

(न्यूफाइंडर न्यूज)

1.10.8 घटनाएं

15 अगस्त 2003 को स्वतंत्रता दिवस मनाया गया और सद्भावना दिवस 20 अगस्त 2003 को। फिल्म डिविजन ने 7 नवीनतम डाक्यूमेन्ट्री और एक फीचर फिल्म का प्रीमियर 12 जुलाई 2003 को कोलकाता में आयोजित किया। उत्सव में जाने-माने फिल्म निर्माता मृणाल सेन और नबेन्दु चटर्जी मौजूद थे।

1.11 राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम एनएफडीसी,

1.11.1 जहाँ विचार बढ़ते हैं।

राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम एक केन्द्र सरकार का विभाग है जिसका कार्य अच्छे सिनेमा को देश में प्रोत्साहित करना है। इसका प्राथमिक उद्देश्य भारतीय फिल्म उद्योग की योजना बनाना, उसे प्रोत्साहित करना और विकास में सहयोग करना है। पीछे एनएफडीसी ने बहुत व्यापक सेवाएं दी हैं। जो भारतीय सिनेमा की वृद्धि के लिए आवश्यक हैं। एनएफडीसी (और इसके पहले फिल्म वित्त निगम) ने अभी तक 300 से भी अधिक फिल्मों का निर्माण/वित्त पोषण किया है। ये फिल्में जो विभिन्न भारतीय भाषाओं में हैं, चर्चित रही हैं और कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार जीत चुकी हैं।

1.11.2 सिनेमा का इतिहास

100 वर्षों का उत्तरदान :

1886 में लुमियर बन्धु सिनैमेटोग्राफ ने मुम्बई के वाटसन

होटल में छः बिना आवाज की लघु फिल्में दिखाई। शीघ्र ही, हीरालाल सेन और एच.एस. भाटवडेकर ने कोलकाता और मुम्बई में फिल्में बनाना शुरू किया। लुमियर बन्धुओं की तरह भाटवडेकर ने भारत की पहली वास्तविकता आधारित फिल्में 1899 में बनायीं। यद्यपि नाटकों पर फिल्म बनाने का प्रयास किया जा रहा था, भारत की पहली फीचर राजा हरिश्चन्द्र 1913 में बनी जो दादा साहेब फाल्के ने बनायी थी जिन्हें भारतीय सिनेमा का पिता कहा जाता है। 1920 तक एक नियमित उद्योग विकसित हो गया। प्रारम्भ में वर्ष में 27 फिल्में बनी जो बाद में 1931 में 207 हो गयीं। आज भारत में प्रतिवर्ष 800 फिल्में बनती हैं।

टाकीज : आलम आरा (1931) बोलती फिल्मों की शुरूआत थी। फिल्म के लोकप्रिय हिन्दुस्तानी संवाद और सात गानों में फिल्म हिट हुई। इससे प्रोत्साहित होकर इन्द्रसभा में 71 गाने रखे गए। फिल्मी गाने भारतीय सिनेमा की पहचान बने।

क्षेत्रीय संस्कृति और फिल्म अपनी भाषा में देखने की ललक से प्रादेशिक फिल्म उद्योग जैसे बंग्ला, तमिल, तेलुगू, मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, असमी, अंग्रेजी आदि को बढ़ावा मिला।

1.11.4

आजादी के बाद के समय ने भारतीय सिनेमा का स्वर्ण युग देखा है जिसमें गीत-संगीत व सामाजिक विषयों में कथानक रहते थे। अन्तर्राष्ट्रीय, मान्यता मिली सत्यजीत रे की पथेर पांचाली से जो 1955 में आयी। सत्यजीत रे हर समय के महान निदेशक माने जाते रहे हैं। उन्हें जीवन पर्यन्त उपलब्धियों के लिए 1995 में ऑस्कर पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

70 के दशक में समान्नतर सिनेमा उभरा जिसने यथार्थ को प्रोत्साहित किया। उसी समय नाराज युवा जैसे अमिताभ बच्चन का शासन के प्रति आक्रोश भी देखने को मिला। फिल्म उद्योग का सुपरस्टार अमिताभ अपने आप में एक उद्योग था और यह लहर 80 के दशक तक चली।

1.11.5

80 के बाद के दशक में वीडियो और केबिल टी.वी. के पदार्पण के बाद बाक्स ऑफिस पर भीड़ कम हुई किन्तु फिल्म उद्योग उस झटके को सह गया।

90 के दशक में भारतीय सिनेमा ने चक्र पूरा किया 'हम आपके हैं कौन, के साथ जिसने सारे रिकार्ड तोड़ डाले।

भारतीय सिनेमा ने जबर्दस्त क्रांति का दौर देखा। हिलती हुई तस्वीरों और शोर भरे ध्वनिमार्ग की जगह आधुनिकतम तकनीक ने ले ली। फिल्म उद्योग बहु-आयामी हुआ वाणिज्य, कला, क्राफ्ट, सितारी चमक, सामाजिक संचार, साहित्यक कोण, कलात्मक भाव, कोलकता, आदि हर दृष्टि से विकास हुआ। 2700 फिल्मों और हजारों डाक्यूमेन्ट्री लघु फिल्में 52 भाषाओं में बनी फिल्में जिससे भारत विश्व में सर्वाधिक फिल्म बनाने वाला देश साबित हुआ।

1.11.6 विदेशी फिल्मों का भारत में आयात का तरीका

फीचर-फिल्म और वीडियो-फिल्म का आयात, और विदेशी फिल्मों के वीडियो अधिकार पर निमन्त्रण सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा होता है। फीचर-फिल्मों और वीडियो फिल्मों का आयात कोई भी (अप्रवासी भारतीय, विदेशी व्यक्ति और निजी कम्पनी भारत की) फिल्मों का भारत में आयात कर सकता है। आयात करने वाले को भारत में फिल्म प्रमाणन के केन्द्रीय बोर्ड से इन आशय का प्रमाण पत्र लेना पड़ता है कि फिल्म ने कोई पुरस्कार जीता है। किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में या इसे फिल्मी पत्रिकाओं में वांछनीय स्थान मिला है। आयातित फिल्म को सभी नियम व शर्तें माननी पड़ती हैं और इसे प्रदर्शन से पहले सिनेमैटोग्राफ एक्ट, 1952 के तहत प्रमाण-पत्र भी चाहिए होता है। अवैध या नकली फिल्म का आयात प्रतिबन्धित है। भारतीय फिल्मों में विदेशी प्रिन्ट के लिए सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय से पहले से अनुमति प्राप्त करनी होती है।

1.11.7 एन.एफ.डी.सी. आयात फीचर

- शती की महान घटनाएँ 1950-95 (टी.वी. अधिकार)
- मूवी मैजिक (टी.वी. अधिकार)
- कभी हम रंगीन थे (गैर-थियेटरी और टीवी अधिकार)

- नेकेड टार्गेट (गैर-थियेटरी, थियेटरी, टीवी, वीडियो अधिकार,
- डिमालिशन हाई (थियेटरी)
- लान मूवर मैन-।। (थियेटरी और टी.वी. अधिकार)
- अली बाबा (टीवी और वीडियो के लिए एनीमेटेड फिल्म)
- ट्रिस्ट (थियेटरी, गैर-थियेटरी और वीडियो अधिकार)
- इक्वीजिट टेण्डरनेस (थियेटरी, गैर-थियेटरी और वीडियो अधिकार)
- ब्लैक लिस्ट (थियेटरी, गैर-थियेटरी, वीडियो और टीवी अधिकार)
- फॉर योर लव ओनली (पुनर्संस्करण-सभी अधिकार)
- मिस्टियर (पुनर्संस्करण - सभी अधिकार)
- ह्यूमन लाइफ (टीवी अधिकार)
- एकेडमी अवार्ड (1945-1980 10 घंटे के टीवी अधिकार)

1.11.8 फीचर फिल्म की शूटिंग भारत में, पूरी या आंशिक, विदेशियों द्वारा

टीवी/फीचर फिल्म की शूटिंग के प्रस्ताव सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 'ए' शाखा, शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001 के पास जाते हैं। प्रस्ताव सीधे या विदेश में भारतीय प्रतिनिधियों के माध्यम से भेजे जा सकते हैं। मंत्रालय समन्वय मंत्रालय के रूप में काम करता है। इस मंत्रालय की संस्तुति पर ही दूसरे मंत्रालय फिल्म इकाई को सहयोग प्रदान करते हैं। डाक्यूमेट्री फिल्म के प्रस्ताव बाहरी मामले मंत्रालय (वाह्य प्रचार विभाग) शास्त्री भवन, नई दिल्ली को भेजे जाने चाहिए।

1.11.9 कहानी की स्वीकृति

शूटिंग की जाने वाली कहानी की चार प्रतियाँ, इसके सारांश के साथ, स्वीकृति हेतु जमा की जानी चाहिए। यदि किसी जीवित व्यक्ति को फिल्म में दिखाया जाना है तो उससे अनापत्ति प्रमाण पत्र लेना आवश्यक है और इसे प्रस्ताव के साथ नत्थी करें।

सह-निर्माण की दशा में भारत व विदेशी व्यक्ति या संस्था के बीच हुआ करार जिसमें दोनों की कार्य की कार्यप्रणाली का जिक्र हो, जमा किया जाना चाहिए।

फिल्म बनाने वालों का विवरण उनके पासपोर्ट के ब्योरे सहित, पासपोर्ट जारी करने वाले देश का नाम, राष्ट्रीयता, स्थायी व अस्थायी पता, टीम की यात्रा योजना, शूटिंग किए जाने वाले स्थान, उपकरण, फिल्म जो भारत में आयात की जाने वाली है आदि जानकारी सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को देनी होती है। ये सूचनायें एक माह पहले दी जानी चाहिए ताकि समय रहते स्वीकृति मिल सके।

1.11.10 कहानी की स्वीकृति और निर्माता की घोषणा

प्रस्ताव के विवरण और कहानी की जाँच-पड़ताल के बाद, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है। नीचे दी हुई शर्तों के साथ कहानी की स्वीकृति में 10-12 सप्ताह लग जाते हैं। निर्माता को एक घोषणा पत्र देना होता है (संलग्नक में) कि वह इन शर्तों का पालन करेगा।

1.11.11 शूटिंग सम्बन्धी शर्तें

फिल्म भारत सरकार द्वारा स्वीकृत कहानी पर ही बनायी जाएगी। यदि कोई परिवर्तन किया जाना है तो उसकी पूर्व अनुमति सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय से ली जानी चाहिए। सारी शूटिंग एक समन्वय अधिकारी की उपस्थिति में होनी चाहिए जो सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा उपलब्ध कराया जाएगा। टीम को स्थानीय अनुमति के अलावा समन्वय अधिकारी के कर्तव्य में शामिल हैं कि वह भारत व भारत के लोगों की छवि फिल्म में सही दिखाई जा रही है इस बात पर नजर रखे। इस सम्बन्ध में कोई भी शर्त तोड़े जाने पर मामला सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को संदर्भित किया जाएगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा।

विशेष स्थानों पर शूटिंग अनुमति-आधारित होगी जिसे सम्बन्धित अधिकारी देंगे। अनुमति के लिए अर्जी, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के माध्यम से आनी चाहिए।

यदि रक्षा मंत्रालय, शिक्षा विभाग से कोई मदद चाहिए, इन मंत्रालयों की इच्छानुसार अलग से एक समझौता हस्ताक्षर करना पड़ेगा। लेकिन ऐसी मदद के लिए प्रार्थना पत्र सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के माध्यम से आना चाहिए। फिल्म पूरी होने के बाद यदि

उसमें सेना सम्बन्धी कुछ दृश्य हैं तो रक्षा मंत्रालय को दिखाई जाएगी इसके पहले कि वह जनता में प्रदर्शन के लिए जारी की जाए। ये शर्त पैरा 9 में नीचे दी गयी शर्तों से अलग है।

निर्माता फिल्म की शूटिंग के दौरान निर्यात/आयात के सभी नियम और विदेश विनिमय के नियम मानेगा। फिल्म के प्रिन्ट विदेशों में कारगो में भेजे जाएंगे, नाकि सामान के रूप में पैक करके।

1.11.12 जारी से पहले फिल्म की अनुमति

पूरी होने पर फिल्म भारत सरकार के किसी प्रतिनिधि को दिखाई जाएगी या भारतीय अधिकारी को विदेश में यदि वह विदेश में प्रदर्शन हेतु है तो। यदि ऐसा मामला है तो भारतीय प्रतिनिधि को पहले से बताना होगा और ऐसा एक घोषणा पत्र भी बनाना होगा।

1.11.13 सह-निर्माण की दशा में विदेशी मुद्रा का जारी करना

जहाँ भारतीय सह-निर्माता का विदेशी मुद्रा का खर्च होना है, उसे उस धन से दुगने की बैंक जमानत देनी होती है जितनी उसे दी जाती है।

विदेशी मुद्रा जारी होने से पहले भारतीय सह-निर्माता को सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को निवेदन करना पड़ता है उन्हें विदेशी मेहमानों की यात्रा के बारे में बताते हुए, जितने दिन शूटिंग होनी है और खर्च का ब्योरा देना होता है।

विदेशी सहयोगी को किसी प्रकार का कमीशन या अन्य कोई लाभ देय नहीं है।

- फिल्म वित्तपोषण और निर्वाण

  एन.एफ.डी.सी. द्वारा निर्माण/सह-निर्माण/वित्तपोषित फिल्म

  सम्पर्क : एन.के. व्यास (फोन 24929096)

- आयात और वितरण भारत में:

  एनएफडीसी अच्छी व्यावसायिक फिल्मों को आयात करता है और भारत में वितरित करता है।

  सम्पर्क : एस डी पई (फोन 24933678)

- फिल्मों का निर्यात

1.11.14 सह-निर्माण की दशा में विदेशी मुद्रा का जारी करना

एनएफडीसी भारतीय फीचर फिल्मों का एकमात्र निर्यातक है। यह निजी निर्माताओं की फिल्में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कमीशन के आधार पर बाजार में उतारता है।

1.11.15 तकनीकी सेवाएं :

उपकरण यथा वीडियो, 16 मिमी कैमरा, 35 मिमी कैमरा और दूसरे उपकरण किराए पर लिए जाते हैं। तकनीकी सेवाएं यथा टेलीसिने, वीडियो की दोहरी प्रति सम्पादन आदि उपलब्ध कराता है एन एफ डी सी।

सम्पर्क वीएस करकेरा (फोन 23511475)

1.11.16

एनएफडीसी आयात करता है, अच्छी व्यावसासिक और कलात्मक फिल्में विश्वभर से और उन्हें भारत में वितरित करता है विभिन्न माध्यमों यथा थियेटर वीडियो, उपग्रह दूरदर्शन आदि।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
उप महा प्रबन्धक (जिला)
एन एफ डी सी लि0
भारत की खोज भवन
नेहरू केन्द्र
डा0 एनी बेसेन्ट मार्ग
वर्ली, मुम्बई - 400018
भारत
फोन 91-22-24968252
ई-मेल- sdpai@nfdenet.co.ins

1.12 सारांश

इस इकाई में निम्नलिखित फिल्म से सम्बन्धित संस्थाओं के विषय में जानकारी दी गयी।

(i) केन्द्रीय फिल्म सर्टीफिकेट बोर्ड या फिल्म सेन्सर्स का केन्द्रीय बोर्ड

(ii) भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखाकार

(iii) फिल्म समारोह निदेशालय जिसे इफ्फी भी कहते हैं।

(iv) फील्ड पब्लिसिटी निदेशालय जिसे क्षेत्र प्रचार निदेशालय भी कहा जा सकता है।

(v) फिल्म प्रभाग

(vi) एनएफडीसी राष्ट्रीय फिल्म डेवलपमेन्ट कारपोरेशन

यह सभी संस्थाएँ, फिल्म उद्योग से सम्बन्धित हैं, राष्ट्रीय फिल्म विकास कारपोरेशन, फिल्मों के आयात निरीक्षण का कार्य करता है। जबकि आर्ट एफ.एफ.आई. या फिल्म समारोह निदेशालय, अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय फिल्म समारोह आयोजित करता है और केन्द्रीय फिल्म सेन्सर बोर्ड के प्रमाणन या उसके द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्र के बिना कोई भी फिल्म सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित नहीं की जा सकती। फिल्म प्रभाग का मुख्यालय मुम्बई में है। यह संस्था वृत्तचित्र निर्माण 35 एम.एम. गेज में तथा सिनेमाघरों में दिखाए जाने वाली न्यूजरील प्रदर्शन के लिए तैयार करता है। कुछ समयपूर्व सिनेमाघरों में न्यूजरील समाचार वृत्तान्त में इसका एकाधिकार समाप्त हो गया है।

1.13 शब्दावली

फिल्म सेन्सर	:	सार्वजनिक प्रदर्शन से पूर्व सेन्सर बोर्ड से प्रमाणपत्र लेना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।
प्रिन्ट मीडिया	:	मुद्रण पर आधारित जैसे अखबार, पत्र, पत्रिकाएं।
राष्ट्रीय फिल्म आरकाविस	:	राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार
इफ्फी (आ.एफ.एफ.आई)	:	अन्तरर्राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल ऑफ इंडिया
फि.स.नि.	:	फिल्म समारोह निदेशालय
फील्ड पब्लिसिटी निदेशालय	:	क्षेत्र प्रचार निदेशालय
फिल्म डिवीजन	:	फिल्म प्रभाग

एनीमेशन फिल्म : कार्टून फिल्म तथा अन्य सिंगल फ्रेम फिल्म।

1.14 संदर्भ ग्रन्थ

- इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म प्रोडक्शन : राजकृष्ण मिश्र
- सूचना वार्षिकी, भारत सरकार : प्रकाशन विभाग भारत सरकार
- विभागीय प्रकाशन : प्रकाशन विभाग भारत सरकार
- इंडियन ब्रॉडकास्टिंग : एच.आर. लुथरा

1.15 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) सार्वजनिक प्रदर्शन का प्रमाणपत्र देने वाली संस्था का नाम तथा मुख्यालय जानकारी दीजिए।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय फिल्म समारोह कौन आयोजित करता है।

(iii) फिल्म डिवीजन में क्या कार्य होता है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(i) राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

(ii) फिल्म प्रभाग की गतिविधियों का विवरण दीजिए।

(iii) फिल्ड पब्लिसिटी क्या कार्य करता है, उसके कार्यालय कहाँ हैं और वह किस मंत्रालय से सम्बद्ध हैं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) सिनेमेटोग्राफी ऐक्ट

(i) 1952 में बना था।

(ii) 1962 में बना था।

(iii) 1970 में बना था।

(iv) 1948 में बना था।

(ख) राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार :

(i) 1968 में बना था।

(ii) 1964 में बना था।

(iii) 1978 में बना था।

(iv) 1947 में बना था।

(ग) फिल्म समारोह निदेशालय

(i) फिल्म प्रदर्शन का प्रमाणपत्र देता है।

(ii) फिल्म पर कर लगाता है।

(iii) फिल्म समारोह आयोजित करता है।

(iv) फिल्म आयात करता है।

(घ) एन.एफ.डी.सी.

(i) फिल्म आयात करता है।

(ii) फिल्म का प्रदर्शन करता है।

(iii) वृत्तचित्र बनाता है।

(iv) क्षेत्र प्रचार का काम करता है।

उत्तर (क) (i) (ख) (iii) (ग) (ii) (घ) (i)

इकाई 2 प्रशिक्षण संस्थाएं

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भरतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान, पुणे

2.3 प्रशासनिक संरचना

2.4 निर्माण सुविधाएं

2.5 शैक्षिक निर्देशन

2.6 फिल्म छायांकन

2.7 श्रव्यांकन

2.8 सम्पादन

2.9 कम्प्यूटर प्रयोगशाला

2.10 पुस्तक, फिल्म तथा वीडियो लाइब्रेरी

2.11 संकाय

2.12 अल्पावधि पाठ्यक्रम

2.13 पाठ्यक्रम संरचना

2.14 वर्ष के लिए प्रवेश पात्रता

2.15 प्रवेश प्रक्रिया

2.16 सामान्य अनुदेश

2.17 प्रवेश परीक्षा

2.18 सत्यजीत रे फिल्म और टेलीविजन संस्थान

2.19 प्रबन्धन एवं सांगठनिक ढांचा

2.20 निर्देशन, चलचित्र फोटोग्राफी और सम्पादन

2.21 फिल्म लाइब्रेरी

2.22 शैक्षणिक

2.23 सारांश

2.24 शब्दावली

2.25 संदर्भ ग्रन्थ

2.26 सम्बन्धित प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे—

(i) फिल्म क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण फिल्म इंस्टीट्यूट कौन हैं।

(ii) वहाँ फिल्म का प्रशिक्षण किस प्रकार दिया जाता है।

(iii) फिल्म इंस्टीट्यूट में क्या सुविधाएं हैं।

(iv) वहाँ किस प्रकार और किन विषयों की जानकारी दी जाती है।

(v) आर्थिक पक्ष क्या है, फीस कितनी है और दाखिला कैसे होता है।

(vi) फिल्म के व्यवहारिक पक्ष के विषय में।

2.1 प्रस्तावना

फिल्म उद्योग, प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। 1960 के दशक से पूर्व, फिल्म प्रशिक्षण की सुविधा देश में नहीं थी। फिल्म उद्योग की अपनी व्यवस्था के अनुसार, कैमरा, साउन्ड, आर्ट यानी कला, मेकअप, वेशभूषा, निर्माण, निर्देशन इत्यादि क्षेत्रों में गिने-चुने लोग अपने-अपने सहायकों को, काम के दौरान ही प्रशिक्षण देते थे। एक प्रकार से बड़े तकनीकी विशेषज्ञ अपने अन्तर्गत, सहायक रखते हैं। जिन्हें आरम्भ में, किसी प्रकार का वेतन नहीं मिलता था। धीरे-धीरे सीखने के बाद, इन सहायकों को सीधे काम मिलने लगता है।

यह दौर पिछले तीस वर्षों से चला आ रहा था। यह सब कुछ परम्परा पर आधारित था। उसी से जुड़ी हुयी थी, शिष्य और गुरू व्यवस्था। 1960 के दशक में, सत्तर के दशक में, अस्सी और नब्बे

के दशक में, यह सब बंद हो गया, ऐसा नहीं है। सबकुछ वैसे ही चल रहा है। लेकिन फिल्म संस्थान से निकलने वाले छात्रों को काम मिलने लगा था। कई छात्रों ने अपना स्थान बना लिया था, जैसे- सुरेश कथूरिया, जिन्होंने धर्मेन्द्र के पुत्र के नाम से, सनी साऊन्ड स्टूडियो बनाया और फिर चलाया।

कैमरा के क्षेत्र में, अनेक लोग फिल्म प्रशिक्षण संस्थान से कोर्स करने के बाद, फिल्म उद्योग में काम करने लगे तथा समय के साथ, उद्योग में उसका स्थान सुनिश्चित हो गया जैसे, आर.एम.राव, के.के. महाजन, वी बैकुन्ठ।

इस इकाई में, फिल्म प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। दूरदर्शन का अपना, अलग प्रशिक्षण संस्थान, दिल्ली में स्थित था। 1974 में, उसे फिल्म संस्थान, पुणे के परिसर में हस्तांतरित कर दिया गया। इसके अन्तरर्गत 12 से 20 सप्ताहों के अन्दर दूरदर्शन-कर्मियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

2.2 भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान, पुणे

2.2.1 फिल्म और टीवी प्रशिक्षण की परम्परा स्थापित करना

भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान (भाफिटेस) सन् 1960 में विगत समय में गुणवत्तापूर्ण सिनेमा की उच्च परम्परा के लिए पुणे में गौरवान्वित, प्रभात स्टूडियो के परिसर में स्थापित किया गया था और फिल्म तथा टेलीविजन कार्यक्रम निर्माण के क्षेत्र में प्रशिक्षण प्रदान करने के अपने उद्देश्य के प्रति संस्थान पूर्णतया प्रतिबद्ध रहा है। आज केवल भारत में नहीं बल्कि सारे विश्व में भाफिटेस उच्च कोटि के शिक्षण केन्द्र के रूप में जाना जाता है। विश्व के सभी प्रमुख फिल्म तथा टेलीविजन प्रशालाओं की प्रतिनिधिक/ सर्वोच्च निकाय ''सिलेक्ट'' का भाफिटेसं पूर्ण सदस्य है। संस्थान के छात्रों द्वारा बनायी गई फिल्में भारत और विदेशी फिल्म समारोहों में दिखायी जाती है तथा उनमें से कई फिल्मों ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय

पुरस्कार जीते हैं।

भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान के पूर्व छात्रों ने अपनी योग्यता से फिल्म और टेलीविजन उद्योग से विशेष पहचान बनाई है और सम्मान अर्जित किया है। उनकी फिल्मों को लम्बी फीचर तथा लघु फिल्म श्रेणी में राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में सम्मानजनक पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया और उनकी पहचान भी बनी।

2.2.2 पार्श्वभूमि

अपनी स्थापना से लेकर आज तक संस्थान ने एक लम्बा सफर तय किया है। भारत सरकार ने बिक्री के लिए प्रस्तावित सुप्रसिद्ध प्रभात स्टूडियो खरीद लिया। (जिसने भारतीय सिनेमा की प्रमुख कलाकृतियों में से संत तुकाराम, कुंकू, माणूस तथा शेजारी जैसी फिल्में बनायी थी) ये ऐतिहासिक स्टूडियो आज भी छात्रों के द्वारा अभ्यासों के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। ये स्टूडियो पुणे महानगर निगम द्वारा घोषित संरक्षित विरासत स्थान है।

सन् 1974 में दूरदर्शन का नई दिल्ली स्थित टेलीविजन प्रशिक्षण केन्द्र, संस्थान के परिसर में स्थानांतरित किया गया तथा संस्थान का नाम बदलकर भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान रखा गया।

टीवी स्कन्ध, में दूरदर्शन कर्मियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाया जाता है। इस प्रशिक्षण की अवधि 12 से 20 सप्ताहों तक अलग-अलग है। टीवी स्कंध ने देश-विदेश की विभिन्न सरकारी इकाईयों के वीडियो पर काम करने वालों के लिए अल्पावधि पाठ्यक्रम भी चलाए। टीवी स्कन्ध इस वर्ष से निर्देशन, इलेक्ट्रानिक सिनेमाटोग्राफी, वीडियो सम्पादन, श्रव्याकंन तथा टीवी अभियांत्रिकी में विशेषज्ञता के साथ एक वर्षीय टेलीविजन पाठ्यक्रम शुरू कर रहा है, जो सभी योग्य उम्मीदवारों के लिए खुला है।

2.3 प्रशासनिक संरचना

2.3.1

भाफिटेस, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन सोसायटी पंजीकरण अधिनियम 1850 के अनुसार पंजीकृत स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य करता है। फिल्म, टीवी, कला एवं अन्य शैक्षिक क्षेत्रों के सुप्रसिद्ध व्यक्ति इस सोसायटी के सदस्य हैं तथा इन्हीं क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र के एक विशिष्ट व्यक्ति इसके अध्यक्ष हैं। सोसायटी के सदस्यों में से चुनाव द्वारा शासी परिषद् का गठन होता है। शासी परिषद एक सर्वोच्च निकाय है, जो भाफिटेसं की नीतियों के विषय में प्रमुख निर्णय लेने हेतु तथा संस्थान के उद्देश्य और लक्ष्यों के मद्देनजर दिशा-निर्देशों के लिए उत्तरदायी है। शैक्षिक तथा वित्तीय विषयों सम्बन्धी मामलों पर शासी परिषद् को सलाह देने के लिए शासी परिषद्, शैक्षिक परिषद (शै.प.) और स्थायी वित्त समिति (स्था.वि.स.) की नियुक्ति करती है। सोसायटी के अध्यक्ष शासी परिषद्, शैक्षिक परिषद् और स्थायी वित्त समिति के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य करते हैं।

2.3.2

संस्थान के निदेशक कार्यकारी प्रमुख के रूप में कार्य करते हैं और नीति-निर्धारण निकायों द्वारा निर्धारित नीतियों एवं कार्यक्रमों को कार्यान्वित करते हैं।

2.3.3

जिन प्रमुख व्यक्तियों ने शासी परिषद् के अध्यक्ष के रूप में काम किया है, उनमें से श्याम बेनेगल, मृणाल सेन, अदूर गोपालकृष्ण, महेश भट्ट, गिरीश कर्नाड आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सुप्रसिद्ध लेखक और शिक्षाविद् प्राध्यापक आर. अनंतमूर्ति, भाफिटेसं शासी परिषद् के वर्तमान अध्यक्ष हैं।

अतीत में जिन व्यक्तियों ने भाफिटेसं के निदेशक के रूप में काम किया, उनमें गजानन जागीरदार (उस समय प्रिंसिपल), जगत मुरारी, एन.वी.के. मूर्ती, गिरीश कर्नाड, जॉन शंकरमंगलम् और डॉ. मोहन आगाशे आदि, प्रमुख है। प्रेम मटियानी संस्थान के वर्तमान निदेशक हैं।

2.4 निर्माण सुविधाएँ

2.4.1

फिल्म और टेलीविजन के क्षेत्र में व्यावसायिक स्तर का प्रशिक्षण देने के लिए भाफिटेस के पास अत्याधुनिक उपकरण हैं। यहाँ दो फिल्म स्टूडियो फ्लोर हैं, एक 175 फुट × 80 फुट तथा दूसरा 97 फुट × 51 फुट आकारमान का है।

2.4.2

टेलीविजन स्कंध में दो स्टूडियो हैं, दोनों का आकार क्रमशः 60×40×22 फुट और 50×40×22 फुट हैं। उनमें सभी आधुनिकतम सुविधाएँ उपलब्ध हैं। समाचार, टॉक शोज, गेम शोज, नाटक, संगीत कार्यक्रम जैसे मल्टी कैमरा निर्मितियों का भी निर्माण यहाँ किया जाता है। स्टूडियो में स्वयं चलित प्रकाश योजना प्रणाली, कम्प्यूटर द्वारा विशेष प्रभाव सुविधाएँ फॉलो स्पॉट इत्यादि लगाई गई हैं। इनमें से एक स्टूडियो में डिजिटल ब्रॉडकास्ट क्वालिटी स्टूडियो कैमरा चेन लगाई गई है। अन्य उपकरणों में बहुभाषी कैरेक्टर जनरेटरों (सीजी) और कम्प्यूटरीकृत टेली प्रॉम्प्टर सुविधा और क्रोमा की जैसी सुविधाएँ हैं।

2.5 शैक्षिक निर्देशन

2.5.1

अपनी अभिव्यक्ति को दूसरों के साथ बाँटने की इच्छा निर्देशन का प्रेरणा बिन्दु है। इसे साकार रूप देने की प्रक्रिया का सम्बन्ध है, विचारों और संकल्पनाओं को सकारात्मक रूप में विकसित करना, प्रस्थापित तकनीकियों का उपयोग करना, किसी व्यक्ति की अपनी बोलचाल की भाषा को खोजना, सृजन, नियोजन, पारस्परिक सम्पर्क और इन सब स्तरों पर प्रोजेक्ट को परिचालित करना।

2.5.2

सैद्धांतिक व्याख्यानों और प्रायोगिक अभ्यासों के अतिरिक्त निर्देशन और पटकथा लेखन के विभिन्न पहलुओं पर कार्यशालाएं संचालित की जाती है, जिसमें सुप्रसिद्ध व्यावसायियों के साथ छात्र

कार्य करते हैं।

2.5.3

पाठ्यक्रम पूरा करने के पश्चात छात्र स्वतन्त्र व्यवसायी के रूप में फीचर फिल्म, वृत्त-चित्र, टेलीविजन कार्यक्रम का निर्माण करते हैं अथवा निर्मित केन्द्रों या टेलीविजन चैनलों से जुड़ जाते हैं।

2.6 (ख) फिल्म छायाकंन

2.6.1

फिल्म छायांकन विभाग 16मि.मी. एव 35 मि.मी. के विभिन्न प्रकार के कई चलचित्र छायांकन कैमरों तथा विभिन्न अत्याधुनिक साधनों से लैस विभिन्न एनालॉग और डिजिटल दोनों ही प्रकार के वीडियो उपकरणों से सुसज्जित है। प्रगत प्रयोग के हेतु इन कैमरों के लिए बड़ी संख्या में सहायक सामग्री उपलब्ध है।

2.6.2

छात्रों को रंगों, रंग-मिश्रणों एवं दृश्य बिंबावली के मूल सौदर्यपरक की अच्छी समझ होना अपेक्षित है।

2.6.3

संस्थान में प्रशिक्षण अवधि के दौरान छात्रों को थोड़ा-थोड़ा करके दृश्य संप्रेक्षण के क्षेत्र से अवगत कराया जाता है। प्रशिक्षण के प्रथम वर्ष में सभी छात्रों के स्थिर छायांकन, 16 मिमी. तथा मूल स्तर पर वीडियो का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हें मल्टी कैम टीवी स्टूडियो तकनीकियों से भी परिचित करवाया जाता है। सभी छात्र अपने-अपने अभ्यासों के अनुसार अपने क्रम में टीम में निर्देशक, कैमरामैन, ध्वनि अंकक तथा संपादक की विभिन्न भूमिकाओं में काम करते हैं और इन विद्याशाखाओं की कार्य-आवश्यकताओं का सीधा अनुभव प्राप्त करते हैं।

2.6.4

द्वितीय वर्ष के प्रशिक्षण के दौरान छात्र छायांकन का गहन और विशद ज्ञान प्राप्त करना आरंभ करते हैं। वे स्टूडियो के सेट के लिए बाह्य स्थलों पर दिन के अलग-अलग समय के अनुरूप प्रकाश

योजना करने का अभ्यास करते हैं। वे कार्यशालाओं/सामूहिक चर्चाओं में सहभागी होकर इस क्षेत्र के मूर्धन्य विशेषज्ञों के साथ चर्चा भी करते हैं।

2.6.5

अंतिम वर्ष के दौरान फिल्म छायांकन के छात्र अत्याधुनिक स्तर का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं तथा अन्य शाखा के छात्रों के साथ मिलकर डिप्लोमा प्रोजेक्ट की निर्मिति पूर्ण व्यवसायी क्षमता से करते हैं।

2.6.6

फिल्म छायांकन के छात्रों को पदवी प्राप्त करने के पश्चात् फीचर फिल्म, वृत्तचित्र, /लघु फिल्म, विज्ञापन फिल्म, कारपोरेट फिल्म, संगीत वीडियो, धारावाहिकों, वैज्ञानिक फिल्मों तथा स्टूडियो पर आधारित टेलीविजन निर्मिति, आदि के क्षेत्र में प्रवेश उपलब्ध होता है।

2.7 श्रव्यांकन

2.7.1

यह पाठ्यक्रम ध्वनि के सर्जनात्मक प्रयोग की तकनीक सिखाने का अभ्यास क्रम है। विभाग में डिजिटल और एनालॉग उपकरणों का प्रयोजन है। टेप तथा डिस्क आधारित पद्धतियों का यहाँ सह-अस्तित्व है। यहाँ दो विशाल रिकार्डिंग स्टेज है। एक मूल रिकार्डिंग के लिए तथा दूसरा डबिंग, और मिक्सिंग के लिए। विभाग के पास पोर्टेबल डिजिटल ऑडियो रिकॉर्डर, एचडीडी आधारित वर्क स्टेशन, कई आउटबोर्ड इफेक्ट्स प्रोसेसिंग गियर्स और ऑटोमेटेड मिक्सिंग और इलेक्ट्रॉनिक लूपिंग सिस्टम है तथा ऑडियो तथा एकोस्टिक मापन के लिए अच्छे उपकरणों सहित एक इलेक्ट्रानिक प्रयोगशाला है।

2.7.2

छात्रों को मूल रिकार्डिंग, प्रायोगिकों, समन्वित अभ्यासों और

प्रोजेक्टों के द्वारा पर्याप्त प्रत्यक्ष अनुभव मिलता है। श्रव्य प्रशिक्षण और ध्वनि विश्लेषण इस पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग है। एनालॉग और डिजिटल क्षेत्र के प्रायोगिकों का आयोजन किया जाता है।

2.7.3

पदवी पाने के बाद छात्र, फिल्म तथा टेलीविजन निर्मिति केन्द्रों संगीत और मिक्सिंग स्टूडियो, टीवी चैनलों और रेडियो इत्यादि में काम कर सकते हैं।

2.8 सम्पादन

2.8.1

फिल्म निर्माण के इस महत्वपूर्ण पहलू को एक विस्तृत सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में इसे सम्पादन के लीनियर और नॉनलीनियर उपकरणों पर कई प्रायोगिक अभ्यासों के पश्चात् प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा पढ़ाया जाता है। इससे छात्रों को सम्पादन कला और उसके सर्जनात्मक परिवेश को समझने में सहायता मिलती है और तेजी से बदलने वाले इस क्षेत्र में हर चुनौती का सामना करने के लिए एक प्रभावशाली व्यावसायी के रूप में विकसित होने की दिशा भी मिलती है।

2.8.2

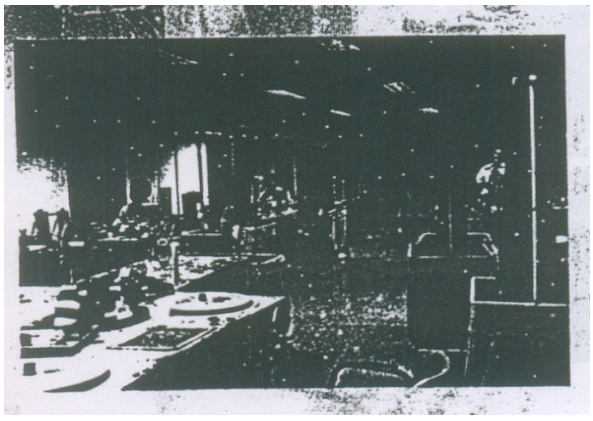

2.9 कम्प्यूटर प्रयोगशाला

2.9.1

कम्प्यूटर प्रयोगशाला नवीनतम सॉफ्टवेयरों से सुसज्जित है, जहाँ मल्टीमीडिया के प्रयोगों द्वारा छात्रों को अपने कम्प्यूटर कौशल को बढ़ाने में सहायता मिलती है। इसका पहला उद्देश्य है मीडिया के लिए विकसित कम्प्यूटर के अनुप्रयोगों के संपूर्ण क्षेत्र की जानकारी प्राप्त करने मे छात्रों की सहायता करना।

2.9.2

2.10 पुस्तक, फिल्म और वीडियो लायब्रेरी

2.10.1

संस्थान में एक विशाल पुस्तकालय हैं, जिसमें फिल्म, टीवी, रंगमंच, कला तथा साहित्य आदि से संबंधित पुस्तकों का बड़ा संग्रह है। देश-विदेश में प्रकाशित मीडिया से संबंधित कई विशिष्ट पत्रिकाओं का यह ग्राहक है।

2.10.2

संस्थान में फिल्मों और वीडियो का अच्छा संग्रह है, तथा राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय जो भाफिटेसं परिसर के पास ही है, उसके

संग्रहालय में उपलब्ध सभी सामग्री भी संस्थान के लिए उप उपलब्ध है।

2.10.3

2.11 संकाय

2.11.1 संकाय सदस्य

अध्ययन कार्य के साथ-साथ छात्रों को फिल्म और टेलीविजन दोनों का मार्गदर्शन करने के लिए संस्थान के अपने अत्यन्त अनुभवी संकाय सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त, संस्थान फिल्म उद्योग के प्रसिद्ध व्यावसायियों को अतिथि के रूप में आमंत्रित करता है, ताकि शिक्षा का प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र, व्यावसायी कार्यक्षेत्र से समन्वित किया जा सके।

2.11.2 अतिथि संकाय

विगत समय के दौरान, फिल्म उद्योग के सुप्रसिद्ध महान व्यावसायिक जैसे-ऋत्विक घटक, आर.डी.माथुर, हृषिकेश मुखर्जी, के.के. महाजन, ए.के.बीर, बालू महेन्द्रु, सईद मिर्जा, सुभाष गुप्ता, रेणु सलूजा, दमन सूद, कुलदीप सूद, राम मोहन, सुरेश कथूरिया, विजय तेंडुलकर और प्राण किशोर इत्यादि अतिथि संकाय के रूप में

शामिल हैं। संस्थान अन्य विषयों की सुप्रसिद्ध हस्तियों को भी अतिथि संकाय के रूप में आमंत्रित करता है।

2.11.3

इन व्यक्तियों के अतिरिक्त सिनेमा जगत के विभिन्न प्रख्यात फिल्म निर्माता, पटकथा लेखक और कैमरामैन, थिएटर, और टेलीविजन क्षेत्र के व्यक्ति संस्थान में प्रत्येक वर्ष आते हैं, और छात्रों से चर्चा करते हैं। ज्याँ क्लोद कैरियर, इस्तवान गाल, क्रिस्टॉफ जानुसी, राउल कूतार्द तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों ने संस्थान में आकर अपने विशेषज्ञता क्षेत्र की कार्यशालाओं के माध्यम से छात्रों के साथ घनिष्टता से अपने ज्ञान और विचारों का आदान-प्रदान किया।

2.12 अल्पावधि पाठ्यक्रम

2.12.1

अपने मुख्य शैक्षणिक कार्यक्रम के अतिरिक्त संस्थान, देश में अच्छे सिनेमा की संस्कृति का प्रसार करने के उद्देश्य से पत्रकारों, मीडिया व्यावसायियों, अध्यापकों, रंगमंच के कलाकारों, सिनेमा प्रेमियों और अन्यों के लिए राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय के साथ संयुक्त रूप से एक महीने का फिल्म सराहना पाठ्यक्रम संचालित करता है।

2.12.2

माध्यम उद्योग के विस्तार की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए भाफिटेस ने नियमित आधार पर अल्पावधि पाठ्यक्रम

आरंभ किये हैं। पिछले कुछ महीनों में आयोजित किये गये हैं। अल्पावधि पाठ्यक्रम इस प्रकार है। टेलीविजन निर्माण तथा तकनीकी प्रचालन, वीडियोग्राफी, नॉन लिनियर सम्पादन, संगीत सराहना तथा टेलीविजन कार्यक्रम निर्माण में कम्प्यूटर के अनुप्रयोग।

2.12.3

2.13 पाठ्यक्रम संरचना

2.13.1 (क) फिल्म और टेलीविजन में तीन वर्षीय पदविका पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम का प्रथम वर्ष छात्रों को फिल्म और टेलीविजन के निर्देशन, फिल्म छायांकन, श्रव्यांकन और सम्पादन के क्षेत्रों में संबंधित मूल संकल्पनाएं तथा कुशलताएं सीखने का अवसर प्रदान करना है। इन चार विषयों के ज्ञान के अतिरिक्त उन्हें मीडिया में कम्प्यूटर के अनुप्रयोगों से परिचय करवाया जाएगा। प्रथम वर्ष के दौरान कई व्यक्तिगत और संयुक्त अभ्यासों के अंतिम चरण में प्रत्येक छात्र को वर्षांत प्रोजेक्ट के रूप में पाँच मिनट अवधि की एक वीडियो निर्मित करनी होगी।

2.13.2

पाठ्यक्रम का द्वितीय वर्ष छात्रों को अपने चुने हुए विशेषज्ञता क्षेत्र में व्यावसायिक कौशल को विकसित करने के योग्य बनाता है।

संस्थान के अपने संकाय तथा अतिथि संकाय द्वारा संचालित व्याख्यानों, प्रायोगिकों एवं कार्यशालाओं से छात्रों को दोनों मीडिया की संकल्पनाओं एवं कुशलताओं को विकसित करने के निश्चित करने के निश्चित दृष्टिकोण अपनाने का अवसर दिया जाता है।

2.13.3

पाठ्यक्रम के तृतीय वर्ष के दौरान छात्रों को अपने विशेषज्ञता क्षेत्र में अर्जित संकल्पनाओं और तकनीकी कौशल को प्रदर्शित करने के लिए निर्मित टीम के एक सृजनशील सदस्य के रूप में कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

2.13.4

तीन वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम के अंत तक छात्र व्यावसायिक स्तर के उपकरणों से परिचित हो जाते हैं तथा फिल्म उद्योग में अपना स्थान ग्रहण करने के लिए पूरी तरह सक्षम हो जाते हैं।

(ख) टेलीविजन में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम

यह पाठ्यक्रम तीन चरणों में चलाया जाता है। इसका पहला चरण सभी छात्रों के लिए एक समान होता है। इस चरण में टेलीविजन के क्षेत्र में निर्देशन, इलेक्ट्रानिक सिनेमेटोग्राफी, ध्वनि अंकन तथा सम्पादन की मूल संकल्पनाओं से परिचय करवाया जायेगा। छात्र सिंगल तथा मल्टी कैमरा स्टूडियो निर्माण तकनीक से परिचित हो जाएंगे।

दूसरे चरण में विशेषज्ञता के सम्बन्धित क्षेत्रों में संक्लपनाओं और कौशल के विकास पर जोर दिया जाता है। छात्रों को संयुक्त अभ्यासों और कार्यशालाओं में सहभागी किया जाएगा और विभिन्न कार्यक्रम फॉर्मेटों की निर्माण तकनीकियों से परिचित करवाया जाएगा।

अंतिम चरण में छात्रों ने इस माध्यम के बारे में जो जानकारी और कौशल प्राप्त किया है उसका प्रयोग वर्षांत प्रोजेक्ट की निर्मित वीडियो में किया जाएगा, जो एक सिंगल तथा एक मल्टी कैमरा सिस्टम पर आधारित होगी।

2.14 वर्ष के लिए प्रवेश पात्रता

2.14.1 (क) तीन वर्षीय पदविका पाठ्यक्रम

निर्देशन, सम्पादन, फिल्म छायांकन तथा श्रव्यांकन में विशेषज्ञता के साथ डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए इच्छुक उम्मीदवारों के लिए मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की किसी भी शाखा में डिग्री अथवा उसके समकक्ष पदवी की पात्रता होना आवश्यक हैं।

2.14.2

श्रव्यांकन में पदविका पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने के इच्छुक उम्मीदवारों के लिए उपरोक्त पात्रता के अतिरिक्त 10 + 2 स्तर पर भौतिक शास्त्र, एक विषय के रूप में होना आवश्यक है।

2.14.3

इन आवेदकों को प्राथमिकता दी जाएगी :-

(i) जो विशेषज्ञता के प्रमुख क्षेत्र में पहले से किए गए अपने सृजनात्मक कार्य का प्रमाण प्रस्तुत करेंगे।

(ii) जिन्हें कम्प्यूटर का कार्यसाधक ज्ञान है।

2.14.4 टेलीविजन में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम

निदेशन इलेक्ट्रानिक फिल्म छायांकन, वीडियो संपादन श्रव्यांकन तथा टीवी अभियांत्रिकी में विशेषज्ञता के साथ टेलीविजन प्रमाण पत्र में प्रदेश के इच्छुक उम्मीदवारों के लिए मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय

की किसी भी शाखा में डिग्री अथवा उसके समकक्ष शैक्षिक योग्यता होना आवश्यक है।

श्रव्यांकन और टीवी अभियांत्रिकी में विशेषज्ञता के साथ प्रमाण पत्र पाठयक्रम में प्रवेश पाने के इच्छुक उम्मीदवारों के लिए उपरोक्त पात्रता के अतिरिक्त 10 + 2 स्तर पर भौतिक शास्त्र, एक विषय के रूप में होना आवश्यक है।

इन आवेदकों को प्राथमिकता दी जायेगी।

(1) टीवी तथा सम्बद्ध कला में अभिरूचि तथा अनुभव तथा (2) जिन्हें कम्प्यूटर का कार्यसाधक ज्ञान है।

2.15 प्रवेश प्रक्रिया

2.15.1 पदविका पाठ्यक्रम

प्रवेश के योग्य उम्मीदवारों को लिखित परीक्षा, अभिविन्यास पाठ्यक्रम तथा साक्षात्कार के निष्पादन के आधार पर चयन किया जायेगा। सामान्य लिखित परीक्षा देश के विभिन्न केन्द्रों पर होगी, तथा अभिविन्यास पाठ्यक्रम/साक्षात्कार भाफिटेसं के परिसर में संचालित किये जाएंगे।

2.15.2 टेलीविजन में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम

सामान्य लिखित परीक्षा देश के विभिन्न केन्द्रों पर होगी तथा साक्षात्कार भाफिटेंस के परिसर में संचालित किए जाएंगे।

प्रवेश के लिए प्रत्येक आवेदन पत्र के साथ ''लेखा अधिकारी भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान, पुणे'' को देय स्टेट बैंक आफ इण्डिया बैंक की किसी भी शाखा का रू. 250/- (रू. 125/- अ.जा/अ.जन.जा. के उम्मीदवारों के लिए) का रेखांकित डिमाण्ड ड्राफ्ट भेजना अनिवार्य है। भेजी जाने वाली राशि नकद, पोस्टल आर्डर, अथवा चेक के रूप में स्वीकार नहीं की जायेगी। आवेदनकर्ता को चाहिए कि वह आवेदन पत्र के साथ संलग्न प्रवेश कार्ड के दोनों पन्ने, दिए गये अनुदेशों के अनुसार भरे। पासपोर्ट

आकार की फोटो कार्ड के दोनों पन्नों पर चिपकाएं। उम्मीदवार आवेदन किये गये पाठ्यक्रम का नाम लिफाफे पर स्पष्ट रूप से लिखें।

2.15.3

जो उम्मीदवार यह दावा करते हैं कि पाठ्यक्रम के लिए उनकी विशेष रूचि का विचार किया जाए तो वे अपने आवेदन पत्रों के साथ संबंधित प्रमाणपत्र प्रस्तुत करें। यदि उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया गया तो वे अपने साथ सम्बन्धित सामग्री ला सकते हैं।

2.16 सामान्य अनुदेश

2.16.1

छात्रों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संस्थान न तो किसी प्रकार का भत्ता देगा और न ही डाक के कारण विलम्ब होने या प्रवेश कार्ड समय पर प्राप्त न होने के लिए जिम्मेदार होगा।

2.16.2

परीक्षा के दिन संबंधित केन्द्र के पर्यवेक्षण अधिकारी को मान्य प्रवेश पत्र दिखाए बिना किसी भी उम्मीदवार को परीक्षा में बैठने नहीं दिया जाएगा।

2.16.3

अपूर्ण, अनियमित अथवा विलम्ब से प्राप्त हुए आवेदन पत्रों, किसी आवेदन पत्र की अस्वीकृति सम्बन्धी अथवा प्रवेश परीक्षा परिणाम संबंधी अथवा चयन संबंधी अनावश्यक पूछताछ आदि के विषय में संस्थान कोई पत्र व्यवहार नहीं करेगा। उन्हीं उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जायेगा, जिन्होंने लिखित परीक्षा उत्तीर्ण की है। किसी भी प्रकार का प्रचार करने पर उम्मीदवार को संस्थान में प्रवेश देने के लिए अयोग्य ठहराया जाएगा।

आवेदन पत्र प्रक्रिया फीस लौटाया नहीं जायेगा।

2.17 प्रवेश परीक्षा

2.17.1 पदविका पाठ्यक्रम

विशेष क्षेत्र में सामान्य ज्ञान तथा सामान्य बौद्धिक क्षमता पर आधारित लिखित परीक्षा । अधिकतम अंक : 100, अवधि : 2 घण्टे ।

2.18 सत्यजीत रे फिल्म और टेलीविजन संस्थान

भारत सरकार द्वारा 1995 में स्थापित सत्यजीत रे फिल्म और टेलीविजन संस्थान सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्तशासी शैक्षणिक संस्थान है। बाद में यह संस्थान वेस्ट बंगाल सोसायटीज पंजीयन अधिनियम, 1961 के अधीन पंजीकृत हो गया। कोलकाता में स्थित तथा प्रसिद्ध फिल्ममेकर सत्यजीत रे के नाम पर स्थापित यह संस्थान देश में अपने तरह का दूसरा एक राष्ट्रीय केन्द्र है जो फिल्म और टेलीविजन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है। नियमित पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने के अलावा इस संस्थान ने कल्पित तथा अकल्पित फिल्मों के निर्माण निवेश तथा विकास परियोजना को हाथ में लेने की योजना बनायी है। इसके अतिरिक्त फिल्म और टेलीविजन संबंधित मुद्दों पर अनुसंधान कार्य भी शामिल है। यह संस्थान अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी से सुसज्जित है तथा इसका उद्देश्य इस क्षेत्र में स्वतंत्र, रचनात्मक और नवीन कार्य करने में सक्षम, पेशेवर फिल्म और टेलीविजन का निर्माण करना है तथा इस प्रकार यह देश में अच्छी फिल्म के विराट एवं वृद्धि में योगदान करता है। एसोसिएशन के स्मारक पत्र में स.रे.फि.टे. के उद्देश्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

संबंधित क्षेत्रों में परिचय सहित, फिल्म और टेलीविजन निर्माण के सभी पहलुओं में व्यावहारिक और सैद्धान्तिक प्रशिक्षण देना।

अध्ययन के निर्धारित पाठ्यक्रमों के सफल समापन पर प्रशिक्षुओं को समय-समय पर प्रमाण पत्र डिप्लोमा, आनर्स डिप्लोमा

और ऐसे अन्य प्रमाण पत्र आदि प्रदान करना।

फिल्म और टेलीविजन कार्यक्रम संकल्पना और निर्माण के क्षेत्र में शिक्षा और कुशल विकास की गतिविधियों को समन्वित करना।

2.19 प्रबंधन और सांगठनिक ढांचा

सं.रे.फि.ट. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधीन पूर्ण रूप से निवेशित स्वायत्तशासी संस्थान है, जिनका संचालन भारत सरकार द्वारा गठित एक सोसायटी से होता है। एक अध्यक्ष के नेतृत्व में यह सोसायटी एक गवर्निंग काउंसिल (जी.सी.) के जरिए इस संस्थान का संचालन करती है, जोकि सोसाइटी के चुनिंदा सदस्यों द्वारा गठित होता है। इस संस्थान के सभी कार्यकलापों के लिए गवर्निंग काउंसिल सवोच्च निकाय है। सोसाइटी गवर्निंग काउंसिल तथा स्थायी वित्त समिति में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के कार्यालय से गठित पूर्व सरकारी सदस्यों के जरिए सरकार का प्रतिनिधित्व है।

एक शैक्षणिक परिषद् (ए.सी.) भी है, जो संस्थान के मामले संबंधित निर्माण तथा शैक्षणिक संबंधित नीतिगत फैसलों को लेता है।

मशहूर फिल्ममेकर श्री गौतम घोष सोसायटी के मौजूदा अध्यक्ष हैं, फलस्वरूप वह गवर्निंग काउंसिल, शैक्षणिक परिषद् तथा अन्य समितियों के भी अध्यक्ष हैं।

शैक्षणिक मामले में एक डीन तथा प्रशासनिक मामले में एक पंजीयन कुलसचिव सहायता करता है श्री जतिन सरकार निदेशक (स्थानापन्न) है तथा श्री देवतोष सेनगुप्त कुलसचिव हैं, जबकि डीन का पद फिलहाल खाली है।

लोकेशन

कोलकाता शहर के पूर्वी अंचल में स्थित स.रे.फि ट. झीलों एवं तालाबों से युक्त एक मनमोहक हरा-भरा परिसर है, जो कि समझदार फिल्ममेकर के लिए सूक्ष्म दृष्टि के साथ एक आदर्श स्थान

प्रस्तुत करता है। स.रे.फि.ट. फिल्म निर्माण तथा टेलीविजन निर्माण पर व्यापक शिक्षा के लिए एक लाजवाब स्थान है। शहर के दो बड़े रेलवे स्टेशनों हावड़ा एवं सियालदा से महज एक घंटे का रास्ता है, नेताजी सुभाष चंन्द्र बोस एयरपोर्ट से करीब 18 किमी. की दूरी है। यह ईस्टर्न मेट्रोपोलिटन बाईपास रोड पर स्थित है जो कि महत्वपूर्ण पीयरलेस अस्पताल के नजदीक में स्थित है।

बुनियादी सुविधाएँ

प्रशासनिक प्रखंड बायीं तरफ के पहले ढांचे से स.रे.फि.ट. में जाने का मार्ग है, दो मंजिली प्रशासनिक प्रखण्ड आवास में अध्यक्ष, निदेशक, कुल सचिव प्रशासन संस्थान में लेखा एवं क्रय विभाग के कार्यालय हैं। महत्वपूर्ण अधिकृत बैठक के लिये समिति कमरा भी यहाँ स्थित है।

2.20 निर्देशन, चलचित्र फोटोग्राफी एवं सम्पादन

निर्देशन एवं पटकथा लेखन विभाग प्रशासनिक प्रखण्ड के आगे तीन मंजिली भवन है, जिसमें फिलहाल निर्देशन विभाग तथा निर्माण कार्मिक के कार्यालय हैं। यहाँ दो साधनयुक्त क्लास रूम, कम्प्यूटर लेबोरेटरी,प्रीव्यू रूम विभाग तथा फिल्म लाइब्रेरी स्थित है। विभाग में मौजूद डी.वी. कैमरा, तथा कम्प्यूटर एसिस्टेड लो एंड एडिटिंग तथा ध्वनि मिश्रण सुविधाओं का व्यावहारिक कक्षाओं के लिए प्रभावकारी प्रयोग किया जाता है।

साउण्ड रिकार्डिंग विभाग तीन मंजिली साउंड रिकार्डिग भवन में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी से सुसज्जित दो वृहद स्टूडियो हैं तथा साउंड रिकार्डिंग, साउंड एडिटिंग तथा निर्माण के बाद के चरण में ट्रैक बिछाने के लिए एक पृथक डिजीटल ऑडियो वर्क स्टेशन है। इस प्रखण्ड में विभागीय संकाय, कम्प्यूटर प्रोग्रामर, क्लास रूम, विभाग तथा इलेक्ट्रॉनिक्स लेबोरेटरी के कार्यालय भी स्थित हैं।

संपादन विभाग तीन मंजिली संपादन प्रखंड में एक फिल्म और एक वीडियो सेक्शन हैं। फिल्म सेक्शन में 10 स्टीनबेक एडिटिंग सूट्स तथा 10 संपादन मेजों के साथ एक बड़ा हॉल है।

चार कटिंग मेजों के साथ एक निगेटिव चेम्बर भी है। वीडियो सेक्शन में एस.वी.एच.एस. यु मैटिक तथा वेटा फारमेट्स में संपादन कार्य में सुविधा के लिए 6 एनालॉग वीडियो एडीटिंग सूट्स हैं। इसके अतिरिक्त फिल्म कट के समय एक एवीड मीडिया कम्पोजर तथा डबिंग ऑप्शन है फिल्म एडिटिंग के लिए एक मूवीओला भी उपलब्ध है।

चलचित्र फोटोग्राफी विभाग

चलचित्र फोटोग्राफी प्रखंड 35 मिमी., 16 मिमी तथा सहायक उपकरणों के साथ वीडियो कैमरा के विस्तृत परिक्षेत्र से सुसज्जित है। सहायक उपकरणों में लाइट मीटर्स, एच.एम.आई. लाइट आदि उपलब्ध हैं तीन अत्याधुनिक कैमरों से सुसज्जित एक सही सामंजस्य का फिल्म स्टूडियो तथा लघु टेलीविजन स्टूडियो है। यहाँ सभी इंडोर प्रोजेक्ट का फिल्मांकन होता हैं विभाग में श्याम तथा श्वेत दोनों के लिए सुविधाएं एवं रंगीन फिल्म प्रोसेसिंग डेवलपिंग तथा प्रिन्टिंग की सुविधाओं के साथ स्टील फोटोग्राफी सेक्शन से युक्त है।

2.21 फिल्म लाइब्रेरी एवं अन्य सुविधाएँ

मीडिया प्रौद्योगिकी, परफॉरमिंग आर्ट्स तथा संबंधित विषयों पर पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के साथ लाइब्रेरी में विभिन्न फार्मेट्स में प्री-रिकार्डेड वीडियो फिल्मों तथा ऑडियो कैसेट्स और सी. डी. का भारी संग्रह है।

फिल्म लाइब्रेरी

इस संस्थान में संगठित फिल्म लाइब्रेरी है जो विद्यार्थियों की मूल आवश्यकताओं एवं उनकी सतत् जरूरतों को पूर्ति करती है। इसमें प्रिन्टों का भारी संग्रह है, जो भारतीय तथा साथ ही विदेशी दोनों स्रोतों से उपलब्ध कराये गये हैं।

सिने सेन्ट्रल, कोलकाता आधारित एक फिल्म सोसाइटी तथा फेडरेशन ऑफ फिल्म सोसाइटी ऑफ इण्डिया (पूर्वी क्षेत्र) ने भी स. रे. फि. टे फिल्म लाइब्रेरी में अपनी फिल्मों का भारी संग्रह जमा

किया है।

एन.एफ.ए.आई.का क्षेत्रीय केन्द्र

फिल्मों के लिए राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार का कोलकाता क्षेत्रीय कार्यालय स.रे.फि.टे. में स्थित है जो कि सीख रहे विद्यार्थियों के लिए दुर्लभ फिल्मों की बहुलता को बिना किसी बाधा के बनाये रहता है।

आडिटोरियम एवं स्क्रीनिंग सुविधाएँ

इस संस्थान में 500 से अधिक भी क्षमता वाले एक खुले परिवेश वाले थियेटर, एक प्रीव्यू थियेटर (72 सीटें)तथा एक बहुउद्देशीय मुख्य थियेटर (370 सीटें) है। इन आडिटोरियमों में किसी वीडियो फार्मेट्स के लिए तथा 35 मिमी. 16 मिमी. के लिए प्रोजेक्शन सुविधाएं मौजूद हैं।

सहायक सुविधाएँ

क) डाकघर - डाक एवं तार विभाग ने विभिन्न डाक सुविधाओं के लिए परिसर के भीतर एक डाकघर स्थापित किया है।

ख) कैंटीन - इस संस्थान ने किफायती कीमत पर स्टाफ एवं विद्यार्थियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक कैंटीन की व्यवस्था की है।

ग) मामूली दर पर विद्यार्थियों के लिए इंटरनेट एवं छाया प्रतिलिपि सुविधाएं उपलब्ध हैं।

छात्रावास एवं अतिथि गृह

सभी आधुनिक सुविधाओं के साथ 160 बिस्तरों का छात्रावास है। तीन वर्षीय पी.जी.डिप्लोमा पाठ्यक्रम एक आवासीय पाठ्यक्रम है। तथा सभी विद्यार्थियों को छात्रावास में रहना पड़ता है। 18 कमरों का एक सुविधाजनक अतिथि गृह भी उपलब्ध है। जो संस्थान में दौरा करने वाले अतिथि लेक्चररों, पेशेवरों आदि को आवासी सुविधा मुहैया करता है।

2.22 शैक्षणिक

शैक्षणिक सलाहकार के रूप में प्रख्यात चलचित्र प्रक्षेपी श्री सुब्रत मित्रा तथा विशिष्ट सांस्कृतिक टीकाकार श्री समीक बंधोपाध्याय के साथ अतिथि संकाय तथा बाहरी विशेषज्ञ मिलकर शैक्षणिक पाठ्यक्रम की कार्यवाही का संचालन करते हैं।

विभाग / पद	वर्तमान पदधारी का नाम
निर्देशन एवं पटकथा लेखन	
सहायक प्रोफेसर	श्री अमरेश चक्रवर्ती
लेक्चरर	श्री संदीप चटर्जी
लेक्चरर (एफ ए)	श्री बीरेन दास शर्मा
निर्माण प्रबंधक	श्री प्रसेनजीत घोष
चलचित्र फोटोग्राफी (एम.पि.पि.)	
सहायक प्रोफेसर	खाली
लेक्चरर	श्री तापस पाल
सम्पादन	
सहायक प्रोफेसर	श्री विप्लव राय चौधरी
लेक्चरर	श्री सुदीसी भौमिक
साउंड रिकार्डिंग	
सहायक प्रोफेसर	श्री देवाशीष घोषाल
लेक्चरर	श्री पंकज सील

वि.द्र. संकाय में और सदस्यों का परिचय प्रक्रिया में है।

शैक्षणिक वर्ष

चालु 3-वर्ष डिप्लोमा पाठ्यक्रम में लिए शैक्षणिक वर्ष जुलाई 2001 से शुरू होना है।

3-वर्ष स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम ।

यह संस्थान निम्न प्रशिक्षणों में विशिष्टीकरण के साथ सिनेमा

और टेलीविजन में पूर्णकालिक आवासीय 3-वर्ष स्नातकोत्तर डिप्लोमा प्रस्तुत करता है।

क्र.सं.	प्रशिक्षण	सीटों की संख्या	अवधि
1.	निर्देशन एवं पटकथा लेखन	10	3 वर्ष
2.	चलचित्र फोटोग्राफी	10	3 वर्ष
3.	सम्पादन	10	3 वर्ष
4.	साउंड रिकार्डिंग	10	3 वर्ष

वि.द्र. क) प्रत्येक प्रशिक्षण में 2(दो) सीटें विदेशी विद्यार्थियों के लिए अलग रखी गई है।

ख) कुल संख्या का 22.5 प्रतिशत अ.जा.तथा अ.ज.जा. से संबंधित विद्यार्थियों के लिए आरक्षित है, बशर्ते कि वे भर्ती के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता रखते हों तथा लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार में उत्तीर्ण हो।

संरचना

36 सप्ताहों का एक एकीकृत पाठ्यक्रम (एक बैच में सभी विद्यार्थियों के लिए साझा), उसके बाद संबंधित प्रशिक्षण में विशिष्टीकरण के लिए 84 सप्ताह पूरे पाठ्यक्रम को कुल 6 (छह) सत्रों में विभक्त किया गया है, प्रत्येक की अनुमानित 20 सप्ताहों की अवधि है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, लेकिन पाठ्यक्रम की समाप्ति पर डिप्लोमा फिल्म की भाषा चुनने की आजादी विद्यार्थियों को दी जायेगी।

पाठ्यक्रम की विषयसूची

1. क्लास रूम लेक्चर (सिद्धान्त) 2. व्यावहारिक सत्र
3. प्रोजेक्ट्स 4. फिल्म स्क्रीनिंग सत्र
5. कार्यशाला आदि के रूप में पेशेवरों के साथ परिचर्चा

पाठ्यक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा

एकीकृत

पहला सत्र : सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक (सभी प्रशिक्षणों सहित)

साझा प्रोजेक्ट्स : 1. स्लाइड प्रोजेक्ट 2. साउंड प्रोजेक्ट

दूसरा सत्र : सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक (सभी प्रशिक्षणों सहित)

विशिष्टीकरण प्रस्तावना (विशेष प्रशिक्षणों के लिए विशिष्ट)

साझा प्रोजेक्ट 1. कन्टीन्यूटी फिल्म

विशिष्टीकरण

तीसरा सत्र : सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक (सभी प्रशिक्षणों के लिए विशिष्ट)

साझा प्रोजेक्ट 1.संवाद अभ्यास (स्टूडियो आधारित)

चौथा सत्र : सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक (विशेष प्रशिक्षणों के लिए विशिष्ट)

साझा प्रोजेक्ट 1. प्लान सिक्वेन्स 2. एडी-प्रोमो

प्रोजेक्ट

पांचवां सत्र : सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक (विशेष प्रशिक्षणों के लिए विशिष्ट)

साझा प्रोजेक्ट्स : 1. तीन कैमरा सेटअप (टीवी)

साझा प्रोजेक्ट्स : 1. वृत्तचित्र 2. पार्श्व

अभ्यास

छठा सत्र : साझा प्रोजेक्ट्स : 1. डिप्लोमा फिल्म प्रोजेक्ट

अतिरिक्त प्रोजेक्ट : 1. फीचर फिल्म स्क्रीनप्ले हेतु निर्देशन विद्यार्थी सिर्फ।

चार विद्यार्थी, प्रत्येक विशिष्टीकरण से एक मिलकर एक इकाई

बनायेंगे तथा तीसरे स्तर के बाद साझा प्रोजेक्ट्स में एक साथ कार्य करेंगे। ऐसी इकाई बन जाने के बाद सामान्य तौर पर पाठ्यक्रम के दौरान बदलने की अनुमति नहीं जी जाएगी।

सामान्य अनुशासन

संस्थान ने उस संस्थान में अपना प्रशिक्षण ले रहे सभी विद्यार्थियों के लिए एक आचार संहिता बनाया है। प्रत्येक विद्यार्थी को उपरोक्त आचार संहिता के प्रति दृढ़ रहने के अपने संकल्प की पुष्टि करते हुए एक समझौता पर हस्ताक्षर करना पड़ेगा। स.रे.फि.टे., संस्थान में स्वस्थ शैक्षणिक वातावरण एवं अनुशासन कायम करने के किसी कारण के लिए अथवा आचार संहिता के उल्लंघन के लिए किसी भी समय निलंबित, हटाने अथवा अन्य अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का अधिकार रखता है।

शैक्षणिक अनुशासन

कक्षाओं में न्यूनतम उपस्थिति सहित शैक्षणिक अनुशासन से संबंधित मामलों तथा अन्य शैक्षणिक अभ्यासों की संस्थान के वर्तमान शैक्षणिक उप-कानूनों के अनुसार निगरानी की जायेगी।

संस्थान के लिए भर्ती

भर्ती के लिए आवश्यक योग्यताएं

1. विशिष्टीकरण पाठ्यक्रमों में भर्ती के लिए
   निर्देशन एवं पटकथा लेखन किसी मान्यताप्राप्त विश्वविद्यालय या समकक्ष से किसी विषय में स्नातक।
   चलचित्र फोटोग्राफी, तथा सम्पादन
2. विशिष्टीकरण पाठ्यक्रमों में भर्ती के लिए किसी मान्यताप्राप्त विश्वविद्यालय या समकक्ष से किसी एक विषय के रूप में भौतिकी के साथ स्नातक।

2.23 सारांश

इस इकाई में, हमने, फिल्म प्रशिक्षण की सुविधाओं की विवेचना की। फिल्म, टेलीविजन संस्थान किस व्यवस्था के तहत कार्य करता है, उसने किस परम्परा को स्थापित किया है उसकी

पार्श्वभूमि क्या है और उसकी प्रशासनिक संरचना क्या है फिल्मों का निर्माण किस प्रकार होता है, निर्देशन, छायांकन पढ़ाने का क्या प्रबन्ध किया गया है। छायांकन एक तकनीकी कोर्स है। इसे पूर्ण करने के पश्चात् निम्नलिखित क्षेत्रों में काम करने का अवसर मिल सकता है।

वृत्तचित्र

लघु फिल्म

विज्ञापन फिल्म

कारपोरेट फिल्म,

संगीत वीडियो

धारावाहिक

वैज्ञानिक फिल्म तथा

स्टूडियो के अन्दर बनने वाली टेलीफिल्म फिल्मों में आदि। प्रशिक्षण के अतिरिक्त इस इकाई में हमने निम्न संस्थाओं के विवरण विश्लेषण के प्रतिमान संकलित किए हैं-

- फिल्म सेन्सर बोर्ड
- फिल्म प्रभाग
- फिल्म समारोह निदेशालय
- राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार

इकाई एक की उपरोक्त संस्थाओं की विस्तृत जानकारी फिल्म प्रशिक्षण संस्थान में दी जाती है, क्योंकि सेन्सर बोर्ड को छोड़कर, इन्हीं संस्थाओं से काम मिलता है तथा प्रशिक्षण का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है।

2.24 शब्दावली

भाफिटेसं : भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान

फिल्म स्टूडियो : जहाँ फिल्में बनती हैं।

करेक्टर जनरेटर	:	फिल्म में एफेक्ट डालने की मशीन
क्रोमा-की	:	पात्रों, वस्तुओं को आकाश में उड़ाने का शॉट निर्मित करने में तथा अनेक कार्यों के लिए प्रयुक्त की जाती है।
16 एम.एम.	:	फिल्म का गेज
35 एम.एम.	:	फिल्म का गेज
मिक्सिंग स्टूडियो	:	ध्वनि के अलग-अलग ट्रैक-जैसे, संवाद, संगीत, वाइल्ड साउन्ड, विशेष ध्वनि को एक ट्रैक पर डालने की प्रणाली

2.25 संदर्भ ग्रन्थ

- इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म प्रोडक्सन — राजकृष्ण मिश्र
- इंडियन ब्रॉडकास्टिंग — एच.आर. लूथरा
- विभागीय प्रकाशन — प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
- ई-जर्नलिज्म — डा0 अर्जुन तिवारी

2.26 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) फिल्म प्रशिक्षण संस्थान, पुणे की स्थापना कब हुई थी?

(i) 1952 में हुई थी।

(ii) 1960 में हुई थी।

(iii) 1980 में हुई थी।

(iv) 1995 में हुई थी।

(ii) फिल्म प्रशिक्षण संस्थान, जिस परिसर में है, वहाँ पहले क्या था।

(iii) फिल्म प्रशिक्षण संस्थान में टेलीविजन की पढ़ाई होती है या नहीं।

(iv) फिल्म और टेलीविजन के क्षेत्र में व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए, पुणे संस्थान में कितने स्टूडियो हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

(i) सत्यजीत रे फिल्म और टेलीविजन संस्थान की विवेचना करते हुए, वहाँ उपलब्ध सुविधाओं का विवरण दीजिए।

(ii) फिल्म और टेलीविजन के क्षेत्र में व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए, पुणे संस्थान में क्या सुविधाएं उपलब्ध करायी गई हैं।

(iii) फिल्म और टेलीविजन प्रशिक्षण की आवश्यकता की विवेचना करते हुए विभिन्न प्रतिष्ठानों के विषय में चर्चा कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) सत्यजीत रे फिल्म और टेलीविजन संस्थान की स्थापना—

(i) 1990 में हुई थी

(ii) 1980 में हुई थी

(iii) 1995 में हुई थी

(iv) 1960 में हुई थी-

(ख) दूरदर्शन का नई दिल्ली प्रशिक्षण केन्द्र —

(i) बन्द हो गया

(ii) चल रहा है।

(iii) नया केन्द्र बनाया गया है।

(iv) फिल्म प्रशिक्षण संस्थान पुणे के साथ जोड़ दिया गया है।

(ग) फिल्म और टेलीविजन संस्थान में, दूरदर्शन का प्रशिक्षण केन्द्र

(i) 1974 में जोड़ दिया गया है

(ii) दिल्ली में कार्य कर रहा है

(iii) दूरदर्शन का संस्थान बन्द किया गया है।

(iv) दूरदर्शन ने अपना नया संस्थान खोला है।

(क) (i)

(ख) (ii)

(ग) (ii)

इकाई 3 फिल्म शिक्षण-प्रशिक्षण व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सिने कलाकार संगठन

3.2.1 स्टण्ट्स आर्टिस्ट संगठन

3.3 कला निर्देशक संगठन

3.4 सिने लेखक संगठन

3.5 फिल्म निर्देशक संघ

3.6 संगीत निर्देशक संगठन

3.7 फिल्म इंस्टीट्यूट : प्रशिक्षण की व्यवस्था

3.8 अन्य इंस्टीट्यूट तथा पाठ्यक्रम

3.9 उपसंहार

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

3.11 संदर्भ ग्रंथ

3.12 प्रश्न

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे—

(i) सिने कलाकार संगठन तथा उनकी सदस्यता।

(ii) लेखक, संगीतज्ञ, निर्देशक आदि के संगठन, उनकी सदस्यता तथा कार्य प्रणाली।

(ii) फिल्म सम्बन्धित कौशल में निखार के लिए पुणे फिल्म इंस्टीट्यूट की व्यवस्था।

(iv) देश में उपलब्ध फिल्म शिक्षण-प्रशिक्षण सम्बन्धी अन्य संस्थान।

(v) फिल्म प्रवेशार्थियों हेतु चुनौतियाँ एवं संभावनाएं।

3.1 प्रस्तावना

फिल्म एक कला तथा व्यवसाय दोनों है। इसके साथ ही साथ यह एक संगठनात्मक कौशल भी है। फिल्म में योगदान देने वाले विविध लोगों की अपनी यूनियन है। यह यूनियन उन्हें सदस्यता प्रदान करते हैं। उनके लिए कार्यदायी स्थितियाँ स्पष्ट करना भी इन संगठनों का योगदान है। यह संगठन इस बात पर भी नजर रखते हैं कि उनके सदस्यों का शोषण तो नहीं किया जा रहा है।

संगठन अपने सदस्यों के लिए एक छतरी की तरह काम करते हैं। इससे उनके लिए नकारात्मक स्थितियों में समर्थन का संबल रहता है। फिल्म एक उद्योग भी है। अतः इन संगठनों की भूमिका अपने सदस्यों के हित संरक्षण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

फिल्मों का आकर्षण लाखों युवाओं को मायानगरी की ओर आकर्षित करता है। ऐसे में यदि उन्हें उचित शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था मिल जाती है तो इससे उनकी प्रतिभा सही ढंग से निखरकर सामने आती है। इसके अतिरिक्त इस तरह के पाठ्यक्रम नये लोगों को फिल्म विधा और उसकी तकनीकी से परिचित कराने का अवसर भी प्रदान करते हैं।

3.2 सिने कलाकार संगठन

सिनेमा में कई कलाकार काम करते हैं। नायक, नायिका, खलचरित्र, सहायक चरित्र, स्टण्ट्स एवं एक्स्ट्रा आदि कलाकारों के ही विविध रूप हैं। इनको एक मंच प्रदान करने के लिए, इनके हितों का संरक्षण करने के लिए भी यूनियन की व्यवस्था की गयी है।

बड़े नायक-नायिका, मशहूर चरित्र कलाकार, छोटे अभिनेता, अभिनेत्रियाँ, नवोदित कलाकार सभी जिस एक संस्था के सदस्य हैं

उनका नाम है, सिने आर्टिस्ट्स एसोसिएशन। जूनियर कलाकारों में से जो उन्नति कर लेते हैं और चरित्र अभिनय के क्षेत्र में आ जाते हैं वे जूनियर आर्टिस्ट्स एसोसियेशन की सदस्यता छोड़कर इस संस्था के सदस्य बन जाते हें। निर्माताओं के साथ विवाद हो जाने पर या किसी प्राकृतिक आपदा में पड़ जाने पर यह संस्था अपने सदस्यों की मदद करती है।

संस्था अपने सदस्यों की आपात स्थितियों में मदद करती है। इसके साथ-साथ वह पारिश्रमिक या अन्य मसलों पर कलाकारों को शोषण से भी बचाने का काम करती हैं।

3.2.1 स्टेट आर्टिस्ट्स संगठन

मारपीट निर्देशकों तथा स्टेट आर्टिस्टों का एक ही संगठन है। इसका नाम है—'द मूवी स्टंट आर्टिस्ट्स एसोसिएशन'. इस संगठन ने सदस्यों की सुविधा और सुरक्षा के लिए पर्याप्त कदम उठाए हैं।

स्टेट आर्टिस्टों ने यह निर्णय कर रखा है कि वे किसी भी फिल्म् में कांट्रेक्ट करके काम नहीं करेंगे। ये लोग दैनिक-पारिश्रमिक पर काम करते हैं और दोपहर के खाने की छुट्टी में अपना पारिश्रमिक नगद लेते हैं। दोपहर में पैसा न मिला तो ये उसके बाद काम पर नहीं आते।

शूटिंग के दौरान किसी फाइटर को चोट आ जाए तो इलाज आदि का सारा खर्च निर्माता को उठाना होता है। यदि चोट ज्यादा आ जाए और कलाकार कुछ माह तक काम करने योग्य न हो सके तो उसके पूरी तरह ठीक होने तक निर्माता उसे निश्चित भुगतान प्रतिमाह देगा। कलाकार की मृत्यु हो जाने या उसके स्थायी रूप से अपंग हो जाने की स्थिति में हरजाने के तौर पर मुआवजा देना होता है।

3.3 कला निर्देशक संगठन

कला निर्देशकों की संस्था का नाम है 'एसोसिएशन ऑफ

सिनेआर्ट डायरेक्टर्स। इस एसोसिएशन ने जो नियम बनाए हैं, उनके अनुसार कला निर्देशन के क्षेत्र में आने के इच्छुक नये लोगों को दृष्टव्य कलाओं (विजुअल आर्ट्स) या आर्किटेक्चर (स्थापत्य कला) में कुछ प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए। जैसे कि ड्राइंग तथा पेन्टिंग में किसी मान्यता - प्राप्त कला संस्था की डिग्री या कामर्शियल आर्ट में डिग्री या आर्किटैक्चर में किसी मान्यता-प्राप्त संस्था की डिग्री या डिप्लोमा।

यह तो हुई न्यूनतम शिक्षा, लेकिन फिल्म माध्यम की जरूरतें सही तरह समझने के लिए कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी आवश्यक है। अतः उपर्युक्त शिक्षा के अलावा किसी कला निर्देशक के साथ दो पूरी फिल्मों में प्रशिक्षार्थी सहायक के रूप में काम करना भी अनिवार्य कर दिया गया है।

किसी कला निर्देशक के साथ सहायक तौर पर काम करने के लिए किसी मान्यता प्राप्त कला संस्था के ड्राइंग तथा पेन्टिग में इंटरमीडिएट या कामर्शियल आर्ट में इंटरमीडिएट स्तर की शिक्षा प्राप्त की हो या इंटीरियर डेकोरेशन में सर्टिफिकेट प्राप्त किया हो।

किसी कला निर्देशक के साथ पाँच पूरी फिल्मों में सहायक के रूप में काम पूरा कर चुकने के बाद सहायक कला निर्देशक उन्नति करके स्वतंत्र कला निर्देशक बन सकता है।

3.4 लेखक-संगठन

फिल्मों में कहानी अथवा गीत लिखने के शौकीनों को इस बात की चिन्ता रहती है कि अगर उनकी कहानी या गीत सुनने के बाद किसी ने खुद वही चीज लिख ली या किसी से लिखवा ली, तो क्या होगा? मिलते - जुलते कथानकों के कारण भी इस तरह के झगड़े खड़े होते हैं।

ऐसी स्थिति का कोई नाजायज फायदा न उठा सके और किसी के साथ अन्याय न हो, इसके लिए फिल्म लेखक संघ सक्रिय

है। यह संघ फिल्म उद्योग में लेखन-सम्बन्धी कार्य करने वालों की यूनियन है। लेखकों तथा उनसे काम लेने वालों के बीच अच्छे सम्बन्ध बने रहें तथा लेखकों को काम और जीवन - यापन की सुविधायें मिलती रहें, इसका ध्यान यह संघ रखता है और शिकायतों को दूर करने की कोशिश करता है।

लेखकों को दिये जाने वाले पारिश्रमिक में कोई कमी न कर दी जाए और जहाँ तक हो सके, काम के लिए पारिश्रमिक एडवांस मिल जाए, इसके लिए संघ प्रत्यनशील रहता है। काम देने वाले और किसी लेखक के बीच कोई मतभेद उत्पन्न हो जाए तो संघ उस विवाद को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझा देने की कोशिश करता है, ताकि काम बंद न हो। कोई लेखक (जो संघ का सदस्य हो) बीमार हो जाए, बेकार हो, किसी वजह से शारीरिक रूप से लाचार हो जाए या किसी दुर्घटना का शिकार हो जाए तो उसे सहायता देने का प्रयत्न भी किया जाता है। फिल्म लेखकों को देश-विदेश के फिल्म उद्योगों से सम्बन्धित सूचना तथा अपने काम से सम्बन्धित विवादों के बारे में कानूनी जानकारी भी यहाँ मिल सकती है।

गीत, कथा, पटकथा अथवा संवादों की चोरी न हो इसके लिए फिल्म लेखक संघ अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तरदेशीय कॉपीराइट अधिनियम सम्बन्धी व्यवस्था करता है। जब कभी सरकार फिल्म उद्योग से सम्बन्धित कोई समिति नियुक्त करती है, या कोई विषय जनता की राय के लिए पेश करती है, तो उसमें लेखकों के उचित प्रतिनिधित्व का ध्यान यह संघ ही रखता है।

फिल्म लेखक संघ के नियमों के अनुसार नया सदस्य उन्हीं लोगों को बनाया जाता है जिनकी कहानी अथवा गीत किसी निर्माता ने खरीद लिया हो या लेखक के रूप में अपने साथ काम पर नियुक्त किया हो। उसके साथ हुए एग्रीमेन्ट की प्रति प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करनी होती है।

सदस्य वे लोग भी बन सकते हैं, जो बम्बई से बाहर रहते हैं।

3.5 फिल्म निर्देशक संघ

अपने अधिकारों की रक्षा तथा काम के संबंध में सुविधाएं पाने के लिए फिल्म निर्देशक संगठित हुए और 1959 में उन्होंने एक संस्था बनाई, जिसका नाम है 'भारतीय फिल्म निर्देशक संघ'। फिल्मों में निर्देशक अथवा सह-निर्देशक के रूप में काम कर रहे हर व्यक्ति के लिए इस संस्था का सदस्य होना आवश्यक है।

सदस्यता

भारतीय फिल्म उद्योग में निर्देशक, संयुक्त निर्देशक या सहायक निर्देशक के रूप में काम कर रहा व्यक्ति तथा ऐसा व्यक्ति भी जो वृत्तचित्रों या शिक्षाप्रद लघुचित्रों का निर्देशक या सहायक निर्देशक हो, जिसकी आयु 18 वर्ष से कम न हो और जो संस्था द्वारा समय-समय पर बनाए जाने वाले नियमों को स्वीकार करने को राजी हो, इस संस्था का सदस्य हो सकता है।

संघ की सदस्यता तीन तरह की है :

(अ) निर्देशक सदस्य – जिस व्यक्ति ने कम-से-कम एक फीचर, यानी पूरी लंबाई की ऐसी फिल्म का निर्देशन किया हो जिसे सेंसर ने भी पास कर दिया हो या ऐसी ही फिल्म का संयुक्त निर्देशक रहा हो और जिसकी प्रमाणिकता व ईमानदारी पर संघ की कार्यकारिणी को विश्वास हो, निर्देशक सदस्य स्वीकार किया जा सकता है। वृत्तचित्रों तथा शिक्षाप्रद लघु चित्रों के ऐसे निर्देशक सदस्य माने जा सकते हैं जिनके द्वारा निर्देशित तथा सेंसर द्वारा पास कुल फिल्मों की लंबाई कम-से-कम 13 हजार फीट हो चुकी हो।

(आ) सहायक सदस्य- जिन व्यक्तियों ने पूरी लंबाई की यानी फीचर फिल्म में किसी वृत्तचित्र या शिक्षाप्रद फिल्म में सहायक निर्देशक के रूप में काम किया हो, वे सहायक सदस्य होंगे। फिल्म तथा टेलीविजन इंस्टीट्यूट पूना या ऐसी ही किसी मान्यता प्राप्त

संस्था से निर्देशन में डिप्लोमा प्राप्त व्यक्ति भी सहायक सदस्य बन सकते हैं

(इ) आजीवन सदस्य – जो लोग आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं, उन्हें इसके लिए एक साथ एक हजार रुपये संघ को देना होता है। इनके अधिकार अन्य सदस्यों के समान ही होते हैं।

3.6 संगीत निर्देशक संगठन

संगीत निर्देशकों का जो संगठन बनाया है उसका नाम है 'सिने म्यूजिक डायरेक्टर्स एसोसियेशन'। इनमें उन लोगों को सदस्य बनाया जाता है जो कम-से-कम एक फिल्म में संगीत निर्देशन कर चुके हों। जिन्हें संगीत निर्देशन के लिए पहली ही फिल्म मिली हो उन्हें भी संगठन का सदस्य बनाया जा सकता है, संगीत निर्देशक संगठन अपने सदस्यों के हितों के संरक्षण की दिशा में सक्रिय होता है। धुनों को लेकर या कॉन्ट्रैक्ट को लेकर विवाद आदि का निपटारा भी मामला लाये जाने पर संगठन द्वारा किया जाता है।

कॉपीराइट, पायरेसी आदि मुद्दों पर अपने सदस्यों के हितों के लिए संगठन प्रयासरत रहता है। यदि सदस्यों को किसी आपदा के चलते परेशानी आदि का सामना करना पड़ता है, तो भी संगठन अपने सदस्यों की मदद करता है।

संगठन समय-समय पर फिल्म संगीत निर्देशक से जुड़े लोगों के लिए गेट-टू-गेदर आदि का भी आयोजन करता है। नये संगीतकारों को पुराने लोगों से मिलने का यह एक महत्वपूर्ण मंच होता है।

3.7 फिल्म इन्स्टीट्यूट : प्रशिक्षण की व्यवस्था

अभिनय एक कला है, इसके लिए भी प्रशिक्षण अत्यन्त अनिवार्य है। चाहे वह अभिनय मंचीय हो या फिल्मी। जहाँ मंच पर अभिनेता दर्शकों के समक्ष होता है, वहाँ फिल्मों में परदे (स्क्रीन) पर अभिनेता की मात्र छवि होती है। परदे और रंगमंच की सीमायें भी

सर्वथा एक-दूसरे के विपरीत होती हैं।

किसी भी कला में पारंगत होने के लिये प्रतिभा का होना पहली कसौटी है, लेकिन अकेली प्रतिभा ही किसी कलाकार को प्रसिद्धि के शिखर तक नहीं पहुँचा सकती। इसके लिए लगन और परिश्रम की आवश्यकता होती हैं, अभ्यास की आवश्यकता होती है।

इसके अलावा एक और चीज भी है, जो कलाकार की प्रतिभा को श्रेष्ठ कलाकार बनाती है, और वह है—अभिनय यानि कला का उचित व सही प्रशिक्षण।

इसी बात को ध्यान में रखते हुए 1951 में भारत सरकार ने यह महसूस किया कि हमारे फिल्मी क्षेत्र में उपयुक्त प्रशिक्षण की कमी है।

अतः सरकार ने एक आयोग नियुक्त किया और उसी की राय में फिल्म-क्षेत्र के समस्त पक्षों को ध्यान में रखते हुए 1961 में पूना इन्स्टीट्यूट की स्थापना की गई, जिसका कुछ वर्ष बाद 'फिल्म एण्ड टेलीविजन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया' नाम रख दिया गया।

आरम्भ में संस्थान का नाम 'फिल्म इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया'था। बाद में जब टेलीफोन का विस्तार हो गया तो संस्थान का नाम बदल कर 'फिल्म एण्ड टेलीविजन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डिया' क़र दिया गया।

पहले-पहल यहाँ पटकथा लेखन, फिल्म संपादन, निर्देशन, चलचित्र छायांकन अर्थात् मोशन पिक्चर फोटोग्राफी तथा ध्वनि आलेखन अर्थात् साउण्ड रेकार्डिंग का प्रशिक्षण आरम्भ किया गया। पटकथा लेखन, फिल्म संपादन तथा निर्देशन के लिये डिप्लोमा सर्वप्रथम 1963 में दिये गये।

सन् 1963 में ही अभिनय का प्रशिक्षण की शुरू किया गया और इन छात्र-छात्राओं के प्रथम डिप्लोमा होल्डर 1955 में इन्स्टीट्यूट

से बाहर गये।

फिल्म एण्ड टेलीविजन इन्स्टीट्यूट में अब केवल चार विषयों में प्रशिक्षण दिया जाता है। ये विषय हैं-

1. पटकथा लेखन
2. निर्देशन
3. फिल्म छायांकन
4. फिल्म ध्वनि आलेखन

फिल्म फोटोग्राफी का कोर्स

यह कोर्स दो वर्ष का है। इसमें प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थी की आयु 18 से 25 वर्ष तक के बीच की होनी चाहिये। साथ ही वह इण्टरमीडियेट पास हो अथवा किसी मानक विद्यालय का 10+2 पास हो या फिर मैट्रिक पास, पर साथ में फोटोग्राफी अथवा कला में डिप्लोमा होना चाहिए।

फिल्म संपादन का कोर्स

इस कोर्स के लिए भी विद्यार्थी का इन्टरमीडिएट अथवा 10+2 पास होना या फिर मैट्रिक पास, पर साथ में फोटोग्राफी अथवा कला का डिप्लोमा होना चाहिये।

ऊपर के दोनों कोर्स आरम्भ में संयुक्त हैं। दो वर्ष संयुक्त रूप से अध्ययन करने के पश्चात् तीसरे वर्ष में विद्यार्थी चाहे तो फोटोग्राफी में या फिल्म संपादन में एक वर्ष की विशिष्टता प्राप्त कर सकता है।

साउण्ड रेकार्डिंग का कोर्स

इस कोर्स का अध्ययन-काल केवल एक वर्ष का है। कोर्स में भर्ती होने के लिए विद्यार्थी का बी0एस0सी0 (भौतिकी और गणित में कम-से-कम 50% अंक होना अनिवार्य है) होना चाहिये या फिर उसके पास इलेक्ट्रिकल अथवा रेडियो इन्जीनियरी या फिर साउण्ड इन्जीनियरी का डिप्लोमा होना चाहिये।

फिल्म निर्देशक का कोर्स

यह कोर्स केवल एक वर्ष का है। किन्तु इस कोर्स में केवल वे विद्यार्थी ही प्रवेश पा सकते हैं जो फिल्म फोटोग्राफी अथवा फिल्म संपादन का डिप्लोमा प्राप्त कर चुके हैं।

प्रवेश पाने की व्यवस्था

फिल्म एण्ड टी0 वी0 इन्स्टीट्यूट में प्रवेश पाने के लिए छात्र अथवा छात्रा को निर्धारित फार्म पर विवरण भरकर भेजना होगा।

टेलीविजन इन्स्टीट्यूट

फिल्म तथा टेलीविजन इन्स्टीट्यूट पूणे (पूना) के टेलीविजन डिपार्टमेन्ट ने पूना में अपना काम 1974 से प्रारम्भ किया था। इसके पूर्व यह नई दिल्ली में चलाया जा रहा था। यह विभाग टेलीविजन सम्बन्धी निम्न विषयों में शिक्षा देता है—

1. प्रोग्राम प्रोडक्शन
2. स्टूडियो के तकनीकी कार्य
3. टेलीविजन फिल्में
4. टेलीविजन ग्राफिक्स एण्ड डिजाइन

3.8 अन्य इंस्टीट्यूट तथा पाठ्यक्रम

फिल्म इंस्टीस्टूट पुणे के अतिरिक्त भी अब फिल्म से जुड़े विविध पक्षों के शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था दिन-प्रतिदिन बेहतर होती जा रही है। कोलकाता में सत्यजीत रे फिल्म एण्ड टेलीविजन संस्थान भी एक राष्ट्रीय संस्थान है जो अभिनय निर्देशन, सिनैमैटोग्राफी आदि में विविध पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था उपलब्ध करा रहा है। इसमें प्रवेश की प्रक्रिया राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित होती है। कुछ संस्थान एवं उनके पाठ्यक्रम में विवरण निम्नांकित है।

संस्था	पाठ्यक्रम
(1) एस.ए.ई. टेक्नोलॉजी कॉलेज, चेन्नई, तमिलनाडु	डिजिटल फिल्म मेकिंग में $1^{1/2}$ वर्षीय पाठ्यक्रम
(2) मुम्बई विश्वविद्यालय मुम्बई, महाराष्ट्र	ध्वनि रिकार्डिंग एवं री-रिकार्डिंग सर्टिफिकेट कोर्स
(3) अन्ना विश्वविद्यालय, चेन्नई, तमिलनाडु	प्रोफेशनल वीडियोग्राफी में सर्टिफिकेट कोर्स
(4) फिल्म एवं टीवी इंस्टीट्यूट ऑफ तमिलनाडु, चेन्नई	निर्देशन एवं स्क्रीन प्ले में दो वर्षीय डिप्लोमा
(5) आन्ध्र वि0 वि0 वाल्टेर, आन्ध्र प्रदेश	अभिनय में डिप्लोमा
(6) हैदराबाद वि0वि0, हैदराबाद	अभिनय में डिप्लोमा
(7) गुजरात विद्यापीठ	ऑडियो एवं वीडियो प्रोडक्शन में डिप्लोमा
(8) नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा, नई दिल्ली	ड्रामेटिक कला में डिप्लोमा
(9) यूनिवर्सिटी ऑफ मैसूर, मैसूर कर्नाटक	फिल्म निर्देशन एवं अभिनय में डिप्लोमा
(10) सेण्ट जेवियर्स कॉलेज, कोलकाता, पं0 बंगाल	फिल्म अध्ययन में डिप्लोमा
(11) पुणे वि0वि0, पुणे	सिनेमा अध्ययन में परास्नातक पाठ्यक्रम

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थान फिल्म से जुड़े विविध पक्षों पर डिग्री, डिप्लोमा एवं सर्टिफिकेट पाठ्यक्रमों का संचालन कर रहे हैं।

3.9 उपसंहार

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि फिल्म उद्योग से जुड़े लोगों के हित संरक्षण तथा मार्गदर्शन की दृष्टि से संगठनों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अब जबकि फिल्मों को एक संगठित उद्योग का भी दर्जा हासिल हो गया है। ऐसे में यह संगठन उनके लिए यूनियन का काम भी करते हैं। इन संगठनों को और भी सक्रिय तथा प्रभावी बनाये जाने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार फिल्म में प्रवेश पाने की इच्छुक प्रतिभाओं को सही ज्ञान तथा प्रशिक्षण सुलभ हो इसके लिए शिक्षण तथा प्रशिक्षण संस्थान अत्यन्त उपयोगी हैं। यह संस्थान नये लोगों का कौशल निखारते हैं। उनके तकनीकी ज्ञान को और ठीक करते हैं। इससे नये लोगों की फिल्म माध्यम की समझ बेहतर होती है। इसका लाभ उन्हें बेहतर भविष्य निर्माण के रूप में मिलता है। प्रशिक्षुओं को संस्थान का चयन करने से पूर्व सावधानी से काम लेना चाहिए तथा उसकी मान्यता, संबद्धता, क्षमता आदि का पता लगाकर ही प्रवेश लेना चाहिए।

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

(i) स्कॉटी प्ले —पटकथा का वह स्वरूप जो फिक्शन के सारे विवरण उपलब्ध कराता है।

(ii) ऑस्कर —अन्तराष्ट्रीय सिनेमा जगत में सर्वाधिक प्रतिष्ठित पुरस्कार। यह पुरस्कार प्रतिवर्ष एक भव्य समारोह में दि एकेडमी ऑफ मोशन पिक्चर आर्ट्स एण्ड साइंसेज, अमेरिका द्वारा अमेरिका में प्रदान किए जाते हैं।

(iii) मिसकैट —जब अभिनेता अपने चरित्र के साथ-न्याय नहीं कर पाता है और प्रभावहीन अभिनय प्रस्तुत करता है तो उसके लिए मिसकैट शब्द प्रयोग किया जाता है।

(iv) एक्स्ट्रा कलाकार —ऐसे कलाकार को एक्स्ट्रा कलाकार

कहा जाता है, जिसके हिस्से में प्रायः कोई संवाद नहीं आता है और उनकी भूमिका बस भीड़ जुटाने की होती है।

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

(i) सत्यजीत रे - ऑवर फिल्म्स - देअर फिल्म्स

(ii) भारत, संदर्भ ग्रन्थ, 2008

(iii) विविध सांगठनिक वेबसाइट्स

3.12 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

(i) फिल्म उद्योग में संगठन की आवश्यकता तथा उपयोगिता बताइए।

(ii) फिल्म लेखक संगठन की उपयोगिता तथा कार्य बताइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न-

(1) स्टण्ट्स आर्टिस्ट संगठन का परिचय दें।

(2) पुणे फिल्म इंस्टीट्यूट कब स्थापित हुआ?

(3) संगीत निर्देशकों के लिए कौन सा मंच है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(1) सत्यजीत रे इंस्टीट्यूट स्थापित है-

(क) मुम्बई (ख) कोलकाता (ग) चेन्नई (घ) लखनऊ

(2) कला निर्देशकों का संगठन है—

(क) एसोसियेशन ऑफ आर्ट्स डायरेक्टर्स

(ख) एसोसियेशन ऑफ सिने आर्ट्स डायरेक्टर्स

(ग) यूनियन ऑफ सिने आर्ट्स डायरेक्टर्स

(घ) इनमें से कोई नहीं

(3) फिल्म निर्देशक संघ की स्थापना हुई—

(क) 1951 (ख) 1961 (ग) 1959 (घ) 1969

(4) ऑस्कर एवार्ड दिये जाते हैं—

(क) कॉन्स में (ख) अमेरिका में (ग) ब्रिटेन में (घ) जर्मनी में

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(1) ख (2) ख (3) ग (4) ख

इकाई 4 फिल्म सेंसर

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 रिलीज प्रिन्टों की प्रक्रिया।

4.3 सेंसर के क्रियाकलाप

4.4 सेंसर बोर्ड के क्रियाकलाप

4.5 फिल्म सेंसर करने की प्रक्रियाएं।

4.6 फिल्म सेंसर करने की स्थितियाँ

4.7 फिल्म सेंसर का एक पक्ष यह भी

4.8 सेंसर संहिता और उसकी प्रक्रिया

4.9 फिल्म प्रदर्शन के लिए तैयार

4.10 सारांश

4.11 शब्दावली

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

4.13 प्रश्नावली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे—

(i) रिलीज प्रिन्टों की प्रक्रिया।

(ii) सेंसर के क्रियाकलाप के विषय में।

(iii) सेंसर बोर्ड के क्रियाकलाप के विषय में।

(iv) सेंसर संहिता क्या होती है।

4.1 प्रस्तावना

फिल्म निर्माण की गतिविधियाँ आरम्भ होने से पूर्व किसी न किसी लैब या रसायनशाला से अनुबंध निर्माता को करना ही पड़ता है। रॉ स्टाक खरीद कर रखना पड़ता है। इसके लिए वातानुकूलित

गोदाम चाहिए। निर्माता अगर औसतन 16000 फिट यानी 16 रील की पिक्चर बनाता है और 1:4 की शूटिंग करता है तो उसे कम से कम 48000 फिट या 1000 फिट के 48 डिब्बे सिर्फ निगेटिव के रखने होंगे। इतने ही डिब्बे या टिन 48 फिल्म पाजिटिव के और 48 से कुछ कम साउण्ड परफोरेटेड टेप और रिलीज प्रिन्ट, अगर 40 निकाली गई तो 16000 × 40 यानी 40 डिब्बे या टिन + वेस्टेज का स्टाक रखना पड़ेगा। अनुमानतः 200 या 250 टिन का भंडारण करना पड़ेगा। इसीलिए लैब के साथ करार हो जाता है, और काम चलता रहता है। शूटिंग शुरू होते ही एक्सपोज्ड निगेटिव की खेप लैब तक पहुंचती रहती है। उनकी रफ प्रिन्ट निकालते हैं और साउन्ड ट्रान्सफर किया जाता है।

4.2 रिलीज प्रिण्टों की प्रक्रिया

रंग विश्लेषण के पश्चात् कुछ टेक्नीशियन बैंड बनाते हैं। सवाल यह उठता है कि बैंड क्या होता है?

बैंड रील की लम्बाई के अनुपात में बनाई गई काले कागज की एक पट्टी होती है। जिसमें बीच-बीच में विभिन्न रंगों के छोटे-छोटे गोलाकार फिल्टर लगे रहते हैं। इन फिल्टरों की आपस की दूरी शॉट की लम्बाई के हिसाब से तय की जाती है। ये फिल्टर विभिन्न रंगों के बने होते हैं, जिनमें हरा, लाल, पीला मुख्य रूप से रहता है। ये फिल्टर इसलिए लगाए जाते हैं कि जिस रोशनी में पॉजीटिव प्रिण्ट किया जाता है। वह रोशनी उस फिल्टर में से छनकर निगेटिव पर पड़े। रोशनी में कई सारे रंग मिश्रित होते हैं यानी कुल सात रंग होते हैं जिसे अंग्रेजी में 'वाइवोगेयर' कहते हैं। इसको हिन्दी में इन्द्रधनुषी रंगतवाला कह सकते हैं। जिस रंग का फिल्टर बैंड में लगाया जाता है। वह रंग निगेटिव पर पड़ने वाली रोशनी से छन जाता है। मतलब कि वह रंग निगेटिव पर नहीं पड़ेगा। जब लीली निकलती जाती है। उस वक्त भी तरह-तरह के फिल्टर लगाकर उसको प्रिन्ट करते हैं। जिस फिल्टर के लगाने से सही प्रिण्ट हो जाता है, वही इसमें लगाया जाता है, यानी बैंड में।

एक बैंड कई-कई फिल्टरों तक काम आता है—खराब हो जाने पर दूसरा बैंड लगाना पड़ता है। यह फिल्टर प्लास्टिक के छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं। इनको बाहर से आयात करना पड़ता है। एक बार काम आने के बाद ये फिर दुबारा काम में नहीं आते हैं।

प्रिन्ट निगेटिव पर बैंड लगाकर निकाला जाता है और बैंड निगेटिव के साथ-साथ घूमता रहता है। प्रिण्ट कान्टेक्ट पद्धति से प्रिण्ट किया जाता है। प्रिण्ट तैयार हो जाने पर इसकी रासायनिक क्रिया की जाती है। लेबोरेट्री प्रिण्ट को अच्छी तरह चैक करके देख लेती है कि कोई हिस्सा खराब तो नहीं हो गया है। जो हिस्सा खराब हो जाता है उसको दुबारा प्रिण्ट किया जाता है। जरूरत पड़ने पर नए सिरे से लीली निकल कर नया बैंड भी बनाया जाता है।

पहला प्रिण्ट सेंसर प्रिन्ट कहलाता है। उसे सेंसर करवाने के लिए भेज दिया जाता है। आमतौर पर जब तक प्रिण्ट सैंसर बोर्ड से सेंसर होकर नहीं आ जाता तब तक दूसरे प्रिण्ट नहीं निकाले जाते क्योंकि नुकसान होने का खतरा रहता है। यदि सेंसर ने काट-छाँट बहुत अधिक कर दी तो नए सिरे से शूटिंग करनी पड़ जाती है। या नए शॉट डालने पड़ जाते हैं। लेकिन कभी-कभी प्रदर्शन की तारीख सिर पर आ जाती है तो ऐसा खतरा उठाकर भी प्रिण्ट करवा लिए जाते हैं और सेंसर के बाद काट-छाँट करके फिल्म डिलीवर कर दी जाती है। सेंसर सर्टिफिकेट के मिलने से पहले लेबोरट्री से प्रिण्ट बाहर नहीं जा सकते हैं।

सेंसर के बाद जब प्रिण्ट रिलीज करने के लिए बनाए जाते हैं तब उनको चैक करने के लिए कि यह प्रिण्ट अच्छा निकला या नहीं निर्माता अपनी व्यवस्था करता है- जैसे-जैसे लेबोरेटरी से आते जाते हैं। निर्माता या उसका प्रतिनिधि उन प्रिण्टों को थियेटर में देखता है और जो हिस्से ठीक तरह से प्रिन्ट नहीं हुए हों उन्हें दोबारा प्रिन्ट करने की हिदायत लेबोरेट्री को दे देता है। यह स्थिति दुबारा प्रिण्ट होने पर भी रहती है। ठीक होने पर उन्हें रिलीज प्रिण्ट में उपयुक्त स्थल पर लगा दिया जाता है। इन प्रिन्टों में सेंसर सर्टिफिकेट भी

निश्चित लम्बाई का एक्सपोज करके लगाना जरूरी होता है। सेंसर सर्टिफिकेट कागज का एक दस्तावेजी प्रारूप रहता है। उसे प्रिण्ट में लगाने के लिए निगेटिव एक्सपोज करना पड़ता है। कभी ब्लैक एण्ड व्हाइट तथा कभी रंगीन कर लेते हैं। इसे अलग से प्रिण्ट करवाकर संपादक हर फिल्म के प्रारम्भ में लगाता है।

प्रिण्ट की डिलीवरी के वक्त निर्माण के लिए जरूरी होता है कि वह लेबोरेट्री के प्रबन्धकों के साथ बैठकर हिसाब-किताब करे और उसके काम के दामों का चुकता करे। यह चुकता एक साथ भी हो सकता है और जैसे-जैसे प्रिण्टों की डिलीवरी मिले, किश्तों में भी हो सकता है। प्रिण्ट डिलीवरी से पहले निर्माता को एक्साइज (लेवी) का चुकाता करना पड़ता है। उसके लिए लेबोरेट्री में एक्साइज इंस्पेक्टर रहता है, वह निर्माता से पैसा वसूल करके उसकी रसीद देकर रिलीज आर्डर दे देता है। यह रिलीज आर्डर लेबोरेट्री को देने पर ही लेबोरेट्री फिल्म का प्रिण्ट देगी। लेबोरेट्री की कमाई रिलीज प्रिण्टों में ही होती है। इसलिए जिन फिल्मों के प्रिण्ट कम निकलते हैं, जैसे कि प्रादेशिक भाषा की फिल्मों के, तो इनको प्रोसेस करने से वह इंकार कर देती है। आम तौर पर एक फिल्म के 60 प्रिण्ट तक होते हैं। अगर फिल्म हिट हो गई या डिस्ट्रीब्यूटरों की मांग बनी रही तो अधिक प्रिण्ट निकलवाने पड़ते हैं। जैमिनी की चन्द्रलेखा पहली फिल्म थी जिसके एक साथ 100 प्रिण्ट निकले और रिलीज हुए। उन दिनों इसकी बड़ी धूम मची थी। आजकल कई ऐसी बड़ी फिल्में हैं जिनके 100 से भी अधिक प्रिण्ट निकलते हैं।हर निगेटिव की एक खास संख्या तक प्रिण्ट निकालने की क्षमता है। जैसे औरबो फिल्म निगेटिव 40 प्रिण्ट तक ही ठीक रिजल्ट देती है। इसके बाद प्रिण्ट हलके पड़ने लग जाते हैं। सबसे अच्छा फिल्म निगेटिव ईस्टमैन रहता है। इस निगेटिव से 100 प्रिण्ट तक आसानी से निकाले जा सकते हैं। ज्यादा प्रिण्ट निकालने के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि उसका मास्टर निगेटिव बना लिया जाए। इसके लिए अलग से मास्टर निगेटिव आता है, मगर टरिंग

टाकिज और छोटे स्टेशनों के लिए निर्माताओं की यह धारणा बनी हुई है कि उन्हें ए-वन फिल्म देने की जरूरत नहीं है, इसलिए पीछे के कुछ प्रिन्ट हल्के भी निकल जाते हैं।

अगर 35 एम.एम. में शूटिंग करके निर्माता उसे 70 एम.एम. में रिलीज करना चाहे तो उसे विदेशों में जाकर ही उसे ब्लोअप करवाना पड़ेगा, मगर प्रिन्ट यहाँ आकर निकलवाना पड़ेगा, क्योंकि विदेशों में निकलवाया प्रिन्ट बहुत मँहगा होता है। एक प्रिन्ट पर तीन लाख रूपये तक खर्च हो जाते हैं।आम निर्माता कुछ प्रिन्ट बढ़िया पॉजीटिव में प्रिण्ट करवाते हैं यानी ईस्टमैन पर तथा बाकी के प्रिण्ट औरबो पर निकाल लेते हैं। ऐसे ही 70 एम.एम. के कुछ ही प्रिण्ट निकालते वक्त कुछ प्रतिशत छीजत भी वसूल करती है। वह काटी गई छीजत लेबोरेट्री का नेट प्रोफिट होता है। इसी तरह लेबोरेट्री की रासायनिक क्रियाओं के बाद का बचा हुआ पानी भी फेंका नहीं जाता, यह बिक जाता है। कई लोग इसे खरीदकर इसमें से चांदी निकाल लेते हैं। ब्लैक एण्ड व्हाइट के जमाने में चाँदी की मात्रा कुछ अधिक रहती थी। रंगीन फिल्मों में यह अनुपात कम रहता है। निर्माता के पास बचा हुआ रद्दी निगेटिव और पॉजिटीव भी बिक जाता है और सम्पादकों के चाय-पानी के पैसे निकल जाते हैं। अगर निर्माता कंजूस है तो यह रद्दी का पैसा खुद ले लेता है। इस रद्दी माल से कई तरह की चूड़ियाँ बन जाती हैं।

4.3 सेंसर के क्रिया कलाप

फिल्म के सेंसर प्रिन्ट निकलने के साथ-साथ या उससे थोड़ा पहले फिल्म को सेंसर करवाने की प्रक्रिया चालू हो जाती है। निर्माता सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष को एक आवेदन पत्र देकर उससे प्रार्थना करता है कि उसकी फिल्म सेंसर के लिए तैयार है आप सेंसर करने के लिए तारीख तय कीजिए। उसके साथ निर्माता प्रति रील निर्धारित धनराशि जो सरकार द्वारा मान्य है, बैंक में जमा करवाकर चालान सेंसर बोर्ड को देता है। यह फीस जमा हो जाने के बाद ही फिल्म सेंसर की तारीख सेंसर बोर्ड तय करेगा। सेंसर अंग्रेजों के

जमाने से चला आ रहा है। उस दौरान सिर्फ सेंसर अधिकारी अकेला फिल्म को देखता था और देखकर फिल्म के लिए सेंसर प्रमाण पत्र जारी कर देता था। ब्रिटिश शासन में सेंसर की प्रक्रिया बहुत उदार थी। सिर्फ यह देखा जाता था कि फिल्म में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ कोई बात तो नहीं है। उस दौर में नग्न, अर्द्धनग्न, चुम्बन और कामुकता के दृश्य आमतौर पर पास कर दिए जाते थे। उन दिनों स्वतंत्रता आन्दोलन का जिक्र नहीं किया जा सकता था, यहाँ तक कि राष्ट्रीय नेताओ की तस्वीरें नहीं दिखाई जा सकती थीं। उन दिनों एक फिल्म बनी थी - गाजी सलाउद्दीन जो कि अंग्रेजी फिल्म 'क्रूशेड' पर आधारित थी। क्रूशेड धर्मयुद्ध का पर्यायवाची शब्द है। इस फिल्म में अंग्रेजों को मुसलमानों के साथ युद्ध करते और उनको पराजित करते दिखाया गया था। हिन्दुस्तान में बनी इस फिल्म में मुसलमान निर्माता ने अपने इस्लाम धर्म की मान्यताओं के पालन की गरज से कुछ परिवर्तन किया और सल्लाउद्दीन को शहीद का बाना पहनाया था। यह बात अंग्रेज सरकार को नागवार गुजरी। उन्होंने फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगा दी। जहाँ तक मेरा ख्याल है प्रदर्शन पर रोक लगने वाली यह पहली फिल्म रही है। बड़ी मुश्किल से फिल्म को री-शूट करके, काट-छाँट करके बड़े दिनों बाद पास कराया जा सका। इसका एक कारण यह भी था कि सेंसर के खिलाफ कोई अपील नहीं हो सकती थी।

सन् 1873 में जब ब्रिटिश भारत के कई प्रान्तों में कांग्रेस सरकार आ गई थी, तब कांग्रेस ने अपनी सब नीतियों को लागू करना शुरू कर दिया था, जैसे शराबबन्दी, हरिजनों का मन्दिर में प्रवेश, अस्पृश्यता निवारण आदि। इसका असर फिल्मों पर भी पड़ा। फिल्मों में शराब पीने के दृश्य बताए जाने पर प्रतिबन्ध लग गया था। अर्द्धनग्न, चुम्बन आदि के दृश्यों पर भी रोक लगी। सेंसर अधिकारी ऐसे दृश्यों को देखते ही काटने की हिदायत दे देता था। प्यार करने वाले लड़के-लड़की भी पास नहीं बैठते थे। उस समय रोमांस करने वाले जोड़ों के लिए खास दूरी तय थी, जो कई फीट की तय थी।

कभी-कभी किसी एक खास एंगल की वजह से दूरी कम

नजर आती थी तब भी सेंसर की निगाह उस पर पड़ती थी और वह कटवा दिया जाता था। किशोर-किशोरी के आजू-बाजू बैठकर प्रेमालाप पर भी खास प्रतिबन्ध था।

द्विअर्थी गाने और संवादों पर भी कड़ी निगाह रखी जाती थी और उन्हें फिल्म में से निकाल दिया जाता था। इन नीतियों के फलस्वरूप फिल्म निर्माताओं को सेंसर के खिलाफ एकजुट होकर लड़ने का अवसर मिल गया, जिसका फल उनको देश के आजाद होने के काफी स्थलों बाद मिल पाया, मगर निर्माता लोग भी सेंसर से कोई कमजोर नहीं थे। उनकी कल्पना भी बड़ी कारगर साबित होती थी। सागर मूवीटोन की एक फिल्म बनी थी 'ग्रामोफोन सिंगर' जिसमें हीरो सुरेन्द्र थे और हीरोइन थी प्रभा। खलनायिका की भूमिका में थी बिब्बो। बिब्बो हीरो को अपनी प्रेमजाल में फंसा लेती है और हीरो उसके प्रभाव में आकर अपना घर छोड़कर उसके साथ रहने लगता है। इन स्थितियों की दृश्यावलियों में एक दृश्य ऐसा था जिसमें यह दिखाना था कि सुरेन्द्र और बिब्बो एक साथ एक पलंग पर सोये हुए थे। यह दृश्य दिखाया तो जा नहीं सकता था। इसलिए दिग्दर्शक ने उसके लिए एक नया तरीका ढूंढ निकाला। सुबह के वक्त में सुरेन्द्र को पलंग पर सोया हुआ दिखाया गया और उसके बाजू में बिब्बो की ओढ़नी पड़ी हुई थी। अर्थ साफ था और प्रतीकात्मक दृश्य होने से सेंसर की निगाह से भी बच गया। दर्शक भी ऐसे दृश्यों से अधिक उत्तेजित होता है।

वाडिया ब्रदर्स तो इनसे भी तेज निकले, उन्होंने एक फिल्म में नाडिया को हीरोइन और सरदार मंसूर को हीरो लिया था फिल्म के अंतिम शॉट में हीरो-हीरोइन को चुम्बन लेते हुए दिखाया जाना था, जो वास्तव में तो सेंसर की नीति के कारण दिखाया नहीं जा सकता था। इसके लिए उन्होंने एक तरीका चुना-हीरो-हीरोइन एक बैंच पर बैठे हुए थे। दोनों चुम्बन लेने के लिए अपने-अपने मुँह आगे लाते हैं तभी उन दोनों के मुंह के बीच आसमान से एक अंडा गिरता है जो उनके होठों पर चिपक जाता है। वे दोनों चौंकते हैं और अण्डे को हाथ में लेते हैं, अण्डा फूट जाता है और चूजा बाहर आ जाता है।

अब आप स्वयं ही फैसला कर लीजिए कि फिल्म का निर्देशक क्या चाहता था।

लेखकों और फिल्म निर्देशकों ने इस तरह के तरीके खोज निकालने में महारत हासिल कर ली थी।

पूर्व में सेंसर के दौरान जब फिल्म थियेटर में देखी जाती थी तब निर्माता, निर्देशक, कलाकार खास करके लड़कियाँ सेंसर अधिकारियों को बातों में उलझाए रखती थीं ताकि आपत्तिजनक दृश्यों को वह गौर से नहीं देख पाए और वह दृश्य कटने से बच जाए। निर्माता-निर्देशक भी सेंसर अधिकारी को अपना दृष्टिकोण समझाने के लिए तत्काल तैयार रहते थे। इसके अलावा उपहार लेन-देन और रिश्वतखोरी चलती रहती थी। धीरे-धीरे इस प्रथा पर रोक लगा दी गई। सिर्फ निर्माता या निर्देशक ही अन्दर हाल में बैठ सकता था। आजकल तो उनको भी अन्दर बैठने की इजाजत नहीं है। सेंसर बोर्ड निर्माता को तारीख भी नहीं बताते हैं और सेंसर करने के बाद निर्माता को बुलाकर फिल्म के सम्बन्ध में जो भी आपत्तियाँ हों वे बता देते हैं।

4.4 सेंसर बोर्ड के क्रिया कलाप

फिल्म सेंसर बोर्ड की सख्ती की वजह से फिल्म निर्माता आन्दोलित हो उठे हैं। उन्होंने अपने अभाव, अभियोगों के निराकरण के लिए सरकार को कई बार ज्ञापन दिए, मुलाकातें कीं, विरोध भी प्रदर्शित किया, अपना पक्ष सरकार के सम्मुख रखा पर सरकार की तरफ से सदा नकारात्मक रुख ही रहा। सरकार पर जब अधिक दबाब पड़ा तो उसने एक जाँच कमेटी गठित करके पिण्ड छुड़ाना चाहा। इस जांच कमेटी का काम था फिल्म उद्योग की समग्रता से जांच करने तथा स्थिति को सुधारने के लिए अपने सुझाव देने का। इस जाँच समिति के अध्यक्ष एस0 के0 पाटिल (सदोबा कान्होजजी पाटिल) थे। काफी दिनों तक अध्ययन के बाद इस समिति से सरकार को अपनी रिपोर्ट में सेंसर तथा वित्तीय सहायता के मामलों में निर्माताओं को राहत देने के लिए उनके पक्ष में कई सारे सुझाव दिए, मगर इस समिति की सिफारिशों को सरकार ने नामंजूर कर

दिया। फिल्म निर्माताओं की आशाओं पर इससे तुषारापात हो गया, मगर एस0 के0 पाटिल के प्रति अपना आभार प्रकट करने के लिए उनको एक अवधि के लिए इम्पा का अध्यक्ष भी बनाया गया। इम्पा ने अपना आन्दोलन जारी रखा और कई सालों बाद एक जाँच समिति और नियुक्त की गई। इसके अध्यक्ष न्यायमूर्ति खोसला थे। इस जाँच समिति ने भी निर्माताओं को समुचित राहत देने के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए थे। यह समिति तो यहाँ तक भी सुझाव दे बैठी थी कि फिल्मी पर्दे पर चुम्बन के उत्तेजक दृश्यों को भी दिखलाने की इजाजत दे देनी चाहिए, मगर सरकार ने इस सुझाव को भी नहीं स्वीकारा। फिल्म सेंसर में सरकार कोई भी उदारवादी नीति अपनाने के लिए तैयार नहीं थी। आज भी यही स्थिति बरकरार है। सरकारी तंत्र की मंशा तो वही है, पर धुप्पल में जो कुछ भी चल सकता है, वह चल ही रहा है, जिसे थोड़ा-बहुत हम देखते ही हैं।

कुछ निर्माता जिनके नाम बड़े हैं यथा राजकपूर, बी.आर. चौपड़ा आदि की फिल्मों में कुछ भी सीन रखे जा सकते हैं। पिछले कई सालों से फिल्म सेंसर बोर्ड में रिश्वत देने का बोलबाला बढ़ने की चर्चाएँ भी सुनने में आती रहती हैं। फिल्म निर्माता श्रीराम वोहरा के लिए लिखी मेरी अपनी एक फिल्म 'बहरूपिया' सेंसर बोर्ड के शिकंजे में फंस गई थी। उस वक्त सेंसर समिति के एक सदस्य जो कांग्रेसी नेता भी थे ने निर्माता से फिल्म को पास कराने के लिए पचास हजार रुपए बतौर प्राप्त किया था। इस कांट-छांट से उस फिल्म का हुलिया ही नहीं मकसद तक भी बदल गया था। धीरे-धीरे सरकार पर भी दबाव बढ़ने लगा। लोग अपनी फिल्मों को पास कराने के प्रकरणों को लेकर उच्चतम न्यायालय तक जाने लगे। अदालती फैसले सरकारी निर्णयों के खिलाफ होने लगे। दिवंगत के.ए. अब्बास की फिल्म 'नक्सलवादी' क़ो अदालती फैसले के बाद ही प्रमाण पत्र जारी किया गया था। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

इधर सरकारी तंत्र को भी समझ में आने लगा कि उसको कुछ तो करना ही पड़ेगा वरना हर फिल्म निर्माता संविधान में सन्निहित

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत अदालतों में जाने लगेगा और किसी दिन सेंसर बोर्ड गैर-कानूनी घोषित कर दिया जाएगा। सरकार ने इस आशंका के चलते एक मध्यम मार्ग निकला कि सेंसर करने के लिए लिए सेंसर अधिकारी के साथ कुछ राजनीतिक, सामाजिक, कार्यकर्ता भी बैठने लगे और उनको फिल्म पर आपत्तियाँ करने का अधिकार भी दिया गया।

पहले व्यवस्था यह थी कि फिल्म देखने के तुरन्त बाद निर्माता को प्रीव्यू हॉल में बुलाकर उसको सदस्यों द्वारा उठाई गई आपत्तियों से अवगत करा दिया जाता था। निर्माता को और फिल्म के निर्देशक को उन आपत्तियों पर अपना दृष्टिकोण बतलाने का अधिकार था। अगर निर्माता अपनी बात सेंसर करने वालों को समझा पाता तो उसकी फिल्म बगैर काट-छांट करवाए प्रमाणित कर दी जाती थी। उसे उसी वक्त कह दिया जाता था कि आपकी फिल्म पास है, सर्टिफिकेट आप दफ्तर आकर ले जाना।

आजकल निर्माताओं को या दिग्दर्शकों को हाल में नहीं बुलाया जाता। एक-दो दिन बाद निर्माता सेंसर कार्यालय में जाकर पता करता है कि उसकी फिल्म का क्या हश्र हुआ है। अगर फिल्म पास हो गई है तो उसे कहला दिया जाता है कि प्रमाण पत्र आकर ले जाइए, वर्ना क्या-क्या कांट-छांट करना या परिवर्तन करना है उसकी फेहरिस्त थमा दी जाती है। जो काटना-छांटना है वह करके फिल्म दुबारा दिखलाने को कह दिया जाता है,यह दिखलाने के लिए कटाई-छंटाई ठीक है। यदि सेंसर की मर्जी के मुताबिक कटाई-छंटाई हो गई है तो उसे पास कर दिया जाता है। यदि निर्माता किसी काटे जाने वाले अंश पर आपत्ति करता है कि मैं काटूँगा और यह नहीं काटूँगा तो निर्माता के पास एक रास्ता पड़ा है वह है रिवाइजिंग कमेटी के पास फिल्म ले जाना।

इस स्तर पर भी निर्माता और दिग्दर्शक को अपना दृष्टिकोण समिति के सदस्यों को समझाना पड़ता है। पहले निर्माता सेंसर अधिकारी और सेंसर बोर्ड के चेयरमैन से मिलकर उनको अपनी बात समझा दिया करते थे और अपना काम उनसे निकलवा लेते थे।

मगर आजकल सेंसर अधिकारी यह काम नहीं करते न ही चेयरमैन। निर्माता को अब जिन सदस्यों ने फिल्म देखी है, उनके साथ अपना सिर खपाना पड़ता है। अगर इसके उपरान्त भी काम नहीं बना तो निर्माता रिवाइजिंग कमेटी के सामने अपना दुखड़ा रोता है। सरकार ने सेंसर बोर्ड के साथ आम नागरिकों के नुमाइंदों को रखने की प्रक्रिया सिर्फ इसलिए की ताकि सेंसर का दोष निर्माता सेंसर बोर्ड के सदस्यों पर डाल दें। सरकार हर साल समाज के विभिन्न वर्गों से जाने-माने लोगों को सदस्य मनोनीत करती है। इन तीनों में से हर एक फिल्म को दिखलाने के लिए कुछ लोगों को बुलाया जाता है। उन्हें निर्धारित शुल्क और यात्रा भत्ता दिया जाता है। फिलहाल तो यह खर्चा निर्माता के सिर पर नहीं पड़ता है, मगर सरकार इस खर्च को निर्माता इस खर्च को निर्माता के सिर डाल दे तो आश्चर्य नहीं होगा।

4.5 फिल्म सेंसर करने की प्रक्रियाएं

फिल्म सेंसर बोर्ड द्वारा कई किस्मों में प्रमाण जारी किए जाते हैं-इनमें 'यू' /यानी यूनिवर्सल तथा 'ए' यानी एडल्ट (वयस्क) प्रमुख हैं। आजकल एक प्रमाण-पत्र और जारी किया जाता है उसे 'यूए' कहा जाता है।

जिस फिल्म को 'यू' प्रमाणपत्र मिलता है उसे बच्चे से लेकर बूढ़ा तक कोई भी देख सकता है, मगर जिस फिल्म को 'ए' सर्टिफिकेट दिया जाता है, उसे सिर्फ वयस्क आयु के दर्शक ही देख सकते हैं, यानी उसे अठारह वर्ष से कम आयु के बालक नहीं देख सकते। वयस्क नहीं होने के कारण अपनी ही फिल्म 'नगीना' फिल्म अभिनेत्री नूतन नहीं देख पाई थी।

बच्चों की फिल्मों के लिए अलग से प्रमाणपत्र जारी किया जाता है। कुछ फिल्में ऐसी भी होती हैं जिनको सिर्फ वे ही लोग देख पाते हैं जो उस व्यवसाय से ताल्लुक रखते हैं। खासकर चिकित्सा व्यवसाय पर आधारित फिल्मों को नर्सें, चिकित्सक, कम्पाउण्डर या इस व्यवसाय से जुड़े लोग ही देख पाते हैं।

बहुत वर्षों पहले निर्माता ताराचन्द बड़जात्या ने फिल्मी जीवन के शुरूआती दौर में एक फिल्म प्रदर्शित की थी जिसका नाम था- 'बर्थ ऑफ ए बेबी' यह फिल्म सिर्फ चिकित्सकों को दिखाने के लिए ही सेंसर ने पास की थी। मगर थियेटर के मालिकों ने इस शर्त का कड़ाई से पालन नहीं किया। इसलिए दूसरे लोगों को वह फिल्म देखने के लिए मिल गई। उन्हीं दिनों एक और फिल्म प्रदर्शित हुई थी जिसका नाम था-'बॉब एण्ड शैली'। यह फिल्म यौन रोगों पर आधारित थी, मगर चिकित्सकों के अलावा भी अन्य कई सारे दर्शकों ने इसे देखा। मगर आजकल ऐसी फिल्मों को भी सेंसर 'ए' सर्टिफिकेट देकर पास कर देता है। पिछले सालों में यौन सम्बन्धों पर आधारित कई सारी फिल्में बनी और प्रदर्शित भी हुई जिनमें जी.के. आदर्श की 'गुप्त ज्ञान', श्रीराम बोहरा की 'गुप्त शास्त्र' तथा एक अन्य निर्माता की 'काम-शास्त्र' थी। इन फिल्मों में यौन विकारों की खुलकर चर्चा की गई थी तथा बच्चों के जन्म की सारी प्रक्रिया भी स्पष्ट रूप में दिखाई गई थी। सेंसर ने इन दृश्यों को न्यूनतम लम्बाई में रखने को कहा था, मगर जो भी प्रदर्शित हुआ उसकी भी लम्बाई काफी थी। निर्माता इन फिल्मों को बनाने के लिए यह तर्क दिया करते थे कि लोगों को यौन शिक्षा देने की बहुत जरूरत है और सेंसर ने भी इस तर्क को मान लिया था।

अमरीका में सरकार की तरफ से कोई सेंसर नहीं है क्योंकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उनके संविधान का एक बहुत बड़ा अंग है। मूल कानून में किए गए संशोधन-4 के अनुसार सरकार किसी तरह का संकुचन नहीं कर सकती। मतलब यह है कि जब तक अश्लीलता की पराकाष्ठा तक नहीं पहुँचा हुआ हो तब तक सरकार कोई कदम नहीं उठाएगी। अंग्रेजी के उपन्यास लेखक डी.एच. लॉरेन्स की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'लेडी चाटलॉज लवर्स' जब अमरीका में छपी तो उसको सरकार ने अश्लील कह कर प्रतिबन्धित कर दिया था। उस पुस्तक में कुछ पृष्ठ ऐसे हैं जिनमें संभोग करने की प्रक्रिया का खुलकर वर्णन किया गया है। प्रकाशकों ने सुप्रीम कोर्ट में अमरीकी संविधान के संशोधन-4 के सरकार के फैसले के विरुद्ध अपील

दायर की। अदालत ने सरकार की आज्ञा को निरस्त कर दिया। पुस्तक अब धड़ल्ले से बिकी।

मगर अमरीका में फिल्म निर्माताओं की अपनी एक सेंसर पद्धति है वह है, निर्माता संघ का अपना सेंसर जो हर फिल्म को देखकर उसमें काट-छांट के आदेश देता है। जहाँ जरूरत हो वहाँ वांछित प्रदर्शन के आदेश देता है, इसके बाद प्रमाण पत्र दे देता है। ये प्रमाण पत्र तीन किस्मों के होते हैं। 'यू' 'ए' तथा 'एक्स'. भारतीय निर्माताओं ने भी सरकार पर जोर डाला कि अमरीका की इस पद्धति को भारत में भी लागू कर दिया जाए, मगर सरकार ने अब तक इस मांग को स्वीकार नहीं किया। भविष्य में कर ले या नहीं करे कुछ नहीं कहा जा सकता, मगर फिल्म निर्माताओं के पास कई सारे रास्ते खुले हैं। सेंसर बोर्ड द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के खिलाफ रिवाइजिंग कमेटी में जाया जा सकता है। वहाँ से भी यानी रिवाइजिंग कमेटी के फैसले से भी सन्तुष्ट न हो तो उसे भारत सरकार के पास भी अपील करने की छूट है। सम्बन्धित अधिकारी फिल्म देखकर निर्माता के साथ बैठते हैं और उनकी समस्याओं को निपटाने की कोशिश करते हैं। अगर यहाँ से भी परिणाम संतोषजनक नहीं निकला तो अदालतों के दरवाजे निर्माता के लिए खुले हैं। अदालतों में निर्माता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत ही अपील करते हैं। फैसला कभी उनके हक में चला जाता है जैसे दिवंगत फिल्म निर्माता ख्वाजा अहमद अब्बास की फिल्म 'नक्सलवादी' के मामले में हुआ था। इस फिल्म में अब्बास ने आज की सामाजिक व्यवस्थाओं की बुरी तरह आलोचना की थी। उन्होंने पात्रों से पुलिस व्यवस्था को जमकर गालियाँ भी दिखाई थी। एक जगह तो पुलिस को 'कुत्ता' तक कहा गया था। फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगा दी गई थी, तब अब्बास अदालत की शरण में गए और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर जीत गए। निर्माता अक्सर सेंसर द्वारा अपनी-बात नहीं माने जाने पर अदालत में जाने की धमकी देते हैं और उससे डरकर सेंसर और सरकार भी निर्माता के साथ समझौता करके फिल्म को प्रदर्शित करने के लिए निकाल लेती है, क्योंकि सरकार को यह खतरा बना

रहता है कि कहीं अदालत सेंसर व्यवस्था को ही गैर संवैधानिक नहीं घोषित कर दे।

आमतौर पर फिल्म की काट-छांट के लिए कुछ निर्माताओं को समझौता करने में तकलीफ नहीं होती, मगर जहाँ तक थीम का सवाल आ जाता है वहाँ पर समस्या खड़ी हो जाती है। अगर सेंसर फिल्म की थीम बदल देता है तो काफी री-शूटिंग करनी पड़ जाती है। इससे फिल्म की शक्ल बदल दी जाती है। जैसा मेरी अपनी फिल्म 'बहुरूपिया' में हुआ था। श्रीराम बोहरा की प्रदर्शित फिल्म ''औरत'' की भी इसी तरह की दुर्गति हुई। बहुरूपिया तो फिर भी ठीक-ठाक व्यवसाय कर गई, मगर 'औरत' बॉक्स ऑफिस पर बुरी तरह से पिट गई।

4.6 फिल्म सेंसर करने की स्थितियां

अमरीका के विपरीत इंग्लैण्ड में सरकारी सेंसर की व्यवस्था है। इंग्लैण्ड में कोई लिखित संविधान नहीं होने की वजह से वहाँ पर सरकार कभी-कभी इस कमी को नाजायज फायदा उठा लेती है। ऐसे में सेंसर के कानून पर अदालती फैसले से संपादित अंकुश ही लग सकता है—इसके विपरीत नार्वे, स्वीडन आदि में किसी तरह की सेंसर व्यवस्था नहीं होने जैसी स्थिति है, स्केन्डिनेवियाई फिल्मों में स्त्री-पुरुष के संभोग की प्रक्रियाओं तक को खुल रूप में दिखाया जाता है। अब तो यह स्थिति इतनी उबाऊ हो चली है कि वहाँ के दर्शक, इन दृश्यों को देखने से ही कतराने लगे हैं। रूस आदि कम्यूनिस्ट देशों में और अन्य तानाशाही देशों में सब कामकाज सरकारी नियंत्रण और नीतियों के अनुसार होता है।

भारत में भी शशि कपूर की मृच्छकटिकम् संस्कृत नाटक पर बनी फिल्म 'उत्सव' में वेश्यालय के कई दृश्यों में बहुत ही कामोत्तेजक दृश्य रखे गये थे। मगर सेंसर ने उन पर आपत्ति नहीं की। वैसे सारी ही फिल्म में सेक्स भावना का बाहुल्य था। पता नहीं सेंसर ने कैसे इसे पास कर दिया था। शायद सेंसर को उसमें कोई कला नजर आई हो। सिद्धार्थ उपन्यास पर बनी इसी नाम की एक विदेशी फिल्म में

सिम्मी ग्रेवाल को नग्न अवस्था में दिखलाया गया था। हालांकि सिम्मी का यह कहना है कि उसने बॉडी कलर का शरीर से चिपका हुआ वस्त्र पहन रखा था, मगर जिस ऐंगल से शूटिंग की गयी थी उससे तो वह नग्न ही नजर आ रही थी। बहरहाल दोनों ही फिल्में भारत में बाक्स ऑफिस पर पिट गई।

निर्माताओं का सेंसर

सेंसर से झगड़ा करते-करते निर्माता जब बहुत तंग आ गए, तब उन्होंने निश्चय किया कि वे फिल्में पहले खुद ही देखेंगे और आपत्तिजनक दृश्यों को निर्माता स्वयं ही कटवा कर फिर सेंसर के पास फिल्म भेजी जाएगी। अगर उसके बाद भी सेंसर में किसी भी तरह की कोई आपत्ति की तो न तो उसे निर्माता ही मानेगा और न ही निर्माता संघ ही। झगड़ा होने की हालत में सीधे अदालत की शरण ली जाएगी। कई दिनों तक यही प्रक्रिया काम में लाई जाती रही, मगर निर्माता हार बैठे। कोई भी निर्माता यह नहीं चाहेंगे कि उसका पैसा एक फिल्म विशेष में फंसे। अदालत में जाने के बाद तो पता नहीं कितने दिन फैसला होने में लगे। इसकी भी कोई गारंटी नहीं कि फैसला उनके ही हक में होगा। जब तक फिल्म रिलीज होकर उसका पैसा चुकता न हो जाए तब तक निर्माता दूसरी फिल्म शुरू करने की स्थिति में नहीं होता, न ही फाइनेन्स से उसे नई फिल्म शुरू करने के लिए पैसा मिलेगा। ऐसी हालत में निर्माता का तो बुरा हाल हो जाता है। वह जल्दी से जल्दी फिल्म प्रदर्शित करने की इच्छा रखता है। निर्माता थोड़े दिन तो सेंसर के साथ जद्दोजदह कर लेता है। फिर कोई-न-कोई बहाने ढूंढ कर समझौता कर लेता है।

इसका सबसे बड़ा उदाहरण प्रेमनाथ की फिल्म गोलकुण्डा का कैदी है। इस फिल्म के निर्माता-निर्देशक और हीरो खुद प्रेमनाथ ही थे। हिरोइन थी बीनाराय, जो उस समय तक उनकी बीबी नहीं बनी थी। सेंसर ने फिल्म को बुरी तरह से काट दिया था। खासकर उन दृश्यों को, जिनमें कांग्रेस सरकार की राजनीति की धज्जियाँ उडाई गई थीं व मंत्रियों के भत्तों का मजाक उड़ाया गया था। प्रेमनाथ ने बड़े जोर-जोर से घोषणा की थी कि वे आखिरी दम तक सेंसर और

सरकार से झगड़ा करता रहेगा। मगर थोड़े ही दिनों में प्रेमनाथ थक गया और सेंसर के साथ समझौता करके फिल्म को काट-कूट कर प्रदर्शित करवा दी। फिल्म तो फ्लाप हुई ही प्रेमनाथ के कैरियर पर भी इसका बहुत बुरा असर पड़ा।

कहां-कहा सेंसर

फिल्मों के भारत में तीन बड़े निर्माण केन्द्र हैं—बम्बई, मद्रास और बंगाल। वैसे छोटे-छोटे कई केन्द्र भी हैं जैसे गुजरात, असम, उड़ीसा आदि। इन क्षेत्रों की सुविधा के लिए बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में क्षेत्रीय सेंसर बोर्ड के दफ्तर कायम हैं। इन क्षेत्रीय सेंसर बोर्डों के कार्य-क्षेत्र भी निर्धारित हैं। मद्रास, केरल, बंगलौर प्रभुति क्षेत्रों में बनने वाली फिल्मों को कलकत्ता केन्द्र देखता है। बाकी देश भर के क्षेत्रों की फिल्मों का सेंसर बम्बई में किया जाता है। बम्बई और दक्षिण भारत फिल्में बनाने के दो बड़े क्षेत्र हैं। इसलिए सेंसर कार्यालय हमेशा बहुत ही व्यस्त रहते हैं। कोई-न-कोई फिल्म रोजाना सेंसर होती ही रहती है। इसके अलावा विदेशों से आयातित फिल्में, फीचर फिल्मों की ट्रेलरें, बच्चों के लिए बनी फिल्में, विज्ञापन फिल्मे, वृत्तचित्र (डाक्यूमेन्ट्री फिल्में) भी सेंसर करवानी पड़ती हैं। सेंसर के नियम वीडियो फिल्मों पर भी लागू होते हैं, चाहे वे ओरीजनल फिल्मों की कॉपी-हो या अपने लिए बनाई हुई हो। सभी को सेंसर करवाना जरूरी है। बगैर सेंसर के द्वारा स्वीकृत कोई भी फिल्म या वीडियो फिल्म प्रदर्शित कराना गैर कानूनी है तथा इस अपराध के लिए सजा का प्रावधान है। सिर्फ वे ही फिल्में या वीडियो फिल्में जो सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए नहीं होती उनको सेंसर कराना जरूरी नहीं होता। सेंसर का केन्द्रीय ऑफिस दिल्ली में है।

4.7 फिल्म सेंसर का एक पक्ष यह भी

एक जमाना था तब सेंसर के नियम-कायदे नहीं के बराबर थे, लेकिन धीरे-धीरे वे भी बनने लगे। पता नहीं अब तक सेंसर संहिता कितनी बार बिगड़ी, कितनी बार बनी। सेंसर संहिता बनाने में

सरकार का दृष्टिकोण, जनता की अवधारणा, संसद सदस्यों और निर्माताओं की प्रतिक्रियाओं की मिली-जुली खिचड़ी जैसी हालत रहती है। इसके बाद यह भी जरूरी नहीं है कि जो कुछ भी सेंसर संहिता में लिखा है उसके माप-तौल से ही फिल्म तौली जाए। एक सीन एक फिल्म में रखा जा सकता है। वही सीन दूसरी फिल्म में काटा जा सकता है। सेंसर वाले इसका कारण यह दिया करते हैं कि हमको दृश्यों की प्रासंगिकता देखनी पड़ती है।

तीनों क्षेत्रीय सेंसर बोर्डों की नीतियाँ एक जैसी नहीं हैं। तीनों क्षेत्रीय सेंसर अधिकारी अपने-अपने दृष्टिकोण से सोचते हैं और सेंसर संहिता को लागू करते हैं। संहिता की व्याख्या भी मनमाने ढंग से कर ली जाती है। मद्रास के सेंसर बोर्ड का दृष्टिकोण बहुत ही उदारवादी रहता है, जबकि बम्बई का दृष्टिकोण उतना ही संकुचित।

एक फिल्म और एक सीन मद्रास का सेंसर कार्यालय पास कर देता है। यही फिल्म या सीन बम्बई में पास नहीं हो पाता है। राजनीति पर आधारित और राजनेताओं की कटु आलोचना करने वाली अनेक फिल्में मद्रास से पास होकर प्रदर्शित हो जाती हैं। ऐसी फिल्में बम्बई का सेंसर बोर्ड पास नहीं करता। यहाँ तक कि उन्हें प्रतिबन्धित भी कर दिया जाता है। इसे तकनीकी रूप से कहा जाता कि -''नॉट फिट फॉर एक्जीबीशन'' सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए आयोग्य।

ऊपर इस बात के दो उदाहरण बतलाए जा चुके हैं। पहला- ''गोलकुण्डा का कैदी'' तथा दूसरा 'बहुरूपिया'। बम्बई के निर्माता इसी वजह से ऐसी फिल्में बनाने से कतराते हैं। दक्षिण में बनी फिल्मों 'अंधा कानून', 'आज का एम.एल.ए.', 'प्रतिघात', आदि को बम्बई में शायद ही पास किया जाता। इन फिल्मों में मिनिस्टरों तक को अपराधी बतलाया गया था। इस दोहरी नीति की बम्बई के निर्माता बड़ी आलोचना किया करते हैं। मगर कुछ कर नहीं पाते। कुछ ही समय पहले जब ऐसी फिल्में बहुत प्रदर्शित हुई और विधायकों, संसद सदस्यों, मंत्रियों, की बदनामी हुई तब मद्रास विधानसभा में यह सवाल उठाया गया था कि ऐसी फिल्में बनने पर

ही क्यों नहीं प्रतिबंध लगा दिया जाए। तब मद्रास विधानसभा के अध्यक्ष इस तरह का कानून बनाने के पूरी तरह पक्ष में थे मगर आगे कुछ हुआ ही नहीं।

कई वर्षों पहले तब इन्दिरा गाँधी देश की प्रधानमंत्री थीं उस समय हिंसा पर आधारित फिल्में बहुत बनीं और चली थीं। संसद में इन फिल्मों की कटु आलोचनाएं की गई थी। नतीजा यह हुआ कि सरकार ने फतवा जारी कर दिया कि जिस फिल्म में तनिक भी हिंसात्मक दृश्य होंगे उन्हें सेंसर बोर्ड पास नहीं करेगा। इस फतवे को लेकर निर्माताओं में बड़ी खलबली मची, क्योकि उनकी राय में बगैर हिंसा के दृश्यवाले फिल्में दर्शकों में लोकप्रिय हो ही नहीं सकतीं थीं। निर्माताओं के प्रतिनिधि इसका प्रतिकार करने के लिए तर्क दिया करते थे कि इस फतवे के अन्तर्गत निर्माता रामायण और महाभारत के कथानकों पर भी फिल्में नहीं बना पाएंगे क्योंकि युद्ध के दृश्य के बगैर रामायण और महाभारत बन ही नहीं पाएगी। युद्ध इन फिल्मों में हर हालत में बतलाना ही पड़ेगा। रामायण में और कोई युद्ध के दृश्य हो या नहीं राम-रावण का युद्ध तो दिखलाना ही पड़ेगा। उसमें रावण मरेगा भी। यह तो हो ही नहीं सकता कि रावण को जिन्दा रखा जाए।

दूसरा तर्क जो निर्माता दिया करते थे वह और भी मौंजू था। उनका कहना था कि अगर कोई ऐसा सीन हो जिसमें भाई की आंखों के सामने अगर कोई गुण्डा उसकी बहिन के साथ बलात्कार कर रहा हो या पति के सामने उसकी पत्नी से बलात्कार कर रहा हो तो क्या वह खामोश देखता रहेगा अगर वह उसमें दख्लन्दाजी करता है तो मारपीट तो होगी ही। सच तो यह है कि साफ-सुथरी, सामाजिक कही जाने वाली फिल्में पर्दे पर चल नहीं पाती हैं। सरकार की तरफ से यह तर्क दिया जाता था कि फिल्मों को देखकर लोगों पर प्रभाव पड़ता है। वे चोर, डाकू, बलात्कारी, हिंसक बनते हैं। समाज में हिंसा और विद्वेष का वातावरण उभारते हैं।

निर्माताओं का इस संदर्भ में तर्क यह था कि फिल्मों का

दर्शकों के ऊपर कोई भी असर नहीं होता। वह तो वही सब देखते हैं जो समाज में अमूमन घटता रहता है। फिल्में समाज का प्रतिबिम्ब हैं। निर्माताओं ने कई तरह के आन्दोलन भी किए। हड़तालें भी रखीं। कुल मिलाकर परिणाम यह निकला कि हिंसा फिल्मों में एकदम समाप्त तो नहीं हुई मगर थोड़ी सीमित जरूर हो गई। निर्माताओं ने एक और तरीका निकाल लिया। वे फाइटों के दृश्यों की जगह थ्रिल अधिक रखने लगे। आजकल फिल्मों में हिंसा के दृश्य फिर से कुछ अधिक दिखाई देने लगे हैं।

सिर्फ सेंसर बोर्ड को ही फिल्म सेंसर करने का अधिकार हो ऐसा नहीं है। यह अधिकार सरकारी स्तर पर कई लोगों को कानून प्राप्त है। सेंसर के बाद फिल्म प्रदर्शित होने पर कलैक्टर या डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को लगे कि इस फिल्म से जनता के अमन-चैन में बाधा आएगी या किसी कारणवश जनता की प्रतिक्रिया प्रतिकूल है तो वो भी फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगवा सकते हैं। ऐसे ही अधिकार पुलिस अधिकारियों को भी प्राप्त है। सेंसर को अगर लगे कि किसी भी फिल्म में पुलिस अधिकारियों को जिस तरह से पेश किया गया है उससे पुलिस की छवि प्रभावित नहीं होती हैं तो सेंसर ऐसी फिल्मों के लिए पुलिस को दिखाने के आदेश जारी कर देता है। निर्माता के पास तब अपनी फिल्म पुलिस को दिखाने के अलावा कोई चारा नहीं रहता है। पुलिस वाले कभी-कभी आपत्तियां कर देते हैं। जिनको दुरूस्त करना लगभग असंभव हो जाता है जैसे वर्दी, बेल्ट, स्टार, जूते आदि के बारे में उठाए ऐतराज। इसी तरह किसी पुलिस वाले के चरित्र पर आपत्ति। जो आपत्तियाँ ठीक करने लायक हो सकती हैं निर्माता वह करवा देता है, अन्यथा वह लड़ता रहता है। मेरी अप्रदर्शित फिल्म 'काली रात' का क्लाइमेक्स इसी चक्कर में फंस गया था और उसमें कई तरह के रद्दोबदल करने पड़ गए थे। भारत सरकार और अन्य कलाकारों को भी ऐसे अधिकार हैं कि फिल्म के प्रदर्शन के बाद भी उन्हें लगे कि यह फिल्म प्रदर्शन के योग्य नहीं है, तो वे उस पर प्रतिबंध लगवा देते हैं। दुबारा सेंसर के लिए भिजवा देते हैं। गुलजार की 'आँधी' कई दिनों तक इसी तरह

के चक्करों में उलझी रही। भारत सरकार यह प्रतिबंध तीन माह के लिए लगा सकती है, मगर यह प्रतिबंध तीन-तीन माह के लिए आगे भी बढ़ाया जा सकता है। सेना पर आधारित फिल्म को सेंसर करने का अधिकार सेना का है।

सबसे बड़ा नियामक है दर्शक समाज का कोई भी वर्ग किसी भी दृश्य, चरित्र, कोण, संवाद आदि पर आपत्ति उठा सकता है। उनके लिए आन्दोलन कर सकता है, फिल्म का प्रदर्शन रुकवा सकता है। मनोज कुमार की फिल्म 'कलियुग की रामायण' बहुत दिनों तक सेंसर में फंसी रहने के बाद प्रदर्शित हुई तो दर्शकों ने आपत्तियाँ की। इससे फिल्म के मानदंड बदल गए, चरित्रों के नाम बदलने पड़े और गाने के बोल भी बदलने पड़े। इतना होने पर भी आज भी उस पर मुकदमा चल रहा है। बहुत सालों पहले एक फिल्म प्रदर्शित हुई थी, जिसमें एक गाना था- ओ भंगियों के राजा! आजा मेरा नन्हा सा दिल बहला जा' इस गाने को लेकर जोधपुर के हरिजनों को आपत्ति हो गई। अन्त में मामला तब सुलझा जब हरिजनों के प्रतिनिधियों ने इस फिल्म को देखकर अपनी आपत्ति वापिस ले ली। रमेश सहगल की फिल्म 'रेलवे प्लेटफार्म' में एक मारवाड़ी का चरित्र था जिसे जानी वॉकर ने निभाया था। मारवाड़ियों ने उसके चरित्र पर आपत्ति की और अन्त में सरकार को फिल्म पर प्रतिबंध लगाना पड़ा।

4.8 सेंसर संहिता और उसकी प्रक्रिया

भारत सरकार ने सेंसर बोर्ड की सहायता के लिए एक निर्देशिका बना रखी है जिसे सेंसर कोड कहते हैं। इसमें कई सारे नियम और उपनियम हैं। इस सेंसर कोड में समय-समय पर परिवर्तन भी होता रहता है।

किसी इस संहिता का एक नियम ज्यादा सख्ती से लागू किया जाता है तो कभी दूसरा नियम। यह उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो उस समय उपलब्ध है। उसके साथ-साथ इसमें सरकारी दृष्टिकोण का भी उल्लेखनीय योगदान रहता है। जब भारत में पहली

बार कांग्रेस की सरकार बनी, तब कई प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों ने शराब बन्दी लागू कर दी थी। उस वक्त बम्बई के गृह मंत्री मोरारजी देसाई थे। उन्होंने सेंसर बोर्ड से कहकर इस बात का सख्ती से पालन करवाना शुरू कर दिया था कि किसी भी फिल्म में किसी भी पात्र को शराब पीते हुए नहीं दिखलाया जा सकेगा। यह नियम तो अभी भी बना हुआ है, मगर इसका पालन शायद ही कोई आज का निर्माता करता होगा।

श्रीमती इन्दिरा गांधी के शासनकाल में सरकार की गतिविधियों की वजह से हिंसा उभरने लगी, तब उसका जिम्मा फिल्मों के सिर पर थोपा गया और फिल्मों में हिंसा के दृश्य रखने को कतई मनाही कर दी गई, मगर आजकल इस नियम का भी कोई पालन नहीं करता। आजकल शायद ही कोई ऐसी फिल्म बनती होगी जिसमें हिंसा और वह भी बहुत अधिक मात्रा में नहीं दिखाई जाती हो। भारतीय दण्ड संहिता का मूल सिद्धान्त यह है कि कोई भी शख्स चाहे वह कितना ही बड़ा हो कानून को अपने हाथ में नहीं ले सकता। उसे उसके लिए पुलिस की सहायता लेनी जरूरी है। सैंसर बोर्ड में भी इसकी व्यवस्था है। मगर पिछले कई सालों से अधिकांश फिल्में ऐसी भी बनती आ रही हैं जिसमें फिल्म का हर नायक कानून अपने हाथ में ले लेता है और अत्याचारियों से प्रतिशोध लेता रहता है। कभी-कभी सेंसर बोर्ड के कहने पर दिग्दर्शक क्लाइमेक्स के अंतिम शॉटों में पुलिस को बुला लिया करता है। कुछ एक निर्माण और दिग्दर्शक ऐसी भी व्यवस्था नहीं करते हैं कि नाम के लिए नायक को गिरफ्तार भी करवा देते हैं जैसे नायक का चरित्र अपराधी का चरित्र हो।

इन नियमों के अलावा अनेक छोटे-बड़े नियम हैं जिनको सेंसर बोर्ड कभी सख्ती से अमल में लाता है तो कभी नरमी से। एक वक्त था जब फिल्मों मे स्त्री पात्रों को गिरा हुआ चरित्र नहीं बताया जाता था। उस जमाने में कोठे पर मुजरे नहीं दिखाए जा सकते थे। वेश्याओं पर आधारित फिल्मों या वेश्याओं के चरित्रों पर आधारित जो फिल्में बनना बन्द हो गई थीं। सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों,

सामुदायिक व नैतिक मूल्यों, मान्यताओं, किसी धर्म-विशेष की, जाति-विशेष की आलोचना या उनकी प्रवृत्तियों का मखौल उड़ाना वर्जित है।

सेंसर पर कई किस्म के दबाव पड़ते रहते हैं। जैसे संवाद में की गई आलोचना, विधानसभा में की गई आलोचना, समाज के दकियानूसी तत्वों द्वारा की गई आलोचना प्रमुख हैं। कभी-कभी समाज सुधारक या धर्म विशेष के नेता भी निर्माता के लिए सिर दर्द बन जाते हैं। इन सबसे बचते हुए निर्माता के लिए फिल्म बनाते वक्त व कथा लेखक के लिए भी इन बातों का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसे माहौल में फिल्म बनाने के लिए निर्माता-निर्देशक को कितनी सावधानी बरतनी पड़ती है। इसकी कल्पना की जा सकती है।

सेंसर की प्रक्रिया

जब फिल्म का पहला प्रिन्ट निकल जाता है तब निर्माता को या उसके प्रतिनिधि को सेंसर बोर्ड में प्रार्थनापत्र देना होता है कि उसकी फिल्म प्रदर्शन के लिए तैयार है, सेंसर बोर्ड उसे देख ले। इसके लिए जरूरी है कि फिल्म का प्रिन्ट श्वेत-श्याम में बना है तो ब्लैक एण्ड व्हाइट में तथा रंगीन है तो प्रिण्ट रंगीन बनाना होगा। वैसे रंगीन फिल्म श्वेत-श्याम में भी सेंसर को दिखाई जा सकती है। ऐसी दशा में रंगीन प्रिन्ट बनाने पर सेंसर को पुनः दिखलाना पड़ता है। इस प्रार्थनापत्र के साथ निर्माता को सेंसर करने की तय फीस भी जमा करनी पड़ती है, जो निर्धारित बैंक में जमा करवाकर चालान की प्रति सेंसर बोर्ड को देनी पड़ती है। इसके साथ फिल्म के कथानक की विस्तृत जानकारी जो 12 से 30 पृष्ठ की हो, कई कापियाँ अंग्रेजी में देनी पड़ती है। आजकल सेंसर ने यह नियम बना दिया है कि इसके साथ आपको फिल्म का प्रिण्ट भी जमा कराना पड़ेगा। तब सेंसर उसे क्रम से देखेगा जिसका प्रिण्ट पहले आया हुआ है उसका पहले देखा जाएगा। निर्माता को इस बात की सूचना भी नहीं दी जाती कि कब फिल्म देखी जाएगी। पहले यह व्यवस्था नहीं थी। निर्माता द्वारा प्रार्थनापत्र और फीस जमा करने के बाद सेंसर

बोर्ड उसे तारीख दे देता था कि उसकी फिल्म किस थियेटर में देखी जाएगी। निर्माता और फिल्म देखने के बाद सेंसर अधिकारी उन्हें परिणाम बतला देता था। आजकल फिल्म देखने के बाद सेंसर अधिकारी निर्माता को यह सूचना देता है कि उसकी फिल्म किस थियेटर में पड़ी है। आप उसे थियेटर की फीस जमा करवाकर ले आइए। इसके साथ-साथ सेंसर अगर फिल्म में कोई काट-छांट करना नहीं हुई तो प्रमाणपत्र जारी कर देता है, अन्यथा आपत्ति पत्र जारी कर देता है। अगर निर्माताओं को आपत्तियाँ मान्य हैं तो उसे काटकर सेंसर को सौंप देता है और अधिकारी उन्हें देखकर प्रमाणपत्र जारी कर देता है। अगर आपको आरोप मान्य नहीं हो तो न्याय पाने की प्रक्रिया काफी लम्बी है जो अपनानी पड़ेंगी। पहले रिवाइजिंग कमेटी को दिखाइए, वहाँ भी अगर आपका मामला ठीक नहीं हुआ तो केन्द्र के ट्रिब्यूनल में जाइए और वहाँ भी नहीं बैठे तो अदालत में जाना होता है। अन्त में जाकर हार-थक कर निर्माता को समझौता करना पड़ता है और वह कट करके प्रमाणपत्र हासिल करता है।

प्रमाण पत्र देने से पहले सेंसर बोर्ड एक बात और भी चाहता है। वह यह कि जिस अंतिम रूप में फिल्म पास की गई है उसकी स्क्रिप्ट सेंसर को देनी पड़ती है। आजकल उसकी जगह सेंसर प्रमाण पत्र जारी कर देता है। जितने प्रिण्ट निकलवाने हैं उतनी प्रतियाँ तथा एक मूल प्रमाणपत्र फिल्म में नहीं लग पाने पर निर्माता एक स्लाइड पर प्रमाणपत्र की नम्बर वाली संख्या लिखकर दर्शकों को दिखाते हैं। इस प्रमाण पत्र में प्रमाण पत्र संख्या, निर्माता का नाम, फिल्म की लम्बाई, रीलों की संख्या जारी करने की तारीख लिखी रहती हैं और सेंसर अधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं।

यह प्रमाणपत्र दस वर्ष के लिए जारी किया जाता है। अगर निर्माता को दस वर्ष वाद भी फिल्म दुबारा रिलीज करनी है तो उसे दुबारा सेंसर करवाना पड़ेगा। इस वक्त भी फिल्म में कांट-छांट कर सकता है।

4.9 फिल्म प्रदर्शन के लिए तैयार

सेंसर से सर्टिफिकेट मिलने से पहले निर्माता को कई एक काम करने पड़ते हैं। पहला काम तो यह है कि सेंसर ने जो भी कटिंग काटने के लिए कहा है उसे काट कर सेंसर को देना पड़ता है। इन कटिंगों में शॉट का निगेटिव, शॉट का पॉजिटिव और उसका साउण्ड होते हैं। दूसरा उन शॉटों की जगह पर दूसरे शॉट डालने हों, तो उसकी प्रक्रिया पूरी करनी होती हैं। अगर यह शॉट पूरा है तो उसे डालना पड़ता है। अगर कहीं और जगह का शॉट वहां लगाया जाता है तो उसे री-प्रिण्ट करवाकर पॉजीटिव में डालना पड़ता है। उसका निगेटिव उपलब्ध है तो ठीक वर्ना पॉजीटिव में मास्टर निगेटिव बनवाकर शॉट डालना पड़ेगा। किसी भी शॉट को अगर ब्लोअप करवाना है तो उसे विशेषज्ञों को देकर करवाना पड़ेगा।

तीसरा काम होता है सेंसरकटिंग। यदि ऐसा हुआ कि फिल्म की कण्टीन्यूटी में धक्का लगता है तो वहाँ उसे मिटाने के लिए ही शूटिंग करनी पड़े तो वह भी करनी पड़ती है। इस तरह यह कार्यवाही पूरी होने के बाद निर्माता को उन कटिंगों को सेंसर को देना पड़ता है। सेंसर अधिकारी उसके बाद आपका पॉजिटिव फिल्म का मूवी ओला पर देखकर ओ.के. करता है। इस तरह जब सारी रीलें ओ.के. हो जाती हैं तब सिर्फ एक कार्यवाही करना और बाकी निम्न रह जाता है वह यह स्क्रिप्ट लिखवाना और उसको सेंसर को देना।

यह स्क्रिप्ट क्या होती है

यह स्क्रिप्ट शूटिंग के पहले लिखी गई स्क्रिप्ट से बिल्कुल भिन्न होती है। लिखी गई स्क्रिप्ट में शूटिंग के वक्त जरूरत के मुताबिक डायरेक्टर परिवर्तन करता रहता है। इस स्क्रिप्ट में तकनीकी विवरण नहीं रहता। इसके विपरीत सेंसर को दी जाने वाली इस स्क्रिप्ट का अंतिम रूप होता है तथा यह तकनीकी विवरण पर आधारित होती है। जैसे एक लॉंग शॉट पर उसमें लिखा जाएगा कि

यह लॉंग शॉट है। इसमें कौन-कौन से आर्टिस्ट काम कर रहे हैं। कौन सा कलाकार, कौन सा संवाद बोल रहा है। शॉट की लम्बाई कितनी है आदि। अगर एक शॉट ट्राली से लिया गया है उसमें लिखा जाएगा (उपर्युक्त जानकारी के अलावा) कि यह शॉट इस कलाकार से शुरू हुआ और किस कलाकार के किस शॉट पर खत्म हुआ। वह लाँग शॉट था या मिडशॉट आदि, जैसा हो वैसा लिखना होता है।

इन स्क्रिप्टों को लिखने के लिए विशेषज्ञ हैं जो अक्सर रात के वक्त सम्पादक काम नहीं करता तब ये काम करते हैं। एक-एक रील लेकर उसके सिंक्रोनाइजर टेबल पर लगा कर देखते रहते हैं और विस्तृत लिखते चलते हैं। जब यह लिखावट खत्म हो जाती है तब उसे साफ-साफ लिखाकर टाइप करवाया जाता है। ये टाइप की हुई कापियाँ काफी संख्या में होती हैं। लगभग तेरह कापी तो सेंसर को ही भेजनी पड़ती हैं। कुछ निर्माता भी अपने रिकार्ड के लिए रख लेता है। जब सब रीलों को स्क्रिप्ट तैयार हो जाती है तो उसकी एक जिल्द बनावाकर सेंसर को दे दी जाती है। इन स्क्रिप्ट राइटरों को निर्माता पैसे देता है।

प्रिण्ट स्कैचिंग

निर्माता सेंसर सर्टिफिकेट निकलवाने के बाद या जब उसे मालूम हो जाए कि सेंसर सर्टिफिकेट मिल जाएगा, निर्माता लेबोरेटरी को प्रिण्ट निकालने के लिए आर्डर दे देता है और पॉजीटिव जमा करा देता है। लेबोरेट्री प्रिण्ट निकालना चालू कर देते हैं। यह निर्माता के हक में है कि प्रिन्ट चैक करायें और यह मालूम करे कि प्रिण्ट सही निकला है या नहीं। इस जाँच के दो तरीके हैं - या तो निर्माता या उसको कोई प्रतिनिधि मिनी थियेटर में उस प्रिण्ट को देखे और निर्माता को बताये कि प्रिण्ट ठीक है या नहीं, या उसके कौन से हिस्से दुबारा प्रिण्ट करवाये जाएं। लेबोरेट्री के लिए उन खराब हिस्सों को दुबारा प्रिण्ट कराना आवश्यक है। अगर निर्माता या उसके आदमी इतना वक्त नहीं देना चाहें तो इसके लिए प्रोफेशनल लोग मिल जाते हैं, उनका काम प्रिण्ट चैक करना होता है। उनको प्रति

प्रिण्ट पैसा देकर उनसे चैकिंग करवा ली जाती है। इन लोगों की हिम्मत की दाद हमें भी देनी पड़ेगी कि ये लोग एक ही फिल्म के 50 से 60 तक प्रिण्ट एक साथ देखते हैं। इसके बाद निर्माता वितरकों को डिलीवरी दे देता है। फिल्म प्रदर्शित हो जाती है और दर्शक बस यह तक करता है कि फिल्म फ्लॉप होगी या हिट।

4.10 सारांश

इस इकाई में हमने फिल्म निर्माण में, रॉ-स्टाक, एक्सपोज्ड निगेटिव, रफ प्रिण्ट, साउण्ड ट्रान्सफर इत्यादि के विषय में चर्चा की। निगेटिव, जब कैमरे से बाहर, निकाला जाता है, तब उसे सीधे लैब को भेजा जाता है। लैब निगेटिव की खेप से, एक रफ प्रिन्ट या सरसरी निगाह वाला प्रिण्ट निकालता है। इसे देखकर निर्देशक, निर्माता, सम्पादक से संभावनाओं का पता लगाते हैं, जो उस शूट से निकलकर आ रही है। उस रश प्रिण्ट को देखकर इस बात की जानकारी मिल सकती है शूटिंग कैसी चल रही है, शाट्स की गुणवत्ता क्या है और कलाकार का काम कैसा है। इसी रश प्रिण्ट को देखकर निर्देशक, निर्माता अपनी रणनीति बनाते हैं। उसके बाद, रफ कट बनता है, यानी रश प्रिण्ट को सम्पादित करके जो चीज तैयार होती है, उसे एक रफ कट कहते हैं।

4.11 शब्दावली

एक्साइज लेवी	:	फिल्म पट्टी पर उत्पादन शुल्क
निगेटिव की किस्में	:	ईस्टमैन कलर, फूजी कलर, औरवो कलर, गेवा कलर, सोवी इत्यादि।
रसायन क्रियाएं	:	निगेटिव धोने के लिए रसायन के घोल बनाए जाते हैं। हर किस्म का घोल अलग होता है।
बैण्ड	:	काले कागज की पट्टी, कलर विश्लेषण के बाद इसमें बीच-बीच में गोलाकार फिल्टर लगे होते हैं। फिल्टर अधिकतर हरे लाल, पीले, होते हैं।

वाइवोगेयर : कुल सात रंग इन्द्रधनुषी होते हैं। यही फिल्टर से रोशनी छनकर निगेटिव पर पड़ती है।

4.12 शब्दावली

(i)	इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म प्रोडक्सन	राजकृष्ण मिश्र
(ii)	फिल्म ऐज फिल्म	वी0 पी0 परकिन्स
(iii)	सिनेमा ऐज ऐन आर्ट	जे0 आर0 डिबरिश
(iv)	मूवी मुगल्स	फिलिप फ्रेन्च
(v)	फिल्म ऐण्ड रियल्टी	राय आर्मेस
(vi)	माय फेयर लेडी	ऐलेन जे. लरनर

4.13 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

(i) निगेटिव की मुख्य किस्में बताइये।

(ii) बैण्ड किसे कहते हैं?

(iii) वाइवोगेयर का अर्थ बेताइये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(i) लैब की रासायनिक क्रियाएं क्या होती हैं? विस्तार से बताइये, निगेटिव कैसे धुलता है? स्पष्ट करें।

(ii) रिलीज प्रिण्टों की प्रक्रिया का विवरण देते हुए, शूट निगेटिव से रिलीज प्रिण्ट तक की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

(iii) सेंसर के क्रिया-कलापों का वर्णन करते हुए सेंसर के मानदंड एवं नियम स्पष्ट करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) बैन्ड कहते हैं —

(i) शादी वाले बाजे को।

(ii) काले कागज की शॉट के बराबर पट्टी जिसमें लाल, नीले, पीले फिल्टर लगे होते हैं

(iii) एडिटिंग टेबल को

(iv) कैमरा को

(ख) वाइवोगेयर का अर्थ है—

(i) सम्पादन मशीन

(ii) निर्देशन प्रक्रिया

(iii) इन्द्रधनुषीय रंगभरी फिल्टर की तारतम्यता जिसमें सात रंग होते हैं। फिल्टर से रोशनी निगेटिव तक जाती है।

(iv) फिल्म पॉजिटिव।

(ग) निगेटिव की किस्में—

(i) इस्टमैन कलर, फ्यूजी कलर, आरवो कलर, गेवा कलर, और सोवो कलर इत्यादि।

(ii) काले कागज की शॉट् के बराबर पट्टी जिसमें लाल, नीले, पीले, फिल्टर लगे होते हैं।

(iii) निगेटिव की सात किस्में होती हैं।

(iv) निगेटिव की कोई किस्म नहीं होती।

(घ) रसायन क्रियाएं लैब —

(i) पिक्चर में शॉट डालने के लिए होता है।

(ii) साउण्ड के लिए कोई क्रिया नहीं होती।

(iii) रसायन क्रियाएं सेन्सर बोर्ड करता है।

(iv) निगेटिव धोने के लिए डेवलप करने के लिए, रसायन क्रियाएं होती हैं।

उत्तर – (क) ii, (ख) iii, (ग) i, (घ) iv

इकाई -5 भारत में फिल्मों से सम्बन्धित संगठन

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 फिल्मी संगठन

- 5.2.1 केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड
- 5.2.2 भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार
- 5.2.3 फिल्म प्रभाग
- 5.2.4 लोक सेवा संचार परिषद
- 5.2.5 कानूनी प्रावधान
- 5.2.6 राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम
- 5.2.7 फिल्म समारोह निदेशालय
- 5.2.8 सेंसर बोर्ड

5.3 नई डिजिटल प्रणाली और सिनेमा

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्दों के अर्थ

5.6 संदर्भ ग्रन्थ

5.7 प्रश्नोत्तर

5.0 उद्देश्य

(1) यदि आप फिल्म पत्रकारिता के क्षेत्र में कैरियर बनाना चाहते हैं। इसकी विस्तृत जानकारी चाहते हैं तो यह इकाई मदद करेगी।

(2) इस इकाई के अध्ययन से भारत में फिल्मों से सम्बन्धित संगठनों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

(3) संगठनों का कार्य क्या है, संगठन का उद्देश्य क्या है, क्या वह अपनी स्थापना के उद्देश्य को पूरा कर पा रहा है या

नहीं? इस इकाई के अध्ययन से इन सभी प्रश्नों का उत्तर पा सकते हैं ।

5.1 प्रस्तावना

चलचित्र किसी क्रिया को उत्प्रेरित करने के लिए एक उत्तरोत्तर अनुक्रम में प्रक्षेपित छायाचित्रों की एक लम्बी श्रृंखला द्वारा विचारों के सम्प्रेषण का एक माध्यम है। यह जनरूचि का परिष्कार करता है। यह देखना बुद्धिजीवियों का काम है कि वह कहीं जन अभिरूचि का दुरूपयोग तो नहीं कर रहा है। सिनेमा कहानी प्रस्तुत करने का एक जरिया है। फिल्म एक जवान भाषा है। कहानी कई तरीके से प्रस्तुत की जा सकती है। बोले हुए शब्दों, नृत्य, कविता, गीत, हाव-भाव में, तस्वीर में। सिनेमा में सब समा जाते हैं। इस पर नियंत्रण की भी जरूरत है। इसके लिए कई संस्थाएं भी बनी हैं। जिसकी चर्चा इस इकाई में की गई हैं ।

5.2 फिल्मी संगठन

सामान्यतः चलचित्र का उपयोग मनोरंजन के लिए किया जाता है। इसकी आवश्यकता की अनुभूति तब होती है जब व्यक्ति थक जाता है और अवकाश के समय कुछ मनोंरंजन चाहता है। चलचित्र अर्थात फिल्म उसके अवधान को आकर्षित करता है। यही चलायमान चित्र अपने कथानक में द्रष्टा को समेट लेता है। वस्तुतः द्रष्टा तन-मन से चित्रपट में अपने को खो देता है। जो दृश्य या संवाद चलचित्र में दिखाई या सुनाई पड़ते हैं वे उस पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इसी के चलते सिनेमा सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, पारिवारिक आदि सभी स्थितियों को आत्मसात् करते हुए सिनेमा रचनात्मक माध्यम बना है। इस माध्यम के विकास, उस पर नियंत्रण के लिए कई संस्थाएं सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर गठित की गई है। चूँकि यह प्रभावी माध्यम है और इसका प्रभाव मानव मन पर अधिक पड़ता है । मानव पर गहरा प्रभाव डालने की क्षमता के लिए ही सरकार विकास व नियंत्रण पर नजर रखती है।

5.2.1 केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड

इसका गठन सिनेमेटोग्राफी अधिनियम, 1952 के अनुरूप हुआ। बोर्ड में 25 सदस्य और एक अध्यक्ष होता है। जिसका मुख्यालय बम्बई में है। बंगलौर, कलकत्ता, कटक, दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, मद्रास एवं तिरूअनन्तपुरम में क्षेत्रीय कार्यालय हैं। अपने यहाँ फिल्म जब तक केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड से प्रमाणित न हो तब तक सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित नहीं होती। बोर्ड 'यू', 'ए' और 'यूए' प्रमाण पत्र निर्गत करता है।

'यू' का अर्थ है सार्वजनिक प्रदर्शन पर कोई प्रतिबंध नहीं। 'ए' का अर्थ है फिल्म मात्र व्यस्कों के लिए है। 'यूए' का अर्थ है - 12 वर्ष से कम बच्चों के लिए माता-पिता को निर्देश।

5.2.2 भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार

भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार की स्थापना सन् 1964 में सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अन्तर्गत हुई। सिनेमा के विविध रूपों और अभिव्यक्ति के संरक्षण का गुरूतर दायित्व इसे सौंपा गया है। इसकी अपनी लाइब्रेरी है, जो देश भर के 100 सक्रिय सदस्यों के बीच फिल्में वितरित करता है। भारतीय फिल्म तथा टेलीविजन संस्थान एवं अन्य सांस्कृतिक शैक्षणिक संस्थानों की सहायता से फिल्म शिक्षण का कार्यक्रम भी इसके द्वारा चलाया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार का मुख्य उद्देश्य फिल्मों का संरक्षण और उद्धार करना है। इसका मुख्यालय पुणे में है तथा तीन क्षेत्रीय कार्यालय बंगलौर, कलकत्ता और तिरूअनन्तपुरम में है। फिल्म मूल्यांकन पाठयक्रमों के संयोजन से इस संस्था ने भारतीय सिनेमा के विविध पक्षों को उजागर किया है।

अभिलेखागार की महत्वपूर्ण गतिविधि प्रलेखन है जिसमें फोटो, पुस्तिकाएं, पोस्टर, डिस्क रिकार्ड, ऑडियो टेप, फिल्म समीक्षाएं, लेख के माध्यम से सूचनाएं एकत्र होती हैं। भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार मई 1969 से अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म

अभिलेखागार महासंघ का पूर्ण सदस्य है।

5.2.3 फिल्म प्रभाग

भारत सरकार का अपना फिल्म प्रभाग है जो सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अधीन कार्य करता है। प्रभाग की ओर से वृत्तचित्र तथा समाचार चित्र तैयार किये जाते हैं। इनका प्रदर्शन प्रत्येक सिनेमाघर के लिए अनिवार्य है। प्रदर्शन नहीं करने पर सिनेमाघर के मालिक को दंडित किया जा सकता है।

फिल्म प्रभाग की स्थापना मुम्बई में 1948 में की गई थी। इसका प्रयोजन फिल्मों के माध्यम से राष्ट्र के विभिन्न कार्यों में लोगों को भाग लेने के लिए प्रेरित करते हुए तथ्यों, घटनाओं और राष्ट्रीय विभूतियों की निष्पक्ष तस्वीर प्रस्तुत करना है। इसके अलावा देश के महत्वपूर्ण पहलुओं विशेषकर सामाजिक-आर्थिक पहलुओं पर तथा राष्ट्रीय एकता, अस्पृश्यता उन्मूलन, परिवार कल्याण आदि ज्वलंत मसलों पर जानकारी देना है। विदेशों में दिखाने के लिए प्रभाग द्वारा निर्मित फिल्मों का उद्देश्य देश की यथार्थवादी तस्वीर प्रस्तुत करना तथा विदेशों में भारत की नीतियों का उपयुक्त मूल्यांकन प्राप्त करना है। फिल्म प्रभाग का एक और उद्देश्य शिक्षा संचार के माध्यम के रूप में वृत्तचित्रों को विकसित और समृद्ध करना भी है। फिल्म प्रभाग ने निर्माण के अन्तर्गत सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों के अनुरूप फिल्में बनाई हैं। कृषि, शिक्षा, बिजली, उत्पादन आदि क्षेत्रों तथा आदिवासी और पूर्वोत्तर क्षेत्रों के निवासियों के विकासार्थ चलाये गये कार्यक्रमों का प्रचार करने के लिए फिल्मों के निर्माण के अतिरिक्त राष्ट्रीय महत्व की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं, राष्ट्रीय एकता, सम्प्रदायिक सदभाव मद्यपान की बुराइयाँ दहेज प्रथा, अस्पृश्यता, लोकतंत्र की रक्षा करना, देश भक्ति, परिवार कल्याण आदि विषयों पर फिल्में बनायी गयी हैं।

फिल्म प्रभाग ने पाक्षिक समाचार पत्रिका का निर्माण जारी रखा है। रंगीन समाचार चित्र तैयार करके प्रदर्शन के लिए जारी

किये गये। इसके अलावा फिल्म प्रभाग द्वारा दूरदर्शन के लिए भी कुछ समाचारों के चित्र तैयार किये गये। फिल्म प्रभाग में 17 विदेशी न्यूजरील संगठनों के साथ समाचार चित्रों के आदान-प्रदान की व्यवस्था है। प्रभाग अन्तर्राष्ट्रीय न्यूजरील तथा न्यूज फिल्म एसोसियेशन का सदस्य भी है। कार्टून फिल्मों को तैयार करने के लिए फिल्म प्रभाग में एक अलग इकाई है। प्रभाग के पास वृत्तचित्रों तथा समाचार चित्रों के एनीमेशन कथाक्रम तैयार करने के अतिरिक्त प्रतिवर्ष चार कार्टून फिल्मों के निर्माण के लिए स्टाफ तथा उपकरण उपलब्ध है।

5.2.4 लोक सेवा संचार परिषद्

लघु फिल्म और राष्ट्रीय एकता, पर्यावरण उपभोक्ता तथा नशीले पदार्थों की बुराई जैसे सार्वजनिक महत्व के मुद्दों पर संदेशों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से जनवरी 1987 में लोक सेवा संचार परिषद् का गठन किया गया। परिषद् एक गैर-सरकारी निकाय है जहाँ सभी सदस्य स्वयंसेवी आधार पर अपनी सेवाएं देते हैं। कार्यक्रम क्विकीज के प्रस्तुतीकरण का खर्च जैसे प्रयोगशाला शुल्क और परिवहन आदि का वहन आमतौर से भारतीय विज्ञापनदाता समिति के जरिए विज्ञापनदाता करते हैं। इसके कला और तकनीकी पक्षों की निगरानी विज्ञापन एजेंसियां निःशुल्क करती हैं। दूरदर्शन इन संदेशों को निःशुल्क प्रसारित करता है।

लोक सेवा संचार परिषद् के लोगों के तहत अनेक क्विकीज का प्रसारण किया गया । इसमें स्वतंत्रता दौड़, एक सुर, रागदेश के चुनिंदा शास्त्रीय अंश, गांधी जी हेल्मेट सुरक्षा, कार दुर्घटना, नगरपालिका की मदद से आपकी मदद, जल संरक्षण (पुरूष दाढ़ी बनाते और बच्चा दांतों में ब्रश करते) एंडी बर्न्स, राष्ट्रगान और मिस वर्ल्ड 1994 सुश्री ऐश्वर्या राय वाली फिल्म नेत्रदान आदि शामिल हैं। फोर्ड फाउंडेशन के सहयोग से लोक सेवा संचार परिषद् ने लोक सेवा संचार की पहल शुरू की है जिसमें

पर्यावरण, स्थायी विकास, सामाजिक न्याय और महिलाओं के मुद्दे जैसे विषयों पर जोर दिया गया है। इन विषयों पर लोक सेवा फिल्म / स्पॉट/वृत्तचित्र/ टेलीफिल्म बनाई और प्रसारित की जा रही है। अनेक फिल्म निर्माताओं ने लोक सेवा संचार पहल में दिलचस्पी ली है। परिषद् सामाजिक उत्तरदायित्व पर भी अभियान शुरू कर रही है। जहाँ अच्छे नागरिक व्यवहार, शिष्टाचार और मिलजुल कर काम करने की भावना पर जोर होगा।

5.2.5 कानूनी प्रावधान

हमारे देश में सिनेमेटोग्राफ कानून बना हुआ है जिससे फिल्मों को सार्वजनिक प्रदर्शन से पूर्व परखा जाता है, सेंसर बोर्ड भी इसी कानून के तहत कार्य करता है। फिल्म सम्बन्धित कानून और नियमों के समय-समय पर संशोधन भी होता रहता है। सिनेमेटोग्राफ कानून के अन्तर्गत किसी भी फिल्म को तब तक प्रदर्शित नहीं किया जा सकता जब तक कि सक्षम अधिकरण (सेंसर बोर्ड) उसकी अनुमति नहीं दे दे। यह स्थिति उन दिनों भी थी जब देश में वीडियो नहीं थे। आज जब कि वीडियो के माध्यम से गांवों में फिल्मों का अस्थायी प्रदर्शन होने लगा है, इसलिए इस कानून का परिपालन न करके वीडियो फिल्में दिखाई जाती है। अब इस दिशा में सक्रियता बरती जाने लगी है। धीरे-धीरे कानून का शिकंजा कसता जा रहा है ताकि वीडियो पर भी अवैधानिक रूप से फिल्मों का प्रदर्शन न हो सके।

भारतीय फिल्म और टेलीविजन संस्थान, पुणे

इस संस्थान की स्थापना 1960में हुई जिसमें दो वर्ष की अवधि वाले निम्नलिखित पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

1. मोशन पिक्चर फोटोग्राफी
2. ऑडियोग्राफी
3. फिल्म सम्पादन
4. निर्माण प्रबन्ध (फिल्म और टेलीविजन)

5. कला निर्देशन (फिल्म और टेलीविजन)

6. निर्देशन में उत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम

7. अभिनय में 6 माह की अल्पावधि सर्टीफिकेट पाठ्यक्रम

टेलीविजन समाचार संकलन संपादन के पाठ्यक्रम संचालन द्वारा यह संस्थान दूरदर्शन कार्मिकों हेतु प्रमुख प्रशिक्षण केन्द्र बन चुका है।

5.2.6 राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम

चलचित्रों की गुणवत्ता में वृद्धि करने के उद्देश्य से 11 अप्रैल 1980को राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम का कोलकाता स्थित फिल्म केन्द्र निर्माण और निर्माण के बाद वांछित सुविधाएं कराता है। निगम का मुंबई स्थित लेजर सब टाइटल संयंत्र सब टाइटलिंग के स्तर को उन्नत बनाता है। पड़ोसी देशों के लिए भी सब टाइटलिंग की सुविधा इसके द्वारा प्रदत्त है। राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम कम बजट वाली फिल्मों की धारणा को महत्व देता है। सिनेमा घरों की स्थिति सुधारने की दिशा में भी निगम का सक्रिय योगदान है। भारतीय सिने कलाकारों को पेंशन एवं उनकी योजनाओं की पूर्ति हेतु आर्थिक सहायता करता है। हिन्दी कार्यशालाओं के आयोजन द्वारा राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में लोकप्रिय बनाने की योजना को कार्यान्वित कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है।

5.2.7 फिल्म समारोह निदेशालय

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा सन 1973 ई. में फिल्म समारोह निदेशालय की स्थापना हुई । अच्छा शिक्षाप्रद अनुकरणीय फिल्मों को बढ़ावा देना ही इसका उद्देश्य है। प्रतिवर्ष राष्ट्रीय फिल्म समारोह आयोजित कर यह निदेशालय भारतीय सिने जगत की श्रेष्ठ कृतियों को प्रोत्साहित कर रहा है। फिल्म समारोह अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति के आदान-प्रदान तथा मैत्री

सद्भाव को बढ़ाने में सक्षम सिद्ध हुआ है। सरकार की ओर से फिल्मों के विशेष कार्यक्रम का आयोजन, फिल्मों के प्रिंट एकत्र करना, विदेशों में अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में भाग लेना, भारत में अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह आयोजित करना, सांस्कृतिक आदान-प्रदान के विविध कार्यक्रमों का आयोजन इस निदेशालय द्वारा होता है।

5.2.8 सेंसर बोर्ड

रोमन साम्राज्य में सेंसर नाम का दण्डनायक था। उसका काम लोगों में नैतिकता बनाये रखना था।यही शब्द नैतिकता को बनाए रखने के लिए किये जाने वाले उपायों का पर्याय बन गया। सेंसर संबंधी अधिकरण का काम प्रकाशन या प्रदर्शन में नैतिक मूल्यों को बनाए रखने से होता है।

सेंसरशिप की कई बार इस आधार पर आलोचना की जाती है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19 में प्रत्येक नागरिक को दिये गये स्वतंत्रता भाषण और अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकार पर अंकुश लगाता है। लेकिन ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। जहां संविधान ने इस तरह के मौलिक अधिकार दिये हैं वहाँ अनुच्छेद 19(2)के अन्तर्गत कुछ नियंत्रण भी लगाए हैं । इसके नियंत्रण के अन्तर्गत सुरक्षा व्यवस्था, नैतिकता तथा इसी तरह की अन्य बातों के लिए अंकुश लगाया जा सकता है। जहाँ तक फिल्मों के सेंसर का प्रश्न है वह निरन्तर चला आ रहा है। इसके बारे में अलग-अलग देशों में सामाजिक व्यवस्थाओं, नैतिकता के मापदण्ड और मान्यताओं के अनुरूप कार्य होता है। एक फिल्म यदि यूरोपीय देशों में प्रदर्शन के लिए स्वीकृत की जा सकती है तो यह आवश्यक नहीं कि वह भारतीय समाज व्यवस्था और नैतिक परम्पराओं के अनुकूल हो । इसीलिए कई बार विदेशी फिल्मों के प्रदर्शन पर रोक लगा दी जाती है। ऐसे कई देश हैं जहाँ सेंसर बोर्ड होता ही नहीं है, किन्तु भारत में है। हमारे देश में किसी भी फिल्म के प्रदर्शन से पहले उसे सेंसर

बोर्ड के सामने प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है। सेंसर की स्वीकृति के बिना कोई भी फिल्म प्रदर्शित नहीं हो सकती। सेंसर इस आधार पर फिल्मों को परखता है कि उसमें यौन, हिंसा, घृणा तथा अन्य आपत्तिजनक बातें तो नहीं है जो लोगों पर विपरीत प्रभाव डाले। यदि उसे दृश्यों या संवादों में किसी प्रकार आपत्ति नजर आती है तो वह इन अंशों को काट देता है। निर्माता कानूनन इस बात के लिए बाध्य होता है कि उन दृश्यों, संवादों को उस फिल्म से निकाल दे। उसके स्थान पर नये दृश्य या संवाद जोड़े जाते हैं तो सेंसर बोर्ड पुनः देखता है और फिर अपनी स्वीकृति प्रदान करता है।

फिल्मी गीतों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही होता है। हिन्दी फिल्मों में इन दिनों गीतों में शब्दों का महत्व रह ही नहीं गया है। गीतों में ऊल-जलूल शब्दों को डाल कर धुन तैयार करने की प्रवृत्ति बन गयी है। अच्छे साहित्यिक और अर्थ प्रधान गीत कम देखने को मिल रहे हैं। इन दिनों तो द्विअर्थी संवाद व गीतों का जोर बढ़ता जा रहा है। पहले भी ऐसी प्रवृत्ति देखने में आती थी किन्तु उसका चलन कम था। पुरानी फिल्मों के गीत सीधे-सादे शब्दों में अपनी बात शालीनता से कह देते थे किन्तु इन दिनों गीतों में मर्यादा का पालन नहीं होता। अक्सर सेंसर बोर्ड ऐसे गीतों को आधा या पूरा ही निकाल देता है।

5.3 नई डिजिटल प्रणाली और सिनेमा

नई टेक्नोलाजी आने से अब सिनेमा भी डिजिटल हो रहा है। डिजिटल तकनीक के चलते फिल्मों में मानवीय कौशल के बजाय तकनीकी कौशल का महत्व बढ़ जायेगा। कम्प्यूटर पर बनाए गये पात्र अभिनय करेंगे और वास्तविक अभिनेताओं की उपस्थिति बहुत कम हो जायेगी। किसी लोकप्रिय अभिनेता की छवि को डिजिटल फार्म में तब्दील करके उसके निधन के बाद भी उससे अभिनय कराया जा सकता है। इसके लाभ-हानि दोनों हैं। एक लोकप्रिय छवि को लम्बे समय तक भुनाया जा सकता है, इससे नये चेहरों के

अवसर कम हो जायेंगे।

संचार क्रान्ति और हाई टेक्नोलाजी के इस दौर में कलात्मक फिल्मों के लिए गुंजाइश बहुत कम हो गई है। आज टेक्नोलाजी के विकसित होने से उपकरण सुलभ हो गये हैं और कोई भी व्यक्ति अपनी प्रतिभा को सामने लाने के लिए निर्माण कर सकता है। संचार उपग्रहों के जरिए एक काम यह भी हो सकता है कि जो क्लासिक फिल्में बिचौलियों के षडयंत्र के चलते दर्शकों तक नहीं पहुँच पाती वे सीधे दर्शक तक पहुँच सकती है। डायरेक्ट टू होम सुविधा के विस्तार के साथ यह भी सम्भव हो जायेगा कि आप अपने घर में बैठकर भी किसी भी फिल्म का प्रीमियर देख सकते है। कोई छोटा सैटेलाइट कलात्मक फिल्मों के प्रसारण के लिए भी आगे जा सकता है। इससे कई फिल्में जो वितरक न मिलने के कारण डिब्बों में बंद पड़ी रहती है उनके भी दर्शक मिलेंगे और उनकी कमाई भी बढ़ जायेगी। ऐसे किसी एक चैनल को एक लाख दर्शक देखते हैं और वे पचहत्तर-पचहत्तर रूपये भी देते हैं तो इससे 75 लाख रूपये की कमाई हो जायेगी। इससे सिनेमा घरों को जरूर नुकसान होगा। किन्तु सिनेमाघरों को फायदा होगा यह भी एक भ्रान्ति ही है क्योंकि अच्छी और कलात्मक फिल्में बहुत कम बनाई जा रही हैं संवेदनाओं और भावनाओं को इतने कलात्मक कौशल के साथ अभिव्यक्त किया जाता है कि वे फिल्में दिल को छू लेती है। दरअसल हमारे यहाँ के नये फिल्मकार हैं उनमें से अधिकांश तो हमारे आम जनजीवन से कटे हुए हैं, इसलिए वे हमारे समाज की वास्तविक समस्याओं और संवेदनाओं को नहीं पकड़ सकते हैं। वृत्तचित्रों के क्षेत्र में हमारे यहाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है, इतने विविध क्षेत्रों में इतना कलात्मक काम हो रहा है कि आश्चर्य होता है। समाज, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रकृति पर्यावरण जैसे विषयों पर एक से बढ़कर एक वृत्तचित्र बन रहे हैं।

5.4 सारांश

सिनेमा सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और पारिवारिक आदि सभी स्थितियों को आत्मसात् करते हुए मनोरंजनात्मक और रचनात्मक माध्यम बना है। इस माध्यम के विकास और नियंत्रण के लिए विभिन्न संगठन का गठन किया गया है। यह संगठन सरकारी और गैर-सरकारी दोनों तरह के हैं। सरकारी संगठन फिल्मों को नियंत्रित करते हैं ताकि वह मानवमन पर सकारात्मक प्रभाव डाल सके। इस इकाई में सरकारी और गैर-सरकारी सभी संगठनों की चर्चा की गयी है। इन संगठनों का उद्देश्य क्या है? यह फिल्मों पर किस तरह नजर रखती है इस पर विस्तृत चर्चा की गयी है। इन संगठनों को किस तरह की गतिविधियां हैं, वह सूचनाएं कैसे एकत्रित करती है, इस पर भी प्रकाश डाला गया है । यह संगठन विदेशों में भी दिखायी जाने वाली फिल्मों पर नियंत्रण रखता है। ताकि विदेशों में भारत की नीतियों का प्रस्तुतीकरण हो सके। इस इकाई में सभी सरकारी और गैर-सरकारी संगठन की स्थापना, उद्देश्य, विकास कार्य, इतिहास सभी की चर्चा की गयी है। इन संगठनों की जानकारी फिल्म पत्रकारिता के लिए आवश्यक होती है। फिल्म प्रस्तुतीकरण में कानूनी दांव-पेंच क्या है यह जानना भी जरूरी है। इस इकाई में इस पर भी चर्चा की गयी है।

5.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. अर्जुन तिवारी - 'सम्पूर्ण पत्रकारिता' - विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. डॉ.कृष्ण कुमार - दृश्य- श्रव्य एवं जनसंचार माध्यम प्रकाशक- राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
3. जितेन्द्र कुमार - सिनेमा का प्रदर्शन
4. डॉ. अर्जुन तिवारी - ई-जर्नलिज्म, प्रकाशक- संजय बुक सेन्टर वाराणसी ।

5.6 प्रश्नोत्तर

लघु प्रश्न

1. फिल्म प्रभाव के बारे में 5 लाइन में जवाब दें।
2. सेंसर बोर्ड क्या है?
3. फिल्म समारोह निदेशालय के बारे में आप क्या जानते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. फिल्मी संगठन के बारे में बतायें।
2. भारतीय फिल्म अभिलेखागार के बारे में बतायें।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

5

पोस्ट प्रोडक्शन

इकाई-1 5
पोस्ट प्रोडक्शन

इकाई-2 40
फिल्म का मायाजाल

इकाई-3 70
सिनेमा वैविध्य

इकाई -4 एवं 5 संयुक्त 85
उत्तर प्रदेश फिल्म नीति, उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद्

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
श्री एम0 एल0 कनौजिया	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापन

1- प्रो0 राम मोहन पाठक - वाराणसी

2- डॉ0 अर्जुन तिवारी - इलाहाबाद

सम्पादन

1- श्री राजकृष्ण मिश्र

लेखक मंडल

PGDEM&FP - 04

1- सुनील कुमार श्रीवास्तव - इलाहाबागद

2- राघवेन्द्र मिश्र - काशी

3- श्री राजकृष्ण मिश्र - लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से कुलसचिव श्री एम0 एल0 कनौजिया, द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2008

मुद्रक : नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद, मुद्रित। फोन - 2548837

इकाई -1 पोस्ट प्रोडक्शन

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 टाइटल्स का फिल्मांकन

1.3 टाइटल फिल्माने के कुछ और तथ्य

1.4 फिल्मों में आवाज कैसे भरते हैं

1.5 ध्वनि मुद्रण की स्वतंत्र व्यवस्था

1.6 पार्श्व गायकी का विकास

1.7 रिकार्डिंग मशीनों का विकास

1.8 ध्वनि मुद्रण की व्यवस्था

1.9 फिल्म सम्पादन की प्रक्रिया

1.10 फिल्म सम्पादन-कक्ष कैसा हो

1.11 फिल्म सम्पादन के उपकरण

1.12 फिल्म सम्पादन के अन्य उपकरण

1.13 फिल्म संपादन के कुछ और तथ्य

1.14 सारांश

1.15 शब्दावली

1.16 संदर्भ ग्रन्थ

1.17 प्रश्नावली

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे :-

(1) सम्पादन क्या है?

(2) सम्पादन कक्ष में क्या होता है?

(3) टाइटल्स का फिल्मांकन कैसे होता है?

(4) सम्पादन के उपकरण क्या होते हैं?

(5) पार्श्व गायकी कैसे आयी?

(6) रिकार्डिंग मशीनों का विकास कैसे हुआ?

1.1 प्रस्तावना

सम्पादन के विषय में जानकारी प्राप्त करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि फिल्मों में आवाज कैसे भरते हैं। सर्वप्रथम मूक फिल्में बनती थीं, उस समय आवाज एवं शब्द की समस्या कहाँ थी। धीरे- धीरे खोज के माध्यम से पता लगाया, किस प्रकार चित्र के साथ आवाज को भी फिल्म पट्टी पर भरा जा सके। सर्वप्रथम यह प्रयोग निगेटिव पर ही किये गये। पहली बोलती हुई फिल्म आलमआरा थी, जिसके मालिक आर्देशिर ईरानी थे जो खुद रिकाडिस्ट थे और इम्पीरियल कम्पनी के मालिक थे। निगेटिव में फ्रेम में दाईं तरफ पिक्चर फ्रेम के बाद आवाज की व्यवस्था की गयी थी। फिल्म निर्देशक और कैमरामैन के पश्चात् फिल्म का सम्पादक सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है वह रॉ मैटेरियल को शक्ल-सूरत, पहचान देता है। वह फिल्म को रूचिकर बनाता है। इस प्रकार इस तरह की फिल्मों को बनाने के लिए कैमरे भी अलग से ही आते हैं। ये कैमरे स्टैण्ड से अलग-अलग चित्रों की शृंखला फिल्माते है। इन कैमरों में एक-एक चित्र को खींचने की व्यवस्था होती है। सामान्य कैमरों की तरह उनसे एक साथ कई चित्र नहीं खींचे जा सकते। जिस स्टैण्ड पर यह कैमरा रखा जाता है उसके साथ एक टेबल पर अलग-अलग चित्रों की प्लेट रखकर शूटिंग की जाती है। ऐसा मैने देखा है कि इस खड़े स्टैण्ड पर रखकर शूटिंग करने की व्यवस्था होती है।

1.2 टाइटल्स का फिल्मांकन

फिल्मों में स्लाइड्स की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। बिल्कुल साधारण टाइटल से लेकर बहुत ही विशेष टाइटल्स भी फिल्माये जाते हैं ।

वी. शान्ताराम की निर्देशित फिल्म में टाइटल्स हमेशा विशेषता लिये रहते हैं। कभी-कभी तो ये टाइटल्स देखते ही बनते हैं। उनकी किसी एक फिल्म में हीरोइन संध्या (जो वी शांताराम की पत्नी थीं ने नृत्य करते हुए उनके निर्देशन में बनी हुई अपने पदाघात से रंग बिखेरकर टाइटलों का सृजन किया था, वह अद्‌भुत था। इसी प्रकार इच्छानुसार लिखने के लिए हीरो ने अपने हाथ के हारमोनियम को

जमीन पर फेंक दिया था तो हारमोनियम का अंग-प्रत्यंग मध्यान्तर के रूप में छिटक कर बिखरते हुए दर्शकों को मध्यांतर होने का संकेत दे गया। टाइटल्स के मुख्य रूप से तीन अंग होते हैं :- प्रारम्भ, मध्यान्तर ओर समाप्ति।

टाइटल्स के प्रारम्भ में फिल्म के नाम के अलावा निर्माता, निर्देशक, हीरो, हीरोइन, संगीत निर्देशक , छायाकार, विशेष रूप से कोई भी सूचना देने वाले होते हैं।

टाइटल्स समाप्ति की सूचना देने वाला होता है। इसे साधारण तरीके से भी फिल्माया जा सकता है और विशिष्ट तरीके से भी फिल्माया जा सकता है। जैसे किसी कलाकार ने गोली चलायी; वह गोली किसी और रूप में होकर मध्यान्तर में बदल गया। दर्शकों को भी यह प्रयोग पसन्द आया था। इसी तरह फिल्म में विलेन बहुत जोर से चिल्लाता है 'जाओ' यह 'जाओ' शब्द उसने अपने आदमियों को कहा मगर इसके माध्यम से फिल्म निर्देशक ने दर्शकों को आदेश दे दिया था कि वे मध्यान्तर के लिए बाहर जाकर बीड़ी पी आयें।

यह वहीं पर किया जाता है जहाँ पर दर्शकों की उत्सुकता बनी रहे। यदि ऐसा नहीं होगा तो मुमकिन है तो पूरी फिल्म देखे बिना ही दर्शक घर पर चल देगा। फिल्म पूरी होने पर समाप्त The End लिखा जाता है। मगर कहीं कहीं द बिगनिंग और एण्ड दे लिब्ड हैप्पिली एवर आफटर आदि भी लिखते हैं।

टाइटल्स में सिर्फ फिल्म का नाम आकर रह जाता है। कलाकारों तथा फिल्म के टेक्नीशियनों के नाम बाद में बतलाये जाते हैं। मगर ऐसे टाइटल प्रदर्शित करना त्रुटि पूर्ण माने जाते हैं ऐसा टेक्नीशियनों के प्रति अत्याचार करना भी है। खास कारण यह है कि फिल्म समाप्त होने की स्थिति में वे वहाँ स्थिर नहीं रह पाते हैं। टाइटल प्रदर्शन वक्त के चक्र सिनेमा हाल खाली पड़ा रहता है।

टाइटल्स आलेख बतलाने के बाद मूल कथा शुरू होने से पहले भी दिये जाते हैं। इसी तरह कभी-कभी बिखरे-बिखरे हुए से अथवा काफी देर के बाद भी दिखलाई देते हैं। फिल्म के थोड़ी-थोड़ी चलने के बाद एक-एक दो-दो टाइटल आते रहते हैं। पहले यह परम्परा थी कि टाइटल आगे से पर्दे पर फिल्म के किसी विशेष दृश्य के साथ बतला दिये जाते थे। जब सारे टाइटलों का प्रदर्शन पूरा हो जाता था तब

फिल्म शुरू होती थी। आजकल कई वर्षों से टाइटल के पीछे बैक-ग्राउण्ड के रूप में फिल्म की कहानी भी चलती रहती है। इस तरह टाइटल्स फिल्माने के दो प्रमुख कारण हैं।

पहला कारण था द्वितीय महायुद्ध के समय से ही फिल्म की लम्बाई प्रतिबंधित कर दी गई थी। यह प्रतिबंध बहुत लम्बे समय तक चलता रहा। इसलिए इस 10 हजार फीट तक फिल्म में 500 से 600 फीट तक की फिल्म सिर्फ टाइटल के लिए लगा देना फिल्म के कथानक की लम्बाई वाले पक्ष में कटौती करना था। इसलिए टाइटल फिल्म के साथ ही बतलाकर कमी पूरी कर ली जाती थी, जो बाद में एक परम्परा सी बन गई।

दूसरा कारण फिल्म पर पूंजी लगाने का रहा। जब तक फिल्में सेंसर के सर्टिफिकेट और नेचुरल लेवी से मुक्त थीं तब तक तो ठीक-ठाक था। मगर जब इन पर भी लेवी लग गई तो अलग से टाइटल देना निर्माता के लिए घाटे का सौदा हो गया। आजकल 4 हजार मीटर यानी 13 हजार से 400 फीट हो जाये और टाइटल अलग से देना पड़ जाये तो उसे पूरी लम्बाई के लिए दुगुनी रेट चुकानी होगी। इसलिए निर्माता कभी यह पसन्द नहीं करेगा कि वह सिर्फ टाइटल फिल्माने मात्र के लिए डबल लेवी चुकाने की स्थिति खुद उत्पन्न करे। इसलिए टाइटल फिल्मी कथा की पृष्ठभूमि में रखक उसके ऊपर सुपर इम्पोज किये जाते हैं। जब 18 हजार या 20हजार फीट की लम्बाई वाली फिल्म बनती थी, तब यह टाइटल भी काफी लम्बे दिये जाते थे। मगर धीरे-धीरे निर्माताओं ने यह समझा कि टाइटल देना उसकी मजबूरी है और फिल्म को बर्बाद करना है। इसलिए टाइटलों की लम्बाई भी कम हो गई। यह लम्बाई आजकल तो 150 से 200 फीट तक से अधिक नहीं होती है। पहले कलाकारों और टेक्नीशियनों के टाइटल अलग-अलग होते थे। परन्तु इन दिनों फिल्म की लम्बाई कम करने के लिए कई-कई नाम एक साथ दे दिये जाते है। खासकर सहायक भूमिका वालों के नाम तो अक्सर एक-दो बार में ही सामूहिक सूची में निपटा दिये जाते है। कई निर्माता-निर्देशक टाइटलों की प्रस्तुति में जरूर नए-नए प्रयोग करते ही रहते हैं।

1.3 टाइटल फिल्माने के कुछ और तथ्य

टाइटल बनवाने के लिए निर्माता अक्सर स्पेशल इफेक्ट का

काम करने वालों की सहायता लेते हैं। मगर टाइटल कभी-कभी वे स्वयं भी बनवा लेते हैं तो उसकी प्रक्रिया बहुत ही सरल करनी पड़ती है। ऐसे में टाइटलों के पीछे कोई भी पृष्ठभूमि (बैक ग्राउण्ड) नहीं होती है। इसकी पहली प्रक्रिया यह होती है कि निर्माता टाइटल किसी भी पेन्टर की मदद लेकर लिखवाता है। यह टाइटल वाले कागज पर सफेद स्याही के पेन से लिखवाए जाते हैं। सफेद कागज पर काले पेन से कभी-कभी लिख कर काम चलाते हैं। कभी-कभी कांच की प्लेटों पर लिखवाए जाते हैं। ये कागज और प्लेटें एक ही साइज के काम में लेते हैं।

जब पेन्टर लिखने का काम पूरा कर चुकता है तब फिल्म का कैमरामैन निगेटिव पर उसे एक्सपोज करता है यह कार्य स्टूडियो अथवा बन्द कमरे में पूरा करवाना पड़ता है। काले या सफेद कागजों पर लिखे गये टाइटलों के पीछे कोई भी पृष्ठभूमि एक्सपोज नहीं हो पाती है, मगर कांच की प्लेटों पर लिखे गये टाइटलों के पीछे कोई पृष्ठभूमि आसानी से एक्सपोज की जा सकती है। क्योंकि कोई-कोई कांच पारदर्शी होता है। इन टाइटलों के पीछे कोई रंगीन पर्दा, पेड़-पौधे आदि रखे जा सकते हैं। टाइटल कट टू कट भी एक्सपोज किये जा सकते हैं अथवा उनमें ऊपर-नीचे, दायें-बाएं मूवमेन्ट भी रखा जा सकता है।

सीन का निगेटिव जब डेवलप हो जाता है तब उसका पॉजीटिव बनवाकर उसको सम्पादित करना पड़ता है। इस दौरान अनावश्यक अंश हटा दिये जाते है। जब निर्माता विशेषज्ञों की सहायता से टाइटल तैयार करता है तब उसे दो तरीके अपनाने होते हैं।

पहला तो यह है कि टाइटल और पृष्ठभूमि जिस पर टाइटल लिखे जाते हैं, दोनों ही एक्सपोज करके विशेषज्ञों को दिखाना पड़ता है जिनकी मदद से विशेषज्ञ निर्माता की जरूरत के मुताबिक पृष्ठभूमि और टाइटलों को सुपर इम्पोज करके नया निगेटिव बनवाते हैं। यह प्रक्रिया सहज में हो जाती है। अगर ऐसा नहीं करना हो तो निर्माता अपने टाइटल की सूची बनाकर विशेषज्ञों को दे दिया करता है। फिर जो भी कुछ करना हो वह विशेषज्ञ करेगा। तात्पर्य यह है कि जब जरूरत होगी उसके अनुसार से कागज या कांच पर टाइटल लिखवाएगा और पृष्ठभूमि को भी तय करेगा। शॉटों में प्रमुखता उन्हें ही मिलेगी जो

रॉ स्टॉक में उपलब्ध है।

टाइटल इस तरह सीधे-सीधे (स्ट्रेट) भी एक्सपोज किए जा सकते है। चाहें तो निर्माता उसमें कुछ चमत्कार भी कर सकता है। व्हाइप, डिजाल्व, फेड इन, फेड आउट आदि सभी तरीकों का उपयोग इनके लिए किया जा सकता है । इसका प्रयोग ऊपर नीचे, दाएं-बाएं हर तरह से किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में किसी भी टाइटल को नीचे-ऊपर , दाएं-बाएं घुमाने से एक टाइटल गायब होकर उसके स्थान पर दूसरा टाइटल आ जाएगा।

व्हाइप का अर्थ साफ करने की प्रक्रिया है। इसको फिल्मांकित करते समय हाथ से घुमाना पड़ता है। इस वजह से एक टाइटल गायब हो जाता है तथा दूसरा टाइटल उसके स्थान पर आ जायेगा। डिजाल्व, फेड इन और फेडआउट की जानकारी पहले बतलाई जा चुकी है।

जूम का प्रयोग

कभी-कभी टाइटलों को और भी ज्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए जूम का प्रयोग किया जाता है। कोई भी टाइटल बिन्दु के आकार से बड़ा होता हुआ कैमरे के सामने आकर गायब हो जाए तो यह समझना चाहिए कि यहां पर जूम का प्रयोग किया गया है।

पृष्ठभूमि

टाइटल्स में पृष्ठभूमि स्थिर भी रह सकती है और चलित भी। उदाहरणार्थ एक हवेली को पृष्ठभूमि में रखकर उस पर टाइटल एक्सपोज किये जायेंगे। तब यह पृष्ठभूमि स्थिर मानी जायेगी। मगर जब चलती हुई रेलगाड़ी पर टाइटल फिल्मांकन किये जायेंगे तब वह चलित पृष्ठभूमि मानी जाएगी।

अगर निर्माता को कथा की किसी स्थिति का पृष्ठभूमि बनाना है तो उसकी शूटिंग करके विशेषज्ञों को उसका पॉजिटिव देगा। वरना विशेषज्ञ कोई भी पृष्ठभूमि को उसकी निगाह में काम की हो, अच्छी हो वह काम में ले लेगा। ऐसी पृष्ठभूमि वाला टाइटल एक्सपोज करवाते समय इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि पटकथा का कोई महत्वपूर्ण अंश पृष्ठभूमि नहीं हो नहीं तो दर्शकों की सोच बदल जाएगी अगर वह पृष्ठभूमि देखने से रह जाएंगे या फिर टाइटल नहीं पढ़ पाएंगे। इनसे उनकी मानसिकता में भी अवरोध आ सकता है।

सर्टीफिकेट -

फिल्म के प्रारम्भ में कानून, सेंसर सर्टीफिकेट लगाना बहुत ही जरूरी होता है। इसकी लम्बाई भी कानून से तय है उतनी ही हर हालत में रखनी पड़ेगी। सेंसर सर्टीफिकेट एक कागज का दस्तावेज होता है जिस पर फिल्म का नाम, निर्माता का नाम, लम्बाई आदि विवरण एवं जारी करने का प्रमाण पत्र होता है। इसको कैमरे में एक्सपोज करके उसका निगेटिव बनवाना पड़ता है। सेंसर सर्टीफिकेट की अवधि दस वर्ष होती है। इसके बाद फिर फिल्म को दुबारा सेंसर करवाना निर्माता के लिए जरूरी हो जाता है। एक बार सेंसर सर्टीफिकेट मिल जाने का मतलब यह नहीं होता कि फिल्म को दुबारा सेंसर के लिए नहीं बुलाया जा सकता । सरकार का कोई भी उत्तरदायी या सक्षम अधिकारी फिल्म को प्रदर्शित करने से रोक सकता है और सेंसर विभाग भी अपना प्रमाण पत्र वापिस ले सकता है अथवा उसे री-सेंसर के लिए बुला सकता है। कई बार दर्शकों के विरोध करने पर अथवा जन-प्रतिनिधियों की शिकायतों पर दुबारा सेंसर करवाकर कुछ आपत्तिजनक दृश्यों को हटाने के लिए कहा जा सकता है।

1.4 फिल्मों में आवाज कैसे भरते हैं

कई वर्षों पहले भारत में हुए अंतर्राष्ट्रीय फिल्म मेले में जापान की एक फिल्म प्रदर्शन के लिए आई थी जो अवाक् अथवा मूक फिल्मों की श्रेणी में गिनी गई थी। क्योंकि उस फिल्म में एक भी संवाद नहीं था। जहां कहीं भी फिल्म निर्देशक को यह लगा कि जहां संवाद देना जरूरी है, जैसे दो पात्र बातें कर रहे हों तो उसने दृश्य को लाँग शॉट में फिल्मा लिया यह सोचकर कि लाँग शाट होने की वजह से दूर से देखने वाले व्यक्ति को उनके संवाद सुनाई नहीं पड़ते। यह फिल्म सिर्फ एक परीक्षण मात्र थी। मगर एक वक्त ऐसा भी था कि सभी फिल्में मूक ही हुआ करती थी। चलती-फिरती फिल्मों की प्रक्रिया तो ईजाद कर ली गयी थी, मगर उस फिल्म की पट्टी में आवाज कैसे भरी जाए इसकी जानकारी उन दिनों में नहीं थी। धीरे- धीरे वैज्ञानिकों ने वह तरकीब भी खोज निकाली जिससे फिल्म में चित्रों के साथ ही साथ आवाज भी भरी जा सके।

सर्वप्रथम प्रयोग

फिल्मों में आवाज भरने के सर्वप्रथम प्रयोग की प्रक्रिया निगेटिव

में ही की गई थी। शूटिंग के दौरान जब भी निगेटिव की पट्टी पर चलते-फिरते चित्र खींचे जाते थे। उसी फिल्मी पट्टी पर साथ ही साथ आवाज भी भर ली जाती थी। इसकी व्यवस्था कैमरे में ही थी, जो रिकार्डिंग करने की मशीन के माध्यम में नियंत्रित की जाती थी।

प्रथम बोलती फिल्म

हमारे देश में सबसे पहले सवाक् यानी बोलती हुई फिल्म बनाने का श्रेय आर्देशिर ईरानी को दिया जाता है। उनकी फिल्म 'आलमआरा' हिन्दी की पहली सवाक् फिल्म थी। इस फिल्म के निर्माता कम्पनी इम्पीरियल कम्पनी के मालिक थे। खुद उन्होने ही आलम आरा की रिकार्डिंग का काम भी किया था।

आवाज भरने की प्रक्रिया

फिल्म के निगेटिव के बाईं तरफ पिक्चर फ्रेम के बाजू में आवाज भरने की व्यवस्था की गई थी। उस निगेटिव की पट्टी पर साउण्ड सेन्सिटिव केमिकल पोतने की व्यवस्था रहती थी। जिस पर इलेक्ट्रो मैगनेटिक प्रोसेस से आवाज भरी जाती थी। यहाँ थोड़ी सी यह जानकारी भी देनी आवश्यक है कि उस समय तक वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि बिजली, चुम्बक, ध्वनि आदि पांचों ऊर्जा एक-दूसरे में परिवर्तित की जा सकती है। इस सिद्धान्त का फायदा उठाकर ध्वनि तरंगों को इलेक्ट्रो मैगनेटिक तरंगों में बदल कर उनको मुद्रित कर लिया जाता था और दशकों को चलते-फिरते चित्रों के साथ- साथ ध्वनि भी सुनाई पड़ने लगी थी। यह कैसी तरंगें होती थीं। यह समझने के लिए पाठकों को ग्रामोफोन के गाने की रिकार्ड वाली डिस्क को तैयार करने की प्रक्रिया समझ लेना आवश्यक है । वैसे ग्रामोफोन रिकार्ड में फिल्मों के बनने से पहले आवाज भरी जाने लगी थी।

थामस अल्वा एडीसन इस प्रक्रिया के आविष्कारक थे। संक्षेप में ग्रामोफोन रिकार्डिंग की प्रक्रिया बहुत अधिक मुश्किल नहीं है। एक माइक के सामने गायक कलाकार और वाद्य बजते रहते हैं, उस माइक के जरिये यह आवाज इलेक्ट्रो मैग्नेटिक वेव्ज में बदल जाती है। एक गोलाकार तवा रहता है जो मोम का बना हुआ होता है। उस तवे पर एक पिन लगी रहती है जो कि आवाज की विभिन्न बारीकियों को ध्वनि तरंगों में बदल देती है। ये ध्वनि तरंगें गोलाकार तो होती हैं

किन्तु टेढ़ी मेढ़ी कहीं गहरी, कहीं ज्यादा गहरी भी होती है। इनको ग्रूव्ज कहते है। रिकार्डिंग के बाद इन मोमसांची तवों से मेटल का एक सांचा तैयार किया जाता है। यह एक तरह से मूल प्रतिलिपि का सांचा होता था। इस प्रतिलिपि की मदद से सैकड़ों-हजारों रिकार्ड बना लिए जाते हैं। आजकल टेकनीक का बहुत विकास हो चुका है। मगर रिकार्ड बनाने की मूल प्रक्रिया वही है। इसी तरह फिल्म की पट्टी पर भी ध्वनि अंकित तरंगों में ही होती है। ग्रामोफोन की गोलाकार रेखाओं की जगह यह तरंगें ऊपर से नीचे सीधी रेखा में मुद्रित की जाती है, मगर रिकार्ड की तरह ही ध्वनि के उतार-चढ़ाव को उसी तरह वक्र और मोटी पतली रेखाओं में बनाती है।

निगेटिव के घटाने के बाद उसका पॉजिटिव तैयार हो जाता है, उसमें से ध्वनि मुद्रण की निगेटिव की तरह ही व्यवस्था रहती थी। इस प्रक्रिया से दर्शकों को आवाज तो सुनाई देने लगी मगर फिल्म के सम्पादकों के लिए मुसीबत बनकर रह गई। फिल्म प्रोजेक्ट का ढांचा या बनावट इस किस्म का है कि उसमें और किसी ध्वनि प्रसारण की व्यवस्था में 19.5 फ्रेम की रहती है। इसलिए अगर यह फिल्म को चित्रों के हिसाब से काटे तो आवाज कट जाती थी। ध्वनि के हिसाब के काटे तो चित्रों की संख्या बढ़ जाती है। चूँकि संवादों का काटना संभव नहीं था, इसलिए चित्रों की संख्या बढ़ानी पड़ती थी। जब सवाक् फिल्में बनना शुरू हुई तो लोगों ने इसको एक अजूबा ही समझा और उनकी धारणा थी कि एक नए फैशन की तरह यह फिल्मांकन का फैशन भी जल्दी ही तिरोहित हो जाएगा। यहाँ तक कि सवाक् फिल्मों के शुरू होने के बाद कई निर्माता एक लम्बे अर्से तक मूक फिल्में बनाते रहे, जिनमें दुनिया के मशहूर हंसोड़ चार्ली चैपिलिन भी थे। मगर दर्शकों ने उनका यह भ्रम तोड़ दिया और सभी निर्माता सवाक् फिल्में बनाने लगे।

1.5 ध्वनि मुद्रण की स्वतंत्र व्यवस्था

फिल्म निगेटिव के साथ ध्वनि मुद्रण (साउण्ड प्रिंटिंग)व्यवस्था की वजह से एक और असुविधा रहती थी।शूटिंग के दौरान जब गानों का फिल्मीकरण होता था तब काफी रिहर्सल के बाद गायक कलाकार कैमरे के सामने आया करता था।

दो असुविधाएं इस प्रक्रिया में होती थी। एक दो यह कि फिल्म

निदेशक को लम्बे-लम्बे शॉट लेने पड़ते थे और रीटेक हो जाने की स्थिति में निगेटिव का काफी नुकसान होता था।

दूसरी असुविधा यह थी कि गायक कलाकार के साथ वाद्य यंत्र बजाने वाले साजिन्दे भी गाने वाले कलाकार के साथ-साथ रहकर वाद्य यंत्र बजाया करते थे। इन साजिन्दों के चित्र फिल्म के निगेटिव पर नहीं उतर आएं, इसलिए उनको कैमरे की फील्ड से बाहर रखा जाता था। ये साजिन्दे और कलाकार फिल्म की जरूरत के मुताबिक कैमरे के मूवमेन्ट के साथ अपनी पोजीशन बदलते रहते थे। यह असुविधाएं तो थी हीं मगर सवाक् फिल्म निर्माण बन्द नहीं किया जा सकता था। कारण साफ था कि इस बीच सवाक् फिल्मों ने दर्शकों के बीच अपनी जड़ें काफी गहराई तक जमा ली थी। सिर्फ एक ही उपाय बाकी रह गया था कि ध्वनि मुद्रण की व्यवस्था अलग से कर ली जाए।

स्वतंत्र ध्वनि मुद्रण व्यवस्था

कई प्रयासों के बाद आखिर कार वैज्ञानिक लोग ध्वनि मुद्रण को पिक्चर निगेटिव से अलग करने में कामयाब हो गये। ध्वनि मुद्रण जिस पट्टी पर किया जाता था उसे साउण्ड निगेटिव नाम दिया गया। साउण्ड निगेटिव के आने से साउण्ड और पिक्चर के अलग-अलग हो जाने से शूटिंग और फिल्म सम्पादन की प्रक्रियाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह रहा था कि फिल्म निर्देशक अपनी मनमर्जी के मुताबिक छोटे-बड़े शॉट ले सकता था। एक और परिवर्तन यह आया कि साउण्ड मशीनों के लिए अलग से जगह की व्यवस्था की जाने लगी । यह साउण्ड मशीनें बड़ी भारी-भरकम होती थीं, जिनको आसानी से इधर-उधर ले जाना संभव ही नहीं होता था।

तीसरा परिवर्तन यह आया कि साउण्ड रिकार्डिस्ट शूटिंग के स्थल से बाहर रिकार्डिंग के कमरे में बैठने लगा। वह अपनी जगह पर बैठा ही शूटिंग को नियंत्रित करता रहता था। उस जमाने में ध्वनि का बहुत महत्व था। इसलिए साउण्ड रिकाडिस्ट शॉट को जब तक ओ के नहीं कर देता था तब तक फिल्म का निर्देशक भी शॉट को ओ. के. नहीं करता था। उन दिनों में फिल्म संवाद लेखक की बहुत इज्जत की जाती थी। शूटिंग के समय वह भी अपनी कुर्सी रिकार्डिस्ट के बगल में डाल कर बैठा रहता था। वह कलाकारों के संवादों के बोलने के

लहजे, उतार-चढ़ाव और शुद्ध उच्चारण पर पूरा ध्यान देता था। कलाकार ने संवाद को बोलने में भूल की, किसी शब्द का उच्चारण सही नहीं किया अथवा उसके आरोही - अवरोही और खास-खास शब्दों पर जोर नहीं दिया आदि समान स्थितियों के ऊपर संवाद लेखक का ही नियंत्रण रहता था। इसलिए संवाद लेखक को कलाकार के संवाद बोलने में किसी तरह कोई गलती आई तो वह शॉट को बन्द कर दिया करता था। ऐसी हालत में वह वहीं अपनी सीट पर बैठा-बैठा अपने सामने रखे हुए माइक से निर्देश देता था अरे संवाद ठीक से बोलो।

उस जमाने में उर्दू जुबान का बहुत ही जोर था। कई उर्दू के अक्षरों के नीचे नुक्ता लगता है इन नुक्ते वाले अक्षरों का उच्चारण हलक से करना पड़ता है। जिन लोगों को उर्दू तहजीब का पता नहीं था या उर्दू बोलने का अभ्यास नहीं होता था, उन बेचारों को इस तरह का उच्चारण करना बहुत ही कठिन हो जाता था। उन्हें बार-बार संवाद लेखक की डांट खानी पड़ती थी। आजकल तो खैर संवाद लेखकों की इतनी बड़ी हैसियत नहीं रही है। न ही कलाकार उनकी बात को गम्भीरता से लेते हैं। इधर संवाद लेखक भी सेट पर जाने के लिए लालायित नहीं रहते है। इसलिए शूटिंग के वक्त इस तरह की हरकतें नहीं हो पाती हैं। संवाद बोलने में कुछ गलत भी हो गया तो कलाकार बोल दिया करते हैं कि डबिंग के समय ठीक करवा लेना।

मेरी एक फिल्म का मजेदार उदाहरण यहाँ पर लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा - फिल्म का नाम था- ''बगदाद का चोर'' इसमें दारा सिंह हीरो और निशी हीरोइन थी। फिल्म निर्देशक के एक सहायक जो संवाद निर्देशक भी थे, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद के स्नातक थे, नाम था उनका इकबाल। संवाद चूँकि मैने लिखे थे और उर्दू जुबान ठीक-ठाक जानता था इसलिए मेरे एक सहायक भी थे। जो उर्दू बहुत बढ़िया जानते थे, उनका नाम था साजन बिहारी। ये सज्जन अलीगढ़ विश्वविद्यालय के स्नातक थे। इन दोनों में एक शब्द के हिज्जे को लेकर विवाद हो गया। एक साहब का मत था कि उस शब्द में एक अक्षर के नीचे नुक्ता होना जरूरी है। दूसरे साहब की राय यह थी कि यह नुक्ता लगना गलत है। अब क्या था, अलीगढ़ और हैदराबाद विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा का सवाल खड़ा कर दिया गया। दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़ गये। तकरीबन दो घंटे तक इस बहस की

वजह से फिल्म की शूटिंग रूकी रही। अंत में जब बात फिल्म निर्देशक की बर्दाश्त की सीमा के बाहर हो गई तो उसने दोनों ही विद्वानों को बुरी तरह लताड़ा कि 'तुम्हारे इस झगड़े की वजह से मेरा नुकसान क्यों हो? पहले शूटिंग का काम पूरा होने दीजिये फिर आप शब्द के बाल की खाल निकालते रहना।' दूसरे दिन यह नतीजा हुआ कि दोनों ही फिल्म निर्देशक व संवाद सहायक श्रीराम बोहरा की लड़ाई से परेशान होकर भाग खडे. हुए। साजन बिहारी तो वापिस लौटा ही नहीं। दूसरे सज्जन यानी इकबाल साहब को मैं समझा-बुझा कर वापिस लाने में किसी तरह सफल रहा।

1.6 पार्श्वगायकी का विकास

ध्वनि को चित्रांकन से अलग करने का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी असर पड़ा संगीत की रिकार्डिंग पर। आपको पहले भी बताया जा चुका है कि ध्वनि युग के प्रारम्भ में कलाकार को गीतों के फिल्मांकन के वक्त शूटिंग के समय ही गाना पड़ता था, मगर जब ध्वनि को अलग कर दिया गया तब से गानों की रिकार्डिंग स्वतंत्र रूप से होने लगी। इसके लिए अलग से साउण्ड स्टूडियो स्थापित किये गये। इसके साथ ही प्लेबैक सिंगिंग का युग आरम्भ हुआ।

आवाज की उधारी

जो फिल्म कलाकार स्वयं गाते थे वे भी इस दौरान अपना गाना रिकार्डिंग करवा कर बाद में अभिनय के वक्त गाने के शब्द को लिप मूवमेन्ट देकर गाने का फिल्मांकन करवाते। जो कलाकार खुद गा नहीं सकते और इस वजह से फिल्मों में उनके गाने नहीं रखे जाते थे अब गाते दिखाई देने लगे जैसे पी. जयराज। इन लोगों को गाने के वक्त आवाज दूसरे लोग देने लगे। इन उधार की आवाज देने वालों को प्लेबैक सिंगर कहा जाने लगा। पार्श्व गायन की रिकार्डिंग के वक्त फिल्म में काम करने वाले कलाकार की उपस्थिति भी अनिवार्य नहीं रही।

पार्श्व गायन की शुरूआत

पूर्व में यह बतलाया जा चुका है कि पार्श्व गायन का पहला चमत्कार बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'बंधन' से शुरू हुआ था, जिसमें फिल्म अभिनेता अशोक कुमार के लिए उनके रिश्ते के एक नजदीकी

भाई अरूण कुमार ने गीत गाया था। इसके कुछ ही समय बाद अरूण कुमार नहीं रहे। गीत रामचन्द दुबे 'प्रदीप' के थे। मगर हाल ही में श्रीमती दुर्गा खोटे ने दूरदर्शन पर किसी एक कार्यक्रम के दौरान यह दावा किया था कि प्रथम पार्श्व गायन की शुरूआत प्रभात की फिल्म 'अमर ज्योति' से हुई थी। इस फिल्म की नायिका स्वयं दुर्गा खोटे ही थीं। प्रभात की इस फिल्म के अन्य कलाकारों नान्द्रेकर शान्ता आप्टे, शान्ती, चन्द्र मोहन आदि थे। उल्लेखनीय है कि शान्ता आप्टे तो खुद ही बहुत अच्छा गाया करती थी। वैसे ये दोनों फिल्में साथ-साथ बनी थीं।

इधर बंगला फिल्म जगत के लोग भी इस बात का दावा करने लगे हैं कि उनके यहाँ पर सबसे पहले पार्श्व गायन की रिकार्डिंग करने की प्रक्रिया शुरू हुई थी। जो भी हो जहाँ भी हाई तकनीक अपनाई गई वहां पर देर-सवेर पार्श्व गायन की तकनीकी प्रक्रिया भी अवश्य ही अपनाई गई । कुछ गायक कलाकार उधार की आवाज भी लेते देखे गये। जैसे सुप्रसिद्ध गायक कलाकार मोती लाल एवं अशोक कुमार जो कभी खुद अभिनय करते वक्त गाते भी थे, ने भी बाद में दूसरों का गला गाने के लिए उधार लिया था। पार्श्व गायक किशोर कुमार भी जब अभिनय करते थे तो कई बार दूसरों का गला उधार लेते थे।

चक्कर नाम का

इस प्रक्रिया की शुरूआत में जब पार्श्व गायन की प्रक्रिया चल पड़ी तब गायक कलाकारों की जगह उन लोगों का नाम लिखा जाता था जिनके लिए वे गाते थे। फिर चाहे वह गाना फिल्म के लिए हो या ग्रामोफोन रिकार्ड में हो । मगर पार्श्व कलाकारों ने अपना संगठन बनाया और अपने हुनर तथा काम का श्रेय लेने के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष में निर्माताओं को उनकी उचित मांग के आगे झुकने को मजबूर होना पड़ा। बस फिर क्या था पार्श्व गायकों का नाम भी टाइटल में दिया जाने लगा। गाने की रिकार्डिंग के संदर्भ में हम तकनीकी पक्ष की जानकारी पहले ही दे चुके हैं।

नई तकनीकी का विकास

इस रिकार्डिंग के साथ गाने के फिल्मांकन के लिए भी नई तकनीक विकसित की गई । भारी-भरकम रिकार्डिंग मशीनों को बार बार लाना, ले जाना जरा मुश्किल काम था। इसलिए एक छोटी सी

बिजली से चलने वाली मशीन विकसित की गई । जिसे प्लेबैक मशीन कहते हैं, इस मशीन में एक तरफ ध्वनि पॉजिटिव व एक चरखी में लगा रहता है और एक छोर उसके दूसरी तरफ की चरखी में फंसा रहता है। ध्वनि पाजिटिव को जब चलाया जाता है तो एक छोटे से साउण्ड सेन्सेटिव हैड से वह ध्वनि खंड गुजरता है और गाना बजने लगता है। यह मशीन बिजली से ही चलाई जा सकती है। वजन में हल्की इतनी होती है कि इसको एक आदमी उठा कर ला अथवा ले जा सकता है। इसमें एक सुविधा और भी है कि साण्उड की पट्टी को आगे पीछे-किया जा सकता है।

गीतों का फिल्मांकन

गाने के फिल्मांकन की प्रक्रिया वैसे साउण्ड ट्रैक ले जाकर के भी पूरी की जा सकती है। सिर्फ इसी काम के लिए साउण्ड ट्रैक को ले जाना काफी खर्चीला था। इसलिए जहाँ तक हो सकता था प्ले बैक मशीन ले जाकर ही गानों का फिल्मांकन किया जाता था। चाहे गाने का फिल्मांकन स्टूडियो में किया जाए अथवा आउटडोर शूटिंग के दौरान जब गाने की शूटिंग होती थी, तब साउण्ड मशीनें बेकार पड़ी रहती थीं। आज भी यह स्थिति है कि जिन स्टूडियो में एक से अधिक स्टेज होते हैं उनमें हर स्टेज के साथ-साथ एक साउण्ड रूम भी अलग से रहता है। हर साउण्ड रूम में उसका अपना रिकार्डिंग करने वाला स्टाफ रहता है जिसमें एक साउण्ड इंजीनियर एक उसका सहायक तथा एक बूम मैन होता है।

बूम काफी लम्बा धातु का एक डण्डा हेाता है उसके एक सिरे पर एक बहुत ही ज्यादा संवेदनशील माइक फिट रहता है। इसका दूसरा सिरा बूम मैन पकड़े रहता है और उसे संवाद बोलने वाले कलाकार को माइक का फेस देता रहता है ।जरूरत के मुताबिक बूम मैन माइक को आग- पीछे भी करता रहता है। मगर उसको कैमरे के क्षेत्र के बाहर ही रहना है ताकि दृश्य को फिल्माते वक्त वह भी खिंच नहीं जाये। कायदा तो यह है कि बूम और माइक की छाया भी फिल्म में नजर नहीं आनी चाहिए, लेकिन कई बार यह छाया, माइक या बूम का कोई न कोई हिस्सा जरूर आ ही जाता है। ऐसा या तो बूम मैन की गलती से होता है अथवा कैमर मैन की गलती से।

1.7 रिकार्डिंग मशीनों का विकास

कभी-कभी कैमरामैन और बूममैन के सामने ऐसा संकट आ खड़ा होता है कि उनके पाले यह नहीं पड़ता कि रिकार्डिंग के लिए माइक कहाँ पर रखा जाए। ऐसी सूरत में दोनों के पास एक ही उपाय शेष रह जाया करता है कि माइक को कहीं भी छिपा कर रख दिया जाए, जैसे फूलों के गमलों में, पर्दों के पीछे या किसी अन्य जगह जहाँ से वह नजर नहीं आए।

आजकल चिप्स तकनीक के विकसित हो जाने की वजह से माइक बहुत ही अधिक संवेदनशील और आकार में छोटा आने लग गया है। इससे भी रिकार्डिंग करने वालों को बहुत फायदा हुआ है।

कार्डलेस तकनीक के विकसित होने की वजह से आजकल बहुत से घरों में नए किस्म के कार्डलेस टेलीफोन देखने को मिल जाते हैं। इसका चोंगा हाथ में उठाकर बिना मुख्य यंत्र से सीधा सम्पर्क रखे वांछित व्यक्ति से बात-चीत की जा सकती है। वैसे ही छोटे-छोटे टेप रिकार्डर भी विकसित हो गये हैं। इन टेप रिकार्डरों को काफी दूर रखकर भी बगैर डोरी वाले माइक के जरिये रिकार्डिंग कर सकते हैं शूटिंग के दौरान भी जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए कि माइक को कहीं भी रखना सम्भव नहीं हो तब मिनिएचर माइकों का उपयोग किया जाता है। कुर्ते, कमीज या कोट में बटन के स्थान पर माइक को छिपाकर या साड़ी की पिन में माइक को छिपाकर भी अब रिकार्डिंग की जा सकती है।

पहले रिकार्डिंग करने वाली मशीनें बहुत ही भारी-भरकम होती थीं तब उनकी शूटिंग के स्थल तक या आउट डोर शूटिंग के समय बाहर ले जाने के लिए विशेष किस्म के ट्रक बनवाने होते थे। इन ट्रकों को साउण्ड ट्रक कहा जाता था। माइक इनके साथ जाता था। कई वर्षों से पोर्टेबल रिकार्डिंग मशीनें भी बाजार में आ गई हैं इनकी वजह से साउण्ड ट्रकों को आउटडोर में ले जाना अब जरूरी नही रहा। इंडोर में भी कई निर्मातागण इन पोर्टेबल साउण्ड मशीनों के जरिये ही रिकार्डिग पूरी करवा लेते हैं।

आजकल मशीनों में भारत में सबसे अधिक प्रचलित नियाग्रा टेप रिकार्डर है वैसे लेखक ने जापानी रिकार्डर के माध्यम से भी ध्वनि

रिकार्डिंग और गीतों का फिल्मांकन होते देखा है। इस तरह की इकाई में लगभग 100 फीट का शॉट सिंक्रोनाइज्ड मिलते देखा है। मगर इससे ऊपर की लम्बाई वाले शॉट में प्रति फुट पिक्चर की एक-एक फ्रेम शॉट होते देखी है। क्योंकि वह मशीन कैमरे की गति के साथ सिंक्रोनाइज नहीं होती है, न ही यह मशीन प्रोफेशनल है। यह दिक्कत नियाग्रा में नहीं आती है। क्योंकि उस मशीन को बनाया ही प्रोफेशनल काम के लिए गया है।इसके अलावा नियाग्रा मशीन में ऐसी व्यवस्था रहती है कि उसको कैमरे के साथ सिंक्रोनाइज किया जा सकता है। जिस यंत्र के माध्यम से रिकार्डर और कैमरे को सिंक्रोनाइज किया जाता है उसको पल्स कहते हैं। पल्स का एक छोर कैमरे में फिट रहता है और दूसरा छोर रिकार्डिंग मशीन में फिट रहता है। यदि किसी की गलती से कभी कैमरे की स्पीड धीमी हो गई अथवा बढ़ गई तो पल्स की वजह से रिकार्डिंग मशीन की गति भी सानुपातिक रूप से कम अथवा अधिक होती चली जाएगी। जैसा कि आपको पहले बतलाया जा चुका है आजकल सारी की सारी रिकार्डिंग मैगनेटिक टेप पर होने लगी है। बड़ी मशीनों पर भी टेप ही लगते हैं और छोटी मशीनों में भी टेप लगाए जाते हैं। हालांकि दोनों की साइज अलग-अलग होती है। इस टेप के आ जाने से कई लाभ हुऐ हैं। कुछ प्रमुख लाभ इस प्रकार से हैं।

साउण्ड निगेटिव की जो बर्बादी बहुत बड़ी मात्रा में होती थी, वह बच गई। टेप को वर्षों तक सुरक्षित भी रखा जा सकता है। जरूरत पड़ने पर रिकार्ड की गयी पहली ध्वनि को मिटाकर उसी टेप पर दूसरी ध्वनि को मुद्रित किया जा सकता है। टेप से ध्वनि को मिटाने के लिए एक चुम्बकीय यंत्र आता है। इस यंत्र को चालू कर (बिजली से) उस पर टेप रखकर गोल-गोल घुमाया जाता है। कुछ ही समय में पुरानी ध्वनि मिट जाती है। हालाँकि इन टेपों को सुरक्षित रखने के लिए तापमान का उचित नियंत्रण तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध करवाना बहुत ही जरूरी है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो हमारे देश की तेज गर्मी में ये टेप आपस में चिपककर खराब हो सकते हैं। इसलिए इन्हें वातानुकूलित वातावरण उपलब्ध नहीं हो तो पर्याप्त ठण्डी जगह पर भी सावधानी- पूर्वक रखना चाहिए।

1.8 ध्वनि मुद्रण की व्यवस्था

ध्वनि मुद्रण में एक खास बात यह भी ध्यान रखने की होती है कि ध्वनि पट्ट पर कलाकारों के मुँह से उच्चारित शब्दों के अलावा

बाह्य अथवा निरर्थक ध्वनि उसके साथ ही मुद्रित नहीं हो जाए। जब भी शॉट लिया जाता है तो निर्देशन विभाग का कोई भी सहायक जोर से चिल्लाकर कहता है - ''खामोश'', ''साइलेंस'' उसके बाद साउण्ड रिकार्डिस्ट अपने केबिन का दरवाजा बन्द करता है और एक लाल बल्ब जला देता है कि फिल्म की शूटिंग का कार्य चालू है, कोई भी यहाँ पर शोर-शराबा नहीं करें। स्टूडियो के दरवाजे भी बन्द हो जाते हैं। शॉट लेना चालू होने के पहले एक लम्बी घण्टी बजायी जाती है। ताकि स्टेज पर मौजूद फिल्म से सम्बन्धित लोग तथा दर्शक वर्ग खामोश हो जाए, ऐसे में यदि इधर-उधर, घूमना-फिरना भी आवश्यक हो तो बहुत ही आहिस्ता पैर रख कर यानी दबे पाँव चलना पड़ता है यदि ऐसा नहीं होता है तो चलने की आवाज भी ध्वनि पट्ट पर अंकित हो जाने का खतरा बना रहता है। अगर इसमें थोड़ा सा भी व्यवधान हो जाता है तो रिकार्डिस्ट जोर से चिल्लाकर 'कट' 'कट' कह कर शॉट (सीन) कटवा देगा। तब मजबूर होकर फिल्म निर्देशक को दुबारा शॉट लेना ही पड़ेगा।

स्टूडियो की स्थिति

आम तौर पर ध्वनि अंकित करने वाले स्टूडियो साउण्ड प्रूफ होते हैं मगर जो स्टूडियो साउण्ड प्रूफ नहीं होते हैं उनमें यदि फिल्म की शूटिंग करनी पड़े तो कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। जैसे बाजू से कोई शोर करती गाड़ी गुजर जाए या ऊपर से कोई हवाई जाहज उड़ान भर ले तो शॉट कट हो जाया करता है।

आर्देशिर ईरानी का मशहूर स्टूडियो इम्पीरियल जिसको आजकल ज्योति स्टूडियो के नाम से पहचाना जाता है। वह ग्राँट रोड, रेलवे स्टेशन के बाजू में बना हुआ है। स्टूडियो के पीछे रेलवे ट्रैक आये हुये हैं। इन पर दिन-रात रेल गाड़ियां अच्छे खासे शोर-शराबे के साथ चला करती हैं इसलिए इस स्टूडियो में शूटिंग का काम करने पर शूटिंग बार-बार रोकनी पड़ती है ताकि आ या जा रही रेलों की कर्कश आवाज ध्वनि पट्ट पर अंकित नहीं हो जाए। दिग्दर्शक पूरी तैयारी के साथ शॉट लेने के लिए तैयार रहता है। जैसे ही रेलगाड़ी गुजर जाती है, चट से शॉट ले लेता है। इसके तुरन्त बाद वह दूसरे शॉट की तैयारी शुरू कर देता है। इस वजह से निर्माता का काफी समय जाया होता रहता है।

इधर काफी लम्बे समय से कुछ छोटी फिल्मों वृत्त चित्र, लघु चित्र तथा विज्ञापन फिल्मों के अलावा वहाँ पर कोई शूटिंग करने नहीं जाता।

साउण्ड रिकार्डिंग थियेटर तो बगैर साउण्ड प्रूफ भवन के चल ही नहीं पाते हैं। मगर एक अपवाद इनमें भी है। वह है नवरंग लेबोरेट्री। इस लेबोरेटरी के आस-पास खड़े कई कारखानों के शोर गुल की आवाज थियेटर में आती रहती है, उससे साउण्ड रिकार्डिंग में कलाकारों की डबिंग के वक्त बहुत ही परेशानी का सामना करना पड़ता है। मैने इस बारे में एक बार साण्उड रिकाडिण्ग मीनू कशक से पूछा भी तो उन्होंने मुझे यह जवाब देकर टाल दिया कि उनके माइक ध्वनि को फिल्टर कर लेते हैं, मुझे उनका यह जवाब माकूल नहीं लगा।

आजकल जब पोर्टेबल कैमरा और पोर्टेबल साउण्ड मशीन आ गई है तो शूटिंग स्टूडियो के बाहर घरों, हवेलियों, होटलों आदि में भी होने लगी है। यहाँ तक हो चला है कि निर्माता सेट लगाने के भारी खर्चे से बचना चाहता है। इसलिए बने बनाये सेटों पर ही शूटिंग करना चाहिए। अब इस तरह की शूटिंग में ध्वनि पट्ट पर मुद्रित आवाजों के साथ कहर की आवाजें भी मिश्रित हुए बिना नहीं रह पाती। कई बार तो बाहर की आवाजें कलाकार को आवाजों पर इस कदर हावी हो जाती है कि साफ-साफ संवाद सुनायी ही नहीं पड़ते। ऐसी सूरत में डबिंग करते समय भारी परेशानी का सामना करना पड़ता है। बन्द कमरों की आवाजों को तो नियंत्रित किया जा सकता है मगर सड़कों पर चलते हुए वाहनों, आकाश में उड़ने वाले वाहनों को नियंत्रित कर पाना करीब-करीब असंभव हो जाता है। आउट डोर शूटिंग में पहले भी बाहर की आवाजों एवं शोर को नियंत्रित नहीं किया जा सकता था और आजकल भी नियंत्रित नहीं किया जा सकता। पहले सिर्फ आउटडोर शूटिंग की डबिंग करनी ही जरूरी समझी जाती थी। मगर आजकल सब जगह चाहे स्टूडियो की शूटिंग हो चाहे आउट-डोर की, डबिंग करना जरूरी हो गया है। यदि असावधानीवश साउण्ड रिकार्डिस्ट या निर्माता की गलती से टेप कहीं खो गया तो उसकी डबिंग कर पाना बहुत मुश्किल हो जाता है। तब ऐसी सूरत में आमतौर पर दुबारा उन दृश्यों की शूटिंग करना ही एक मात्र रास्ता रह जाता है।

1.9 फिल्म सम्पादन की प्रक्रिया

फिल्म निर्देशक और कैमरामैन के पश्चात् फिल्म की तकनीकी दुनिया में सबसे महत्वपूर्ण काम सम्पादक अथवा संकलनकर्ता का होता है। संकलन से तात्पर्य है जो कुछ भी शूटिंग किया गया है उसमें से अच्छे से अच्छे शॉट चुनकर उनको तरतीब से लगाना लेकिन फिल्म एडिटर का काम इस तरह से संकलनकर्ता के शाब्दिक मन्तव्य से पूर्णतया स्पष्ट लक्षित नहीं हो पाता है। एडिटर के लिए संकलनकर्ता नहीं बल्कि सम्पादक ही उचित शब्द है। सम्पादक का मतलब होता है जो पद को सम करे यानी सुधारे फिल्मों में भी सम्पादक का काम फिल्म निर्देशक द्वारा की हुई गलतियों को सुधारना होता है।

कहा जाता है कि फिल्म, संपादक की टेबिल यानी एडीटिंग टेबिल पर ही बनती है। लाखों फीट लम्बा-लम्बी फिल्म की पट्टी पर फिल्माई गई शूटिंग को तेरह हजार फीट में लाना और उसको दर्शक के देखने लायक शक्ल में बदलना यही फिल्म सम्पादक का काम है। सम्पादक के कई सहायक होते हैं जो फिल्म सम्पादित करते वक्त उसके कार्य में मददगार होते हैं। पुराने जमाने में काम सम्पादक को ही करना पड़ता था मगर आजकल सम्पादक के कई कार्यों का विशिष्टीकरण हो गया है, जैसे-स्पेशल इफेक्ट, बैक ग्राउण्ड म्यूजिक, निगेटिव कटिंग आदि-आदि। ये काम आजकल ठेके पर होने लगे हैं। यहाँ तक की फिल्म की निगेटिव भी सम्पादक नहीं काटता। उसका काम वहीं समाप्त हो जाता है, जहाँ उसने पॉजिटिव को अंतिम रूप दे दिया।

सम्पादन प्रक्रिया कई चरणों में धीर-धीरे होकर गुजरती है। इनका क्रम इस तरह रहता है- पहले चरण में जब निगेटिव और साउण्ड डेवलप होकर आता है तब सम्पादक और फिल्म निर्देशक का सहायक मिलकर निगेटिव का शार्टिंग करते हैं। इसके साथ-साथ साउण्ड का कटिंग भी किया जाता है जो शॉट खराब होते हैं या जिनको प्रिन्ट नहीं करवाना हो वह शॉट निकाले जाते हैं। इन शाटों को एन.जी. शॉट (नॉट गुड शॉट) कहा जाता है। इनको भी नहीं फेंका जाता है क्योंकि मौके-बे-मौके जरूरत पड़ने पर वे काम आ जाते हैं।

(2) शूटिंग की क्रिया पूरी होने पर फिल्म निगेटिव और साउण्ड निगेटिव दोनों को पॉजिटिव फिल्म प्रिन्ट करवाने के लिए लेबोरेटरी में भेजा जाता है। यहाँ से दोनों का पॉजिटिव प्रिन्ट होकर सम्पादक की

टेबल पर आता है। इसके बाद सम्पादक का काम शुरू होता है।

(3) इस पाजिटिव प्रिन्ट को रश प्रिन्ट कहा जाता है। अब फिल्म सम्पादक और निर्देशक मिल कर इस रश प्रिन्ट को लेबोरेटरी के मिनी थियेटर में देखते हैं और उन शॉटों को छांटते हैं। जिन्हें सम्पादक काम में लेगा। यह काम कभी-कभी मूवीओला पर भी कर लिया जाता है।

(4) इसके बाद सम्पादक और फिल्म निर्देशक का सहायक मूवीओला पर पॉजिटिव शॉट के साथ साउण्ड मैच कराता है अगर साउण्ड पिक्चर पॉजिटिव से लम्बा या छोटा हुआ तो उसमें संवादों के बीच में खामोश पट्टी को काटकर फिल्म बढ़ायेगा । इस काट-छाँट से साउण्ड पिक्चर पॉजिटिव के साथ पूर्णतया मैच हो जायेगा। इस मैचिंग से एक फ्रेम में कमी-बेशी भी बर्दाश्त नहीं की जा सकती। अगर साउण्ड पिक्चर के साथ मैच नहीं हुआ तो फिर सम्पादक की मुसीबत ही है।

(5) अब सम्पादक मैच किये हुये साउण्ड और मूवीओला पर लगाकर बार-बार देखेगा ओर जहां शॉट को काटना हो वहां ग्लास मार्किंग पेन्सिल से मार्क करेगा। यह मार्क दो तरह के होते हैं- एक गोल होता है इस गोल का मतलब यह होता है कि यहाँ तक शॉट ठीक है। दूसरा मार्क एक क्रास होता है जिसको कटमार्क कहते हैं। यानी शॉट एक फ्रेम से काटा जाएगा। यह कटमार्क भी अस्थाई होता है। सम्पादक अपने निर्णय के समय जरूरत के मुताबिक उसको ऊपर-नीचे भी कर सकता है।

(6) सम्पादक अब एडीटिंग टेबल पर जाएगा। उसका सहायक एडिटिंग टेबल पर साउण्ड तथा पिक्चर को अलग-अलग चर्खियों में लगायेगा या खुद सम्पादक की बाजू में बैठ जायेगा।

(7) इसके पश्चात् सम्पादक सिंक्रोनाइजर के जरिए पॉजिटिव और साउण्ड दोनों की पट्टियाँ साथ-साथ घुमाता हैं जहाँ पर कटिंग मार्क होता है वहाँ पर वह घुमाना रोक कर उसे चुटकी में पकड़ लेगा। उसके बाद दूसरे शॉट की कटिंग मार्क की फ्रेमों को ठीक करवायेगा। यदि मैच बराबर हो जाता है तो ठीक है वर्ना फ्रेमों को ऊपर-नीचे करके दोनों शाटों को मैच करवाकर कैंची से काटेगा। काटने के बाद दोनों शाटों को अपने सहायकों को पकड़ायेगा। वह उन शाटों को

ब्लेड से खुरचकर एमल्सन करेगा और फिर लिक्विड सीमेन्ट लगाकर दोनों को जोड़ेगा। पिछले कई सालों से इस प्रक्रिया को अंजाम देने के लिए एक छोटा या यंत्र आ गया है। जिसको 'सप्लाइसर' कहते हैं। कटे हुए फ्रेम को सप्लाइसर में रखकर उसके बेकार भाग को सप्लाइसर के ब्लेड को दबाकर काट दिया जाता है। फिर दोनों फ्रेमों को जोड़ने के लिए दोनों को एक साथ रखकर टेप लगा देते हैं। टेप लगाने के बाद उसे प्रेस करते हैं जिससे कि वह टेप अच्छी तरह चिपक जाये। सारी पॉजिटिव इसी तरह फाइनल की जाती है।

(8) सारी पॉजिटिव के तैयार हो जाने के बाद उनके लूप बनाये जाते हैं। उनकी मदद से कलाकारों को बुलाकर फिल्म की डबिंग करवाई जाती है।

(9) इसके पश्चात फिर सहायक सम्पादक और सहायक दिग्दर्शक फिल्म पॉजिटिव और साउण्ड पॉजिटिव को मैच करवाते हैं। अगर साउण्ड मैच नहीं होता है तो उसे टेबल पर मैच करवाने की कोशिश की जाती है। यह कोशिश नाकामयाब रहे तो दुबारा डबिंग करवानी पड़ती है।

(10) इसके साथ-साथ निर्माता बैकग्राउण्ड म्यूजिक और स्पेशल साउण्ड इफेक्ट के लिए विशेषज्ञों को ठेका देता है। ये लोग फिल्म के मूड के हिसाब से कौन सा म्यूजिक किस चीज में लगेगा, यह तय करते हैं । इसके लिए भी पहले फिल्म को थियेटर में देखा जाता है, फिर मूवीओला पर लगाकर म्यूजिक मैच करवाया जाता है। इस प्रक्रिया में सम्पादक निर्देशक और निर्माता की राय बहुत वजन रखती है और सभी मिलजुल कर कौन सा म्युजिक कहाँ पर लगेगा, यह तय करते हैं।

इसी दौरान किस किस सीन में कौन से साउण्ड इफेक्ट आने हैं, यह भी मैच करवाये जाते हैं। उदाहरण के लिए दरवाजा खुलता है या बन्द होता है उसकी साउण्ड देना जरूरी है तो वह साउण्ड लगाई जायेगी। इनकी सबकी अलग-अलग पट्टियाँ बनती हैं।

(11) इसके पश्चात सम्पादक मिक्सिंग के लिए साउण्ड थियेटर की तारीखें तय कर सारे साउण्डों को मिक्स करवाकर उनकी एक पट्टी बनवाता है।

(12) जब यह साउण्ड की पट्टी जिसे ट्रक कहते हैं लेबोरेटरी से

डेवलप होकर आ जाती है तब फिल्म पाजिटिव के साथ उसको फिर से मैच करवाया जाता है। इस प्रक्रिया को ट्रैक डालना कहा जाता है।

(13) इसके साथ ही साथ निर्माता को ठीक लगे तो निगेटिव काटने वाले ठेकेदारों को ठेका देकर कटवाता है।

(14) निगेटिव कटवा देने के बाद सम्पादक थ्रेड बांधकर पिक्चर निगेटिव और साउण्ड निगेटिव को लेबोरेटरी को फाइनल प्रिन्ट के लिए पहुँचा देता है।

(15) फाइनल प्रिन्ट तैयार हो जाने के पश्चात् उसकी ट्रायल की जाती है। उसमें निर्माता अपने मित्रों एवं स्टाफ को दिखाकर उनकी राय लेता है और उसके सुझावों के अनुसार फिल्मों की फिर काट-छाँट की जाती है।

(16) इसके बाद फिल्म सेंसर बोर्ड के समक्ष स्वीकृति के लिए जाती है और सेंसर बोर्ड में होने के बाद यह अगर वह कुछ दृश्यों को स्वीकार नहीं करे तो उन्हें काटना पड़ता है। ऐसे में दुबारा शूटिंग की जरूरत पड़ी तो निर्माता शूटिंग करवायेगा और सम्पादक उसे यथा स्थान लगाएगा। इसके पश्चात् एक बार फिर सेंसर अधिकारी उसे देखेगा और सही होने पर प्रदर्शन के लिए प्रमाणपत्र जारी करेगा।

सम्पादक फिल्म में सेंसर के इस प्रमाण पत्र को यथास्थान लगाने के बाद निर्माता वितरकों को फिल्म की डिलेवरी देगा। अगर फिल्म प्रदर्शित हो जाने के बाद दर्शकों की प्रतिक्रिया के हिसाब से कुछ और काटने पड़े तो सम्पादक को यह बतलाकर कटवा दिया जायेगा। तब सम्पादक इन विभिन्न स्थानों पर जहाँ फिल्म प्रदर्शित की जा रही है, जाकर यह कार्य करेगा। इस तरह सम्पादक की कार्य प्रक्रिया पूरी होती है।

1.10 फिल्म सम्पादन कक्ष कैसा हो

फिल्म निर्माता के साथ जब फिल्म लेबोरेटरी का करार होता है तब उसके प्रबंधक निर्माता को कुछ तय किये गये कार्य के लिए सम्पादन कक्ष तथा मूवीओला मुफ्त उपलब्ध करवाते हैं। वे फिल्म का रश प्रिन्ट देखने और थियेटर एक निश्चित अवधि के लिए मुफ्त देते हैं जहाँ पर इस तरह का कोई करार नहीं होता । वहाँ पर यह सम्पादन कक्ष निर्माता को किराया अदा करके लेना पड़ता है। ऐसे वक्त में मूवी

ओला भी किराये से ही जुटाना पड़ता है। रश प्रिन्ट देखने के लिए तब थियेटर भी किराये का पैसा देकर बुक करवाना पड़ता है चाहे अच्छे सम्बन्ध होने पर वह उधार ही क्यों न मिले। अतः किसी वजह से लेबोरेटरी का थियेटर निर्माता को नहीं मिल पाता है। तब इस काम के लिए बने निजी थियेटरों में बुकिंग करवानी पड़ती है। इन थियेटरों का प्रति घंटे रेट तय है। उसी के अनुरूप भुगतान नकद जमा कराना पड़ता है। बम्बई में ऐसे कई थियेटर हैं जिनको चालू भाषा में 'मिनी थियेटर' कहते हैं।

फिल्म आरक्षण

इन थियेटरों की बुकिंग भी ऐन मौके पर नहीं करायी जा सकती है। कारण यह है कि इनके पास काम बहुत ही सीमित मात्रा में रहता है। यदा-कदा ऐन वक्त पर थियेटर की बुकिंग कराने पर वह निकल पाता है।

हर लेबोरेटरी में एक-दो मिनी थियेटर होते हैं, जहाँ ट्रायलें होती रहती हैं।

इसी तरह हर लेबोरेटरी में कई एडीटिंग रूम रहते हैं। इन सम्पादन कक्षों में अलग से मूवीओला भी उपलब्ध है। आम तौर पर हर लेबोरेटरी में कुछ मूवी ओला रहते हैं। इनका प्रयोग करने के लिए निर्माता को पहले से एग्रीमेण्ट के अनुरूप एडवान्स बुकिंग करवानी पड़ती है । इसमें भी कई तरह लफड़ा हो जाने की सम्भावना रहती है। एक ही वक्त में दो निर्माताओं की बुकिंग का खतरा बना रहता है। आप जब चाहें आपको एडीटिंग रूम या मूवीओला मिल ही जायेगा, ऐसी व्यवस्थाएं भी लेबोरेटरियों के पास नहीं है। इसी कारण कई निर्माताओं ने अपने स्वतंत्र उपकरणों से सुसज्जित एडीटिंग रूम बनवाकर रखे हैं। कई निर्माताओं ने लेबोरेटरियों में कमरे किराये पर ले रखे हैं और काम में आने वाले उपकरण लगा रखे हैं यह कमरों की चाबी निर्माताओं के सम्पादकों के पास रहती हैं। ताकि जरूरत के वक्त वे जब चाहें वहाँ आकर काम कर दें। निर्माताओं ने जिसके पास लेबोरेटरियों में अपने कमरे नहीं है उन्होंने अपनी सुविधा के अनुसार बाहर जगह किराये पर लेकर या खरीद कर अपने एडिटिंग रूम बनवा रखे हैं। जब उन निर्माताओं के पास अपनी खुद की फिल्म सम्पादित करवाने का काम नहीं होता है तब ये निर्माता भी इन एडिटिंग रूमों को जरूरतमन्द छोटे

निर्माताओं को किराया तय करके उन्हें उपलब्ध करा देते हैं।

कई अन्य लोगों ने भी अपने खुद के एडीटिंग रूम बना रखे हैं। वे खुद भी उन्हें किराये पर उठाते रहते हैं।

रख-रखाव की व्यवस्था

फिल्म सम्पादन का कमरा एक सामान्य सी लम्बाई-चौड़ाई का कमरा होता है। इस कमरे में पूरी तरह कारपेंटिंग किया होता है जो आम तौर पर मिलेनियम शीटों से करवाया जाता है। फिल्म एडिटिंग के लिए बने इन कमरों के अन्दर जूते नहीं ले जा सकते हैं। जब भी प्रवेश करें जूते बाहर ही निकालने पड़ते हैं ताकि अन्दर मिट्टी का प्रवेश जरा सा भी नहीं हो पाए। कमरे की अच्छी तरह से साफ सफाई रखी जाती है।

फिल्म के सम्पादन के लिए सम्पादक को एक या दो सहायक उपलब्ध करवाये जाते हैं। इनका दायित्व जब सम्पादक फिल्म सम्पादित करे तब उसके निर्देशों के अनुरूप व्यवस्था और सहायता करना होता है। फिल्म सम्पादक निर्माता का मासिक भुगतान प्राप्त करने वाला नौकर नहीं होता उसका एक कांट्रैक्ट (करार) होता है। काम एवं पारिश्रमिक दोनों का, मगर सहायक सम्पादक मासिक भुगतान पर भी रहता है अथवा कान्ट्रैक्ट पर भी । मगर कभी-कभी थोड़े दिनों के लिए दैनिक मजदूरी पर भी सहायक बुलाये जाते हैं।

आम तौर पर सम्पादक अपने ही सहायकों को काम दिलवाने की कोशिश करता है। मगर कभी-कभी निर्माताओं का मन रखने के लिए भी उसकी पसन्द के सहायक लेने पड़ सकते हैं। इन सम्पादकों तथा सहायकों के काम की पारिश्रमिक दरें निश्चित नहीं हैं। निर्माता के साथ बातचीत करके ही यह राशि तय की जाती है। इस राशि की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि फिल्म निर्माताओं की जरूरतें क्या हैं और फिल्म सम्पादकों के पास कितना काम है। उनका जितना काम अधिक होगा सहायक भी उतने ही अधिक हो सकते हैं। दैनिक वर्क चार्ज सहायकों के लिए वेतन कुछ वर्षों पूर्व तक 50 हजार रूपये प्रतिदिन तय था। इसके अलावा सम्पादकों को चाय, नाश्ता, भोजन, आदि भी निर्माता को उपलब्ध कराना होता है। मशहूर सम्पादकगण आने-जाने का टैक्सी किराया भी लेते हैं और जिनके पास अपनी कारें हैं वे पेट्रोल व्यय वसूल कर लेते है। यदि काम के दौरान रात को

अधिक समय तक रुकना पड़े तो सभी सम्पादकों के लिए भी यूनियन ने टैक्सी का भाड़ा देने के लिए नियम बना रखा है। हाँ, कुछ निर्माता देते हैं कुछ नहीं देते हैं। यह सब सम्पादक, दिग्दर्शक, निर्माता व सहायकों के आपसी रिश्तों पर निर्भर करता है।

सम्पादक का पारिश्रमिक

फिल्म सम्पादकों को किस फिल्म के सम्पादन का कितना पारिश्रमिक मिलेगा, इसके लिए युनियन में रेट तय है। मगर इसका पालन बहुत ही कम होता है। कई सम्पादक अपना पारिश्रमिक तय करते वक्त अपने सहायकों का भी पारिश्रमिक शामिल कर लिया करते हैं।ऐसी स्थिति में उन सहायकों को भुगतान स्वयं करता है जो सहायकों का पारिश्रमिक नहीं जोड़ते वे निर्माता से लेते हैं। निर्माता को यह भुगतान जैसे-जैसे काम की प्रगति होती रहती है, वैसे-वैसे किश्तों में करना पड़ता है। यह किश्तें कितनी हों, कब अदा करनी है, आदि बातें आपस के संबंधों पर निर्भर करती हैं।

सम्पादक यूनियन की तय दरों से अधिक भी निर्माता से तय करके प्राप्त कर सकने को स्वतंत्र है। उच्चतम सीमा कोई भी नहीं है। एक फिल्म सम्पादक मि. ग्लॉड ने मुझे बतलाया था कि कमाल अमरोही की एक फिल्म में उन्होंने डेढ़ लाख रूपये बतौर पारिश्रमिक लिया था। मैं नहीं समझता हूँ कि उससे अधिक उन दिनों किसी अन्य ने लिया हो। सबसे बड़ी खराबी इस क्षेत्र में यह है कि फिल्म सम्पादक वक्त तय करके भी समय पर नहीं पहुँचता है। निर्माता और दिग्दर्शक उसकी प्रतीक्षा करते-करते परेशान हो उठते हैं। इसका कारण यह है कि फिल्म सम्पादक एक ही फिल्म से अपना गुजारा नहीं कर सकता। इसीलिए यह स्थिति बनी रहती है कि जो निर्माता उसे पकड़ कर ले जाए, वही अपना काम करवा लेता है। इसी वजह से कई दिग्दर्शक खुद कैंची पकड़कर फिल्म संपादक बन जाते हैं । इनमें राजकपूर, वी शांताराम, गोल्डी यानी विजय आनन्द, मनोज कुमार आदि प्रमुख हैं।

वैसे इन दिग्दर्शकों का काम भी इतना समय-खाऊ होता है कि फिल्म सम्पादक भी इनका काम करने से कन्नी काटते हैं। इसकी एक प्रमुख वजह और भी है कि कभी-कभी दिग्दर्शक और सम्पादक फिल्म की कैसी एडिटिंग करनी है, इसको लेकर भी झगड़ जाते हैं। सम्पादक अपनी बात के लिए अड़ जाता है तो दिग्दर्शक अपनी बात के लिए।

एक बार फिल्म सम्पादन की प्रक्रिया के दौरान ही राजकपूर और उसके फिल्म सम्पादक में झगड़ा हो गया। सम्पादक ने कैंची पटकी और कुर्सी उठाकर अपना रास्ता नापा। अन्त में मजबूर होकर राजकपूर को खुद ही कैंची पकड़नी पड़ी।

1.11 फिल्म सम्पादन के उपकरण

मूवीओला ऐसी मशीन होती है जिसमें लघु पैमाने का प्रोजेक्शन और स्क्रीन एक साथ होते हैं । इस मशीन के नीचे अगले हिस्से में चार पांव होते है। जो चर्खियों से जुड़े रहते हैं। इन चर्खियों के जरिए उन्हें कहीं पर भी लाया अथवा ले जाया जा सकता है। इसके ऊपर के हिस्से के एक तरफ एक स्क्रीन बनी होती है। यह स्क्रीन ग्राउण्ड ग्लास की बनी होती है। उस स्क्रीन पर फिल्म की इमेज दिखाई पड़ती है । यह स्क्रीन बहुत छोटी साइज की होती है। मुख्य रूप से यह दो साइजों में आती है 3 इंच × 4 इंच तथा 10 इंच × 12 इंच की। इनका आकार चौकोर होता है।

मूवीओला के दूसरे छोर पर एक मिनिएचर साउण्ड हैड और पिक्चर हैड होता है। पिक्चर हैड में पॉजिटिव फिल्म दिखाई जाती है और साउण्ड हैड में ध्वनि पट्ट लगाया जाता है। इनके ऊपर की ओर सिंक्रोनाइज में मार्क लगाए जाते हैं ताकि पिक्चर और साउण्ड सिंक्रोनाइज एक साथ चलें। अगर उनमें एक भी फ्रेम का अंतर हो जाता है तो पिक्चर अलग चलेगी और साउण्ड अलग चलेगा। पिक्चर हैड दोनों में ही बिजली के विशेष किस्म के बल्ब लगे रहते हैं। इस मशीन में फार्वर्ड और बैकवर्ड दोनों तरफ की गतिशीलता करने की क्षमता है क्योंकि फिल्म एडीटर को प्रत्येक शॉट को कई-कई बार देखना पड़ता है । इसी तरह फिल्म निर्देशक भी अंतिम निर्णय करने से पहले कई-कई बार देखता है। पहले मूवीओला विदेशों से मंगाने पड़ते थे मगर विगत कुछ वर्षों से हमारे देश में भी ये बनने लगे हैं। पुराने मूवी ओलाओं में खड़े होकर देखना पड़ता था। आजकल ऐसे मूवी ओला आ गये हैं जो टेबल की तरह के आकार के होते हैं, इनके ऊपर कुर्सी पर बैठकर काम किया जा सकता है। इन मूवीओलाओं की स्क्रीन भी सामने रहती है। दोनों ही तरफ के मूवीओलाओं में फिल्म पॉजिटिव और साउण्ड को समेटने के लिए चर्खियाँ लगी होती हैं जिनमें मूवीओला के चलने के साथ ही साथ दोनों पट्टियां लिपटती

जाती हैं।

एडिटिंग टेबल

फिल्म सम्पादक की टेबल भी सामान्य टेबल की तरह ही होती है। हाँ, उसमें कई चीजों के लिए अलग से व्यवस्था होती है। इनमें एक तरफ एक खड्डा बना रहता है। इस खड्डे में सफेद कपड़ा या मखमल की एक टोकरीनुमा चीज बनाकर उसमें फिट कर दी जाती है। इस टोकरी में फिल्म की कटिंगें और चलती हुई फिल्म की पट्टी गिरती रहती है। इनको बाद में काम खत्म हो जाने पर समेट लिया जाता है। इस टेबल के दूसरी तरफ कई सारी चर्खियाँ लगी रहती हैं। इन चर्खियों में फिल्म निगेटिव, फिल्म पॉजिटिव, साउण्ड निगेटिव साउण्ड पॉजिटिव आदि जरूरत के मुताबिक लगाये जाते हैं। इन चर्खियों पर थोड़ी दूरी पर एक साउण्ड हैड लगा रहता है। साथ ही सामने ही थोड़ी ऊंचाई पर एक ध्वनि विस्तार क्षेत्र (एम्प्लीफायर मशीन) लगी रहती है जिससे जब ध्वनि पट्ट साउण्ड हैड से गुजरता है तब ध्वनि प्रसारित होती रहती है।

इसके अलावा एडीटिंग टेबल पर एक सिंक्रोनाइजर रहता है। इसमें भी कई सारी चर्खियां होती हैं। इन चर्खियों की पिक्चर तथा ध्वनि पट्ट सिंक्रोनाइज मार्क से फिट किए जाते हैं। जब एडीटर दोनों को चलाता है एक हैण्डिल से, तब ध्वनि पट्ट और पिक्चर की पट्टी साथ-साथ एक ही गति से चलते हैं। सिंक्रोनाइज के पास टेबल में एक ओर खड्डा बना रहता है। इसके ऊपर एक ग्राउण्ड ग्लास रहता है। यह ग्लास रोशनी को ऊपर की तरफ फेंकता रहता है। इसी रोशनी से पिक्चर रोशन होती है। सम्पादक को तब यह दिखलाई पड़ता है कि किस फिल्म की किस पट्टी में क्या एक्शन कलाकारों ने किया है। सिंक्रोनाइजर के एक चक्कर में एक फुट के फिल्म का मूवमेन्ट होता है। सिंक्रोनाइजर में आटोमेटिक मशीन भी लगी रहती है यह मशीन यह बतलाती है कि कितनी फिल्म चल चुकी है कौन सा शॉट कितना लम्बा है यह भी इससे स्पष्ट मालूम हो जाता है।

कुछ लोग जो खुराफाती आदतों के होते हैं व बेकाम भी, इस सिंक्रोनाइजर मशीन से खिलवाड़ करते रहते हैं। कई बार तो प्रतिस्पर्धा भी हो जाती है कि कौन आदमी एक बार सिंक्रोनाइजिग को कितनी तेजी से कितनी बार घुमा सकता है।ऐसे वक्त में चक्करों की संख्या

गिनते रहते हैं। सिंक्रोनाइजर की चर्खियां कांटेदार एवं गोल होती है, जिनके दांतों में पिक्चर और साउण्ड फिट कर दिये जाते हैं। दो चर्खियों के बीच में दूरी भी फिल्म की चौड़ाई के बराबर होती है। यह सिंक्रोनाइजर दो या चार चर्खियों वाला होता है।

फिल्म के हर एक गेज के लिए अलग-अलग सिंक्रोनाइजर आते हैं। एक सिंक्रोनाइजर ऐसा भी आता है जिसमें 16 एम एम तथा 35 एम एम दोनों को एक साथ ही सिंक्रोनाइज करने की व्यवस्था रहती है। एडीटिंग टेबल के सामने फिल्म सम्पादक के काम करते वक्त बैठने के लिए कुर्सी लगी रहती है। उसके पास में उसके सहायक की कुर्सी लगी होती है। टैक्स के जिस तरफ चर्खियाँ होती हैं उन हिस्सों के पास फिल्म निर्देशक की कुर्सी रहती है। टेबल पर फिल्म सम्पादक का सामान साउण्ड पॉजिटिव आदि के डिब्बे भी रखे रहते हैं।

1.12 फिल्म संपादन के अन्य उपकरण

मूवीओला और एडिटिंग टेबल के अलावा सम्पादक को और भी उपकरण चाहिए । वे इस प्रकार हैं-

(1) **आई ग्लास** - इसे मैग्नीफाइंग भी कहते हैं। यह कांच का एक उन्नतोदर गोलाकार टुकड़ा होता है। जिसको एक फ्रेम में फिट किया जाता है। फ्रेम के नीचे उसे पकड़ने के लिए एक हैंडल लगा रहता है। इस आई ग्लास की मदद से सम्पादक फ्रेम को बड़ा करके देख सकता है। फ्रेम चूँकि बहुत छोटी होती है इसलिए नंगी आँख से कई बार कलाकारों के क्रिया-कलाप पकड़ में नहीं आते। फ्रेमों को ठीक से मैच करवाने के लिए कलाकारों के क्रिया कलापों की सही-सही जानकारी सम्पादक को होना जरूरी है। अगर दो फ्रेमों में कलाकारों के क्रिया-कलापों में थोड़ा सा भी फर्क रह जाएगा तो दर्शकों को देखते वक्त झटका लगेगा। ये आई ग्लास कई किस्मों के आते हैं। जैसे गोल, चौकोर आदि।

(2) **कैंची-** फिल्म काटने के काम में आती है। कैंची के इस कार्य के लिए तेज धार होना जरूरी है । फिल्म काटने के लिए अलग से कैंची नहीं होती। साधारण से ही काम चल जाता है।

(3) **ग्लास मार्किंग पेन्सिल** - यह पेन्सिल एक विशेष किस्म की पेन्सिल होती है जो आम तौर पर कांच पर निशान लगाने के काम

आती है, मगर फिल्म के सम्पादक लोग फिल्म पर निशान लगाने के लिए भी इसका उपयोग करते हैं। यह पेन्सिल कई रंगों में आती है, पर फिल्म वाले लाल रंग या हरे रंग की पेन्सिल ही काम में लेते हैं। फिल्म पर सम्पादक जो निशान लगाता है उन्हें बाद में मिटा दिया जाता है, नहीं मिटाने पर ये निशान पर्दे पर भी साफ नजर आते हैं। दर्शकों ने ऐसे निशान कई बार पर्दे पर देखे होंगे। यह सम्पादक की लापरवाही का नमूना होता है।

(4) **सप्लाइसर या ब्लेड** - ये दोनों ही औजार सम्पादक के सहायक हैं । सप्लाइसर एक छोटा सा यंत्र होता है। इससे फिल्म को साफ भी किया जाता है और फिल्म को जोड़ा भी जाता है। मगर सम्पादकों के पास सप्लाइसर नहीं हो तब यह काम ब्लेड से लिया जाता है। इस पत्ती से एमलशन साइड को खुरचकर साफ किया जाता है और उस पर सीमेन्ट लगाकर दो फ्रेमों को जोड़ा जाता है।

(5) **सीमेन्ट अथवा एडहेसिव टेप**- सीमेन्ट घरों में काम में ली जाने वाली सीमेन्ट नहीं होती बल्कि एक रासायनिक द्रव होता है जिसको ब्लेड से साफ किए हुए छोर पर एक ब्रुश से लगा देते हैं और उस पर जोड़ने वाली फिल्म रखकर दबाव देकर जोड़ देते हैं, मगर जब सप्लाइसर काम में लिया जाता है, तब एडहेसिव टेप काम में लेनी पड़ती है। यह टेप वे फिल्मों के लिए विशेष नहीं बना करती। सामान्य तौर पर मिलने वाली चिपकाने वाली पट्टी से ही काम चल जाता है। यह पट्टी पारदर्शी होती है। टेप अथवा सीमेन्ट की क्वालिटी अच्छी होनी चाहिए अन्यथा फिल्म बार-बार उखड़ेगी।

(6) **हाथ में पहनने के दस्ताने** - यह दस्ताने फिल्म सम्पादक अथवा उसके सहायक पहनते हैं ताकि फिल्म पर किसी तरह की कोई खरोंच नहीं आ जाए। इन दस्तानों को मुलायम होना जरूरी है।

निगेटिव का काम करते वक्त इन दस्तानों को पहनना निहायत ही जरूरी हो जाता है। अगर निगेटिव पर खरोचें आ गई तो प्रिन्ट के वक्त पॉजिटिव में भी वे खरोंचे आएंगी और थियेटर में फिल्म देखते वक्त ऐसा लगेगा जैसे शूटिंग बरसते पानी में की गयी है। श्वेत-श्याम फिल्मों के जमाने में सम्पादक लोग बगैर दस्ताने के भी काम चला लेते थे। मगर रंगीन फिल्मों का काम करते वक्त दस्ताने पहनना अत्यंत जरूरी होता है। इन दस्तानों को बार-बार धुलवाना भी पड़ता है।

आमतौर पर वे सूती होते हैं। कई सम्पादक दोनों हाथों में दस्ताने पहनते हैं और कई एक हाथ में पहनकर काम चला लेते हैं। कई सम्पादक इस मामले में लापरवाही बरत लेते हैं। इसका क्वालिटी पर असर पड़ता है।

1.13 फिल्म सम्पादन के कुछ और तथ्य

फिल्म सम्पादन के लिए संपादक को मूवीओला तथा एडिटिंग टेबल के अलावा और भी उपकरणों की जरूरत पड़ती है। आई ग्लास, कैंची, ग्लास मार्किंग पेन्सिल, सप्लाइसर या ब्लेड, सीमेन्ट अथवा एडहेसिव तथा हाथ में पहनने के दस्ताने के साथ ही निम्न उपकरण भी चाहिए।

मखमल - इसका काम भी निगेटिव पर काम करते वक्त पड़ता है इसे काम में लाने का मकसद यही होता है कि निगेटिव पर खरोंच नहीं पड़े निगेटिव पर काम करते वक्त टेबल पर भी मखमल बिछाया जाता है और सूती कपड़े की टोकरी की जगह भी मखमल की टोकरी लगाते हैं।

व्हाइट तथा ब्लैक ग्रीस - जिन फिल्म की पट्टियों पर एमलशन नहीं लगा होता है वह पट्टियां व्हाइट अथवा ब्लैक पीस कहलाती हैं। कभी-कभी शूटिंग के दौरान निगेटिव का आखरी छोर जब एक्सपोज नहीं करना हो उस पर भी लाइट लगाकर व्हाइट पीस कर दिया जाता हैं निगेटिव की ऐसी भट्टी व्हाइट पीस कहलाती हैं मगर पॉजिटिव और साउण्ड की एमलशन रहित पट्टी काली होने के कारण ब्लैक पीस कहलाती है।

इनका मुख्य काम तब पड़ता है जब दो शाटों के बीच में या दो सीनों के बीच में खाली जगह को भरना होता है ताकि यह मालूम रहे कि यहाँ कुछ आना है। रील की शुरूआत और रील के आखरी छोर पर भी व्हाइट पीस लगाना होता है । एक फिल्म में काफी सारा व्हाइट पीस खर्च हो जाता है । निर्माता को व्हाइट पीस देने में काफी तकलीफ होती है। ऐसी हालत में सम्पादक लोग एक दूसरे से मांगकर काम चलाते हैं। कई सालों से हिन्दुस्तान फोटो फिल्म्स के व्हाइट पीस अलग से बेचने के लिए आते हैं। इसी तरह ब्लैक पीस भी पॉजिटिव और साउण्ड में गैप पूरा करने के काम में आते हैं।

फिल्म के खाली डिब्बे - यह डिब्बे निगेटिव, पॉजिटिव, साउण्ड उनकी कटिंग एन.जी. शॉट म्यूजिक साउण्ड, स्पेशल इफेक्ट साउण्ड आदि को स्टोर करने के लिए काम आते हैं ये डिब्बे वही होते हैं जिनमें फिल्म निगेटिव या पाजिटिव लाता है। जब निर्माता के पास डिब्बे नहीं होते तो उसे दूसरों से मांगने पड़ते हैं अथवा खरीदने पड़ते हैं। हर डिब्बे पर लेबल लगाना पड़ता है तथा डिब्बे में क्या है, उसका विस्तृत वर्णन करना होता है। जैसे सीन है तो कौन सा सीन है, कौन सॉ शाट है आदि-आदि। जब डिब्बे नहीं मिलते हैं तब काले कागज में इस सामग्री को बन्द करके रखा जाता है मगर लेबल उन पर भी लगाना पड़ता है।

छपे हुए लेबल - गोलाकार या चौकोर साइज में निर्माता को यह लेबल छपवाने पड़ते हैं । जिन पर लिखा रहता है पॉजिटिव या निगेटिव, रील नम्बर, सीन नम्बर, कम्पनी का नाम आदि-आदि । इनको डिब्बों पर चिपकाना होता है । अगर लेबल छपे नहीं हैं तो खाली कागज ही चिपका कर उस पर पूरा विवरण लिखना पड़ता है। इसके लिए गोंद भी चाहिए। अगर गोंद नहीं हो तो एडहेसिव टेप से काम चलाया जाता है।

बड़े-बड़े बक्से यदि एक एडिटिंग रूम में कई-कई फिल्मों के सम्पादन का काम चलता हो तो अपना सामान सुरक्षित रखने के लिए बड़े-बड़े बक्सों की जरूरत रहती है। काम समाप्त होने के बाद अपना सारा सामान बक्से में रखकर ताला लगा दिया जाता है। इसकी चाबी मुख्य सहायक सम्पादक के पास रहती है। निगेटिव लेबोरेटरी में पहुँचा दिया जाता है और दूसरे डिब्बे कमरे के किसी एक कोने में जमा कर रख लिए जाते हैं। पूरी सावधानी बरतने के बाद भी कभी-कभी गड़बड़ी हो जाने की सम्भावना तो बनी रहती है।

फिल्म सम्पादन का काम बहुत पेचीदा और समय खाने वाला है। फिल्म निर्देशक अगर 60 शिफ्टों की शूटिंग में अपनी शूटिंग पूरी कर लेता है तो सामान्य गति से फिल्म का संपादन कार्य चलने पर लगभग एक वर्ष लग जाता है।

दिग्दर्शन से सम्पादन में लगभग तिगुना वक्त लग जाया करता है। हालांकि जल्दी काम निपटा देने के कुछ अपवाद भी हैं। जल्दी काम निपटाने के लिए कई सम्पादक का कार्य भी पूरा कर लिया

जाता है। यह तभी संभव है जब लेबोरेटरी डेवलपिंग और प्रिंटिंग हाथों-हाथ निकाल कर दें। श्वेत श्याम फिल्म निर्माण के जमाने में स्टूडियो के मासिक निर्माता होते थे। उन दिनों दिन में की गई शूटिंग रात को डेवलप करवाकर दूसरे दिन सुबह देख लिया जाता था। जो शॉट खराब होते थे वे फिर से उसी समय हाथों-हाथ शूट कर लिये जाते थे। सेटों को उसके बाद ही तोड़ा जाता था। सम्पादक भी साथ ही दिन भर की शूटिंग हाथों-हाथ काम निपटाने की वजह से फिल्मों को रिलीज करने में समय बहुत ही कम लगा करता था।

अपने जमाने के मशहूर फिल्म निर्देशक ए एम खान का एक किस्सा बहुत ही मशहूर है- ईद आने ही वाली थी तभी मोहन स्टूडियो के मालिक मोहन लाल ने उनसे फर्माइश की कि ईद के दिन मोहन स्टूडियो की कोई न कोई फिल्म जरूर प्रदर्शित होनी चाहिए। ईद में सिर्फ पंद्रह दिन बाकी थे। मगर ए. एम. खान ने ईद को फिल्म रिलीज करने की चुनौती मंजूर कर ली। वे जुट गये और कहानी व स्क्रिप्ट तैयार करके शूटिंग भी कर ली। साथ ही साथ सम्पादित करके फिल्म ईद के दिन प्रदर्शित भी कर दी गई। इस फिल्म का नाम संभवतः 'ईद का चांद' ही था, मगर पन्द्रह दिन में फिल्म को तैयार कर सम्पादित कर प्रदर्शित करने के लिए संपादक को दिन-रात जुटकर काम करना पड़ा था। उन्हें कितना श्रम करना पड़ा इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

ऐसा ही एक और उदाहरण बी. के. आदर्श का भी है। उन्होंने एक फिल्म 'वीर हनुमान' बनाई थी। इस फिल्म को उन्होंने कई फिल्म निर्देशकों को काम बांटकर कुल 19 दिनों में पूरा कर दिया और दो माह में उसे प्रदर्शित भी कर दिया था, मगर निश्चय ही इस तरह से काम करने में गुणात्मक काम नहीं हो पाता है। ऐसी हालत में सिर्फ कामचलाऊ काम ही हो पाता है। कभी-कभी एक ही विषय पर बनने वाली दो फिल्मों में भी निर्माताओं में जबरदस्त होड़ मच जाया करती है कि पहले फिल्म कौन प्रदर्शित करे। उस समय भी जल्दी-जल्दी शूटिंग कर फिल्म सम्पादित करवानी पड़ जाया करती है।

1.14 सारांश

फिल्म निर्माण में, टाइटल्स का महत्व सदैव रहा है। द्वितीय महायुद्ध के समय से ही फिल्म की लम्बाई प्रतिबन्धित कर दी गयी है।

18 रील या 20 रील की फिल्म बनती है। तब टाइटिल को लम्बा रक्खा जाता है। उधर लेवी लगने के पश्चात टाइटल पर रोक लगा दी गई। आज यह लम्बाई 200 फिट के आसपास रहती या फिर फिल्म के बाद कुछ टाइटल्स डाल दिये जाते थे। प्रत्येक निर्माता टाइटल को आकर्षक ढंग से पेश करता है। पहले, बड़े-बड़े माइक आते थे, जिनको छुपा कर गमलों में या अन्य कहीं रक्खा जाता था। जिससे, वह कैमरा के फोकस में न आ जाए। अब वायरलेस माइक का प्रादुर्भाव हो चुका है। इसलिए छोटे माइक, चित्र वाले माइक, वायरलेस माइक का प्रयोग होने लगता है । सर्वप्रथम मूक फिल्में बनती थी। उसके बाद आवाज के साथ फिल्मों मे गाना, हीरो या अन्य पात्र, कैमरा के सामने गाते थे समय के साथ आवाज के अपने आयाम विकसित हुए और उसी के साथ पार्श्वगायकी का विकास हुआ। आज गीत गाने वाला कोई और होता और उस पर अभिनय करने वाला कोई और अभिनेता।

1.15 शब्दावली

1. टाइटल्स - शीर्षक
2. फिल्म में आवाज - फ्रेम के बायीं तरफ भरी जाती है।
3. पार्श्वगायकी - अभिनेता अभिनय करता है, गायक द्वारा गाये, गाने पर ।
4. सम्पादक - शूटिंग मैटिरियल को पटकथा के अनुसार शक्ल देना।
5. एडिटिंग रूम - सम्पादन कक्ष
6. मूवीओला - रशप्रिन्ट देखने की मशीन।

1.16 संदर्भ ग्रन्थ

- इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म्स प्रोडक्शन - राजकृष्ण मिश्र
- फिल्म एज फिल्म - वी. पी. परकिन्स
- सिनेमा ऐज एन आर्ट - जे. आर. डिबरिश
- मूवी मुगल्स - फिलिप फ्रेन्च

- फिल्म एण्ड रियलिटी - राय आर्मेश
- माय फेयर लेडी - एलेन जे लरनर

1.17 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) टाइटल्स का अर्थ बताइये।

(2) सम्पादक क्या करता है?

(3) मूवी ओला किसे कहते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) फिल्मों में आवाज कैसे भरते हैं और पिक्चर निगेटिव का आवाज से क्या सम्बन्ध होता है?

(2) पार्श्वगायकी के आने के पूर्व और पश्चात् की स्थिति का विवरण देते हुए वर्तमान के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

(3) टाइटल या शीर्षक की व्याख्या करते हुए, फिल्म में उनके प्रयोग की विधि बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) टाइटल्स को फिल्म में -

(1) शीर्षक कहते हैं।

(2) इसका उपयोग समाचार पत्र में होता है

(3) फिल्मों के बाहर टाइटल्स का प्रयोग होता है।

(4) टाइटल्स का अर्थ है वेश-भूषा।

(ख) फिल्म में आवाज -

(1) मौजूद होती है।

(2) भरी जाती है।

(3) फिल्म मूक होती है आवाज अपने आप रिकार्ड हो जाती है।

(4) दो अलग-अलग चीजें है।

(ग) पार्श्वगायकी फिल्म में-

(1) नहीं होती ।

(2) रिकार्डर से प्ले की जाती है

(3) गायक गीत गाता है, रिकार्ड में होती है और अभिनेता खुद, गायक के गाने पर अभिनय करता है।

(4) पार्श्वगायक अब नहीं होते ।

(घ) सम्पादक फिल्म-

(1) नहीं होता

(2) सम्पादक कैमरामैन का दूसरा नाम है।

(3) सम्पादक वीडियो में होता है।

(4) सम्पादक फिल्म का सम्पादन करता है।

उत्तर -(क) 1 (ख) 2 (ग) 3 (घ) 4

इकाई -2 फिल्म का मायाजाल

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पब्लिक सर्विस ब्राडकास्टिंग

2.3 सृजनशील

2.4 अल्लामा इकबाल

2.5 सेटेलाइट स्त्री

2.6 बड़ा पर्दा, छोटा पर्दा

2.7 मीडिया का मायाजाल

2.8 जय यात्रा

2.9 विज्ञापन

2.10 भूमंडलीकरण, उदारीकरण तथा बाजार और उपभोक्तावाद

2.11 जयशंकर प्रसाद

2.12 डी टी एच

2.13 स्वायत्तता

2.14 एफ.एम. रेडियो

2.15 लोक सेवा प्रसारण

2.16 सारांश

2.17 शब्दावली

2.18 संदर्भ ग्रन्थ

2.19 प्रश्नावली

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात, आप जान सकेंगे -

(1) 21वीं शताब्दी में लोक सेवा प्रसारण की स्थिति ।

(2) भारत की सांस्कृतिक चेतना।

(3) बाजार के दौर का प्रभाव क्या है।

(4) सेटलाइट चैनल प्रसारण में स्त्री को किस रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

(5) मीडिया का मायाजाल क्या है।

(6) विज्ञापन की महिमा क्या है।

2.1 प्रस्तावना

आज प्रश्न है, भारत की साहित्यिक, सांस्कृतिक अस्मिता का और ऐतिहासिक उपलब्धियों का सम्भवतः आज भी दूरदर्शन के प्रसारण में भारतीय संस्कृति का समावेश नहीं है। स्वतंत्र और मौलिक चिंतन की बात ना ही करें तो अच्छा होता, यह किसी की समझ में नहीं आता। स्वायत्तता मांगी नहीं जाती है, अर्जित की जाती है। सरकारी फंड पर चलने वाला चैनल, किस प्रकार स्वायत्तता प्राप्त कर सकेगा यह समझ से बाहर है। सरकारी फंड से चलने वाले बी बी सी का उदाहरण इंग्लैण्ड में है। लेकिन वह सरकारी फंड मूलरूप से गैर-सरकारी ही होता है क्योंकि इंग्लैण्ड की जनता, लाइसेन्स फीस जमा करती है और इसी लाइसेन्स फीस की राशि एकत्रित करके सरकार बी बी सी को दे देता है। उधर निजी क्षेत्र के सेटलाइट चैनल औरत को एक बिक्री बढ़ाने का साधन मानते हैं। विज्ञापनों में तथा कार्यक्रम में स्त्री को सजाकर जिस तरह पेश किया जाता है उससे स्त्री उपभोक्ता बाजार का मात्र मनोरंजन का उत्पाद बनकर रख गई है। समग्र रूप से देखा जाय तो इलेक्ट्रानिक मीडिया में औरत या स्त्री का भूमण्डलीकरण हो चुका है। टेलीविजन में स्त्री मात्र एक उत्पाद बनकर रह गई है।

2.2 21वीं शताब्दी में 'पब्लिक सर्विस ब्राडकास्टिंग'

''जाने किसकी बनायी हुई ये तस्वीर है

ताज सिर पर, मगर पांव में जंजीर है।''

सबसे पहले तो यह तय हो जाय कि ये 21वीं शताब्दी क्या बला है? फिर हम बात करें कि ये जनसेवा संचार माध्यम प्रसारण और उसकी प्रासंगिकता आखिर क्या है तो पहले बात पहले प्रश्न से ही शुरू करें - हम में से कितने लोग जानते हैं कि हम आज विक्रमी संवत् 2061 में रह रहे हैं जब भारत के नये-नये सियासी नौजवानों

ने21वीं शताब्दी का नारा सुना, पढ़ा, गढ़ा और सियासत के मैदान में उछाला था तब शायद वे भी नहीं जानते थे कि We are already in the twenty first century by our 'VIKRAM SAMVAT' दोष उनका भी नहीं था, न नये-नये 'बाबा' लोग का है जो अभी-अभी कान्वेंट से पढ़कर आये हैं। वास्तव में भारत के स्वतंत्रता संग्राम के जितने महानायक थे और स्वतंत्रता उपरांत के जितने भी बड़े राजनेता थे उनमें से एकाध को छोड़कर सभी के सभी विदेशों से पढ़कर आये थे। क्या गांधी जी, क्या नेहरू जी, क्या सुभाष बाबू, क्या अम्बेडकर। सभी की शिक्षा-दीक्षा विदेशों में हुई थी। भारत को उन्होंने पश्चात्य गति से देखा, पढ़ा और जाना था। इसलिए वे 'शेक्सपियर', शेक्सपीयर तो कहते थे पर कालिदास से अपरिचित थे, वे जुलियस सीजर और अलेक्जेण्डर द ग्रेट तो पढ़ते थे पर विक्रमादित्य (सम्राट) को जानते तक नहीं थे।

इसलिए आज के तमाम राजनेता और बुद्धिजीवी, जो भारत को 21वीं शताब्दी में ले जाने की बात करते हैं वे भारत की साहित्यिक और सांस्कृतिक अस्मिता और ऐतिहासिकता से संभवतः परिचित नहीं हैं । यही कारण है कि भारत में दूरदर्शन तो आ गया है लेकिन दूरदर्शन में भारत आज भी नहीं आ पाया है। हमारी मानसिकता आज भी गुलामों सी ही है। स्वतंत्र और मौलिक चिन्तन का घनघोर अभाव है। स्वायत्तता की बात जब होती है तब हम यह भूल जाते हैं कि स्वायत्तता दी नहीं जाती, वह अर्जित की जाती है। सरकारी फंड पर चलने वाला कोई भी संस्थान जनसेवा के कितने और कैसे सपने पूरे कर पाएगा यह प्रश्न विचारणीय है। यहाँ प्रायः मीडियाकर्मी लोग सरकारी फंड से ही चलने वाले बी बी सी की निष्पक्षता का उदाहरण देते हैं पर यह भूल जाते हैं कि बी बी सी अपनी इस निष्पक्षता की कीमत और वहाँ की जागृत जनता अपनी इस स्वतंत्रता की कीमत लाइसेंस फीस देकर चुकाती है और जिंदा रहती है। किसी भी स्वतंत्र जनसंचार माध्यम के लिए उसकी आर्थिक स्वतंत्रता सबसे जरूरी है। आज भी ब्रिटेन के लोग लाइसेंस फीस के रूप में 100 यू एस डालर सालाना चुकाते हैं और इसके लिए तीन गुना फीस तक देने को राजी हैं इसलिए वे सरकारी भोंपू बनने से इस तरह आज तक बचे हैं। एक स्वतंत्र राष्ट्र को अपने जनसंचार माध्यम को जीवित रखने के लिए इतनी कीमत तो कम से कम चुकानी ही चाहिए।

आज जब सारी दुनिया एक बाजार में तब्दील हो गई है तब

जनसेवा संचार माध्यम के सामने सबसे बड़ा संकट यह है कि वे बाजार में सती-सावित्री बनकर बैठे या बाजार के इशारे पर डिस्को- डांस करें। लेकिन किसी भी स्वतंत्र जनसंचार के लिए अगर बाजार में कोई प्रतिस्पर्धा है तो वह केवल दोयम दर्जे के व्यावसायिक चैनल हो सकते हैं, जिनके कोई आदर्श नहीं हैं।

2.3 सृजनशील

दूसरी तरफ एक जनसंचार सेवा को शासन के हर हस्तक्षेप से मुक्त होना ही होगा और राजनैतिक विवादों के दलदल से भी दूर रहना होगा। ऐसे संस्थान के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि वहाँ दूरदृष्टि वाले सृजनशील लोगों का होना सबसे ज्यादा जरूरी है। दुर्भाग्य से, भारत में दूरदर्शन का जन्म रेडियो की तरह सुनियोजित तथा सुविचारित ढंग से नहीं हो पाया है। इसलिए लगभग 40 वर्षों में तदर्थ तरीके से बिना किसी विजन के दूरदर्शन को चलाया गया। क्या लक्ष्य था हमारा? और इससे हुआ क्या? 'सत्यं शिवम सुन्दरम' का लक्ष्य लेकर सूचना, शिक्षा और मनोरंजन की क्रान्ति करने जो संस्थान निकला था वह जनसेवा के नाम पर घटिया मनोरंजन को अपना लक्ष्य समझने लगा। दोयम दर्जे के बेसिरपैर के धारावाहिक दिखाना उद्देश्यपरक कार्यक्रमों और जन सेवा के जनोपयोगी कार्यक्रमों की जगह घसियारे, उद्देश्यविहीन कार्यक्रम सिफारिशियों और रिश्तेदारों तथा दलालों को दिये जाने लगे। भारत के एकमात्र जनसेवा संस्थान को मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में कहें तो यह आत्मविश्लेषण आज बहुत जरूरी है कि ''हम क्या थे? क्या हैं? और कल क्या होंगे ? आओ सब मिलकर सोचें विचारें अभी।''

इधर दुर्भाग्य से विगत 20-22 वर्षों में दूरदर्शन जैसे जनसेवा संचार माध्यम में नए खून का प्रवेश भी निषेध हो गया है। संस्थानों की धमनियाँ कैसे चलेंगी जिनकी रगों में जवान खून नहीं दौड़ पाएगा। 'जिनके छींटे ही नया चित्र बना देते हैं, हम बस उसी खून को जीने की दुआ देते है।'' ''रंगों में दौड़ने-फिरने के हम नहीं कायल, जब आंखों से ही न टपके तो फिर लहू क्या है?'' सरकारी बाबुओं, सूचना सेवा के क्लर्कों की भाषा से मुक्त हो तो जनसेवा संचार चले। मंत्री के जूते के तसमें बांधने की बात को समाचार बनाने वाले लोग मेधा पाटेकर की लड़ाई या मध्य प्रदेश के गांव हरसूद के डूब जाने को कैसे खबर

मानेंगे? इस तरह के संस्थानों को युवा ही नया जीवन दे सकते हैं। जिसका उदाहरण हम बार-बार देते हैं। आज हालत यह है कि सेवा के नाम पर अपनी सेवा करवाने वाले जिन्हें इस महान माध्यम का क, ख, ग भी नहीं मालूम जो विजुअल की भाषा जानना तो दूर, दृश्य समझते नहीं, ध्वनि का ध्यान नहीं, ध्वनि जानते हैं तो केवल एक पैसे की खनखनाहट, काले-हरे पैसे की भाषा जानते हों उनसे उम्मीद व्यर्थ है।

एक सच्चा उदाहरण यह देना चाहूँगा जब मदर टेरेसा का देहान्त हुआ उस दिन दूरदर्शन के राष्ट्रीय प्रसारण में रात को एक फिल्म प्रसारित की जा रही थी। मैं फिल्म विभाग में उस समय उप नियंत्रक नियुक्त था। संयोग से उस दिन जो फिल्म जा रही थी वह संजीव कुमार और जया भादुरी की अप्रतिम फिल्म 'कोशिश' थी। मैने अपने अधिकारी से कहा कि हम बगैर इस फिल्म को हटाए भी मदर को श्रद्धांजलि दे सकते हैं। मैने कहा कि फिल्म की शुरूआत में ही यह वाक्य परदे पर देकर कि यह फिल्म मदर के जीवन पर समर्पित है - दे सकते हैं, तो हमारे महान अधिकारी ने मंत्री महोदय के निर्देश पर उस फिल्म को हटाना ही उचित समझा और इस तरह उन्होंने करोड़ों का नुकसान भी किया और मंत्री की जनसेवा भी की।

आज जब हम आने वाली शताब्दी की ओर देखते हैं तो हमें धृतराष्ट्र की तरह आंखें बन्द करके नहीं, संजय की तरह निष्पक्ष और सत्य का जीवंत प्रसारण करना होगा। आने वाली शताब्दी के समक्ष जनता के लिए हुए संकल्प हैं। किसी महान विचारक ने कहा है कि तीसरा विश्व युद्ध 'पानी' के लिए लड़ा जायेगा। पर्यावरण पहले से ही हमने उजाड़ रखा है - वनों को हमने सीमेंट तथा क्रंक्रीट के जंगलों में बदल दिया है।

जनसेवा संस्थान के लक्ष्यों में एक बड़ा लक्ष्य यह भी है -पानी बचाने के विभिन्न आयाम जैसे वर्षा जल संरक्षण, जल संवर्धन, पर्यावरण रक्षा कृषि क्रान्ति, शैक्षिक क्रान्ति, रोजगार क्रान्ति, बेरोजगारी उन्मूलन, कुटीर क्रान्ति।

असल में जनता को भी अपने जनसंचार संस्थान को जिंदा रखने के लिए अपना हिस्सा अदा करना होगा।

'जमीन तक न अपना हिस्सा अदा करेगी

गुलाब खिलते नहीं हवा की सिफारिशों से'

2.4 अल्लामा इकबाल

अल्लामा इकबाल के लहजे में कहें तो

'न समझोगे तो मिट जाओगे ए हिन्द वालो

तुम्हारी दास्तां तक न रहेगी दास्तानों में'

भारत में वैसे भी आज सच्चे मीडिया कर्मियों का अभाव है। राजनेताओं की सिफारिश पर एंकर लंगर बने लंगूरों और शाखा-मृगों को बगैर पढ़े-लिखे पत्रकारिता को अनाथालय समझ चले आये पनवाड़ियों को मै मीडियाकर्मी नहीं मण्डीकर्मी और दलाल मानता हूँ। यही हाल रहा तो कुछ वर्षों में गणतंत्र दिवस की परेड में लुप्त प्रजाति की तरह जनसेवा संस्थानों की झांकी भी निकाली जाएगी। चूँकि आज हाल यह हुआ पड़ा है कि -

'दुकानदार तो मेले में लुट गये यारों,

तमाशबीन दुकान लगाए बैठे हैं।

बाजार के दौर में सब कुछ अंधेरा, नाकारा, निराशा का ज्वर, खत्म होता राग, और बीमार संस्थान नहीं हो गया है। संसार के सबसे बड़े जनसेवा माध्यम को जरूरत हैं सही हाथों की, सही दृष्टि की, सही कल्पनाशीलता की और सच्चे सेवा भाव की जिससे वह सदियों तक सामयिक बना रहे उसकी प्रासंगिकता कभी खत्म न हों। वरना बाजार के इस भयावह दौर में -

'अब सिर्फ हवाएं करेंगी रोशनी का फैसला

जिस दीए में जान होगी वही रह जाएगा।'

रवि बाबू के शब्दों में कहूँ तो निराशा तो अवश्य है पर आशा की एक धुंधली सी मगर सुनहली किरण दिखाई दे रही है। दूर बहुत दूर जो मानों कभी-कभी कानों में कहती है -

अभी सब कुछ मरा नहीं है -

अभी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है

अभी सब कुछ लुट नहीं गया है-

''अदियो संध्या नामिछे मोन-मन्थरे

सब संगीत गेछे एकमहाइंगिते थामिया
तोबुअ बह विहंगो मन विहंग मोर
एखीनि अन्ध, बन्ध कोरोना पाखां''

2.5 सेटेलाइट स्त्री

दिनों-दिन जनसंचार के साधन बढ़े हैं इसी बढ़त के साथ-साथ सेटेलाइट स्त्री का आगमन न केवल घर, दफ्तर, बाहर बढ़ा है बल्कि यह कहना अधिक समीचीन लगता है कि हमारे जीवन में इस सेटेलाइट औरत का प्रवेश तथा प्रभाव बढ़ा है। कई मायनों में तो यह ऐसा हस्तक्षेप लगता है कि जो हमने खुद करने दिया है तथा खुद उसके प्रभाव में आये हैं।

सेटेलाइट औरत का जन्म भले ही इस शताब्दी का हो पर पिछले दस-पन्द्रह सालों में हमारे देश में इसका दबदबा बढ़ा है। वैसे देखने में लगता है कि हमारे देश में यह औरत हमारी संस्कृति की प्रतिच्छवि होगी परन्तु ऐसा नहीं है। समग्र रूप में देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि सेटेलाइट औरत ग्लोबलाइज है। उसके व्यक्तित्व पर सार्वभौमीकरण का खूब असर है एवं दिन ब दिन इसका असर इस स्त्री पर बढ़ता जा रहा है। सेटेलाइट औरत के व्यक्तित्व-चरित्र का प्रभाव घर-परिवार, परिवेश तथा सभ्यता - संस्कृति पर पड़ रहा है। सेटेलाइट औरत मिडास के 'गोल्डन टच' की भांति अपना प्रभाव दिखा रही है।

आरम्भ में हमें लगता था जैसे यह सेटेलाइट औरत हमारे साथ हमारे घर में रह रही है। पर अब तो हमें लगता है उसने हमें ही अपने घर से बाहर कर दिया है और वही हमारे घर में रह रही है। अब उसे घर से बाहर करना भी कठिन लगता है। वह हमारे जीवन का अहम हिस्सा बन गयी है। पतियों का आकर्षण है पत्नियों की चुनौती। बच्चों के लिए माँ का मनचाहा आधुनिक रूप जिसमें वह सुन्दर आकर्षक मोहिनी, मायाविनी है। वह सुबह उसे तैयार करके स्कूल बस तक छोड़ने, आने, घर के तमाम काम निबटाकर नौकरी करने में तनिक नहीं थकती। उसके कपड़े सफेदी की चमकार जैसे चमकते रहते हैं और तमाम विसंगतियों और विद्रूपताओं में भी इसके मुख से उसकी विज्ञापनी मुस्कान इधर-उधर नहीं होती। घर परिवार में अपेक्षाओं का

जाल फैलाया तथा बढ़ाया है इस सेटेलाइट वुमन ने। घर में यह आ गयी है छा गयी है पर घर की औरत का न किसी ने हाथ बंटाया न कर्मथकित काम विरत उस महिला की पीड़ा से किसी को वाकिफ कराया है। अपेक्षा की सुरसा का मुंह बढ़ता ही जा रहा है। आज की औरत से सब चाहते हैं वह गृहस्थी के तमाम दायित्वों को निभाती भी रहे और रात ग्यारह बजे तक पिसती-पिसती बिस्तर पर सेटेलाइट-वुमन की तरह पहल एवं कूद-फांद भी करे।

यह सेटेलाइट औरत कम्पनी और विज्ञापन जगत ने अपने बाजारीकरण के हिसाब से गढ़ी है जिसके माध्यम से अधिकाधिक विज्ञापन बटोरे जा सकें। धनराशि कमायी जा सके। चैनलों की टेलीविजन रेटिंग प्वॉइन्ट बढ़ाये जा सकें। विज्ञापन जगत की तरह यह धारावाहिकी औरत चालबाजी तिकड़म और किसी भी तरह हवा का रूख अपनी ओर करना जानती है। उसके लिए चाहे उसको मुस्कुराना, कपड़े उतारना या अवैध रिश्ते पालना कुछ भी करना पड़े। 'बाए हुक क्रुक' उसे अपना गन्तव्य सिद्ध करने के लिए सिद्धहस्त (बाकायदा प्रशिक्षित) किया गया है। वह देखना जितना सुखद है हमारे जीवन में उसकी परिणति उतनी ही दुःखद।

2.6 बड़ा पर्दा, छोटा पर्दा

सेटलाइट औरत, बड़े पर्दे से छोटे पर्दे पर आई है। बड़े पर्दे का व्यवसायिक असर भी यह छोटे पर्दे पर वैसे ही लेकर आयी है जैसे कोई लड़की पीहर का असर अपने साथ लेकर ससुराल आती है। प्रोड्यूसर-डायरेक्टर बड़े पर्दे की औरत को छोटे पर्दे पर ला रहे हैं। छोटे पर्दे के बड़े वृत्त से उसे परिचित करा रहे हैं।उसके गुट और रहस्यों से वाकिफ कराकर उसे छोटे पर्दे की मल्लिका बना रहे हैं। यहाँ का आकाश इस सेटेलाइट औरत के लिए साल की एक-दो और फिल्मों में सिमटा छोटा आकाश नहीं है।यहाँ वह दिन में एक-दो सीन नहीं आठ, दस सीन सुलटाकर कार्यजन्य सन्तोष पा रही है। घर परिवारों में ज्यादा और जल्दी पैठ (घुसपैठ) बना रही है।लगातार सालों-साल अपनी उपस्थिति मौजूद रखती है। एक जगह की असफलता दूसरी जगह सफलता के रूप में भुना रही है। विगत कल के नाम को आज इन्कैश कर रही है। अपना रूप गढ़ने में सेटेलाइट औरत और उसके तथाकथित हुक्मरान, निर्माता-निर्देशक भी कितने स्वतंत्र हैं? इसके बारे

में किसी ने सोचा है? इस समग्र तन्त्रजाल (नेटवर्क) के पीछे कौन सा नेटवर्क काम कर रहा है इसे जानने तथा समझने की जरूरत है।

छोटे पर्दे की यह औरत व्यापक व्यक्तित्व वाली है। कॉम्पेयरिंग करे या धारावाहिक में किरदार निभाये, ग्लैमर का दामन थामे रहती है। यह तो इस सैटेलाइट औरत का प्राण है। वह हंसे, रोये, चीखे, चिल्लाये इसका हर काम मेकअप से प्रपूरित रहता है। वह अपनी भावनाएं ही नहीं बल्कि उत्पादों को भी घर-घर पहुँचा रही है। सैटेलाइटी ग्लैमर गर्ल का ही प्रभाव है जो आपको अन्त्येष्टि और श्रद्धास्थली कार्यों में लाइट मेकअप में लोग मिलने लगे हैं। सीधी-सादी औरतों को झोलटंगी, बहिनजी या बुद्धिहीन समझ लिया जाता है।

सेटेलाइट औरत धारावाहिकी रंग से छा गयी है समाज पर। वह नायिका नहीं वरन् खलनायिका है। कुसुम, घराना, कसौटी, जिन्दगी की और कुमकुम की रेणुका अपने मूल किरदार तसनीम शेख पर हावी है। स्मृति ईरानी हम सबकी तुलसी है।

आज सेटेलाइट वुमन छोटे पर्दे से मन-मस्तिष्क पर छाकर जीवन में भी नेतृत्व करने के सपने हकीकत में ढालने लगी है। चाहे चुनाव प्रचार हो या चुनाव में बिसात बिछाने की बात, वह अपनी इस छवि को उगाहने में राजनैतिक दलों का आमंत्रण मिलते ही सक्रिय हो जाती है। वह घर-घर पहुंचने वाले तंत्र से बनी छवि को प्रचार तंत्र मानकर सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी की भाँति साबित होती है। वह प्रचार करती है तथा पार्टी उसका लाभ उठाती है। सेटेलाइट वुमन की वायवीय दुनिया में भ्रमण करने के बाद कोई उसकी वास्तविकताओं तथा वन्चनाओं से सरोकार नहीं रखना चाहता । उसे रम्भा, मेनका, उर्वशी की भाँति हर कीमत पर मन्तव्य साधनों के लिए उपयुक्त माना-समझा जाता है। नारी अस्मिता, प्रतिष्ठा, गरिमा को बस किताबी मानकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली जाती है।

हाँ, इसका सकारात्मक पक्ष भी उसके जीवन की अपनी शैली है। घर गृहस्थी में अपना स्थान, स्पेस बनाये रखती है यह रोल मॉडल हर कोई उसके शोषण की हिमाकत करना तो दूर अपितु सोच भी नहीं सकता।

सेटेलाइट वुमन आर्गेनाइज और मैनेज करने में दक्ष है। यही

कारण है कि वह पुरूषों के लिए चुनौती तथा अनुकरणीय बन गयी है । उसके महत्व को सभी ने मुक्त मन से स्वीकारना शुरू किया है। उसकी दबी हुई पीड़ा समाज में बहस का मुद्दा बन रही है। समाज उसके उपयुक्त समाधान की ओर उन्मुख हो रहा है।

सेटेलाइट वुमन ने अपने तन-मन-धन की ताकत को पहचान लिया है। उसके साथ ही मध्यम वर्ग की औरतों ने जीने के हर तरीके और शैली सीख लिये हैं। उस काम को अपने तरीके से निबटाना सीख लिया है। वह होम मैनेजर से ग्लोबल मैनेजर की शख्सियत स्वीकार करवा चुकी है। अब तक उसके सब श्रम कार्य का श्रेय कोई और ही लपक-गटक रहा था। परन्तु अब उसे अपना हक एवं मेहनताना मिल रहा है। वह छोटी-छोटी चीजों की मोहताज नहीं। गाँव की औरत अमेरिकन औरत की तरह सोच-विचार कर रह सकती है। दूसरी दुनिया का अचरज अब घर से दिमाग में समाकर सहजता की हद में आ गया है। दुनिया उनके लिए अनजानी नहीं रही। यह ताकत ज्ञान की ताकत है जो औरत की बहुत बड़ी ताकत और शक्ति है।

2.7 मीडिया का मायाजगत

निर्गुण संतों ने संसार की बात करते हुए उसे अल्लाह का नूर कहा है। संसार में जो कुछ भी जहाँ भी है, अल्लाह का नूर ही है। आधुनिक युग में विज्ञान अल्लाह का स्थानापन्न बन गया है और आज जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है, बोध और अनुभव के दायरे में आ रहा है, सब कुछ विज्ञान की देन उसी का नूर है। जिसे आज मीडिया के रूप में जाना समझा जा रहा है, वह उसी सब का एक हिस्सा है, विज्ञान की ही माया है। विज्ञान की इस मायापुरी ने पुराकथाओं के मायावी दैत्यों को, बड़े-बड़े ऐन्द्रजालिकों को न जाने कहाँ खदेड़ दिया है, जिनके बारे में हम बचपन में पढ़ा करते थे, उनके कारनामों की चर्चा सुन दाँतों तले उंगली दबाया करते थे। यह सब जो बचपन में पढ़ा सुना था, आज आंखों के सामने एक जीवित सच्चाई के रूप में मौजूद है। यह मायापुरी अपनी झलक तो बहुत पहले से दिखा रही थी, सदी के अंतिम कुछ दशकों में अपने पूरे करामाती उत्कर्ष के साथ उद्घाटित हुई है। जब आज यह स्थिति है तो आने वाली सदी में, जिसकी दहलीज पर हम सब आ गये हैं,क्या कुछ होगा, कहा नहीं जा सकता, उसका अनुमान करते ही दिमाग चकरा उठता है, बुद्धि काम नहीं

करती। बहरहाल पूरी दुनिया उसकी गिरफ्त में है। जिसे मीडिया कहते हैं, उसकी बाहें इतनी विशाल हैं, उसकी छायाएं इतनी सघन और विशद् है, उसका रूप इतना बहुआयामी है कि उसकी लपेट में सबकुछ आ गया है। आज के आदमी की पूरी जिन्दगी उसकी जद में है।वह चाह कर भी उससे बच नहीं सकता। उसे उसकी जद में उसकी बाहों और छायाओं के बीच ही जीना है। वह उत्साह, जिज्ञासा, उमंग और संभावनाओं के साथ जिए अथवा विस्मय, विमूढ़, स्तब्ध, आशंकाओं और अटकलों से घिर कर जिए, उसे जीना और मरना इसी माहौल में है। वह जाए तो जाए कहाँ ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी होते तो इसे मनुष्य की जययात्रा कहते । सचमुच यह मनुष्य की जययात्रा ही है। उसके बुद्धि वैभव, उसकी कर्मठता सतत् आगे बढ़ते रहने की उसकी अपराजेय मनोवृत्ति की कहानी। यह बात दीगर है कि बुद्धि के इस घटाटोप में मनुष्य का विवेक कहीं गुम-सा हो गया लगता है। किन्तु उसे ढूंढने, खोजने, पाने और बहाल करने की फुरसत किसे है। क्या-क्या तो नहीं हमारे देखते देखते सामने आ गया है और क्या-क्या आता जा रहा है। सेटेलाइट कम्प्यूटर, इंटरनेट न जाने क्या-क्या? दुनिया सिमटकर कितनी छोटी हो गई, मुट्ठी में पकड़ने लायक। सूचनाओं का विस्फोट, एक छोर से दूसरे छोर तक पलक झपकते ही उनकी पहुँच। एक आंधी है, एक झंझावात है जो तमाम कुछ को अब तक के सहेजे तमाम कुछ को पता नहीं कहाँ उड़ाए ले जा रहा है और तमाम कुछ और अजूबे को बड़े तामझाम के साथ सामने ला रहा है। दावा यह है कि यह सब कुछ आदमी के लिए, आज के आदमी के लिए, उसके हित में लाया जा रहा है। नई सदी के नए आदमी की नई सभ्यता और नई संस्कृति की रचना हो रही है। कुछ है जो छूटे और छूटते हुए को सहेजने, पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं। जो कुछ जा रहा है उसे जाते देखकर सिर धुन रहे हैं, बचाओ- बचाओ की गुहार लगा रहे हैं और कुछ हैं जो जाते हुए को देखकर तो खुश हैं ही, जाते हुए पर सिर धुनने वालों को देखकर और भी खुश हो तालियाँ बजा रहे हैं। जो कुछ आ रहा है उसमें अपनी एषणाओं को प्रतिबिम्बित देख कर अपने सपनों की झलक पाकर झूम रहे हैं।

2.8 जययात्रा

इन कुछ लोगों के अलावा भी आदमी की एक विराट दुनिया है जो आते-जाते हुए को अपनी नियति समझ, बस आखें फाड़े सब कुछ निहार रही है। यह जो कुछ आ रहा है, उसे मालूम है कि यह सब उसे दरकिनार करके आ रहा है, लाया जा रहा है। जहाँ महज जिंदा रहने का संघर्ष हो, जहाँ जिंदा रह पाना ही सबसे बड़ी समस्या हो, वहां इस सुख और इस सुख की अतिशयताओं में भाग लेने का, उस पर सोचने-विचारने का सवाल ही कैसा?

मैं हैरान और परेशान हूँ क्योंकि आज का माहौल आदमी से जितनी तेज दौड़ की अपेक्षा रखता है उतना तेज दौड़ पाने की कूवत मुझमें नहीं हैं। मैं तो बस गोस्वामी जी के शब्दों में - देखी तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए, सब कुछ को देख रहा हूँ और जितना कुछ समझ पा रहा हूँ, समझ कर मन ही मन में रह रहा हूँ।

क्या कहूँ? मीडिया की हजार बाहें हैं। सबसे ज्यादा सुलभ है अखबार और टीवी। सामग्री दोनों में लगभग एक जैसी है, अखबारों में पाठ्य और टीवी में दृश्य-श्रव्य। जो कुछ देखने और सुनने के लिए टी वी खोलता हूँ तो उपभोक्ता - सामग्री के झंझावाती हमले को झेलने के बाद ही वह मिल पाता है। मिला नहीं कि पुनः एक झंझावाती हमला। अखबारों का हाल यही है, पन्ने -दर-पन्ने विज्ञापनों का अंबार। विज्ञापन भी नये और अजूबे, किस्म किस्म के विज्ञापन, किस्म किस्म की चीजों के विज्ञापन। सब के सब समाज के उन्हीं वर्गों को ध्यान में रखकर सोचे और बनाए गये जिनके पास या तो सुख की इस सामग्री को बटोरने के प्रभूत साधन हैं, या जो इन साधनों की जुगाड़ में रात दिन एक किए हुए है और उन्हें पाने के लिए अपना जमीर, अपने मन और घर की सारी सुख-शान्ति कुछ भी दांव पर लगाने को तत्पर हैं। जो उन्हें पाने के लिए बेचैन हैं, कुढ़ और घुट रहे हैं, गलाकाटू होड़ में हैं। उपेक्षित और अप्रासंगिक, साधारण लोगों की जिस विराट दुनिया की बात हमने ऊपर की है, वह विज्ञापनों के इस अंबार में कहीं नहीं है, परन्तु अपने ढंग से इनका शिकार जरूर है। ये विज्ञापन इन लोगों की दुनिया को किस रूप में प्रभावित कर रहे हैं, उनके मानस पर कौन से निशान छोड़ रहे हैं, और उनका क्या परिणाम होगा, विज्ञापनदाताओं को और व्यवस्था को अभी इसकी कोई परवाह नहीं

है। वे मस्त हैं, मगन हैं अपने धंधे में और चकाचौंध से भरे जीवन में।

मैं विज्ञापनों की बात कर रहा हूँ । अजीबो-गरीब चीजों के अजीबो-गरीब विज्ञापन। मिमिक्री करते, सकर्स के जोकरों की तरह हाथ-पांव नचाते, मुँह बनाते, करतब करते जवान-स्त्री पुरूष, बढ़े-बूढ़ों और बच्चे तक भी। सबकी शिरकत है उनमें। बस किसी तरह रिझाना और लुभाना है ग्राहकों को। उम्दा से उम्दा कारों के विज्ञापन, बढ़िया शराबों के विज्ञापन, पहनने-ओढ़ने के कपड़ों के विज्ञापन- जीन्स, साड़ियां, ब्रा, पैंटी आदि-आदि के जवान और खूबसूरत दिखने के लिए किशोर और युवा लड़कों-लड़कियों को रिझाने वाले तरह-तरह के सौन्दर्य प्रसाधनों के विज्ञापन, मध्यवर्ग की गृहणियों की रात भर की नींद हराम कर देने वाले रसोई के नाना उपकरणों के विज्ञापन, जवानों - बूढ़ों और बच्चों के स्वास्थ्य को बरकरार रखने वाले विज्ञापन, आइसक्रीम, केडबरी, पेप्सी, कोला, हार्लिक्स, कंप्लान, पिजा, मैगी, टॉफी, बिस्किट कुछ भी तो नहीं छूटा है इन विज्ञापनों में। आधुनिक जीवन शैली और ऐशो-आराम की हर चीज शामिल है इन विज्ञापनों में। स्वस्थ सुंदर लड़के - लड़कियां, बच्चे सब का भरपूर इस्तेमाल है इन विज्ञापनों में । इन विज्ञापनों को देखकर लगता है सचमुच हिन्दुस्तान नई सदी में पहुँच गया है। कदाचित् ही कोई विज्ञापन हो जिसमें नारी और नारी देह का व्यावसायिक इस्तेमाल न होता हो। मॉडल - वे युवक हों या युवतियाँ जो किसी भी सीमा तक अपने व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए तैयार हैं। होगी नारी-हमारी परम्परा में आदि शक्ति का रूप इन विज्ञापनों में वह महज माडल है, एक उत्तेजक माल की तरह प्रायोजित होने वाली। मजा यह कि पुरूषों के उपभोग की चीजों में भी उसकी शिरकत है। बाजार की यह संस्कृति और भी किन-किन रूपों में सामने आएगी, कहा नहीं जा सकता। धन्य है यह माया जगत।

मैं सचमुच चमत्कृत हूँ इस माया जगत को देखकर और अनुभव कर। कुछ मित्र हैं मसलन सुधीश पचौरी, जगदीश्वर चतुर्वेदी, जिन्होंने इस माया जगत की छानबीन की है। मैं कस्बाई मानसिकता का आदमी हूँ। प्रायः आंखें बंद कर लेता हूँ कुछेक विज्ञापन जरूर ऐसे हैं, पता नहीं आंखों में गड़ गए और जब उनके बारे में सोचा तो परेशान हो उठा। ये विज्ञापन बार-बार मेरे जेहन में दस्तक देते हैं। मात्र दो विज्ञापनों की चर्चा करूँगा।

2.9 विज्ञापन

गोदरेज स्टोरवेल - गोदरेज की आलमारी का एक विज्ञापन है। मंगल गीतों के साथ नववधू का घर में प्रवेश । पारिवारिक हर्षोल्लास का चित्र। गीत - संगीत चलता रहता है जिसमें आलमारी का गुणगान है। घर के सदस्यों का सामूहिक फोटोग्राफ। नववधू अगली पंक्ति के एक ओर दूसरी ओर घर के बड़े-बुजुर्ग, पीछे अन्य सदस्य और सबके बीच में स्टोरवेल पूरी महिमा के साथ। किसी घर परिवार के सुख का केन्द्र । जीवित व्यक्ति हाशिए पर और लोहे की जड़ और निस्पंद चीज बीच में। संदेश घर की सुख शांति हैप्पी होम का एक मात्र राज गोदरेज स्टोरवेल। वे माता-पिता जिन्हें अपनी बेटियां ब्याहनी है। सुखी घर के इस राज को इस संदेश को नोट कर लें। जिन बेटियों के विवाह होने हैं वे भी नोट कर लें कि पति के घर इस आलमारी को लेकर ही जाएं, अन्यथा कुढ़ें और आशंकाओं में जिएं। इस विज्ञापन पर सोच-सोचकर मैं अब भी रोमांचित हो उठता हूँ। यद्यपि कोई भी बेटी ब्याहने के लिए नहीं है।

एक और रोमांचित कर देने वाला विज्ञापन मुझे बच्चों की टॉनिक कंप्लान का लगा। वह मैगी, पिज्जा, आइसक्रीम का भी हो सकता है। बच्चों के सही पोषण के लिए कंप्लान। एक स्वस्थ सुंदर बच्चा गर्व से अपने को कंप्लान ब्वाय कहता है, उतनी ही स्वस्थ सुंदर बच्ची अपने को कंप्लान गर्ल कहती है। टीवी विज्ञापनों में बच्चे होते ही हैं स्वस्थ, सुंदर गोल-मटोल। स्मार्ट और अपने माता पिता (टीवी वालों)के लाडले। फर्माइश की नहीं कि चीज हाजिर । भरपूर मात्रा में खाते-पीते और इस्तेमाल की हर चीज। भाग्यशाली बच्चे, भाग्यशाली उनके माँ-बाप ।

सरकार का दावा है कि टेलीविजन अब दूर-दराज के गांवों तक पहुंच गया है। गांवों के कम्यूनिटी सेंटर में सैकड़ों की तादाद में ग्रामीण बच्चे, युवा, बूढ़े सब टीवी देखते हैं। टीवी झुग्गी-झोपड़ियों में भी पहुँचा हुआ है। वहाँ भी उसे देखने वालों की संख्या है। मैने स्वयं इन कम्यूनिटी सेंटरों में जाकर देखा। वहाँ ग्रामीण-आदिवासी युवाओं,बच्चों-बच्चियों के शरीर में अधोवस्त्र है तो उत्तरीय नहीं, उत्तरीय है तो अधोवस्त्र नहीं, वे भी टीवी देखते हैं। देखते हैं अपने समवयस्कों को मैगी, पिज्जा, कंप्लान, पेप्सी खाते-पीते और एक ही फर्माइश में ये

सारी चीजें पाते। मैने देखा है जिनके पास पहनने के सही कपड़े नहीं हैं वे अपने समवयस्कों को नई-नई डिजाइन के कपड़े पहने हुए देखते हैं। मैने उनकी आंखों की चमक देखी है, उस चमक में घुलती अवसाद की छायाएं देखी है। मैने उनके माता-पिता की आंखों और मन को पढ़ने की चेष्टा भी की है। मैने उनसे बातें करने की कोशिश भी की है।

सोचता हूँ कि जिस हिन्दुस्तान में नई सदी की दहलीज पर वह दुनिया भी पैर रखने जा रही है, जहाँ आदमी गरीबी की रेखा के नीचे जीने को विवश है। चमक-दमक वाले हिन्दुस्तान के भीतर यह जो दूसरा हिन्दुस्तान है वहाँ स्वास्थ्य शिक्षा, पीने के पानी तक से आदमी वंचित है, जिसके पास स्वाद और स्वास्थ्य के उत्तमोत्तम पदार्थों की बात क्या, दो जून खाने और बच्चों को खिला पाने लायक अन्न नहीं है। जहाँ आए दिन के अभाव के चलते माँ-बाप को अपने बेटे-बेटी बेचने को विवश होना पड़ता है (कालाहांडी उड़ीसा की प्रसिद्ध घटना) वहाँ बच्चों की नियति है कुपोषण, अभाव, अभिशाप। वहाँ सरकार का यह दावा कि उसने गांव-गांव, गली-गली टीवी पहुंचा दिया है। लोगों के मनोरंजनार्थ एक निहायत अश्लील और भद्दी मानसिकता, निहायत अश्लील और भद्दे आचरण के सिवा और क्या है? यह इस विराट जनमानस को दी जाने वाली एक भद्दी गाली है। उस बाल मन और उस युवा मन को व्यवस्था के अलंबरदार पढ़ें जो इस माहौल में बन और विकसित हो रहा है। झुग्गी-झोपड़ियों के इन बच्चों युवाओं, युवतियों से, आदिवासी और ग्रामीण अंचलों में उन्हीं की तरह के बच्चों और युवाओं से मिलिए बातें कीजिए उनके मन को टटोलिए और तब अगली सदी में पैर रखती आर्थिक उदारीकरण में देश का उज्ज्वल भविष्य देखती उपभोक्ता संस्कृति की चकाचौंध में अंधी हो चुकी व्यवस्था के प्रभुओं की जेहनियत पर तरस खाइए, उसे लानतें दीजिए और उस पर थूकिए। अश्लीलता पर सारी बहस एक तरफ, क्या इससे भी अधिक अश्लील आचरण और कुछ हो सकता है। जो व्यवस्था के प्रभु दंभ के साथ कर रहे हैं धूमिल ने कभी लिखा था - जिसके पास थाली है हर भूखा आदमी उसके लिए सबसे बड़ी गाली है।

धूमिल की ही बात को थोड़ा मोड़ कर इस तरह कहना चाहता हूँ - जिसके पास थाली है, वह भूखे आदमी के लिए सबसे बड़ी गाली है।

हम व्यवस्था को धिक्कार ही सकते हैं। हमारे हाथ में क्या है, यह कहकर अपना पिंड छुड़ा सकते हैं। इसके अलावा हम कर भी क्या सकते हैं? कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में हम भी तो शिकार हैं इस उपभोक्तावादी जेहनियत के। हम भी उसी के मारे हैं। समझौते के अलावा, हमारे पास रास्ता क्या है। कितने बेचारे कितने अशक्त है, मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी।

2.10 भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाजार और उपभोक्तावाद

नई सदी, आर्थिक उदारीकरण के चरम का प्रतिरूप नई सदी, बाजारवाद, भौतिक सुखभोगवाद के नए से नए सम्मोहन। चीजें चकाचौंध करती बाजार में बिखरी पड़ी हैं, मीडिया ने स्काई शापों का सिलसिला चला रखा है। घर बैठे नायाब से नायाब सामान पाइए। हर तरह की इंसानी जरूरत को पूरा करने वाली चीजों का अंबार नए-नए ब्रांड सबको खरीदने की छूट है जिनके पास पैसा है, होड़ करके खरीद रहे हैं, जिनके पास पैसा नहीं है किश्तों में ले रहे हैं। मीडिया उन्हें लुभा रहा है सब इस अंधी दौड़ में शामिल हैं। मीडिया की माया ही कहिए जिन चीजों की कभी जरूरत नहीं थी, वे जरूरत बनकर सामने आ रही है। जरूरतें, इच्छाएं, नई-नई जरूरतें, नई-नई इच्छाएं, कभी न समाप्त होने वाली जरूरतें और कभी न पूरी होने वाली इच्छाएं। सब जानते हैं कि वे एक कभी न समाप्त होने वाली यात्रा में शामिल है।, सब जानते हैं कि यह यात्रा एक अंधी सुरंग में चल रही यात्रा है किन्तु सब शामिल हैं उसमें - अभिभूत सम्मोहित और आश्वस्त ।

जो कुछ भी जिस रूप में, फिल्मों, विज्ञापनों, खबरों आदि के रूप में सामने आ रहा है, वह अधिकांशतः रोमांचक है। उस पर सोचने की फुरसत किसी को नहीं है। सोचना एक बेकार सी क्रिया बन कर रह गया है और भोगना ही मुख्य क्रिया बन गया है। अनुभव, आस्वाद, भोग- महज इंद्रियों के स्तर तक का। रोमांच और थ्रिल पैदा करने वाला अनुभव, देह में सनसनाहट सी पैदा करने वाला अनुभव, विशुद्ध एंद्रिय - अनुभव। वह सब कुछ मीडिया मुहैया कर रहा है जो शरीर को झनझना दे, जिसमें तेज हो, कौंध हो, उत्तेजना हो, फिल्मों में या तो पाशवी हिंसा क्रूरता की अदभुत मिसालें, यातना के हैरतअंगेज चित्र या फिर नारी देह का भद्दा प्रदर्शन- मांसल प्रस्तुति, यौनाचार प्रेम

ओर रोमांस की उत्तेजक मुद्राएं और क्रियाएं, हत्या, बलात्कार और न जाने क्या-क्या? परंपरागत नृत्य और संगीत को गोली मारिए, अब नृत्य और संगीत की नई-नई किस्में नई सदी की शोभा बढ़ाने पहुँच रही है - कैबरे, पॉप और न जाने क्या-क्या। एकल ही नहीं समूह-नृत्य, समूह संगीत, संगीत और गीत की हाहाकारी गूंजों में थिरकते बदन, युवाशक्ति की नई बानगियों गीतों के नए-नए बोल, लोकगीतों के भद्दे से भद्दे प्रयोग। शोरगुल चीख-पुकार चीत्कार, हल्ला-गुल्ला सब अपने-अपने ढंग से आने वाली सदी की पहचान बनकर सामने आ रहे हैं।

मनुष्य को अभयातित करने वाला ऐसा अधम अर्थतंत्र शायद पहले कभी नहीं था। बाजारवाद के इस युग ने इस उपभोक्ता अपसंस्कृति ने, आदमी को इतना व्यक्तिवादी, खुदगर्ज, संवेदनहीन बना दिया है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक टी वी के पर्दे पर भोग रहा है, छप्पन भोग खा रहा है, करोड़ों-करोड़ उसे भोगते और खाते मगन देख रहे हैं-तरह-तरह की प्रतिक्रियाओं के साथ इस आर्थिक उदारीकरण और बाजारवाद ने समाज के एक तबके को एक ऐसी अंधी-अंधेरी सुरंग में ठेल दिया है, कि पता नहीं वह कहां समाप्त होगी, कब वह उससे निकल पाएगा। कभी बाजारू होना गाली माना जाता था - आज वह शान है। बाजार कभी घर के बाहर होता था आज वह हमारे घर में, ड्राइंग रूम में, किचन में हमारी पूरी जेहनियत में है।

टी.वी. को देखिये - बाबाओं और भगवानों की एक पूरी कौम सुबह से शाम तक प्रवचन कर रही है। साध्विया-संन्यासिनियां अपना वचनामृत उड़ेल रही है। भक्तों और श्रद्धालुओं में है, वही छोटा सा धनाड्य और नवधनाड्य तबका असली हिन्दुस्तान कभी-कभार खबरों में भले कौंध जाए, उसका दूरदर्शन में अता-पता नहीं। संपन्न घरानों की समस्याओं में कसे जुड़े सीरियल, विराट हिन्दुस्तान के साधारण लोगों की जिन्दगी नदारद। भक्ति-अध्यात्म सबको व्यावसायिक बना दिया है, इस मीडिया में सब धंधा बन गया है। अपराध कथाएं दिखाई जा रही हैं- उनके लिए समय है - आम आदमी की जिन्दगी में प्रदर्शनीक है क्या ? आदमी सचमुच अपने अंतिम दौर की मानसिकता में पहुँच गया है।

याद आते हैं जयशंकर प्रसाद और उनकी कामायनी । देव -

संस्कृति का विनाश। विलासिता और अतिशय सुखभोगवाद में डूबी देवों की सभ्यता पर प्रकृति का प्रकोप। जलप्लावन, जल प्रलय। सारी देव जाति का नाश, केवल मनु का अकेले बचना और हिमालय में शरण लेना। जितना प्रखर सुखभोगवाद, उतना ही कठोर दंड। मनु का श्रद्धा के सहयोग से एक नई सभ्यता की नींव रखना । मनुष्य की सभ्यता, मनुष्य की संस्कृति । इडा और मानव द्वारा आकार और रूप पाती हुई । जयशंकर प्रसाद देवों की सभ्यता को, उनके विलास, सुखभोगवाद को धिक्कारते हुए मनुष्य की इस नई संस्कृति को अपनी शुभकामनाएं देते हैं - विजयिनी मानवता हो जाए उसे सावधान भी करते हैं - मनु तुम श्रद्धा को गये भूल। अतिशय विलासिता, अतिशय सुख-संचय, समाज में वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है। मनु का उदाहरण देकर वे बार-बार मानव सभ्यता के पुरोधाओं को झकझोरते हैं।

2.11 जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद की चेतावनी कितनी यथार्थ, कितनी सच थी, आज उसका साक्षात् अनुभव हो रहा है। जिस उपभोक्तावादी संस्कृति का रूप आज हम देख रहे हैं, चरम सुखभोगवाद की जो ललक आज उदग्र बनकर दिखाई पड़ रही है, आदमी अतृप्ति के आवेग में तृप्त होने के लिए अंधा बनकर जिस प्रकार दौड़ लगा रहा है। इस सबकी परिणति क्या होगी, यह सोचकर मन दहशत से भर उठता है। देव जाति की अतिशय विलासप्रियता का दंड प्रकृति ने विनष्ट करके दिया। देवों की सभ्यता तथा संस्कृति का स्थान मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति ने लिया। देवता अपने स्तर से गिर कर मनुष्य के स्तर पर आ गया। सवाल उठता है कि मनुष्य का विलास और अतिशय सुखभोगवाद जो आज सतह पर बजबजा रहा है, उसे कहाँ ले जायेगा। डारविन ने पशु से मनुष्य के विकसित होने की बात कही है। मनुष्य गिरा, उसे प्रकृति का दंड मिला तो अपने विकसित स्तर से पुनः पशु रूप में वापस लौटने के अलावा कोई चारा नहीं पहले पशु से मनुष्य अंततः पुनः पशु।

आज का यह अतिशय सुखभोगवाद विशुद्ध पशुवाद के अलावा और है भी क्या? पशुओं की तरह आज मनुष्य भी अपनी आदिम वृत्तियों से ही परिचालित हो रहा है। भूख, काम, क्रोध, भय, हिंसा प्रतिहिंसा का जो परिदृश्य आज हम देख रहे हैं, पाशविकता के

अलावा उसे क्या कहा जाए। फिल्मों में यह सब जिंदगी के अक्स के रूप मे ही तो आ रहा है। दया, माया, ममता, क्षमा, उदारता, करूणा जैसी वृत्तियाँ आज कहाँ है? मनुष्य इतना जड़, इतना निस्पंद, इतना क्रूर, इतना स्वार्थी, इतना हिंसक कदाचित् ही कभी होगा, अपने आदिम रूप में भी शायद नही।

पशुओं से मनुष्य का फर्क इस नाते भी है कि प्रकृति ने मनुष्य को विवेक दिया है - गलत और सही, सच और झूठ, करणीय और अकरणीय में फर्क कर सकने का माद्दा। किंतु लगता है कि बुद्धि की अतिशयता में मनुष्य का विवेक लाचार हो उठा है, गुम सा हो गया है। ये बातें क्या इस तथ्य को प्रमाणित नहीं करती कि आदमी अपने स्तर से बहुत अधिक गिर चुका है।

यह सब लिखना बहुत क्लेशदायक है किन्तु इसके अलावा लिखा क्या जाए। मै यह नहीं कहता कि मनुष्य की इस सारी अधोगति का कारण मीडिया है किन्तु मीडिया के मायाजगत का निर्माता भी तो मनुष्य ही है और उसका यह पाशव, हिंसा, फरेबी, संवेदनहीन चेहरा मीडिया में कैसे और क्यों कर नहीं झलकेगा? मीडिया और मनुष्य के आपसी संबंधों की जटिल पहेली उतनी अबूझ नहीं जितनी पहली नजर में लगती है।

जो कुछ ऊपर कहा गया है वह मीडिया के मायाजगत का महज एक पहलू और उसकी भी बहुत उभरी हुई सच्चाई है। भीतर बैठा जाय तो इसी पहलू में पर्तें की पर्तें ऐसी मिलेंगी जो अब तक अनदेखी है। बाकी पहलुओं की बात छोड़िए। यह हजारों तिलस्म वाला मायाजगत है। इसका जाल बहुत विशद् और बहुत घना है।

समाप्त करते हुए कुछ वाक्य मीडिया की राजनीति पर नहीं, राजनीति और मीडिया पर कहे बिना नहीं रह सकता। हाल के चुनावों में मैने पूरे समय दिन-दिन भर टी वी में चुनाव के समाचार फीचर बहसें आदि आदि देखी हैं। स्वायत्तता की खोखली डफली बजाने वाले सरकारी नियंत्रण के दूरदर्शन की बात जानें दें। जो प्राइवेट चैनल हैं स्टार, जी टीवी आदि आदि चुनावों के पूरे दौर में सबने जिस तरह शासक दल के भोंपू का काम किया है, समाचार फीचरों तथा बहसों के आयोजन से जुड़े ख्यात पत्रकारों , राजनीतिक विश्लेषकों, प्राइवेट टीवी चैनलों के शोमैनों आदि ने जिस बेशर्मी से शासक दल की

डुगडुगी बजाई है उससे उनकी तटस्थता वस्तुनिष्ठता , निष्पक्षता तथा जनतांत्रिक आचारों की सारी पोल खुल गई है। कुछेक अपवाद हैं किन्तु वे तुलनात्मक रूप से ही अपवाद हैं, वहाँ मुखौटे पूरी तरह उतर नहीं पाए, अन्यथा, शासक दल का हित साधने तथा उसकी छवि उभारने में होड़ लगी रही है। कुछ ने यह खास होशियारी से किया है ज्यादातर ने भोंडेपन में विदूषकों के अंदाज में अपने हित में मीडिया का इतनी बेशर्मी से इस्तेमाल भारतीय लोकतंत्र में शायद ही पहले कभी हुआ हो।

2.12 डी.टी.एच. डायरेक्ट टू होम

सच पूछा जाय तो नब्बे के दशक से पूरे विश्व में ही उदारीकरण और वैश्वीकरण ने जोर पकड़ा है। लगभग दो सौ साल पहले दुनिया में औद्योगीकरण के दौर की शुरूआत के दौरान यह आवश्यक समझा गया था कि राष्ट्रवाद की अवधारणा को सशक्त बनाया जाए। ताकि राष्ट्र के रक्षा-कवच के अन्दर पूंजी अच्छी तरह फल-फूल सके। मगर बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में यह महसूस किया जाने लगा कि राष्ट्र का रक्षा कवच पूंजी के विकास में बाधक बन रहा है। ऐसी जरूरत महसूस की जाने लगी कि इस रक्षा कवच को शिथिल और निर्बल बनाया जाय ताकि पूँजी को पूरी तरह फलने-फूलने के लिए आवश्यक विस्तार मिल सके। वर्तमान युग में मीडिया भी एक बड़ा उद्योग है और वैश्वीकरण के युग में अन्य उद्योगों की भाँति मीडिया उद्योग भी देश की सीमाएं लांघ कर अपने विकास के लिए नई जमीन की तलाश मे रत रहा है।

अन्य उद्योगों के समान कुछ उद्योग होने के अलावा मीडिया की एक और विशेषता है । यह अन्य उद्योगों के लिए उत्प्रेरक का भी काम करता है। यह अपनी ताकत का इस्तेमाल कर दूसरे उद्योगों के फैलाव का मार्ग तो प्रशस्त करता ही है साथ ही वैश्वीकरण के प्रचार और प्रसार में अग्रणी भूमिका अदा करता है। मीडिया वैश्वीकरण के विश्व प्रयाण में एक सशक्त सैन्यबल के समान रहा है। अगर हम उपर्युक्त कारकों का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि नब्बे के दशक में इस देश में विदेशी और निजी प्रसारकों का आना कोई अनहोनी या आश्चर्यजनक घटना नहीं थी।

इस प्रकार हम पाते हैं कि नब्बे के दशक से दूरदर्शन का

एकाधिकार टूटने लग गया और इसे विदेशी और निजी प्रसारकों की तरफ से चुनौतियां मिलने लग गयी। लेकिन इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि दूरदर्शन ने इन चुनौतियों का पूरी ताकत से मुकाबला किया है। पहले दूरदर्शन का एक ही चैनल होता था। यह चैनल समाज के सभी दर्शक वर्गों की जरूरतें थोड़ी-थोड़ी कर के पूरी करता था। यह महसूस किया गया कि दूरदर्शन को अपने चैनलों की संख्या बढ़ानी होगी ताकि हर दर्शक वर्ग अपनी पसंद के कार्यक्रम हर समय देख सकें। जहाँ दूरदर्शन का राष्ट्रीय चैनल अभी हर प्रकार के दर्शकों को जरूरतें पूरी करने का प्रयत्न करता है वहीं विशिष्ट दर्शक समुदायों के लिए विशिष्ट चैनल भी शुरू किए गये हैं। अस्सी के दशक के अंत में जहाँ दूरदर्शन का मात्र एक चैनल था आज वहां छब्बीस चैनल है। जहाँ पहले सीमित घंटों के कार्यक्रम ही प्रतिदिन प्रसारित होते थे वहां अब दूरदर्शन के चैनल बाकी चैनलों के समान ही अहर्निश प्रसारण करते हैं।

दर्शकों के विभिन्न वर्गों तक पहुंचाने के लिए दूरदर्शन ने अपने चैनलों में व्यापक विविधता रखी है। दूरदर्शन का समाचार चैनल जहाँ समाचार और सामयिक कार्यक्रमों को समर्पित है वहीं दूरदर्शन का क्रीड़ा चैनेल खेलकूद को। दूरदर्शन का डी. डी. भारती चैनल जहाँ स्वास्थ्य, बाल कार्यक्रमों और साहित्यिक , सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर आधारित है, वहीं डी. डी. इण्डिया देश के बाहर दर्शकों को भारत की तस्वीर प्रस्तुत करता है। दूरदर्शन ने लोकसभा और राज्यसभा की गतिविधियों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए दो नये चैनल प्रारम्भ किये हैं - डी डी लोकसभा और डी डी राज्यसभा इन चैनेलों की मदद से दर्शक लोकसभा और राज्यसभा की कारवाइयों का जीवंत जायजा ले सकते हैं। उन्हें यह प्रत्यक्ष मालूम चल जाता है कि उनके प्रतिनिधि संसद में उनके हितों की रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं । इन दोनों चैनलों का उद्देश्य देश में लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बनाना है। एक आम मतदाता के लिए पहले यह संभव नहीं था कि अपने प्रतिनिधियों के क्रियाकलापों और देश के संचालन में उनके योगदान का प्रत्यक्ष अवलोकन कर सके मगर इन दोनों चैनलों ने अब इसे संभव बना दिया है। एक अन्य चैनल 'ज्ञान दर्शन' इंन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के सहयोग से चलाया जाता है और इसका उद्देश्य विश्वविद्यालय के विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रमों को संपन्न और सशक्त

बनाना है। इस चैनल की मदद से विश्वविद्यालय के छात्र अपने नगर में बैठ-बैठे न केवल देश के मूर्धन्य विद्वानों के व्याख्यान सुन सकते हैं बल्कि उनसे सवाल पूछ सकते हैं और परिचर्चा में हिस्सा ले सकते हैं।

देश के विभिन्न हिस्सों की भाषा और संस्कृति का विकास करने और और अपने राज्य से बाहर रह रहे दर्शकों की साहित्यिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देश की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में दूरदर्शन के कुल ग्यारह चैनल है। इन चैनलों में बंगला, उड़िया, पंजाबी, गुजराती, मराठी, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम के चैनल तो हैं ही पूर्वोत्तर भाषाओं का एक चैनल भी है, साथ ही कश्मीर की कला, संस्कृति, साहित्य और उससे जुड़े विभिन्न मसलों को प्रतिबिम्बित करने वाला एक विशेष चैनल भी हैं जो डी डी कशीर के नाम से जाना जाता है।

2.13 स्वायत्तता

तकनीकी क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है दूरदर्शन की डीटीएच सेवा। डी टी एच यानि डायरेक्ट टु होम। यह एक उन्नत प्रसारण तकनीक है जिसमें केबल आपरेटर की आवश्यकता नहीं होती। एक छोटी सी तश्तरी की मदद से चैनलों की एक पूरी लड़ी टी वी सेट तक सीधे पहुँच जाती है। दूरदर्शन की इस सेवा का नाम है डी डी डायरेक्ट प्लस' । इस सेवा की खासियत यह है कि यह मुफ्त सेवा है और इस सेवा का लाभ लेने को इच्छुक दर्शकों को मासिक शुल्क के रूप में कुछ भी नहीं देना होगा। केवल कुछ आवश्यक उपकरण बाजार से खरीदने होते हैं जिनका मूल्य दो ढाई हजार रूपये हैं। यह केवल एक बार का खर्च है और टेलीविजन सेट के साथ इस उपकरण को जोड़ लेने के बाद दर्शकों को तैंतीस टेलीविजन चैनेल और बारह रेडियो चैनेल मिलने लग जाते हैं। उन्नत तकनीक के कारण इस सेवा से टेलीविजन सेट तक पहुंचने वाले सिगनल की गुणवत्ता काफी अच्छी होती है। चित्र और आवाज दोनों ही बहुत साफ आते हैं। यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में दूरदर्शन की डी टी एच सेवा में और भी नये चैनल शामिल किए जायेगें।

नब्बे के दशक में एक और महत्वपूर्ण घटना हुई । यह मांग लम्बे समय से की जा रही थी कि दूरदर्शन और आकाशवाणी को

स्वायत्तता प्रदान की जाए। जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके है। जैसाकि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, आजादी के बाद सरकार ने निर्णय लिया था कि आकाशवाणी (और कुछ समय बाद दूरदर्शन) सरकारी विभाग के रूप में ही कार्य करे। लेकिन इस निर्णय की आलोचना भी समानान्तर धारा के रूप में चलती रही थी। यह मांग निरंतर रहती आई थी कि आकाशवाणी और दूरदर्शन को बी बी सी की ही तर्ज पर एक स्वायत्त संगठन में परिवर्तित कर दिया जाए। साठ के दशक के मध्य में सरकार द्वारा गठित ए.के. बंदा समिति ने अपनी रिपोर्ट में आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए स्वायत्तता की सिफारिश की थी। सिफारिश पर अमल नहीं हो पाया। जून 1975 से मार्च सन् 1977 तक देश में आपातकाल लागू था। विपक्षी दलों का सरकार पर एक आरोप यह भी था कि आपातकाल के दौरान आकाशवाणी और दूरदर्शन का जमकर दुरूपयोग हुआ। आपातकाल के बाद के शासन के दौरान आकाशवाणी और दूरदर्शन को स्वायत्तता प्रदान करने के इरादे से वी. जी. वर्गीज की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन किया गया। जिसने 'आकाश भारती' के नाम से एक स्वायत्तशासी संगठन की सिफारिश की। सिफारिश कार्यान्वित नहीं हो पायी। बाद में सन 1989 में जब आम चुनाव हुए तो एक प्रमुख चुनावी मुद्दा आकाशवाणी और दूरदर्शन को स्वायत्तता देना भी था। चुनाव के बाद नई सरकार ने सन 1990 में इस दिशा में कार्रवाई की और परिणामस्वरूप संसद ने प्रसार भारती अधिनियम पारित कर दिया। लेकिन इस अधिनियम का कार्यान्वयन तत्काल नहीं हो पाया। इस बारे में अधिसूचना सात साल बाद सितम्बर 1997 में जारी हुई और तत्पश्चात् 23 नवम्बर 1997 को प्रसार भारती अस्तित्व में आई। इस प्रकार हम पाते हैं कि नब्बे का दशक एक महत्वपूर्ण दशक था जिसमें भारतीय प्रसारण के क्षेत्र मे ऐतिहासिक घटनाएं हुई।

नब्बे के दशक में निजीकरण और प्रतियोगिता का जो माहौल बना उसका असर रेडियो पर भी आना शुरू हुआ। जैसा कि हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं। भारत में रेडियो प्रसारण की शुरूआत निजी क्षेत्र में ही हुयी थी मगर प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण निजी क्षेत्र में प्रसारण चल नहीं पाया और सरकार को आगे आना पड़ा। परन्तु नब्बे के दशक तक परिस्थितियाँ बदलने लगी थी। निजी क्षेत्र ने रेडियो प्रसारण के क्षेत्र में प्रवेश की गुंजाइश ढूँढनी शुरू कर दी। पहला

अवसर 1993 में तब आया जब आकाशवाणी ने निजी क्षेत्र को एफ.एम. रेडियो पर कुछ घंटों के स्लॉट देने की योजना बनाई। यह योजना 15 अगस्त 1993 को शुरू हुई । इस योजना के अंतर्गत निजी क्षेत्र को रेडियो प्रसारण की दुनिया में फिर से आने का अवसर मिला। यह व्यवस्था कुछ समय बाद समाप्त हो गयी लेकिन यह भी स्थापित हो गया कि रेडियो प्रसारण में निजी क्षेत्र की वापसी संभव है।

नई सदी की शुरूआत के साथ साथ भारत में रेडियो प्रसारण के क्षेत्र में निजी उद्यम की भी औपचारिक शुरूआत हुई । सरकार ने रेडियो प्रसारण को निजी क्षेत्र के लिए खोलने का इरादा किया और इसके लिए एक योजना घोषित की।

2.14 एफ.एम. रेडियो

इस योजना के अंतर्गत 40 नगरों में 108 रेडियो फ्रिक्वेंसियों की नीलामी की योजना बनायी गयी। निजी प्रसारकों को रेडियो फ्रिक्वेंसी आवंटित की जाने की योजना का यह पहला चरण था जिसके अंतर्गत कुल बाइस निजी रेडियो चैनल शुरू हो पाए। इनमें अब इक्कीस बच रहे हैं। अब इस योजना का दूसरा चरण लागू किया जाने वाला है। इसके अंतर्गत नब्बे छोटे-बड़े शहरों में कुल तीन सौ छत्तीस फ्रिक्वेंसियों का आवंटन किया जायेगा ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि फिलहाल तो आकाशवाणी को कोई खास प्रतिद्वन्दिता झेलनी नहीं पड़ रही है। बड़े शहरों में निजी क्षेत्र के एफ.एम. रेडियो थोड़ी बहुत चिंता अवश्य पैदा कर रहे हैं मगर कुल मिलाकर उसका एकाधिपत्य अभी भी चल रहा है। निजीकरण के दूसरे चरण के कार्यान्वयन के बाद आकाशवाणी के लिए समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

नब्बे के दशक में जब भारतीय लोक सेवा प्रसारण को निजी क्षेत्र की चुनौती मिलनी शुरू हुई थी तो ऐसे आलोचकों की कमी नहीं थी जो लोक सेवा प्रसारण के भविष्य पर संदेह की उंगली उठाने लग गये थे। मगर नब्बे के दशक और इसके बाद के वर्षों को भारतीय लोक सेवा प्रसारण ने एक खतरे के रूप में न देखकर एक अवसर के रूप में देखा। यही कारण है कि इस दौरान लोक सेवा प्रसारण के तंत्र का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। आठवें दशक के अंत तक देश में

कुल 519 टेलीविजन ट्रांसमीटर थे। आज उनकी संख्या चौदह सौ पार कर चुकी है। उस समय मात्र एक चैनल होता था जो केवल निश्चित अवधि के दौरान प्रसारण करता था। आज दूरदर्शन के 26 चैनल हैं जिनमें अधिकांश चौबीसों घंटे कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। स्थानीय दर्शकों की सेवा के लिए दूरदर्शन के अब साठ केन्द्र हो चुके हैं। दूरदर्शन विश्व का सबसे बड़ा भू-स्थलीय प्रसारक है। आकाशवाणी के तानेबाने में भी 215 केन्द्र और 337 ट्रांसमीटर हैं। प्रसार भारती, डीटीएच यानि डायरेक्ट टू होम प्रसारण तकनीक के क्षेत्र में भी अपने कदम जमा चुकी है। जिसके अंर्तगत नागरिकों को टेलीविजन के तैंतीस और रेडियो के बारह चैनेल उपग्रह से सीधे उपलब्ध हो जाते हैं बिना केबल आपरेटर को मासिक शुल्क दिये।

लेकिन आकाशवाणी और दूरदर्शन के भविष्य को लेकर सवाल अभी भी उठते रहते हैं। एक सवाल यह भी उठता है कि अब जब आम लोगों को टेलीविजन के इतने सारे चैनल उपलब्ध हैं और निजी रेडियो के भी अनेक केन्द्र जुड़ने लग गये हैं तो आकाशवाणी और दूरदर्शन की सार्थकता क्या है। कुछ दिन पहले एक बड़े अंग्रेजी राष्ट्रीय दैनिक ने यह सवाल अपने संपादकीय में उठाया था और यह फतवा भी दे डाला था कि इन दोनों संगठनों का निजीकरण कर देना चाहिए। यह बात दीगर थी कि संपादकीय के विरोध में पाठकों के अनेक पत्र आ गये।

यह सच है कि केबल टेलिविजन का व्यापक विस्तार हुआ है। इसके विस्तार के बहुत विश्वसनीय आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन ऐसा माना जाता है कि देश भर में लगभग दस करोड़ टेलीविजन सेट वाले घर हैं। जिनमें पांच करोड़ घरों में केबल कनेक्शन पहुँच चुका है। ये पांच करोड़ घर शहरों में हैं और अधिकांशतः मध्यमवर्गीय परिवारों वाले हैं। ये घर विज्ञापनदाताओं के लिए काफी मायने रखते हैं । लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि शेष पांच करोड़ जहाँ तक केवल दूरदर्शन ही पहुँचता है, अपनी सार्थकता नहीं रखते। दूरदर्शन के लिए ये शेष पांच करोड़ घर महत्वपूर्ण हैं बाकी चैनल उपभोक्ताओं को ध्यान में रखकर चलाए जा रहे हैं लेकिन दूरदर्शन के चैनल आम नागरिकों के लिए हैं चाहे ये अच्छे उपभोक्ता हों या न हों। ऐसी स्थिति में दूरदर्शन की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। आकाशवाणी तो खैर वैसे भी रेडियो प्रसारण में अपना

एकाधिकार लगभग बनाए हुए है।

थोड़ी देर के लिए यह भी मान लिया जाय कि हर घर में केबल कनेक्शन उपलब्ध हो जाता है। फिर भी यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि दूरदर्शन की उपयोगिता समाप्त हो जाएगी। बाकी चैनल लोक सेवा प्रसारक की भूमिका नहीं निभा सकते। बाजार के दबाव के कारण उन पर वैसे ही कार्यक्रम दिखाए जा सकते हैं जो बाजार में टिक सकें और ज्यादा से ज्यादा कमाई कर सकें। वैसे कार्यक्रम जो समाजोपयोगी या राष्ट्रोपयोगी हैं मगर जो कमाई नहीं कर सकते, निजी टेलीविजन चैनेलों पर नहीं दिखाए जा सकते। उदाहरणार्थ, शास्त्रीय गायन ,वादन और नृत्य राष्ट्रीय समारोहों का सीधा प्रसारण, लोकसभा की दैनिक कारवाइयों का सीधा प्रसारण, स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा इत्यादि के कार्यक्रम आदि। उसी प्रकार निजी खेल चैनल कबड्डी या खो-खो जैसे देशी खेलों को प्रोत्साहन नहीं दे सकते क्योंकि ये वैसे बिकाऊ नहीं हैं जैसा कि क्रिकेट है। इस प्रकार हम पाते हैं कि बाजार का दबाव निजी चैनलों पर जितनी कठोर पाबंदियाँ लगाता है उतनी तो राजनीतिक तानाशाही भी नहीं लगा सकती। बाजार का दबाव टेलीविजन माध्यम की विशाल संभावनाओं को सीमित कर देता है। माध्यम की संपूर्ण सम्भावनाएं लोक सेवा प्रसारण के संरक्षण में ही अपने पूर्ण विकास और विस्तार को प्राप्त कर सकेंगे।

2.15 लोक सेवा प्रसारण

यहाँ एक संवैधानिक सवाल भी उठ खड़ा होता है। अभिव्यक्ति का अधिकार हमारे संविधान का एक मूलभूत अधिकार है। लेकिन यह अधिकार क्या केबल चैनलों के मालिकों के लिए ही है या आम जनता के लिए भी है। सच पूछा जाए तो अभिव्यक्ति का संवैधानिक अधिकार तब तक निरर्थक है जब तक कि यह आम आदमी के सूचना के अधिकार को पूरा नहीं करता हो। निजी क्षेत्र का मीडिया अपने स्वयं के अभिव्यक्ति के अधिकार को लेकर भले ही सजग हो मगर आम आदमी के सूचना के अधिकार की उसे विशेष परवाह नहीं है। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि मौजूदा बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था मीडिया को बहुत ही कुशलता चतुराई, और प्रच्छन्नता के साथ नियंत्रित करती है। तभी तो हम पाते हैं कि आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों की तमाम बहसें उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के साथ साथ

बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था और उपभोक्ता संस्कृति के इर्द-गिर्द ही घूम कर रह जाती है। उनमें गांव के या निम्न वर्ग के लोगों की समस्याएं या तो चित्रित ही नहीं होती या बिल्कुल हाशिए पर होती है। हाशिए पर इनका चित्रण भी शहरी उच्चवर्ग या मध्यवर्ग के नजरिए से ही होता है। ऐसे माहौल के कारण आम-आदमी के सूचना के अधिकार का जो हनन हो रहा है और सूचना तंत्र जिस विकृति का शिकार हो रहा है उसे दुरूस्त बनाए रखने के लिए लोक सेवा प्रसारक की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। आज के युग में लोक सेवा प्रसारक की भूमिका और भी सार्थक और प्रासंगिक हो उठी है। लोक सेवा प्रसारक न केवल आम नागरिकों के सूचना के अधिकार का प्रहरी बन सकता है अपितु उनके जीवन, संस्कृति और समस्याओं का सही चित्रण करते हुए उन्हें अभिव्यक्ति का एक सशक्त मंच भी प्रदान कर सकता है।

भारत का लोक सेवा प्रसारक निजी और विदेशी प्रसारकों तथा बाजार संचालित अर्थव्यवस्था की चुनौतियों को अब तक सफलता पूर्वक झेलता रहा है। ये चुनौतियां आगे आने वाले दिनों में भी वैसी ही बनी रहेगी और आकाशवाणी तथा दूरदर्शन को उनसे जूझते रहना होगा। लेकिन एक अन्य चुनौती भी है जो विश्व के लगभग सभी लोक सेवा प्रसारकों को झेलनी पड़ रही है। भारत भी अपवाद नहीं है। यह चुनौती वित्तीय संसाधनों की चुनौती है। सरकार की ओर से यह दबाव अब निरंतर ही रहने लगा है कि लोक सेवा प्रसारक वित्तीय मामलों में आत्मनिर्भर बने। वित्तीय आत्म निर्भरता कोई बुरी बात नहीं है। परन्तु यह दुधारी तलवार का काम भी कर सकती है। यदि आत्मनिर्भरता का कोई पक्का समाधान नहीं निकला तो आगे चलकर अस्तित्व का गहरा संकट पैदा हो सकता है। दूसरी ओर यदि वित्तीय आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के क्रम में लोक सेवा प्रसारक ने निजी प्रसारकों की ज्यादा नकल करनी शुरू कर दी तो अपनी पहचान खोने का खतरा है। पहचान का खो जाना भी अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है। क्योंकि तब यह कहा जा सकता है कि जब लोक सेवा प्रसारक भी वही कर रहा है जो बाकी प्रसारक कर रहे हैं तो देश को लोक सेवा प्रसारक की अलग से क्या आवश्यकता है? अतः वित्तीय आत्म निर्भरता जितनी जरूरी है अपनी पहचान बनाये रखना भी उतना ही आवश्यक है। इन दो प्रत्यक्षतः विरोधी छोरों के बीच संतुलन कायम

रखना लोक सेवा प्रसारक के लिए विश्व के अन्य देशों के साथ-साथ भारत में भी उतना ही आवश्यक है।

आने वाले दिनों में अपनी सार्थकता और प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए लोक सेवा प्रसारक को जिस एक चुनौती से निरंतर जूझते रहना होगा वह चुनौती है अपने मौजूदा श्रोताओं और दर्शकों पर अपनी पकड़ बनाए रखने की चुनौती। यह सच है कि लोक सेवा प्रसारक की अपनी सीमाएं और अपने मानदंड हैं। इनसे समझौता नहीं किया जा सकता । दर्शक या श्रोता जुटाने के लिए वैसे कई हथकंडे एक लोक सेवा प्रसारक नहीं अपना सकता जो निजी प्रसारक अपना सकते हैं लेकिन इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रसारक चाहे लोक सेवा के इरादे से किया जा रहा हो या विशुद्ध लाभ के इरादे से दर्शकों और श्रोताओं की जरूरत दोनों ही स्थितियों में है। अगर दर्शक और श्रोता नहीं मिलेंगे तो अत्यंत समाजोपयोगी या राष्ट्रोपयोगी प्रसारण का भी कोई मतलब नहीं है। चैनेलों की इस होड़ के माहौल में हम पाते हैं कि जिन दर्शकों या श्रोताओं को वैकल्पिक प्रसारण उपलब्ध हैं वे इसमें संतुष्ट हैं।

2.16 सारांश

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उपरोक्त चैनल की ओर दूरदर्शन की उपलब्धि को मनुष्य की जययात्रा कहते हैं। सच में भारतीय टेलीविजन, भारतीय जययात्रा है। यह सब प्रयास एवं कर्मठ व्यक्तित्व की निशानी है। भारतीय मनुष्यों की बुद्धि वैभव, कर्मठता सतत् प्रयास है। मनोवृत्ति ने ही आज टेलीविजन को समृद्ध एवं विशाल बना दिया है। सब कुछ होने के साथ, लेकिन लगता है, सामाजिक मूल्यों की धरोहर कहीं खो गई है, गुम हो गयी है और उसी के साथ विवेक का पतन हो चुका है। सम्भवतः इसीलिए प्रसारण और मूल्यों का सामन्जस्य नहीं हो पाता है। सेटलाइट, कम्प्यूटर, इन्टरनेट के कारण दुनिया सिकुड़ कर छोटी हो गयी है। एक पल में हम अमेरिका, पेरिस, रोम इंग्लैण्ड, रूस जापान कहीं भी किसी से सम्पर्क कर सकते हैं। मोबाइल फोन, कैमरा मोबाइल और मोबाइल इन्टरनेट के कारण हमारी क्षमता में वृद्धि हुई है।

2.17 शब्दावली

- पब्लिक सर्विस ब्राडकास्टिंग - लोक सेवा प्रसारण
- सरकारी कर्मी - सरकारी विभाग में कार्यरत व्यक्ति
- सेटलाइट स्त्री - सेटलाइट चैनल के कार्यक्रम में स्त्री
- मीडिया का मायाजाल - प्रसारण माध्यम का जंजाल
- जययात्रा शब्द का प्रयोग - स्व. हजारी प्रसाद द्विवेदी
- डी टी एच - डायरेक्ट टू होम
- एफ एम रेडियो - फ्रीक्वेंसी माडुलेशन रेडियो

2.18 संदर्भ ग्रन्थ

- इलेक्ट्रानिक मीडिया में फिल्म्स प्रोडक्शन - राजकृष्ण मिश्र
- फिल्म ऐज फिल्म - वी.पी. परकिन्स
- सिनेमा ऐज ऐन आर्ट - जे बी डिबरिश
- मूवी मुगल्स - फिलिप फ्रेन्च
- फिल्म एण्ड रियलिटी - एलेन जे लरनर
- माय फेयर लेडी - राय आर्मेस

2.19 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) डी टी एच का अर्थ बताइये।

(2) पब्लिक सर्विस ब्राडकास्टर से आप क्या समझते हैं।

(3) सेटलाइट स्त्री क्या होती है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) सेटलाइट चैनल में दिखाए जाने वाले कार्यक्रम की विवेचना करते हुए सेटलाइट चैनल की महत्ता का वर्णन कीजिए।

(2) टेलीविजन का प्रभाव किस प्रकार होता है और वर्तमान की स्थिति क्या है?

(3) मीडिया के मायाजाल से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

(1) डी.टी.एच. कहते हैं -

(क) डायरेक्ट टू होम (ख) शूटिंग

(ग) प्रसारण (घ) सम्पादन।

(2) एफ. एम. रेडियो का अर्थ है -

(क) चर्च रेडियो (ख) फ्रिक्वेंसी माडुलेशन रेडियो

(ग) स्टूडियो का नाम (घ) रिकार्डिंग मशीन

(3) 'जय यात्रा' शब्द का प्रयोग किया था।

(क) जयशंकर प्रसाद ने (ख) महादेवी वर्मा ने

(ग) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने

(घ) भगवतीचरण वर्मा ने

(4) सेटलाइट स्त्री कहते हैं -

(क) अंतरिक्ष यात्रा में स्त्री (ख) फिल्म में स्त्री

(ग) स्त्री सम्पादक (घ) सेटलाइट चैनल के कार्य-क्रम में दिखाई देने वाली स्त्री।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

1. क 2. ख 3. ग 4. घ

इकाई -3 सिनेमा वैविध्य

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 फिल्म लेखन : एक परिचय

3.3 कहानी

3.4 पटकथा

3.5 संवाद

3.6 गीत

3.7 फिल्म की भाषा

3.8 संवाद - दृश्य संयोजन

3.9 उपसंहार

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

3.12 प्रश्न

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(1) फिल्म के लिए लेखन का रूप-स्वरूप तथा विस्तार।

(2) फिल्म के लिए कहानी की रचना।

(3) कहानी का पटकथा के रूप में रूपान्तरण।

(4) फिल्म के लिए संवाद तथा गीत-लेखन।

(5) फिल्म की भाषा एवं उसकी विशेषताएं।

(6) संवाद और दृश्य का संयोजन।

3.1 प्रस्तावना

लेखन ही वह विधा है जो परिस्थितियों को एक सूत्र में पिरोकर सिलसिलेवार ढंग से घटनाओं को व्यवस्थित कर एक कहानी का रूप देती है। फिल्मों में लेखन की अनेक विधाओं का सहयोग होता है। कहानी, पटकथा, संवाद, गीत आदि लेखकीय रचनाकर्म ही है।

जिनसे फिल्म निर्माण में विविध पक्षों की पूर्ति होती है। लेखन का फिल्मों में महत्वपूर्ण स्थान है।

फिल्म रोचक हो इसके लिए एक अच्छी कहानी का होना नितान्त आवश्यक होता है। एक अच्छी पटकथा उसके फिल्मी रूपान्तरण के लिए जरूरी होती है। संवाद फिल्म को आवाज प्रदान करते हैं। और गीत फिल्म को माधुर्य देते हैं। एक अच्छा निर्देशक एक अच्छे लेखक की खोज में हमेशा लगा रहता है लेखक की कलम से ही निर्देशक की सोच और योजना को दिशा मिलती है।

फिल्म के लिए लेखन एक महत्वपूर्ण तकनीकी कार्य है। रचनात्मकता के साथ-साथ माध्यम की समझ लेखक के लिए महत्वपूर्ण होती है । फिल्म उद्योग में अच्छे लेखकों की मांग हमेशा बनी रहती है। अनेक साहित्यिक प्रतिभाओं को भी फिल्म उद्योग में लेखक गीतकार के रूप में महत्वपूर्ण सफलता तथा प्रतिष्ठा मिली है। लेखक के लिए फिल्मों में लिखना उसकी आय तथा प्रतिष्ठा दोनों ही लिहाज से महत्वपूर्ण है।

3.2 फिल्म लेखन : एक परिचय

लेखन फिल्म का मूल है। फिल्म बनाने से पहले उसे पूरा-पूरा कागज पर उतारना होता है। तब कहीं जाकर यह स्पष्ट हो पाता है कि निर्माता या निर्देशक जो सोच रहा है, उसका स्वरूप क्या होगा।

दुर्भाग्य की बात यह है कि फिल्म की इस आधारभूत आवश्यकता को सही ढंग से पूरा कर सकने वालों की ही कमी है। कल्पनाशील, चुस्त और विषय को सही ढंग से समझ कर सुन्दर रूप में प्रस्तुत कर सकने वाले लेखकों की इस कमी के कारण ही अधिकांश फिल्में अच्छे कलाकार और अच्छा संगीत होते हुए भी असफल हो जाती हैं।

अक्सर यह कहा जाता है कि नये लेखकों को फिल्म निर्माता अवसर नहीं देते। यह भी कभी-कभी सुनने में आता है कि साहित्य क्षेत्र की सुप्रसिद्ध कृतियों की ओर वे ध्यान नहीं देते। दरअसल बात ऐसी नहीं होती है। अच्छे निर्माता हमेशा अच्छे लेखकों की तलाश में रहते हैं, लेकिन फिल्म का माध्यम चूँकि कलम-कागज नहीं, परदा है वह भी अपनी कुछ विशेषताएं रखता है। फिल्म में अभिव्यक्ति का माध्यम लेखन से बदलकर प्रदर्शन तक ले जाना होता है। अतः यह जरूरी हो जाता है कि लेखक अपनी कला में सिद्ध होने के साथ-साथ फिल्म माध्यम को, उसकी सीमाओं को भी समझता हो।

इसलिए जो युवा लेखक फिल्म लेखन के क्षेत्र में आना चाहें, उन्हें सिने सम्बन्धी विभिन्न भागों के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए। उसके बाद वे यह अच्छी तरह सोचें कि इनमें से किस प्रकार का लेखन कार्य वे सर्वोत्तम ढंग से कर सकते हैं। फिल्म में छोटे से छोटे काम भी पूर्ण दक्षता की ही नहीं, बल्कि विशेषता की अपेक्षा रखता है। अतः ज्यादा अच्छा यह होता है कि पहले एक क्षेत्र में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली जाये और उसके बाद, अगर अपने पर विश्वास हो, तभी दूसरे क्षेत्रों में प्रवेश किया जाए।

फिल्म लेखन के हर क्षेत्र का आगे अलग-अलग विस्तार दिया गया है। जहाँ उस क्षेत्र में विशिष्ट अध्ययन की सुविधाएं हैं, उनका वर्णन भी प्रस्तुत कर दिया गया है।

3.3 कहानी

फिल्म, कहानी कहने की ही एक कला है। जिस कहानी में जितना अधिक दम होगा, उस पर उतनी ही अच्छी फिल्म बनाना संभव है। कहानी के ही इर्द-गिर्द नृत्य या गीत रखकर उसका शृंगार किया जाता है। अच्छी कहानी वही होती है जो इस शृंगार के बाद उभरकर सामने आ सके। ऐसा नहीं कि नृत्य या गीत आ जाने पर उसका अपना असर खत्म हो जाए।

साहित्यिक ढंग की कहानी और फिल्म की कहानी में कुछ मूल भेद हैं। अच्छी फिल्म कहानी लिख सकने के लिए इन भेदों का जान लेना आवश्यक है। जब आप कागज पर कहानी लिखते है, तो किसी पात्र की मनोदशा का विस्तृत वर्णन करने की छूट रहती है। वह सोच रहा था, उसको इतना क्रोध आया कि वह उसका खून पी जाने की सोचने लगा, इस प्रकार की जो अभिव्यक्तियाँ हैं, वह फिल्म की कहानी में उपयुक्त नहीं होतीं। फिल्म के कैमरे से किसी मूर्त वस्तु या व्यक्ति को तो दिखाया जा सकता है, अमूर्त को प्रस्तुत कर पाना असम्भव है।

इसके साथ ही यह भी सच है कि अगर इन भावों को प्रदर्शित ही न किया जाये तो चरित्र तथा कहानी को स्पष्ट कर पाना बहुत मुश्किल हो सकता है। इसलिए मन के भाव भी घटनाओं के माध्यम से ही स्पष्ट किए जाते हैं। एक छोटे तथा सामान्य उदाहरण द्वारा इस बात को समझने की कोशिश की जा सकती है। मान लीजिए जिस

कहानी पर आप फिल्म बनाने जा रहे हैं, उसका एक अंश इस तरह से है-

''जाने किन नाजुक क्षणों में समीर, सीमा से वायदा कर बैठा था कि अब वह कभी राकेश के साथ नहीं जाएगा पर आज जब राकेश के आने का वक्त हुआ, वह बाहर जाने को तैयार हो चुका था।राकेश उसे सड़क के उस पार से आता दिखाई दिया। समीर ने हाथ हिलाकर उसका अभिनन्दन किया और बरामदे में सीमा के साथ खेल रही बच्ची को पुकारता हुआ, उछलता-कूदता चला गया। सीमा ने एक बार चाहा कि उसे पुकार कर रोक ले। लेकिन फिर कुछ सोचकर चुप ही रही।''

समीर का सीमा से बाहर न जाने का वायदा करना फिल्म में दिखाना होगा। 'नाजुक क्षणों' की बात स्पष्ट करने के लिए यह वायदा प्रेम क्रीड़ा के बीच या अपमान से आहत होकर सुबकती हुई सीमा को चुप कराने के समीर के प्रयत्नों या इसी तरह की किसी अन्य स्थिति के बीच किया जाता दिखाया जाएगा। इसके अलावा घर से बाहर जाते समय उसका विशेष खुश होना और बरामदे में सिर्फ बच्ची को प्यार करना, सीमा की ओर ध्यान न देना, इस बात को खुद ही स्पष्ट कर देता है कि सीमा के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं है या अच्छे नहीं चल रहे हैं। फिल्म बनाते समय इस बात को कहीं किसी रूप में स्पष्ट कर दिया जाएगा। इसके लिए फिर छोटी सी घटना को रखना होगा - जैसे खाना खाते वक्त समीर का बिना खाए उठ जाना या देर गये रात को घर लौटना और सीमा की बात का सीधा, सही उत्तर न देना।

कहानी लिखते समय किसी पात्र के शारीरिक व्यक्तित्व के बारे में और उसकी आदतों के बारे में जितना चाहें, लिखा जा सकता है । फिल्म की कहानी में व्यक्तिव का कुछ इशारा पर्याप्त होता है। हम अपनी कहानी के समीर के बारे में चाहें तो इस प्रकार लिखते जा सकते हैं।

समीर अब अधेड़ लगने लगा था। काम में वह अब भी चुस्त था, लेकिन सीमा के प्रति संदेह का एक भाव उसके मन को घेरे रहता था। इसी कारण कभी-कभी वह एकदम शिथिल हो उठता।''

फिल्म के लिए ये बातें घटनाओं से स्पष्ट होंगी। इसकी जगह,

''समीर का कद अच्छा ऊँचा था और शरीर भरा-भरा; बढ़िया कपड़े पहनने का उसे शौक था, और सिगरेट हरदम उसके हाथ में रहती थी।'' इस तरह का वर्णन या विस्तार पटकथाकार का काम आसान कर देता है।

फिल्म की कहानी भावना प्रधान न होकर घटना प्रधान हो तो ज्यादा अच्छा रहता है। लेकिन जोड़ी हुई या जबरन चिपकाई गयी घटनायें वास्तविकता को बदरंग कर देती है और कहानी का कुल असर जाता रहता है। अतः घटनाएं कहानी के क्रम को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक होनी चाहिए लम्बाई बढ़ाने के लिए नहीं।

किस्सा-कहानी सुनाने की कला में जिन लोगों को कमाल हासिल होता है, वे छोटी सी छोटी मामूली बातों को भी कुछ इस तरह पेश करते हैं, कि लोग घण्टों बैठकर उनकी सुनते रहते हैं और फिर भी अतृप्त रह जाते हैं। इसी तरह अगर फिल्म अच्छी तरह प्रस्तुत की गई हो तो मामूली बात भी रोचक हो सकती है। लेकिन इसके लिए विशेष कला की आवश्यकता पड़ती है। अतः ज्यादातर वे कहानियां फिल्म के लिए पसन्द की जाती हैं जिनमें सिर्फ एक-दो ही पात्र न होकर विविध चरित्र हों, जो दर्शकों में रूचि जगाए रख सकें। इसके साथ ही एक ही घटना बहुत लम्बी न चले क्योंकि फिल्म की लम्बाई निश्चित होती है और नियत समय के अन्दर ही कहानी के साथ-साथ नृत्य, गीत सभी को स्थान देना होता है। हालांकि यह जरूरी नहीं कि फिल्म में नृत्य या गीत या हास्य ही हो। विदेशों से आने वाली फिल्मों में तो अक्सर ही नृत्य या गीत कुछ भी नहीं होता, फिर भी वह सफल रहती हैं।

हमारे यहाँ भी इस तरह की कुछ फिल्में बनी हैं, और उन्हें विशेष सफलता भी मिली है। फिर भी, हमारी फिल्में एक विषय पर केन्द्रित होने के बजाए विविध मनोरंजन प्रस्तुत करती हैं। इनमें से क्या अच्छा है और क्या होना चाहिए, इस विवाद में हमें नहीं पड़ना है। हमें सामान्य भारतीय फिल्म की कहानी का प्रचलित स्वरूप प्रस्तुत करना है पर यहीं पर यह भी स्पष्ट कर देना जरूरी है कि फिल्मी कहानी के लिए कोई सीमा बंधी नहीं है। फिल्म का माध्यम बहुत ही विस्तृत है और नित नये प्रयोग इस क्षेत्र में विशेष आवश्यकता है। इस लिए नये लेखकों को पुरानापन छोड़कर नया ही कुछ करना चाहिए, लेकिन ये ध्यान रखते हुए कि जो लिख रहे है, फिल्म माध्यम की सीमा के अन्दर रहे, उसे कैमरे द्वारा छायांकित कर सकना मुमकिन

हो। अनेक लोकप्रिय उपन्यास इसीलिए फिल्म के उपयुक्त नहीं माने जाते कि उनके विस्तार को फिल्माया नहीं जा सकता।

3.4 पटकथा

''आज का दिन तो बड़ा रोचक रहा कि कहां से बताना शुरू करें, क्या बताऊँ और क्या छोड़ दूँ ---'' इस किस्म की समस्या कभी आपके सामने अवश्य आयी होगी। फिल्म की कहानी पसन्द आ जाने के बाद निर्माता-निर्देशक के सामने भी यह समस्या आती है। कई कहानियाँ बिल्कुल उसी रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं, जैसी लेखक ने लिखी हों। किसी-किसी कहानी को अधिक आकर्षक तथा अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उसका क्रम बदलना भी पड़ सकता है।

क्रम निश्चित हो जाने के बाद यह तय करना होता है कि किस घटना को किस रूप में प्रस्तुत किया जाएगा, कौन सी बात कहाँ से शुरू होगी उसमें कौन-कौन से पात्र उपस्थित रहेंगे, क्यों रहेंगे, वे किस जगह खड़े होंगे या बैठेंगे, उनकी क्या वेशभूषा और क्या मनःस्थिति होगी- यह सारा विवरण लिखकर तैयार करने वाला व्यक्ति होता है - पटकथाकार। कहानी लेखक की अपेक्षा उसका काम ज्यादा मेहनत का होता है। कहानीकार फिल्म माध्यम को थोड़ा बहुत समझता हो तो फिल्म के उपयुक्त कहानी लिख सकता है। लेकिन पटकथाकार का काम ज्यादा तकनीकी है। उसे यह पूरा पता होना चाहिए कि फिल्म कैमरा क्या है, और उसके द्वारा कहानी के किस अंश को किस प्रकार की अभिव्यक्ति दी जा सकती है । फिल्म देखते समय आप यदि ध्यान दें तो मालूम होगा दूर खड़ी नायिका, जिसे आप अभी तक पूरा देख रहे थे, अचानक पूरे परदे पर आ गई है और अब आप सिर्फ उसका चेहरा देख पा रहे हैं। आप इस परिवर्तन को महसूस नहीं करते क्योंकि यह परिवर्तन सुखद होता है। लेकिन यह सब अचानक नहीं हो पाता। इस तरह का हर परिवर्तन पहले से लिखकर तैयार किया जाता है। हर परिवर्तन के पीछे कुछ तात्पर्य होता है उसे ध्यान में रखकर ही पटकथा लेखक ये स्थितियाँ निश्चित करता है।

इस दृष्टि से पटकथा का काम बहुत कुछ निर्देशक के काम से मिलता-जुलता है यही वजह है कि अक्सर फिल्म निर्देशक, पटकथा स्वयं ही लिखते हैं लेकिन चूँकि पटकथा लेखन अपने आप में एक कला है, कई निर्देशक दूसरे कुशल पटकथा लेखक की प्रतिभा का उपयोग करना ज्यादा पसन्द करते हैं। पटकथा में कहानी तो लिखनी

नहीं होती, सिर्फ कहानी का प्रस्तुतीकरण होता है, लेकिन तकनीकी प्रस्तुतीकरण ! चतुर पटकथाकार छोटे विषय अथवा छोटी घटना को भी अपनी कल्पना और अपनी शैली द्वारा इस प्रकार उभारता है कि फिल्म अद्वितीय बन जाती है।

विदेशों में कहानीकार की अपेक्षा पटकथाकार का महत्व अधिक माना जाता है। वह जितना लेखक होता है, उतना ही तकनीकी व्यक्ति भी। फिल्म निर्माण के हर अंग की उसे पूरी जानकारी होती है इसी कारण वह अपनी लिखी हर चीज हर बात का उपयोग निर्देशक को समझा सकता है।

पटकथा लिखने का हर पटकथा लेखक का अलग अंदाज होता है। अतः पटकथा का कोई एक ही रूप होना जरूरी नहीं। अगर हम कहानी के उस अंश की पटकथा का स्वरूप जानना चाहें, जो हम कहानी के साथ दे चुके हैं, तो उसका एक स्वरूप नीचे लिखे अनुसार हो सकता है। कहानी का अंश इस प्रकार है -

''जाने किन नाजुक क्षणों में समीर सीमा से वायदा कर बैठा था कि अब वह कभी राकेश के साथ नहीं जाएगा पर आज जब राकेश के आने का वक्त हुआ, वह बाहर जाने को तैयार हो चुका था। राकेश उसे सड़क के उस पार से आता दिखाई दिया। समीर ने हाथ हिलाकर उसका अभिनन्दन किया और बरामदे में सीमा के साथ खेल रही बच्ची को पुचकारता हुआ उछलता-कूदता चला गया। सीमा ने एक बार चाहा कि उसे पुकारकर रोक ले लेकिन फिर कुछ सोचकर चुप ही रही।''

कहानी के इस अंश को प्रारम्भ को कहानी में जहाँ निर्देशक तथा सम्पादक चाहेंगे, रखेंगे (उस अंश को जिसमें समीर सीमा से राकेश के साथ न जाने का वायदा करता है) इतने अंश की पटकथा कुछ इस प्रकार होगी -

साधारण परिवार का सोने का कमरा। समय रात लगभग दस बजे।

समीर और सीमा लांग शाट में। दोनों ने रात को सोते समय पहने जाने वाले कपड़े पहन रखे हैं।

समीर सीमा को बांह से पकड़ कर पलंग की ओर ले जाता है।

नया शॉट। मिड क्लोज! पति-पत्नी बिस्तर पर लेटे बातें कर रहे हैं। कुछ देर बात करने के बाद पत्नी, पति की बांह पर सिर रख लेती है। पति हाथ बढ़ाकर बिजली का स्विच आफ कर देता है।

इससे आगे सीन बदल जाएगा। पटकथा मे नये सीन की संख्या

दी जाएगी। लांग शाट में समीर। समय शाम पांच बजे। स्थान - अन्दर का कमरा। समीर कपड़े बदल रहा है। कट। नया शॉट क्लोज अप- समीर का शीशे मे अक्स। वह बालों में कंघी कर रहा है। कट।

नया सीन। वही समय। शॉट का नम्बर। स्थान - दूर तक जाती हुई लम्बी सड़क। कैमरा 'पैन' होता है। सड़क के दूसरी तरफ क्लोज अप। वह मुस्कराकर हाथ हिलाता हुआ दिखाई देता है। कट। शॉट का नम्बर। समीर का क्लोज अप। स्थान- उसके घर की खिड़की। खिड़की के बाहर देखता हुआ वह जवाब में हाथ हिलाता है। कट।

सीन का नम्बर। लांग शाट। स्थान - घर का बरामदा। वही समय। बरामदे में सीमा खड़ी है। बच्ची उसकी साड़ी पकड़कर खड़ी होने की कोशिश में है। दरवाजे से समीर आता है। झुककर बच्ची को थपथपाता हुआ तेजी से चला जाता है। कट।

नया शाट! सीमा का क्लोज अप। वह कुछ कहना चाहकर फिर चुप ही रह जाती है।

अपने-अपने ढंग के मुताबिक अलग-अलग लेखक इन स्थितियों को कुछ अलग ढंग से लिखेंगे। उन सबके स्टाइल में समानता होना जरूरी नहीं है।

हमारे देश में अच्छे पटकथा लेखकों का गहरा अभाव है। कारण यह है कि फिल्म की कहानी सोच लेना या लिख लेना तो आसान है, इसका प्रभावशाली तकनीकी प्रस्तुतीकरण मुश्किल । कई बार ऐसे लोग फिल्म के लिए बढ़िया कहानी लिख जाते हैं जिन्हें पहले कोई जानता भी नहीं थे। लेकिन पटकथा लेखन एक तकनीक है जिसे सीखना पड़ता है और उसके बाद अपनी कल्पना के सहारे सजाना भी होता है।

इसलिए पटकथा लेखन के क्षेत्र में उन्हीं को आना चाहिए जो जमकर कुछ समय कुछ सीखने के बाद काम शुरू करने का धैर्य रखते हों और उन्हें लेखन में प्रयोगों के प्रति लगाव हो। एक बार कहानी बेचने या पटकथा लेखन के क्षेत्र में आकर भाग्य आजमा देखने की बात यहाँ नही चलती।

3.5 संवाद

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अथवा पुस्तक में दी गई कहानी का आनन्द पढ़ कर लिया जाता है। फिल्म में कहानी देखने के साथ सुननी होती है। यहाँ कहानी किसी वर्णनात्मक ढंग से नहीं, बल्कि दृश्यों, पात्रों के क्रिया कलापों, उनकी भाव-भंगिमाओं तथा संवादों द्वारा स्पष्ट

होती चलती है। प्रकाशित कहानियों में भी कभी-कभी बीच में संवाद होते हैं। फिल्म सिर्फ संवादों से ही आगे नहीं बढ़ती यह ठीक है लेकिन संवादों का अपना अलग महत्व है। जिस तरह सिर्फ संवादों से कहानी आगे नहीं बढ़ सकती, बिना संवादों के भी फिल्म को स्पष्ट कर सकना संभव नहीं।

अतः संवाद लेखक का प्रमुख काम ही दी हुई कहानी को इस प्रकार संवादों में बदलना है कि वे परिस्थितियों के अनुकूल कथाक्रम को आगे बढ़ाते रहे। संवाद लेखक की सफलता इसी बात में है कि वह सीधीसादी बात रोचक ढंग से कह और संक्षेप में कहे। फिल्म माध्यम में सिर्फ भाषा का महत्व नहीं है। वहां अभिनेता-अभिनेत्रियों द्वारा प्रदर्शित आंख का एक जरा सा इशारा संवाद से ज्यादा बात कह जाता है। अतः जहाँ चेहरे या चेष्टाओं से कुछ कहा जा सकता हो, वहाँ जबरन संवाद रखने के आग्रह से उसे मुक्त होना चाहिए।

संवाद लेखक को एक बात हमेशा ध्यान में रखनी होती है। पात्रानुकूल भाषा। गांव वाला अगर अपने पड़ोसी से बात करेगा तो कैसी भाषा बोलेगा और वही व्यक्ति किसी शहर वाले से बोलते समय किस तरह बदल जाएगा- यह बारीकियाँ उसे ख्याल में रखनी पड़ती है।इसके अलावा उसे यह भी अंदाज होना चाहिए कि देश के किस भाग में भाषा किस तरह बदल जाती है। पंजाबी में बोली जाने वाली हिन्दी का स्वरूप महाराष्ट्र अथवा मद्रास में बोली जाने वाली हिन्दी से मिल रहा होगा। संवाद लिखते समय उसे इस बात का पूरा अहसास होना चाहिए।

इन बातों को ध्यान में रखकर और कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात रोचक ढंग से कह सकने की क्षमता पैदा करके नये लेखक संवाद लेखन के क्षेत्र में अपने लिए अवश्य जगह बना सकते हैं। हास्य दृश्यों में शब्दों का जरा सा फेरबदल मुस्कान को, कहकहों में बदला जा सकता है और करूण दृश्यों में कभी-कभी एक ही शब्द आंखों से आंसू निकलवाने की सामर्थ्य रखता है। स्थिति अनुसार शब्दों के चयन का यह कमाल संवाद लेखक को आना चाहिए।

संवाद लेखन का काम पाने के लिए निर्माता के साथ-साथ कहानी अथवा पटकथा लेखकों से सम्पर्क करना उचित होता है। पटकथा लेखक यदि यह समझे कि उसकी पटकथा को आप अपने संवादों से सजा सकेंगे तो वह आपकी सहायता करेगा। संवाद लिखने की कला आ जाने पर पटकथा लेखन को समझना आसान हो जाता है और मेहनती संवाद लेखक कहानी अथवा पटकथा लेखन के क्षेत्र में

जाकर और अधिक उन्नति कर सकता है।

आमतौर पर संवाद लेखकों को पारिश्रमिक पूरी फिल्म के लिए अनुबन्ध कराकर ही दिया जाता है लेकिन कुछ सुनियोजित निर्माण-संस्थाओं में संवाद लेखक वेतन के आधार पर भी रखे जाते हैं। कुछ निर्माता-निर्देशक अपनी फिल्म के संवाद खुद ही लिखते हैं।

3.6 गीत

विदेशी फिल्मों की बात छोड़ दीजिए, पर भारतीय फिल्मों में गीत को विशेष महत्व का स्थान प्राप्त है। गीत में जितना महत्व धुन का है, शब्दों की महत्ता उससे कम नहीं। यह गीत की धुन नहीं, शब्द ही होते हैं जो जनता को भाव-विह्वल कर जाते है।

जिस तरह फिल्म लेखन का हर क्षेत्र फिल्म तकनीक के साथ जुड़ा है, गीत-लेखन भी उसे जोड़ने वाली जंजीर की एक कड़ी है। लेकिन इसकी मांगें दोहरी है। जहाँ एक ओर भाषा तथा भावों का ध्यान रखना होता है वहीं दूसरी ओर संगीत की सम्यक् जानकारी भी जरूरी है। यही वजह है कि बाहर के क्षेत्रों से बम्बई आकर फिल्म गीतकार बनने की कोशिश करने वाले अधिकांश कवि असफल होकर लौट जाते है और असफलता का दोष फिल्म उद्योग को दिया जाता है।

कवि की पहुँच के सामने सूर्य को भी फीका बताया गया है। लेकिन फिल्मी गीतों में यह कल्पना इतनी ऊँची न हो कि उसको समझना मुश्किल पड़ जाये। फिल्म देखने अच्छे, पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी वर्ग से लेकर ठेठ मजदूर वर्ग तक सभी तरह के लोग आते हैं । अतः गीत ऐसा होना चाहिए जिसकी भाषा जन-साधारण के समीप हो और जिसमें बात को कल्पनापूर्ण ढंग से कहा गया हो।

जिस तरह संवाद लेखक को इस बात का ख्याल रखना होता है कि वह जो भाषा लिख रहा है, वह उसके पात्रों के सामाजिक तथा शिक्षा स्तर के अनुकूल है या नहीं ठीक उसी तरह गीत लेखक को भी इसका ध्यान रखना जरूरी है। कई बार यह देखने में आता है कि भोजपुरी ढंग की हिन्दी बोलने वाली नायिका ठेठ उर्दू में प्रेम तराना पेश कर रही है। इससे गीत चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, फिल्म का क्रम टूटता सा लगता है। दर्शक को एकदम झटका सा मालूम होता है, और वह अपने को इस नई स्थिति से अलग महसूस करता है। अतः अक्सर उठकर उतनी देर के लिए बाहर चला जाता है। जितनी देर वह नई स्थिति चलती रहती है। कहानी का क्रम फिर शुरू

होने पर वह लौटता है।

इसलिए गीत की भाषा, भावप्रदर्शन के चक्कर में पात्र की भाषा से अलग नहीं जा छिटकनी चाहिये सिर्फ भाषा का चमत्कार प्रस्तुत करने में कभी-कभी यह भी होता है कि वे सिर्फ शब्द भर रह जाते हैं, उनका कोई अर्थ नहीं होता । इस प्रकार के गीत बेकार होते हैं। अतः जो लोग फिल्मी गीत लिखने के शौकीन हों, उन्हें अपने प्रति यह विश्वास होना चाहिए कि वे सिर्फ शब्दों का खिलवाड़ करके भाव तथा भाषा का मनोहर संगम प्रस्तुत कर सकेंगे।

फिल्मी गीत कवि के भावों की अभिव्यक्ति के लिए नहीं, पात्र की मनोदशा व्यक्त करने के लिए होता है। कई जगह गीत, समय का बहाव दिखाने के लिए रखा जाता है। यदि कहानी में लिखा है कि इसके बाद राधा और कृष्ण रोज-रोज मिलने लगे, तो यह रोज-रोज का मिलना भी गीत के माध्यम से दिखाया जा सकता है।

फिल्मों में जो लोग गीत लिखते हैं उसके दो ढंग हैं। एक तो यह कि पटकथाकार/निर्देशक वे परिस्थितियाँ गीतकार के सम्मुख स्पष्ट कर देता है, जिनके अन्तर्गत कोई पात्र गीत गा रहा है। परिस्थितियों के अनुसार यह सिर्फ प्रेम अभिव्यक्ति के लिए नायक अथवा नायिका के द्वारा गाया जा रहा प्रेम-गीत हो सकता है। जिसका कहानी के विकास से कोई सम्बन्ध नहीं । यह रहस्यमय ढंग का गीत भी हो सकता है जो किसी भावी घटना के सम्बन्ध में कोई इशारा करता हो या फिर बच्चे को बहलाने, सुलाने के लिए मीठी लोरी भी हो सकती है अर्थात जो भी परिस्थिति दी गई है, गीतकार उसके अनुरूप ही गीत लिखकर तैयार करता है और फिर संगीतकार उसे किसी मोहक धुन में बांधता है।

दूसरा तरीका यह है कि पहले संगीतकार कोई धुन बनाता है जो स्थिति के अनुसार उदासी, मस्ती, ममता आदि भावों के अनुरूप होती है। फिर गीतकार उस धुन के उपयुक्त शब्द चयन करके ऐसा गीत लिखता है जो कि आवश्यक भाव भी व्यक्त करता हो और समझने में सरल हो। इस स्थिति में गीतकार की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। उसे शब्द, भाव व स्वर - तीनों का मोहक मेल देना होता है अतः गीत लेखन के क्षेत्र में आने के इच्छुकों को दोनों स्थितियों में सर्वोत्तम प्रदर्शन के लिए तैयार रहना चाहिए।

यह एक हद तक सही है कि हर गीतकार का अपना प्रिय छंद एक होता है या दो-तीन। लेकिन फिल्मी गीतों में विविधता के लिए कई छंद चाहिए। जो लेखक को संगीत-निर्देशक की धुन से मिलते हैं।

फिल्मों के लिए गीत लिखना कविता लिखने जैसा नहीं होता। इसमें माधुर्य और सरलता के साथ साथ दर्शकों की नब्ज तथा आम आदमी के व्याकरण का ज्ञान होना भी जरूरी होता एक सफल गीतकार वही है। जिसके गीत इतने सहज हों कि लोगों की जुबान पर चढ़ सकें, इतने सरल हों कि सभी की समझ में आ सकें तथा ऐसा वर्णन उपस्थित करें जो फिल्म की भाषा और सिचुएशन के अनुकूल हो।

3.7 फिल्म की भाषा

फिल्म की भाषा का अपना वैशिष्टय होता है। इसमें कहानी के अनुसार शब्दों का चयन किया जाता है । जैसा फिल्मांकित परिवेश होता है उसी के अनुरूप उसकी भाषा भी होनी चाहिए। आम फिल्मों की भाषा पर मुंबइया असर साफ देखा जा सकता है।

फिल्मों ने अनेक ऐसे शब्दों को लोगों की जुबान पर चढ़ा दिया है जो व्याकरण की दृष्टि से भले ही स्वीकार्य नहीं हों पर लोकप्रियता के स्तर पर स्वीकार्य हैं। अपुन, आमची, खोखा, पेटी, बंकस, बंडल जैसे शब्द व्याकरण की किताबों से नहीं निकले हैं । यह नितान्त स्थानीय मुम्बई में हिन्दी बोलने वालों द्वारा प्रयुक्त शब्द है। लेकिन फिल्मों ने इन्हें न केवल लोकप्रिय बना दिया है वरन् दूर-दूर तक इनका प्रसार भी कर दिया है।

लेकिन फिल्म की भाषा केवल स्थानीय बोलचाल का ही अनुसरण नहीं करती। पीरियड फिल्मों की भाषा उसके परिवेश के अनुकूल होनी चाहिए। जैसे जोधा-अकबर, मुगले आजम, अनारकली, ताजमहल, आदि फिल्मों में मुगलकालीन परिदृश्य चित्रित है। अतः इन फिल्मों में उर्दू-फारसी मिश्रित शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

फिल्म की भाषा का महत्वपूर्ण आइना उसके संवाद हैं। संवाद ऐसे हों जो लोगों की जुबान पर आसानी से चढ़ सकें। लोग अनेक संवादों को काफी समय तक नहीं भूल पाते। जैसे फिल्म पाकीजा का संवाद 'आपके पैर बहुत खूबसूरत हैं इन्हें जमीन पर मत उतारिएगा मैले हो जाएंगे।' उर्दू की नजाकत को अभिव्यक्त करता संवाद है जो काफी लोकप्रिय हुआ है। इसी तरह शोले फिल्म का अमर चरित्र गब्बर सिंह अपने संवाद और उसमें प्रयुक्त शब्दों की वजह से विशिष्ट पहचान रखता है।

फिल्म की भाषा में पंचलाइन तथा तकिया कलाम का भी विशेष महत्व होता है कई चरित्रों के द्वारा प्रयुक्त तकिया कलाम दर्शकों द्वारा इतने पसन्द कर लिए जाते हैं कि वह उनकी सफलता

का कारण बन जाते हैं। भारतीय फिल्मों में खल-चरित्रों के साथ इस तरह की भाषा के प्रयोग का काफी प्रचलन है। मिस्टर इण्डिया फिल्म में 'मोगेम्बो खुश हुआ' एक प्रसिद्ध तकिया कलाम है। इसी प्रकार अजीत का 'मोना डार्लिंग' इतना लोकप्रिय हुआ कि उसका अनेक फिल्मों में प्रयोग किया गया।

फिल्म में जो दो विधाएं उच्चारण से रंग जमाती हैं वह संवाद तथा गीत हैं। संवाद की भाषा सहज, सरल होने के साथ-साथ नाटकीयता के तत्वों से भी भरपूर होनी चाहिए। आंचलिक फिल्मों में आंचलिक शब्दों का विशेष महत्व होता है।

गीत की भाषा मधुर तथा संगीत के अनुकूल होनी चाहिए। फिल्मी गीत आम आदमी के गीत है। इसमें बिम्ब से ज्यादा सहजता मायने रखती है। अधिकांश गीतकार जो फिल्मों में सफल रहे हैं उनकी कोई साहित्यिक पृष्ठभूमि नहीं रही है। लेकिन सहजता तथा लय की पकड़ से उन्होंने अपार सफलता अर्जित की।

फिल्म की भाषा का अपना वैशिष्ट्य होता है जिसका उत्तरदायी लोगों को हमेशा ध्यान रखना चाहिए। भाषा संबंधी दोष फिल्म की लय को बाधित कर सकते हैं अतः फिल्म की भाषा पर भी व्यापक ध्यान देना आवश्यक होता है।

3.8 संवाद दृश्य संयोजन

फिल्म में संवाद का दृश्य के साथ तालमेल बेहद महत्वपूर्ण होता है। फिल्म के परिवेश के अनुकूल संवाद ही स्वीकार्य होते हैं। उमराव जान फिल्म तवायफों की पृष्ठभूमि पर आधारित है। अतः इसमें उर्दू मिश्रित शब्दावली कर्णप्रिय लगती है। फिल्म के संघर्षमूलक दृश्यों में भी परिवेश की नजाकत का विशेष ध्यान रखा गया है तथा उनमें भी ऊँची आवाजों या स्तरहीन चिल्लाहट का प्रयोग नहीं है।

इसी प्रकार शोले फिल्म डाकुओं की पृष्ठभूमि पर आधारित है। बिना पढ़े-लिखे पिछड़े समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले दृश्यों में नाटकीयता की भरपूर गुंजाइश है अतः संवाद भी हंगामेदार हैं। गब्बर सिंह की क्रूरता उभारने में संवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब वह कहता है 'अरे ओ सांभा' तो दर्शकों को कुछ नया और नाटकीय दृश्य आने का आभास हो जाता है।

वस्तुतः दृश्य और संवाद की केमिस्ट्री फिल्म की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसीलिए कई बार निर्देशक गाली-गलौज वाली भाषा का भी प्रयोग करने से गुरेज नहीं करते। फिल्म

'बैन्डिट क्वीन' में शेखर कपूर ने बुन्देलखण्डी गालियों का पूरा उपयोग किया है । फिल्म को व्यापक सराहना मिली, भले ही संवाद सभ्य समाज में सुने जाने योग्य नहीं थे।

3.9 उपसंहार

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि फिल्म निर्माण की योजना में लेखन की महत्पूर्ण भूमिका होती है। निर्देशक, कहानी लेखक के साथ मिलकर फिल्म की योजना तैयार करता है, उसके बाद पटकथा लेखक की मदद से फिल्म का दृश्यवार खाका विकसित होता है। संवाद तथा गीत-लेखन फिल्म को अपेक्षित माधुर्य तथा गति प्रदान करते है। अतः कहा जा सकता है कि लेखन, फिल्म निर्माण के बुनियादी कामों में से एक है।

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

(1) स्टोरी बोर्ड - ड्राइंग्स की शृंखला जिसके साथ विवरण भी लिखा हो। किसी प्रस्तावित फिल्म विज्ञापन या फीचर की मूल कथा का चित्रांकन । किसी मूवी के प्रसारण से पूर्व उसके कथ्य को ग्राफिक चित्रों, रेखाचित्रों तथा कहे जाने वाले शब्दों के साथ प्रसारण हेतु स्वीकृति के लिए अग्रिम रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

(2) फिल्मोग्राफी - फिल्म उद्योग का विधिवत् क्रमवार अध्ययन और वर्षवार सूची बनाना। किसी खास कलाकार या निर्देशक के समस्त कार्यों का लेखा-जोखा।

(3) फाइन कट - किसी संपादित फिल्म का अंतिम प्रिण्ट जो रिलीज के लिए तैयार है।

(4) फ्लोर मैनेजर- मंच निर्देशक । स्टूडियो फ्लोर पर निर्देशक का प्रतिनिधि।

(5) फ्लोरिंग स्क्रीप्ट - फिल्म उद्योग में उस स्क्रिप्ट के लिए प्रयुक्त जो बाजार में इधर-घूम रही हो और जिसे खरीदने वाला कोई प्रोड्यूसर अभी तक नहीं मिला हो।

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

(1) अरूणा वासुदेव - द इण्डियन सिनेमा

(2) मनोहर श्याम जोशी - पटकथा लेखन

(3) डॉ. अर्जुन तिवारी - ई-जर्नलिज्म

3.12 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) फिल्म के लिए लेखन के विविध रूपों की चर्चा कीजिए।

(2) फिल्म की भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) स्टोरी बोर्ड क्या है?

(2) संवाद और दृश्य संयोजन क्यों जरूरी है?

(3) पटकथा से आप क्या समझते है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) बैन्डिक्ट क्वीन के निर्देशक हैं -

(क) अनुराग कश्यप (ख) शेखर कपूर

(ग) सत्यजीत रे (घ) मृणाल सेन

(2) सलीम-जावेद की प्रसिद्धि रही है -

(क) फिल्म गीतकार के रूप में (ख) फिल्म निर्देशक के रूप में

(ग) फिल्म लेखक के रूप में (घ) इनमें से कोई नही।

(3) निम्न में से कौन सा गीतकार कवि के रूप में लोकप्रिय नहीं था-

(क) कैफी आजमी (ख) नीरज

(ग) आनन्द बक्शी (घ) शकील बदायुनी

(4) कौन सी फिल्म फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी पर आधारित रही है-

(क) मिल (ख) लीडर

(ग) तीसरी कसम (घ) जागते रहो

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

1. ख
2. गे
3. ग
4. ग

इकाई -4 एवं 5 (संयुक्त) उत्तर प्रदेश फिल्म नीति उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद्

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उत्तर प्रदेश फिल्म नीति (संशोधित) 2001
4.3 रणनीति
4.4 परिभाषा
4.5 अवस्थापना
4.6 फिल्मों का प्रदर्शन
4.7 मनोरंजन - कर में कमी
4.8 बहु - सामुच्य (मल्टीप्लेक्सेज)
4.9 बंद छविगृहां को पुर्नजीवित करना
4.10 वर्तमान छविगृहों का उच्चीकरण
4.11 नए छविगृहों की स्थापना
4.12 भूमि
4.13 कैप्टिव विद्युत उत्पादन
4.14 छविगृहों को उद्योग का दर्जा
4.15 वैधानिक संशोधन
4.16 उपकरण
4.17 शूटिंग स्थलों का विकास
4.18 कलाकारों तथा तकनीशियनों का प्रशिक्षण
4.19 फिल्म इकाइयों के लिए आवासीय सुविधा
4.20 सरकारी हवाई पट्टियों का प्रयोग
4.21 फिल्मों का वित्त - पोषण
4.22 वित्तीय प्रोत्साहन
4.23 क्षेत्रीय फिल्में
4.24 प्रशासनिक सुविधाएं
4.25 फिल्मों का प्रचार-प्रसार
4.26 उत्तर प्रदेश फिल्म नीति के महत्वपूर्ण बिन्दु
4.27 सारांश
4.28 शब्दावली
4.29 संदर्भ ग्रन्थ
4.30 सम्बन्धित प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप जान सकेंगे -

(1) उत्तर प्रदेश शासन की फिल्म नीति क्या है

(2) उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् के सम्बन्ध में

(3) उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् ने क्या रणनीति बनाई है

(4) फिल्म अवस्थापना की क्या नीति है

(5) फिल्म निर्माण के लिए क्या सुविधाएं दी जा रही हैं

4.1 प्रस्तावना

जब हम फिल्म उद्योग से सम्बन्धित संख्याओं का अध्ययन करते हैं तब हमें, इस बात का पता चलता है किसी भी स्वतंत्र फिल्म निर्माता को किस तरह कार्य करना होता है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने 1999 में फिल्म नीति की घोषणा की थी उसी के साथ उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् का गठन किया गया था, जिसमें निम्नलिखित सदस्य थे-

(1) मुख्य सचिव कार्यकारी अध्यक्ष

(2) उद्योग बन्धु निर्देशक - 1

(3) सूचना सचिव - 1

(4) संस्थागत वित्त सचिव

(5) पर्यटन सचिव

(6) उद्योग सचिव

(7) भारतेन्दु नाट्य अकादमी - निदेशक

इसके अतिरिक्त फिल्म उद्योग से सम्बन्धित प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों को, जैसे, फिल्म अभिलेखागार, इंडियन मोशन पिक्चर एसोसियेशन- द्वारा यूबीआई के प्रतिनिधि शामिल किये गये थे। इसके साथ लब्ध प्रतिष्ठित फिल्म निर्माता निर्देशक, वितरक, वित्त पोषक संस्थाओं के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया गया था।

कुछ महत्वपूर्ण सदस्यों के नाम हैं -

संतोष सिंह जैन	वितरक
शक्ति सामंत	निर्माता
सुरेन्द्र कपूर	निर्माता
पहलाज निहलानी	निर्माता

मुजफ्फर अली	निर्देशक
राजा बुन्देला	कलाकार
राजकृष्ण मिश्र	लेखक, निर्माता, निर्देशक
अध्यक्ष	कमलेश्वर

तत्पश्चात् उपरोक्त फिल्म विकास परिषद् को भंग करते हुए, मुख्यमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने सम्भवतः राजनैतिक कारण से शत्रुघन सिन्हा को बी. आर. फिल्म विकास परिषद् का अध्यक्ष बना दिया और फिर से सदस्य नामांकित किए गये। वर्तमान समाजवादी पार्टी सरकार ने उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद का पुर्नगठन करते हुए एक बार पुनः शत्रुघन सिन्हा के स्थान पर जया बच्चन को अध्यक्ष बना दिया । इस प्रकार फिल्म विकास परिषद्, राजनीति के खिलाड़ियों के लिए मैदान बन चुका है। फिल्म नीति के पोषण के लिए समस्त उत्तर प्रदेश में प्रत्येक सिनेमा टिकट पर पचास पैसे का एक टैक्स लगाया गया है जिससे करीब 10 करोड़ रूपया सालाना आता है।

4.2 उत्तर प्रदेश फिल्म नीति (संशोधित)-2001

बीसवीं शताब्दी में सिनेमा भारतवर्ष में सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन के एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया। मनोरंजन - उद्योग होने के नाते इसने देश के लोगों के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित किया तथा जन संस्कृति के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक अनुमान के अनुसार लगभग एक करोड़ पचास लाख भारतीय प्रतिदिन देश में फैले लगभग 13,000 छविगृहों में सिनेमा देखने जाते हैं। इसके अतिरिक्त सिनेमा एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि का रूप धारण कर चुका है तथा उन राज्यों में जहाँ इस उद्योग का यथेष्ट विकास हुआ है, लगभग दस लाख लोग इस उद्योग में नियोजित है। विगत सत्तर वर्षों के दौरान फिल्मों के माध्यम से बड़ी संख्या में दर्शकों को मनोहारी दृश्यों तथा संस्कृति से अवगत करा कर, इस सशक्त माध्यम ने पर्यटन को प्रोत्साहित करने में प्रमुख भूमिका निभाई है। निःसन्देह भारतीय फिल्में ने केवल स्वदेश में बल्कि विदेशों में भी समकालीन भारत की छवि बनाने में सहायक हुई हैं। दिनों-दिन सिनेमा के महत्व को सर्वत्र स्वीकार किया जाने लगा है। हाल ही में भारत सरकार ने फिल्मों को उद्योग का दर्जा प्रदान करने का निर्णय लिया है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इस प्रकार का निर्णय 1998 में ही लिया जा चुका था। 21वीं सदी में फिल्म मनोरंजन ही नहीं बल्कि रोजगार, सामाजिक चेतना व संस्कृति के विकास के लिए और भी ज्यादा सशक्त माध्यम बनेगा।

भारतीय सिनेमा के इतिहास में उत्तर प्रदेश की महत्वपूर्ण

भूमिका रही है। इस प्रदेश ने फिल्म उद्योग को कई ख्यातिप्राप्त फिल्म निर्माता, निर्देशक कलाकार, गीतकार, संगीतकार तथा कथा/पटकथाकार दिये हैं। उत्तराखण्ड बन जाने के बाद भी प्रदेश के विशाल भू-भाग में फिल्म निर्माण की विपुल संस्कृति - धरोहर मौजूद है। जो प्रदेश के गौरवशाली इतिहास इसकी वैभवपूर्ण वास्तुकला तथा स्थानीय संस्कृतियों की विविधता आदि सभी फिल्म निर्माण के लिए आवश्यक तत्व उपलब्ध कराते हैं। यद्यपि वर्ष 1999 में फिल्म नीति की घोषणा की गयी थी तथापि इसमें अन्य आवश्यक सुसंगत प्राविधानों की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए कतिपय संशोधन एवं सतत् क्रियान्वयन की आवश्यकता महसूस की जा रही है ताकि उ.प्र. में उपलब्ध असीम संभावनाओं को फिल्मांकित करने का समुचित उपयोग हो सके।

परिदृश्य में आवश्यकता इस बात की है कि इन सभी मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया जाय तथा उपयुक्त वातावरण सृजित किया जाए। जिससे कि उत्तर प्रदेश में न केवल बड़े पैमाने पर शूटिंग का कार्य सम्पन्न हो सके बल्कि फिल्म निर्माण के विभिन्न पक्षों से जुड़ी गतिविधियों का भी समग्र विकास हो सके। इस नीति का उद्देश्य उत्तर प्रदेश में फिल्म उद्योग के समग्र विकास हेतु एक सुसंगठित ढांचा एवं उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराना है।

उद्देश्य

- उत्तर प्रदेश को फिल्म निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में विकसित किया जाना।
- प्रदेश के अदभुत, मनोहारी तथा रमणीय पर्यटन स्थलों के बारे में जानकारी देना एवं पर्यटकों को आकर्षित करना।
- प्रदेश की सांस्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक विरासत एवं गौरवशाली परम्परा को देश एवं विदेश में प्रचारित व प्रसारित करना।
- प्रदेश में अभिनय व फिल्म निर्माण की प्रतिभाओं को विकास के अवसर देना।
- प्रदेश में रोजगार सृजन के अवसर उपलब्ध कराना।
- फिल्म उद्योग के माध्यम से अतिरिक्त पूँजी निवेश आकर्षित करना।
- देश एवं प्रदेश की जनता को स्वस्थ व अपेक्षाकृत सस्ता मनोरंजन उपलब्ध कराना।

4.4 परिभाषा

फिल्मों की परिभाषा वही होगी, जो भारतीय सिनेमेटोग्राफी अधिनियम में दी गयी है।

4.5 अवस्थापना

फिल्मों के लिए एक विशिष्ट प्रकार की अवस्थापना की आवश्यकता होती है। राज्य सरकार द्वारा निजी तथा संयुक्त क्षेत्र में इस प्रकार की अवस्थापना के सृजन को बढ़ावा दिया जायेगा। निजी क्षेत्र में इस प्रकार की अवस्थापना के उपलब्ध होने तक राज्य सरकार यथासम्भव विद्यमान कमियों को अपने प्रयासों से दूर करने का प्रयत्न करेगी।

फिल्मों के विकास के लिए आवश्यक अवस्थापना को सामान्य तौर पर निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

- शूटिंग तथा फिल्म निर्माण के लिए अवस्थापना जैसे स्टूडियो एवं प्रोसेसिंग प्रयोगशालाएं।
- फिल्म प्रदर्शन के लिए अवस्थापना ।
- उपकरण
- कलाकारों, तकनीशियनों तथा विशिष्ट क्षेत्रों में विशेषज्ञता की प्रशिक्षण सुविधाएं।

शूटिंग / फिल्म निर्माण हेतु अवस्थापना

फिल्म सिटी

उत्तर प्रदेश द्वारा एक दशक पूर्व नोएडा में फिल्म सिटी का विकास किया गया था, जो शनैः शनैः अब उत्तर भारत में बन रहे टी वी सीरियल्स की शूटिंग का प्रमुख केन्द्र बन गया है। उद्योग के परामर्श से राज्य सरकार द्वारा इस मौजूदा फिल्म नगरी में उपलब्ध सुविधाओं का विस्तार किया जायेगा ताकि यह फिल्म नगरी उत्तर भारत में फिल्म निर्माण के केन्द्रबिन्दु के रूप में विकसित हो सके।

प्रदेश में उपलब्ध सम्भावनाओं का पूर्ण दोहन सुनिश्चित करने के लिए विशेषज्ञ एजेन्सी के माध्यम से एक सम्भाव्यता अध्ययन कराया जाएगा। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य निजी क्षेत्र में नवीन फिल्म नगरी/नगरियों/फिल्म लेबोरेटरी की स्थापना के लिए सम्भावनाओं का मूल्यांकन करना होगा। यह अध्ययन फिल्म बन्धु द्वारा कराया जाएगा तथा इसकी रिपोर्ट के आधार पर एक विस्तृत परियोजना रिपोर्ट तैयार कर उसे क्रियान्वयन हेतु निजी क्षेत्र को प्रस्तुत किया जायेगा। प्रत्येक कैलेण्डर वर्ष के लिए भी विस्तृत कार्य योजना बनायी जायेगी।

राज्य सरकार इस फिल्म नगरी/नगरियों की स्थापना में सहयोग करेगी और इसके लिए औद्योगिक दरों पर भूमि उपलब्ध करायेगी तथा सहायक अवस्थापना के सृजन में भी सक्रिय योगदान देगी। सुरक्षा की दृष्टि से फिल्म नगरी में पुलिस थाना स्थापित करने में भी

सरकार अपना योगदान करेंगी। पुलिस थाना, अग्नि शमन केन्द्र सम्पर्क मार्ग तथा बाह्य जल निकासी आदि भौतिक अवस्थापनाओं का विकास राज्य सरकार के माध्यम से किया जायेगा।

स्टूडियोज/ लैब्स

जब तब प्रदेश में पूर्ण रूप से क्रियाशील फिल्म नगरी की स्थापना नहीं हो जाती तब तक स्टूडियोज तथा प्रयोगशालाओं की स्थापना को राज्य सरकार द्वारा बढ़ावा दिया जायेगा। इनकी स्थापना हेतु राज्य सरकार की संस्थाओं के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराने के अतिरिक्त क्षेत्रीय फिल्मों के लिए इस नीति के अन्तर्गत अनुमन्य अनुदान योजना से उन्हें सम्बद्ध किया जाएगा, ताकि प्रदेश में स्थापित स्टूडियोज/ प्रयोगशालाएं लाभान्वित हो सकें।

4.6 फिल्मों का प्रदर्शन

टी.वी., वी.सी.आर. और केबिल नेटवर्क के सशक्त प्रवेश से फिल्म उद्योग बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। सिने दर्शकों की संख्या में कमी आने के फलस्वरूप बड़ी संख्या में छविगृह बन्द हो गये हैं और कार्यरत छविगृहों के रख-रखाव तथा उनकी सेवाओं का ह्रास हुआ है। फिल्म उद्योग के समग्र विकास हेतु उच्च श्रेणी की सिनेमा प्रदर्शन सुविधाएं आवश्यक है। किन्तु सिने दर्शक केवल उसी दशा में छविगृहों की ओर आकर्षित होंगे, जब छविगृहों में फिल्म देखने का अनुभव घर में फिल्म देखने की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न हो। इसलिए राज्य सरकार, द्वारा छविगृहों में भौतिक सुख-साधन तथा प्रौद्योगिकी के उच्चीकरण को प्रोत्साहित करने हेतु वर्तमान छविगृहों के उच्चीकरण हेतु विशेष योजना बनायी जायेगी।

4.7 मनोरंजन - कर में कमी

राज्य सरकार द्वारा फिल्म नीति के अन्तर्गत प्रदेश में फिल्म उद्योग को अधिकाधिक प्रोत्साहित करने व जनता को सस्ती दरों पर मनोरंजन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सिनेमा टिकटों पर मनोरंजन कर 100 प्रतिशत से घटाकर 60 प्रतिशत कर दिया गया है। मनोरंजन कर की दरों में कमी से जनता को मनोरंजन सस्ती दरों पर उपलब्ध हो सकेगा, जिससे सिनेमा दर्शकों की संख्या में भारी वृद्धि हो सकेगी। भविष्य में भी इसके उदारीकरण पर विचार किया जा सकता है।

4.8 बहु - सामुच्य (मल्टीप्लेक्सेज)

बहु- सामुच्य (मल्टीप्लेक्सेज) फिल्म प्रदर्शन की नवीनतम विधि है, जो कि तकनीकी दृष्टि से अत्यधिक विकसित है। उत्तर प्रदेश में ऐसे मल्टीप्लेक्सेज की स्थापना जिसमें कम-से-कम तीन सिनेमागृह सम्मिलित हों, को प्रोत्साहित किया जायेगा। राज्य द्वारा 1.5 करोड़ रूपये से अधिक निवेश वाले 'मल्टीप्लेक्सेज' को मनोरंजन कर में प्रथम वर्ष में शत प्रतिशत, द्वितीय एवं तृतीय वर्षों में क्रमशः 75-75 प्रतिशत छूट दी जायेगी।

4.9 बंद छविगृहों को पुनर्जीवित करना

लम्बे समय से बंद पड़े छवि गृहों को पुनर्जीवित करना राज्य सरकार की प्राथमिकता होगी। संबंधित शासनादेश में निर्धारित अवधि से बंद पड़े छविगृह यदि पुनः खुल जाते हैं तो उन्हें मनोरंजन कर में तीन वर्षों के लिए 30 प्रतिशत की छूट दी जाएगी।

4.10 वर्तमान छविगृहों का उच्चीकरण

सिनेमा हालों में फिल्मों को देखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान छविगृहों में उपलब्ध सुविधाओं तथा तकनीकों का आधुनिकीकरण एवं उच्चीकरण किया जाए। छविगृहों में बेहतरीन आधुनिक ध्वनि प्रणाली एअर कण्डीशनिंग, एअर कूलिंग, जेनरेटर सेट क्रय तथा वृहद नवीनीकरण हेतु मनोरंजन कर उपादान की नवीन योजना लागू की जाएगी, जिसके अन्तर्गत छविगृह-स्वामी को उपरोक्त सुविधाओं पर किए गये निवेश के 50 प्रतिशत की अधिकतम सीमा तक मनोरंजन कर जो इस सुविधा के बाद अतिरिक्त रूप से जमा किया जायेगा, अनुदान के रूप में अपने पास रखने की अनुमति पूर्व वर्ष में जमा जमा किये गये मनोरंजन कर राजस्व के बराबर राजस्व शासकीय कोषागार में जमा करने के पश्चात् दी जायेगी।

4.11 नए छविगृहों की स्थापना

राज्य सरकार द्वारा नये सिनेमागृहों की स्थापना को प्रोत्साहन देने हेतु पूर्व से लागू अनुदान योजना को परिवर्तित करते हुए एक नयी आकर्षक प्रोत्साहन योजना लागू की गयी है, जिसके अन्तर्गत एक लाख तक की जनसंख्या वाले स्थलों मे निर्मित होने वाले नये छविगृहों को एक वर्ष तक मनोरंजन कर से शत-प्रतिशत छूट दिये जाने तथा उससे अधिक जनसंख्या वाले स्थलों में तीन वर्ष तक शत-

प्रतिशत तथा अगले दो वर्षों तक पचास-प्रतिशत छूट दिये जाने की व्यवस्था की गयी है। इस योजना के अन्तर्गत वर्तमान में संचालित छविगृहों को संरक्षण देने का प्रयत्न भी किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत पूर्व में लागू योजना के उन लाभार्थियों को भी सम्मिलित किया जायेगा, जिनके छविगृहों का निर्माण अभी पूरा नहीं हुआ और वह अनुदान के स्थान पर कर में छूट की सुविधा का लाभ प्राप्त करना चाहते हैं।

4.12 भूमि

नवीन छविगृहों को अपने आच्छादित क्षेत्रफल के 30 प्रतिशत की अधिकतम सीमा तक का प्रयोग वाणिज्यिक प्रयोजन हेतु करने की छूट होगी।

मल्टीप्लेक्सेज तथा छविगृहों के भावी विकास के लिए प्रमुख स्थलों पर भूमि का आवण्टन स्थानीय नगर प्राधिकरणों द्वारा किया जाएगा। मल्टीप्लेक्सेज/छविगृहों हेतु भूमि आवासीय दर को न्यूनतम मानकर नीलामी द्वारा उपलब्ध कराई जायेगी तथा सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा पहले मल्टीप्लेक्सेज / छविगृहों का निर्माण कराया जायेगा तथा इसके उपरान्त ही वाणिज्यिक निर्माण किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा प्रश्नगत भूमि का कब्जा प्राप्त करने की तिथि से एक वर्ष के भीतर निर्माण कार्य प्रारम्भ करना अनिवार्य होगा।

4.13 कैप्टिव विद्युत उत्पादन

छविगृहों के सफल व्यवसायिक संचालन के लिए नियमित तथा निर्बाध विद्युत आपूर्ति मूलभूत आवश्यकता है। छविगृह - स्वामियों द्वारा कैप्टिव पावर प्लाण्ट जनरेटर की स्थापना को सरकार द्वारा प्रोत्साहित किया जाएगा। इन संयंत्रों द्वारा उत्पादित विद्युत पर 3 वर्षों के लिए किसी प्रकार की विद्युत ड्यूटी नहीं लगायी जाएगी।

मिनिमम कन्जम्प्शन गारण्टी

अन्य उद्योगों की भाँति ही यदि छविगृह निर्धारित वार्षिक मिनीमम कन्जम्प्शन गारण्टी कुछ ही माह में पूर्ण कर लेते हैं तो वर्ष के शेष भाग में उनकी बिलिंग वास्तविक विद्युत उपभोग के आधार पर की जायेगी।

4.14 छविगृहों को उद्योग का दर्जा

उत्तर प्रदेश में छविगृहों को उद्योग का दर्जा दिया गया है।

4.15 वैधानिक संशोधन

उद्योग के प्रतिनिधियों से परामर्श के बाद सिनेमाटोग्राफी नियमावली तथा सिनेमा से सम्बन्धित अन्य कानूनों में आवश्यक संशोधन किए जाएंगे ताकि मल्टीप्लेक्सेज तथा छोटे छविगृहों के निर्माण तथा स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सके।

4.16 उपकरण

उत्तर प्रदेश में पूर्ण रूप से क्रियाशील फिल्म नगरी/नगरियों की स्थापना होने तथा स्थानीय सिनेमा उद्योग का पर्याप्त विकास होने तक राज्य सरकार द्वारा विभिन्न शासकीय विभागों यथा शिक्षा, सूचना तथा संस्कृति में उपलब्ध उपकरण फिल्म निर्माताओं को किराए पर उपलब्ध कराए जाएंगे। फिल्म निर्माताओं की आवश्यकता के अनुरूप इन उपकरणों के वर्तमान भण्डार को बढ़ाया जाएगा। इन उपकरणों के अर्जन तथा उनके रख-रखाव के लिए फिल्म विकास निधि का उपयोग किया जाएगा। इस कार्य हेतु फिल्म बन्धु नोडल एजेन्सी के रूप में कार्य करेगा तथा समस्त उपकरणों का एक 'पूल' फिल्म बन्धु में स्थापित किया जायेगा। उपकरणों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए फिल्म बन्धु शासकीय विभागों के अतिरिक्त निजी क्षेत्र में भी पूल बना सकेगा।

4.17 शूटिंग स्थलों का विकास

प्रदेश में उपलब्ध प्रचुर नैसर्गिक सुन्दरता, समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं तथा ऐतिहासिक स्मारकों की पृष्ठभूमि का पर्यटन विभाग निरन्तरता के आधार पर प्रदेश में आउटडोर शूटिंग के लिए स्थलों का चयन कर उनका विकास करेगा तथा सक्रियता से प्रचार करेगा। इसके लिए ट्रान्सपैरेन्सीज लघु फिल्में प्रचार साहित्य जैसे - ब्रोशर्स इत्यादि विकसित किये जायेगें। प्रदेश की नयी 'पर्यटन नीति' के तहत निजी क्षेत्र को इस बात के लिए उत्प्रेरित किया जाएगा कि वे इन शूटिंग स्थलों पर होटल्स, मॉल्स, रेस्टोरेन्ट्स तथा कैंम्पिंग सुविधाओं की स्थापना करें।

4.18 कलाकारों तथा तकनीशियनों का प्रशिक्षण

फिल्म उद्योग के उपयुक्त विकास के लिए यह परम आवश्यक है कि प्रतिभा सम्पन्न कलाकार तथा प्रशिक्षित तकनीशियन सुगमता से उपलब्ध हों। उत्तर प्रदेश में फिल्म तथा टेलीविजन इन्स्टीट्यूट की एक शाखा खोलने के लिए राज्य सरकार, भारत सरकार से समन्वय

स्थापित करेगी ताकि उन प्रतिभाशाली नवयुवकों की आकांक्षा की पूर्ति हो सके, जो कि देश के उत्तरी भाग में फिल्मों को अपना कैरियर बनाना चाहते हैं। इस शाखा की स्थापना होने तक प्रदेश की प्रख्यात भारतेन्दु नाट्य अकादमी का विकास राज्य फिल्म तथा टेलीविजन संस्थान के रूप में किया जाएगा।

फिल्म तकनीशियनों को चुने हुए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षित किया जाएगा। इस उद्देश्य से सम्बन्धित पाठ्यक्रम, कुछ संस्थानों में प्रारम्भ किए जायेंगे। राज्य सरकार द्वारा निजी क्षेत्र को भी फिल्म सम्बन्धी व्यवसायों एवं पाठ्यक्रमों के साथ प्रशिक्षण संस्थान खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान, पुणे में उत्तर प्रदेश के प्रशिक्षणरत विद्यार्थियों को अनुमन्य वार्षिक छात्रवृत्ति की राशि 4,800 रूपये से बढ़ाकर 25,000 रूपये वार्षिक की जायेगी, साथ ही छात्रवृत्तियों की संख्या भी वर्तमान तीन से बढ़ाकर दस की जायेगी। इस कार्य पर व्यय होने वाले धनराशि का वहन फिल्म विकास निधि से किया जाऐगा।

प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में परफारर्मिंग आट्र्स के पाठयक्रम आरम्भ किए जायेंगे, ताकि प्रदेश के युवा वर्ग को अपनी प्रतिभा विकसित एवं मुखरित करने का अवसर प्राप्त हो सकें।

4.19 फिल्म इकाइयों के लिए आवासीय सुविधा

प्रदेश में आउटडोर शूटिंग करने वाली इकाइयों को उत्तर प्रदेश राज्य पर्यटन विकास निगम के होटल्स, में कमरों के किराए में 20 से 25 प्रतिशत की छूट दी जाएगी। लोक निर्माण विभाग, वन विभाग तथा सिंचाई विभाग एवं राज्य सम्पत्ति विभाग के अतिथि गृह/ विश्रामालय भी इन 'फिल्म इकाइयों' को नियमित भुगतान पर उपलब्ध होंगे।

4.20 सरकारी हवाई पट्टियों का प्रयोग

राज्य द्वारा प्रदेश के विभिन्न भागों में स्थित हवाई पट्टियों के प्रयोग की सुविधा आउटडोर शूटिंग करने वाली फिल्म इकाइयों को निर्धारित किराए के भुगतान पर अनुमन्य करायी जा सकेगी।

4.21 फिल्मों का वित्त-पोषण

फिल्म उद्योग के विकास में फिल्मों का वित्त पोषण एक महत्वपूर्ण कारक है। भारत सरकार फिल्मों को उद्योग का दर्जा देने के

लिए राजी हो गयी है तथा व्यावसायिक बैंकों से फिल्मों के वित्त पोषण की प्रक्रिया का निर्धारण करने हेतु कानन समिति का गठन किया गया है। उत्तर प्रदेश की राज्य वित्तीय संस्थाएं पहले से ही स्टूडियो तथा उपकरणों, जैसे हार्डवेयर्स के लिए नियमित व्यवसायिक शर्तों पर वित्त पोषण की सुविधा उपलब्ध करा रही है। 'कानन समिति' की अनुशंसाएं प्रस्तुत होने पर तथा भारत सरकार द्वारा उन्हें स्वीकार कर लेने पर, राज्य सरकार उन्हें अंगीकृत करने के लिए प्रतिबद्ध है।

'कानन समिति' की रिपोर्ट आने तक फिल्मों का वित्त पोषण 'फिल्म बन्धु' द्वारा 'फिल्म विकास निधि' के माध्यम से किया जायेगा। प्रदेश 'नेशनल फिल्म डेवलपमेण्ट कारपोरेशन' पिकप अथवा बैंकों के साथ संयुक्त ऋण योजना में प्रतिभागी बनेगा, किन्तु यह वित्त पोषण केवल उन्हीं फिल्मों को अनुमन्य होगा जो 75 प्रतिशत से अधिक उत्तर प्रदेश में फिल्मांकित की जायेंगी तथा प्रदेश की छवि को उभारेंगी।

फिल्म निधि

फिल्म तथा फिल्म सम्बन्धी अवस्थापना के विकास की विभिन्न योजनाओं का वित्त पोषण करने के लिए सिनेमा टिकटों पर 50 पैसे का शुल्क चार्ज किया जायेगा। यह शुल्क प्रत्येक जिले के कोषागार में फिल्म निधि के नाम से जमा किया जायेगा। इस प्रकार से एकत्र की गयी धनराशि समेकित रूप में कर एवं निबन्धन विभाग से ज्ञात कर उसके समतुल्य धनराशि प्रत्येक वर्ष सूचना विभाग के आय-व्यय में अलग लेखा शीर्षक खोलकर प्राविधानित करायी जायेगी तथा उसे अनुदान के रूप में फिल्म बन्धु को स्वीकार की जायेगी। जिसे फिल्म बन्धु के अधीन स्थापित फिल्म विकास निधि में जमा किया जायेगा। इसका संचालन ''उत्तर प्रदेश फिल्म बन्धु'' द्वारा किया जायेगा। इसके साथ ही फिल्म विकास निधि में अनुदान के अतिरिक्त फिल्म उपकरणों के किराये, फिल्म महोत्सव के आयोजन में टिकटों से होने वाली आय को भी जमा किया जायेगा। निधि से प्राप्त धनराशि का उपयोग निम्नलिखित कार्यों के लिए किया जायेगा-

- फिल्म/वीडियो फिल्म/डाक्यूमेन्ट्री फिल्म तथा क्षेत्रीय फिल्मों के निर्माण हेतु अवस्थापना सुविधा का विकास।
- हिन्दी फिल्म/ वीडियो फिल्म/ डाक्यूमेंट्री फिल्म तथा क्षेत्रीय फिल्मों के निर्माण को प्रोत्साहित करना।
- उपर्युक्त फिल्मों के निर्माण के लिए वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराना।
- उपर्युक्त फिल्मों के निर्माण के लिए अनुदान उपलब्ध कराना।
- फिल्म निर्माण से सम्बन्धित उपकरणों की व्यवस्था।

- फिल्म स्टूडियो की स्थापना।
- फिल्मों के लिए पुरस्कार ।
- फिल्म छात्रों के लिए छात्रवृत्ति।
- फिल्म महोत्सवों का आयोजन।
- फिल्म गोष्ठियों का आयोजन।
- फिल्म से सम्बन्धित अन्य सभी कार्यक्रम।
- फिल्म बन्धु की स्थापना तथा उसके रख-रखाव सम्बन्धी व्यय।

फिल्म विकास निधि, 'सूचना विभाग' में उत्तर प्रदेश फिल्म बन्धु के अधीन वरिष्ठ अधिकारियों की एक समिति द्वारा इसका प्रबन्ध किया जायेगा। प्रबन्ध समिति में निम्नलिखित अधिकारी होंगे -

1.	प्रमुख सचिव, सूचना, उ.प्र. शासन	अध्यक्ष
2.	सचिव, सूचना, उ.प्र. शासन	उपाध्यक्ष
3.	सचिव, वित्त, उ.प्र. शासन	सदस्य
4.	सचिव, कर एवं निबन्धन, उ.प्र. शासन	सदस्य
5.	सचिव, उद्योग, उ.प्र. शासन	सदस्य
6.	सचिव, संस्कृति, उ.प्र. शासन	सदस्य
7.	महानिदेशक, पर्यटन, उ.प्र.	सदस्य
8.	प्रबन्ध निदेशक, पिकप, उ.प्र.	सदस्य
9.	मनोरंजन कर आयुक्त, उ.प्र.	सदस्य
10.	निदेशक, सूचना, उत्तर प्रदेश	सचिव
11.	अपर निदेशक, सूचना	सदस्य कार्यान्वयन

4.22 वित्तीय प्रोत्साहन

व्यापार कर से छूट - राज्य सरकार ने पूर्व में ही फिल्म को उद्योग घोषित कर दिया है। फिल्म निर्माताओं द्वारा वितरकों तथा फिल्म प्रदर्शकों को फिल्मों के प्रयोग के अधिकार के अन्तरण पर देय व्यापार कर को मुक्त करने का निर्णय प्रदेश शासन द्वारा लिया गया है।

कर प्रोत्साहन - राज्य सरकार द्वारा पूर्व में ही उत्तर प्रदेश में फिल्मांकित फिल्मों के लिए आकर्षक मनोरंजन कर रियायतों की घोषणा की जा चुकी है। इस घोषणा के अनुसार जिन फिल्मों की 50 प्रतिशत शूटिंग उत्तर प्रदेश में की जायेगी, उन्हें छः माह की अवधि के लिये मनोरंजन कर में 50 प्रतिशत की रियायत दी जायेगी और जिन फिल्मों की 75 प्रतिशत से अधिक शूटिंग प्रदेश में की जायेगी, उन्हें एक वर्ष की अवधि के लिए मनोरंजन कर में, शत-

प्रतिशत रियायत दी जायेगी।

बाल फिल्मों के लिए कर रियायत - एन सी वाई पी द्वारा निर्मित बाल फिल्मों को बिना किसी पूर्व प्रदर्शन के स्वतः मनोरंजन कर में छूट अनुमन्य होगी। यह सुविधा उन फीचर-फिल्मों को भी अनुमन्य होगी, जिन्हें भारत सरकार के राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए हों।

प्रगतिशील कर प्रणाली - राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर मनोरंजन कर के ढाँचे का पुनरीक्षण किया जायेगा ताकि इसे फिल्म निर्माण, स्टूडियो निर्माण तथा प्रयोगशालाओं की स्थापना के लिए और अधिक आकर्षक बनाया जा सके।

4.23 क्षेत्रीय फिल्में

अन्य राज्यों में रोजगार सृजन तथा अवस्थापना के विकास में क्षेत्रीय फिल्मों की सफल भूमिका अनुकरणीय है। प्रदेश हिन्दी भाषा का मुख्य क्षेत्र रंगारंग, अनुपम तथा माटी से जुड़ी हुई लोक-संस्कृति से समृद्ध होने के पश्चात भी क्षेत्रीय भाषाई तथा आंचलिक सिनेमा से वंचित रहा है। उ.प्र. की क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग भारतीय साहित्य में व्यापक रूप से हुआ है । भोजपुरी, अवधी, बुन्देली तथा ब्रज बोलियाँ बोलने वाले लोग, न केवल देश में फैले हुए हैं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में पाये जाते हैं । पूर्व में बनायी गयी अनेक भोजपुरी फिल्मों को व्यवसायिक दृष्टि से अत्यधिक सफलता मिली है और भारतीय सिनेमा की कुछ सर्वश्रेष्ठ फिल्में इसी भाषा में बनायी गयी हैं अतः क्षेत्रीय फिल्मों के विकास एवं उसकी सफलता की प्रबल संभावाएं हैं।

राज्य सरकार इन बोलियों तथा संस्कृतियों में अन्तर्निहित शक्ति एवं सम्भावनाओं से पूर्ण रूप से परिचित हैं। इन क्षेत्रीय भाषाओं में फिल्म निर्माण को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया जायेगा। इससे न केवल एक सशक्त क्षेत्रीय एवं आंचलिक फिल्म उद्योग का विकास होगा बल्कि स्थानीय स्तर पर पर्याप्त संख्या में रोजगार के अवसर सृजित होंगे और प्रदेश की स्थानीय संस्कृतियों की छवि प्रक्षेपित होगी। क्षेत्रीय फिल्म उद्योग के विकास से एक ऐसा वातावरण बनेगा, जो उ.प्र. में मुख्य धारा की हिन्दी फिल्मों के निर्माण को भी आकर्षित करेगा। एक पनपता हुआ क्षेत्रीय फिल्म उद्योग फिल्म सम्बन्धी अवस्थापना को आर्थिक रूप से सबल बनाने में भी सहायक होगा, इसलिए राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय फिल्मों के विकास के लिए प्रोत्साहन दिये जायेगें।

अनुदान/प्रोत्साहन व्यवस्था - प्रदेश में उपरोक्त में से किसी एक क्षेत्रीय भाषा में बनाई जाने वाली फिल्म के लिए उसकी निर्माण लागत का 25 प्रतिशत अनुदान के रूप में दिया जायेगा, जिसकी अधिकतम

सीमा दस लाख रूपये होगी। यह अनुदान फिल्म निर्माण में होने वाले वास्तविक खर्चों के लिए फिल्म प्रोसेसिंग लैब्स को ही दिया जायेगा।

प्रारम्भिक तीन वर्षों के दौरान यह अनुदान उ.प्र. से बाहर स्थित लैब्स को भी दिया जा सकता है, किन्तु तीन वर्षों के बाद यह अनुदान केवल उन्हीं क्षेत्रीय फिल्मों को दिया जायेगा जिनकी प्रोसेसिंग उत्तर प्रदेश में स्थित लैब्स द्वारा की गयी हों। इस प्राविधान से प्रदेश में लैब्स सुविधाओं के विकास को बल मिलेगा। इसके साथ ही ऐसी हिन्दी फिल्मों जिनकी 75 प्रतिशत से अधिक शूटिंग प्रदेश में की गयी हो, को भी प्रोत्साहित करने हेतु समानुपातिक रूप से अनुदान दिये जाने अथवा अनुदान की राशि को फिल्म हेतु संस्थागत वित्त की ब्याज दरों में समायोजित किया जायेगा।

दो सप्ताह के लिए क्षेत्रीय फिल्मों का अनिवार्य प्रदर्शन- क्षेत्रीय सिनेमा का सुनिश्चित प्रदर्शन सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रदेश में स्थित सभी छविगृहों के लिए वर्ष में यथासंभव कम से कम दो सप्ताह के लिए क्षेत्रीय फिल्मों का प्रदर्शन करने की व्यवस्था की जायेगी। इसके लिए उत्तर प्रदेश चलचित्र (विनियमन)अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत अधिसूचना निर्गत की जायेगी।

कर रियायत - उपर्युक्त किसी भी बोली में उत्तर प्रदेश के अन्दर बनायी गयी फिल्मों को मनोरंजन कर में एक वर्ष की अवधि के लिए 100 प्रतिशत छूट दी जायेगी।

4.24 प्रशासनिक सुविधाएं

फिल्म विकास परिषद् - उत्तर प्रदेश में फिल्म क्षेत्र के दीर्घकालिक तथा अर्थ-पूर्ण विकास के लिए राज्य स्तरीय फिल्म विकास परिषद् की स्थापना की जाएगी। इस परिषद् की अध्यक्षता सरकार द्वारा नामित किसी ख्यातिप्राप्त फिल्मी व्यक्तित्व द्वारा की जाएगी। इस परिषद में प्रतिष्ठित फिल्म निर्माता, वितरक, कलाकार तथा शासकीय अधिकारी होंगे। सूचना निदेशक, उ.प्र. इस परिषद् के संयोजक होंगे। यह परिषद् समय समय पर उत्तर प्रदेश में फिल्मों के विकास के लिए दीर्घकालिक रणनीतियों पर विचार विमर्श करेगी, फिल्मों के विकास के लिए आवश्यक अवस्थापना के उच्चीकरण तथा सृजन पर शासन को परामर्श देगी और साथ ही फिल्म क्षेत्र में निवेश आकर्षित करने हेतु रणनीति तैयार करेगी। इस परिषद द्वारा फिल्म नीति के क्रियान्वयन का अनुश्रवण किया जाएगा तथा जब कभी और जहाँ कहीं किसी सुधार व संशोधन की आवश्यकता होगी तो इसके लिए सुझाव दिया जाएगा।

राज्य फिल्म प्रभाग का गठन - उत्तर प्रदेश में बनी लघु / शैक्षिक

फिल्मों को छविगृहों में चलाने तथा फिल्म नीति के क्रियान्वयन हेतु सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय के अधीन राज्य फिल्म प्रभाग का गठन किया गया है। यह प्रभाग प्रदेश में फिल्मों, विशेषकर क्षेत्रीय फिल्मों के लिए सुगम, सरल तथा समयबद्ध प्रमाणीकरण सुविधा उपलब्ध करायेगा। राज्य फिल्म प्रभाग में निम्न पदाधिकारी हैं -

1.	निदेशक, सूचना, उ.प्र.	अध्यक्ष
2.	निदेशक, दूरदर्शन, लखनऊ	सदस्य
3.	निदेशक, आकाशवाणी, लखनऊ	सदस्य
4.	निदेशक, संस्कृति, उ.प्र.	सदस्य
5.	आयुक्त, मनोरंजन कर, उ.प्र.	सदस्य
	या उसके प्रतिनिधि जो अपर आयुक्त से नीचे न हों।	
6.	अपर निदेशक, सूचना, उ.प्र.	सदस्य
7.	उप निदेशक, फिल्म, सूचना, उ.प्र.	सदस्य
	या निदेशक, सूचना द्वारा नामित अधिकारी।	

पृथक वितरण क्षेत्र - हिन्दी फिल्मों से प्राप्त होने वाले राजस्व में उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके बावजूद फिल्म वितरण के लिए इसे अन्य क्षेत्रों के साथ रखा गया है। उत्तर प्रदेश राज्य का यह प्रयास होगा और इस बात पर बल दिया जायेगा कि उत्तर प्रदेश एक पृथक वितरण क्षेत्र के रूप में स्थापित हो। इससे उत्तर प्रदेश से प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रदेश में बनने वाली फिल्मों के वित्त पोषण पर लाभकारी ढंग से पुनर्निवेशित किया जा सकेगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपयुक्त वैधानिक तथा वित्तीय व्यवस्थाएँ विकसित की जायेगी। वितरकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया जाएगा कि वे अपने कार्यालय उत्तर प्रदेश में स्थापित करें। इन वितरकों को विकास प्राधिकरणों द्वारा भूमि तथा भवन के आवण्टन में प्राथमिकता दी जाएगी।

स्वीकृतियों के लिए एकल मेज व्यवस्था - फिल्म नीति के सफल क्रियान्वयन एवं फिल्म से जुड़े लोगों को बेहतर सुविधा उपलब्ध कराने की दृष्टि से एकल मेज प्रणाली का गठन किया गया है। फिल्म नीति के समस्त क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्त विचाराधीन प्रकरणों के क्रियान्वयन की सुविधा विभाग के अधीन फिल्म बन्धु के अन्तर्गत गठित समिति द्वारा उपलब्ध होगी।

फिल्म निर्माण हेतु सुरक्षा व्यवस्था - उत्तर प्रदेश का सम्मानपूर्ण आतिथ्य सर्वविदित रहा है। अनेक भारतीय तथा अन्तराष्ट्रीय फिल्में, उत्तर प्रदेश में फिल्मांकित की गयी हैं तथा कानून व व्यवस्था की दृष्टि से फिल्मकारों का स्थानीय जनता के साथ सुखद अनुभव रहा है। राज्य

अपनी आतिथ्य-सत्कार की परम्पराओं को जारी रखेगा तथा उत्तर प्रदेश में फिल्मों की शूटिंग के लिए फिल्म निर्माताओं को सामान्य रूप से आवश्यक सुरक्षा व्यवस्था निःशुल्क उपलब्ध करायी जायेगी, किन्तु निर्माताओं को इसके लिए स्थानीय अधिकारियों को न्यूनतम तीन सप्ताह पूर्व सूचित करना होगा, ताकि आवश्यक प्रबन्ध सुनिश्चित किये जा सकें। यह सूचना फिल्म बन्धु के माध्यम से भी दी जा सकती है। फिल्म निर्माण के लिए विशिष्ट सुरक्षा उपलब्ध कराने हेतु पुलिस विभाग के अधीन एक फिल्म शूटिंग विंग की स्थापना की जायेगी। इस विंग के अन्तर्गत उपयुक्त संख्या में आवश्यक पुलिस बल की व्यवस्था की जायेगी, ताकि फिल्म शूटिंग के समय फिल्म निर्माताओं की मांग पर उनकी मांग के अनुसार आवश्यक पुलिस बल उपलब्ध कराया जा सके। यह अतिरिक्त विशिष्ट पुलिस बल फिल्म निर्माताओं को निर्धारित दर पर भुगतान किये जाने पर उपलब्ध कराये जायेगें।

वीडियो पाइरेसी तथा फिल्मों के अवैधानिक प्रदर्शन पर रोक- वीडियो पाइरेसी तथा विभिन्न संचार माध्यमों से फिल्मों के अवैधानिक प्रदर्शन से फिल्म उद्योग बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। प्रदेश सरकार उपभोक्ताओं के अच्छी तथा प्रमाणित फिल्म देखने के अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए वचनबद्ध है। वीडियो पाइरेसी तथा अप्रमाणित फिल्मों के अवैधानिक प्रदर्शन को रोकने के लिए सम्बन्धित कानूनों का कठोरता से क्रियान्वयन किया जायेगा। इस उद्देश्य से राज्य द्वारा सतर्कता समिति का गठन किया जायेग, जिसमें उद्योग मनोरंजन कर, गृह विभाग तथा सूचना विभाग के प्रतिनिधि भी सम्मिलित होंगे।

4.25 फिल्मों का प्रचार-प्रसार

यह सर्वमान्य सत्य है कि फिल्म उद्योग पूर्ण रूप से जन समर्थन पर आश्रित है। एक बड़ी जनसंख्या वाला उत्तर प्रदेश फिल्मों के लिए एक श्रेष्ठ जलाधार प्रस्तुत करता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि देश के कुछ भागों में प्रचलित फिल्म संस्कृति, उत्तर प्रदेश में अपनी जड़ें नहीं जमा पायी हैं। राज्य द्वारा जनसाधारण में फिल्मों को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयास किये जायेंगे ताकि अधिक-से-अधिक लोगों का ध्यान मनोरंजन के इस शिक्षाप्रद स्त्रोत की ओर आकर्षित किया जा सके। निम्नलिखित विधियों से इस लक्ष्य की प्राप्ति सुनिश्चित की जायेगी।

- फिल्मोत्सवों का आयोजन।
- पुरस्कारों का वितरण।
- फिल्म सोसाइटीज को समर्थन।

फिल्मोत्सव - राज्य द्वारा वर्ष में एक बार फिल्मोत्सव का आयोजन

किया जायेगा। इन उत्सवों का उद्देश्य उच्च श्रेणी की राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय फिल्मों को जन साधारण की आसान पहुँच में लाना है। ऐसा माना जाता है कि इससे स्वस्थ सिनेमा संस्कृति का विकास होगा तथा राज्य मे फिल्म उद्योग के लिए एक व्यापक आधार तैयार होगा। इस उद्देश्य से राज्य, राष्ट्रीय फिल्मोत्सव निदेशालय से एक समझौता करेगा। उत्सव का आयोजन उद्योग, सूचना, पर्यटन, मनोरंजन कर तथा संस्कृति विभाग द्वारा संयुक्त रूप से किया जायेगा। फिल्मोत्सव का आयोजन फिल्म विकास निधि के माध्यम से किया जायेगा तथा इसका पर्यवेक्षण फिल्म बन्धु द्वारा किया जायेगा। इस अवसर को विशिष्ट पर्यटकीय अवसर के रूप में विकसित किया जायेगा।

पुरस्कार -

राज्य सरकार द्वारा उच्चस्तरीय फिल्मों के निर्माण से जुड़े व्यक्तियों को सम्मानित करने के लिए वार्षिक फिल्म पुरस्कार की स्थापना की जाएगी। इन पुरस्कारों के चयन के लिए एक निष्पक्ष निर्णायक मण्डल का गठन किया जाएगा। यह पुरस्कार प्रदेश में आयोजित एक जन समारोह में वितरित किये जायेंगें। इन पुरस्कारों को निम्नलिखित चार श्रेणियों के लिए दिया जायेगा

1. मुख्य धारा का हिन्दी सिनेमा
2. उत्तर प्रदेश में बनी टी वी फिल्में तथा धारावाहिक
3. राज्य में बनी क्षेत्रीय फिल्में
4. राज्य में बने वृत्तचित्र

इन पुरस्कारों तथा इसके वितरण समारोह को फिल्म विकास निधि द्वारा वित्त पोषित किया जायेगा।

फिल्म सोसाइटीज- फिल्म सोसाइटीज फिल्म संस्कृति के विकास तथा सिने- दर्शकों का एक विवेकशील तथा बुद्धिमान वर्ग सृजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह एक ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा उच्च श्रेणी का राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सिनेमा, जानकार लोगों द्वारा देखा जाता है, उन पर विचार-विमर्श किया जाता है तथा उनका विश्लेषण किया जाता है । फिल्म सोसाइटी आन्दोलन उत्तर प्रदेश में कुछ स्थानों तक ही सीमित रहा है। उत्तर प्रदेश में इस समय मात्र छः फिल्म सोसाइटीज है। उनकी गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए फिल्म सोसाइटी आफ इण्डिया से विधिक रूप से पंजीकृत गम्भीर एवं सक्रिय फिल्म सोसाइटीज को फिल्म विकास निधि से 5000 रूपये का वार्षिक अनुदान दिया जायेगा। राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम (एन एफ डी सी) तथा फिल्म सोसाइटी ऑफ इण्डिया से इस बात का आग्रह किया जायेगा कि वे इन सोसाइटीज को अपनी गतिविधियों के विकास तथा उन्नयन हेतु कम लागत के विशेष पैकेज प्रदान करें।

4.26 उत्तर प्रदेश फिल्म नीति के महत्वपूर्ण बिन्दु

- फिल्म-नीति के सफल क्रियान्वयन एवं बेहतर सुविधा उपलब्ध कराने की दृष्टि से एकल मेज प्रणाली के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश फिल्म बन्धु का गठन किया गया है।
- दीर्घकालिक अर्थपूर्ण विकास के लिए राज्य स्तरीय फिल्म विकास परिषद् की स्थापना की जायेगी।
- लघु/शैक्षिक, क्षेत्रीय फिल्मों के लिए सरल, सुगम तथा समयबद्ध प्रमाणीकरण सुविधा हेतु सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय के अधीन राज्य फिल्म प्रभाग का गठन किया गया है।
- प्रदेश में क्षेत्रीय भाषा में बनने वाली फिल्मों को, फिल्मों की निर्माण लागत का 25 प्रतिशत अनुदान के रूप में दिया जायेगा।
- फिल्म की 75 प्रतिशत से अधिक शूटिंग प्रदेश में करने पर मनोरंजन कर में शत-प्रतिशत छूट दी जायेगी।
- प्रदेश में आउटडोर शूटिंग करने वाली इकाइयों को रियायती दर पर आवासीय सुविधा तथा पर्यटन विकास के होटल्स एवं मोटल्स में कमरों के किराये में 25 प्रतिशत तक की छूट दी जायेगी।
- मल्टीप्लेक्सेज को प्रोत्साहित करने हेतु प्रदशे सरकार द्वारा मनोरंजन कर में छूट दी जायेगी।
- छविगृहों स्वामियों द्वारा कैप्टिव पावर प्लाण्ट जनरेटर की स्थापना को सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जायेगा।
- फिल्म नगरियों की स्थापना हेतु राज्य सरकार औद्योगिक दर पर भूमि उपलब्ध करायेगी।
- सस्ती दरों पर मनोरंजन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से मनोरंजन कर 100 प्रतिशत से घटाकर 60 प्रतिशत कर दिया गया है।
- फिल्म निर्माण के लिए विशिष्ट सुरक्षा उपलबध कराने हेतु फिल्म शूटिंग विंग की स्थापना की जायेगी। इस विंग के अन्तर्गत फिल्म निर्माताओं की मांग पर आवश्यक पुलिस बल उपलब्ध कराया जा सकेगा।

4.27 सारांश

इस इकाई में, सारगर्भित उत्तर प्रदेश फिल्म नीति का विवरण दिया गया है।

उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद्, फिल्म क्षेत्र की महत्वपूर्ण संस्था है। इसका उद्देश्य उत्तर प्रदेश में फिल्म उद्योग की स्थापना है।

उत्तर प्रदेश की फिल्म नीति मूलरूप से 1985 में बनाई गयी। उस समय, उत्तर प्रदेश चलचित्र निगम को जो करीब 40 सिनेमाघर संचालित करता था, फिल्म नीति की नोडल एजेन्सी बनाया गया था। शासन से उच्चाधिकारी समिति का गठन किया गया था जिसका संयोजक राजकृष्ण मिश्र को बनाया गया था। उस समय फिल्म नीति की घोषणा हुई थी और शासनादेश निकाला गया था उस शासनादेश में फिल्म सब्सिडी, फिल्म प्रशिक्षण की छात्रवृत्ति एवं प्रदर्शन तथा वितरण की अनेक योजनाएं थी।

उसके पश्चात् 1999 में पुनः फिल्म नीति की घोषणा हुई और 2001 में संशोधित फिल्म नीति बनाई गई।

दो वर्ष पूर्व फिल्म बन्धु का गठन किया गया, जिसमें केवल सरकारी अधिकारी हैं। फिल्म नीति को लागू करने के लिए एक 50पैसे का कर प्रत्येक सिनेमा टिकट पर लगाया गया जिससे प्राप्त होने वाले राजस्व का प्रयोग फिल्म नीति को पूरा होने वाले खर्च के लिए होता है।

वैसे उत्तर प्रदेश में फिल्म नीति असफल तो हो चुकी है फिल्म का अलग विभाग न होने के कारण फिल्म नीति को सूझ-बूझ से क्रियाशील करने की समस्या है।

उत्तर प्रदेश में फिल्म के लिए अनेक सुविधाओं का पैकेज है जिसमें ऋण देने की भी व्यवस्था बनाई गई है।

4.28 शब्दावली

फिल्म बन्धु	-	फिल्म नीति की संस्था
स्टूडियो	-	जहाँ फिल्म बनती है।
लैब	-	जहाँ फिल्म का निगेटिव प्रॉसेस किया जाता है तथा प्रिन्ट निकाले जाते हैं।
फिल्म प्रदर्शन	-	सिनेमाघर में फिल्म दिखाना।
मल्टीप्लेक्सेज	-	कई पर्दों वाले सिनेमाघर जहाँ एक साथ तीन चार फिल्में दिखायी जा सकती हैं सिनेमाघर के अन्दर बाजार तथा होटल भी होते हैं।
शूटिंग स्थल	-	जहाँ फिल्म की शूटिंग की जा सके।

4.29 सन्दर्भ ग्रन्थ

- इलेक्ट्रानिक मीडिया एण्ड फिल्म प्रोडक्शन — राजकृष्ण मिश्र

- फन्डामेन्टल्स ऑफ ब्रॉडकास्टिंग शराफत यार खान
- ई-जर्नलिज्म डा. अर्जुन तिवारी

4.30 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) उत्तर प्रदेश की फिल्म नीति सर्वप्रथम कब बनाई गयी थी?

(2) फिल्म बन्धु से आप क्या समझते हैं?

(3) फिल्म नीति के सम्बन्ध में फिल्म की परिभाषा क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) फिल्म नीति का वर्णन करते हुए उसके मुख्य बिन्दुओं को रेखांकित कीजिए।

(2) उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् तथा फिल्म बन्धु में नामित तथा एक्स अधिकारियों, सदस्यों का वर्णन कीजिए।

(3) उत्तर प्रदेश में वर्तमान फिल्म नीति के संदर्भ में सिनेमा उद्योग की स्थिति बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश में फिल्म नीति -

(1) 1994 में बनी थी। (2) 1985 में बनी थी।

(3) 1998 में बनी थी। (4) 2000 में बनी थी।

(ख) उत्तर प्रदेश फिल्म नीति के अन्तर्गत मनोरंजन कर में -

(1) छूट दी जाती है। (2) छूट नहीं दी जाती है।

(3) छूट नहीं के बराबर है। (4) छूट अब नहीं दी जाती है।

(ग) उत्तर प्रदेश में फिल्म सिटी -

(1) नहीं है। (2) नोएडा में है।

(3) हरिद्वार में है। (4) लखनऊ में है।

(घ) मल्टीप्लेक्सेज में -

(1) एक सिनेमा घर होता है ।

(2) कई सिनेमा घर होते हैं।

(3) एक इमारत में कई सिनेमाहाल होते हैं।

(4) सिनेमा हाल नहीं होते हैं।

उत्तर -

(क) 2 (ख) 1 (ग) 2 (घ) 3